ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चाऽन्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥
सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात्पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥
वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३६ ॥
दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्त्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

ने अर्जुन का सामना किया। महावीर अर्जुन का रथ कुछ धीमी चाल से आगे बढ़ने लगा। इसी अवसर के मध्य में महाराज दुर्योधन, [द्रोणाचार्य का बाँधा हुआ कवच पहनकर] स्फूर्ति के साथ युद्ध करने के निमित्त अर्जुन के सम्मुख आये। परन्तु मेघ के सदृश गम्भीर शब्द से युक्त, वायु से फहरा रही और वानर से भूषित ध्वजा से युक्त अर्जुन का रथ देखकर कौरवपक्ष के सब रथी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उस समय इतनी धूल उड़ी कि चारों ओर घना अँधेरा छा गया। उस अँधेरे में बाणों से पीड़ित योद्धा लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन को भली भाँति देखने में असमर्थ हो गये॥३४।३७॥

—०—

कर्णपर्व का सौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०० ॥

अथ एकाधिकशततमोऽध्याय. ॥ १०१ ॥

सञ्जय उवाच—स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप ।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः ।
तेऽद्यापि न निवर्त्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥
असन्तस्तु न्यवर्त्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः ।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ॥ ४ ॥

एक सौ एक अध्याय ॥ १०१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! कौरवपक्ष के योद्धा और राजा लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन को शत्रु-दल के भीतर प्रवेश हुए देखकर पहले तो भय के मारे भागने को उद्यत हो गये; किन्तु उसके पश्चात् अपने पराक्रम की प्रेरणा से लज्जित, क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर, स्थिर होकर, अर्जुन की ओर बढ़े। जो राजा और योद्धा रोष के मारे अर्जुन के सम्मुख युद्ध करने को गये वे, समुद्र में गिरी हुई नदियों के समान, फिर नहीं लौटे॥१।३॥तब कायर क्षत्रिय, वेदों की ओर से नास्तिक की भाँति, युद्ध से भाग खड़े हुए। वे कायर अपने उस कार्य से पाप और नरक के भागी हुए। श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय द्रोणाचार्य की सेना को चीरकर और रथों के घेरे से निकलकर राहु के ग्रास से मुक्त सूर्य और चन्द्रमा के समान शोभायमान

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५ ॥
मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत् ॥ ६ ॥
विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात्सुदुर्भिदात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ७ ॥
अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसङ्कटात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥ ८ ॥
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव ।
अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः ।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥
तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती ।
नाऽऽशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥
आशा बलवती राजन्सिन्धुराजस्य जीविते ।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो ॥ १२ ॥
तामाशां विफलीकृत्य सन्तीर्णौ तौ परन्तपौ ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १३ ॥
अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे ॥ १४ ॥

प्रतीत हो रहे थे। वे उन सेनाओं को विदीर्ण करने के पश्चात् महाजाल को छिन्न भिन्न करके उससे बाहर निकले दो महामत्स्यों के समान देख पड़े॥४।६॥दुर्भेद्य द्रोणाचार्य की सेना और उसके शस्त्रपात से छुटकारा पाकर वे प्रलयकाल में उदय हुए प्रचण्ड सूर्य के समान जान पड़ने लगे। मगर के मुख से छूटे हुए महामत्स्यों के समान श्रीकृष्ण और अर्जुन, उस अस्त्रजाल और रथ-सङ्कट से छुटकारा पाकर, शत्रुसेना को उसी प्रकार मथने लगे जैसे बड़े-बड़े मगर समुद्र को मथा करते हैं ॥७।९॥हे राजेन्द्र ! जिस समय महाबाहु अर्जुन और कृष्णचन्द्र द्रोणाचार्य की सेना से घिरे हुए थे उस समय आपके पुत्रों और उनके पक्ष के राजाओं ने समझा था कि वासुदेव और अर्जुन कभी द्रोणाचार्य के आगे जीते नहीं बच सकते। किन्तु जब वे द्रोणाचार्य की सेना को लाँघकर आगे निकल गये तब उन लोगों को निश्चय हो गया कि अब जयद्रथ के जीवन की आशा नहीं हो सकती॥१०।११॥द्रोणाचार्य की सेना में अर्जुन और श्रीकृष्ण के अटकने पर कौरवों को जो प्रबल आशा हुई थी कि वे द्रोणाचार्य और कृतवर्मा के हाथ से छुटकारा न पा सकेंगे और इसी कारण जयद्रथ बच जायँगे, उस आशा को निष्फल करके वे द्रोणाचार्य और कृतवर्मा की दुस्तर सेना को लाँघ गये। सेनाओं से प्रज्वलित अग्नि के समान उन दोनों को निकल जाते देखकर सब लोग जयद्रथ के जीवन से

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५ ॥
असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥
यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाऽप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥
इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥
अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवाऽऽस्तामरिन्दमौ ॥ १९ ॥
व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥
तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥ २१ ॥
द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥
विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिन्दमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्याऽर्णवं यथा ॥ २३ ॥
अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणाहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥

निराश हो गये॥१२।१४॥ उस समय शत्रुओं को विह्वल बनानेवाले निर्भय श्रीकृष्ण और अर्जुन परस्पर जयद्रथ के मारने के बारे में बातचीत करने लगे कि कौरवपक्ष के छः महारथी जयद्रथ के चारों ओर रहकर उसकी रक्षा कर रहे हैं; किन्तु हमारी आँखों के आगे पड़ जाने पर वह कभी जीता नहीं बच सकता। युद्धभूमि में यदि देवताओं सहित इन्द्र भी जयद्रथ की रक्षा करेंगे तो भी आज हम उसे अवश्य मार डालेंगे॥१५।१७॥ हे राजेन्द्र! महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथ को खोजते हुए इस प्रकार परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उधर आपके पुत्र चिल्ला-चिल्लाकर अपने सैनिकों को अर्जुन से युद्ध करने के निमित्त उत्साहित करने लगे, जिस प्रकार प्यासे दो गजराज मरुभूमि को लाँघकर जल पीकर आश्वस्त हों, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन भी शत्रुसेना के उस पार जाकर परम प्रसन्न हुए। जैसे सिंह-व्याघ्र-गज आदि खूनी जन्तुओं से परिपूर्ण पर्वतों को लाँघकर व्यापारी प्रसन्न होते हैं वैसे ही अजर अमर श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय प्रसन्न देख पड़ते थे ॥१८।२०॥ हे महाराज! आपके पक्ष के लोग उन्हें शत्रुसेना से निर्मुक्त देखकर जोर से चिल्लाने लगे। विषैले सर्प और प्रज्वलित अग्नि के समान द्रोणाचार्य से, अन्य राजाओं से और द्रोणाचार्य की अपार सेना से छुटकारा पाने पर सूर्य के समान तेजस्वी दोनों वीर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे लोग समुद्र के पार पहुँचकर

उद्विग्नमधिगौ कृष्णौ साम्राज्यस्य सायकैः ।
शिशिरघ्नौ व्यराजेतां कर्णिकारागिवाऽचलौ ॥ २५ ॥
द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्यग्राशीविषसङ्कटात् ।
अयःशराग्रमकरात्क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥
बाहुभ्यामिव सन्तीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥
इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥
जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥ ३० ॥
यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥
लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥
शौरेरभीशुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः ।
तयोरासीत्प्रभा राजन्सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥

[illegible] ॥२१।२६॥ द्रोणाचार्य और कृतवर्मा [illegible]

कृष्ण तथा अर्जुन को द्रोणाचार्य का सेना और अ[illegible] का निवारण करके निकल जाते देखकर सब प्राणि[illegible] ने समझा कि ये मानों दुस्तर शतद्रु, विपाशा, इरा[illegible] चन्द्रभागा, वितस्ता और सिन्धु को हाथों से ही [illegible] पार गये॥२७।२९॥ हे राजेन्द्र ! दो सिंह जैसे [illegible] मृग का शिकार करने को उद्यत हों वैसे ही [illegible] और अर्जुन दोनों वीर निकटवर्ती जयद्रथ को देख[illegible] हुए रथ पर शोभायमान हो रहे थे । उनके [illegible] मुखश्री को देखकर सब योद्धाओं को निश्चय [illegible] कि अब जयद्रथ के प्राण गये । उस समय [illegible] महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथ को देख [illegible] [illegible]

हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः ।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥
तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्त्तमानमिवाऽन्तिके ।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवाऽऽमिषम् ॥ ३५ ॥
तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥
द्रोणेनाऽऽबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः ।
ययावेकरथेनाऽऽजौ हयसंस्कारवित्प्रभो ॥ ३७ ॥
कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याऽथ ते सुतः ।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥
ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयम् ॥ ३९ ॥
सिंहनादरवाश्चाऽऽसञ्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥
ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णौ व्यतिक्रान्तं सहानुगम् ।
अब्रवीदर्जुनं राजन्प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

अर्जुन, आचार्य की सेना से निकलकर, जयद्रथ को निकटवर्ती देख बहुत आनन्दित हुए और मांस की अभिलाषा से झपटनेवाले बाज पक्षियों की भाँति पराक्रम प्रकट करते हुए क्रोध के साथ जयद्रथ की ओर चले ॥३३।३५॥ उस समय द्रोणाचार्य के पहनाये कवच को पहने हुए, अश्वसंस्कार में निपुण, राजा दुर्योधन अकेले रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर चले॥३६।३८॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन को लाँघकर, उनके आगे पहुँचकर, दुर्योधन ने श्रीकृष्ण-सञ्चालित रथ को *रोका। उस समय कौरव सेना में शङ्ख आदि बहुत से* बाजे बजने लगे और सिंहनाद सुनाई पड़ने लगे। अग्नि के समान तेजस्वी जो छः महारथी जयद्रथ की रक्षा कर रहे थे वे राजा दुर्योधन को, श्रीकृष्ण और अर्जुन के आगे, उपस्थित देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अनुचरों सहित दुर्योधन को पीछे की ओर से आगे आकर राह रोकते देख श्रीकृष्ण अर्जुन से उस समय के उपयोगी वचन कहने लगे॥३९।४२॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ एक अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

वासुदेव उवाच—दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनञ्जय ।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नाऽस्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः ।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥ ३ ॥
तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥
अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥
सोऽयं प्राप्तस्तवाऽऽक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः ।
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥
दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम् ।
यथाऽयं जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनञ्जय ॥ ७ ॥
ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान् ।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥
त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः ।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥
स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम् ।
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ १० ॥

एक सौ दो अध्याय ॥ १०२ ॥

वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन ! वह देखो, दुर्योधन हमें लाँघकर आगे आ गया है । मैं समझता हूँ कि आपत्ति में पड़कर इसने हमारे सम्मुख इस प्रकार आने का साहस किया है । मेरी सम्मति में इसके सदृश रथी योद्धा दूसरा और कोई नहीं है । यह महाधनुर्द्धर, अस्त्रविद्या में सुशिक्षित, युद्ध में दुर्जय, दृढमुष्टि, विचित्र युद्ध में निपुण और महावली है । इसके बाण दूर तक जाते हैं । यह अत्यन्त ही सुख में पला है । महारथी योद्धा इसका सम्मान करते हैं । यह कर्मवीर है और सदा पाण्डवों से डाह रखता है॥२।३॥हे निष्पाप ! मैं समझता हूँ कि इससे तुम्हारे युद्ध करने का यही समय है । तुम्हारी जय-पराजय का जुआ इसी के ऊपर निर्भर है । हे पार्थ ! बहुत काल से सञ्चित क्रोधरूपी विष इस समय इसके ऊपर छोड़ो । वीर पाण्डवों के ऊपर होनेवाले सब अनर्थों की जड़ यही है॥४।५॥ सो यह पापिष्ठ इस समय सौभाग्यवश तुम्हारे, बाणों का लक्ष्य बनकर, सम्मुख उपस्थित हो गया है । अब तुम अपनी सफलता का उपाय देखकर इसे मारने का यत्न करो । यदि तुम्हें सफलता न प्राप्त होनेवाली होती तो यह राज्यलोलुप राजा तुमसे युद्ध करने को क्यों आ जाता ? हे अर्जुन ! तुम वही करो जिससे इसका प्राणान्त हो । यह ऐश्वर्य के मद में मूढ़ हो रहा है । इसने कभी दुःख नहीं पाया । हे पुरुषश्रेष्ठ ! युद्ध में तुम्हारे पराक्रम को यह नहीं जानता । हे पार्थ ! त्रिलोक के निवासी सुर-असुर-मनुष्य आदि सब एकत्र होकर भी तुमको जीतने का साहस नहीं कर सकते, अकेला

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवाऽनघ ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥
बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येनेन मानद ।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥
तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामरूपिणम् ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाऽविचारयन् ॥ १३ ॥
निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रम ॥ १४ ॥
दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्त्तते ।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥
दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह ।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६ ॥
तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्त्तराष्ट्रं कुलाधमम् ।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥
अस्मिन्हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम् ।
वैरस्याऽस्याऽस्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच—तं तथेत्यब्रवीत्पार्थः कृत्यरूपमिदं मम ।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥

दुर्योधन क्या वस्तु है ?॥७।९॥बड़े भाग्य की बात यह है कि वही शत्रु इस समय तुम्हारे रथ के समीप उपस्थित है। हे महाबाहो ! वृत्रासुर को इन्द्र ने जैसे मारा था वैसे ही तुम इसे शीघ्र मारो। इसने सदा तुम सबके ऊपर अनर्थ लाने का उद्योग किया है। इसने विश्वास देकर कपटद्यूत में धर्मराज को जीता है। इस पापमति ने इसी प्रकार अनेक क्रूर नीच व्यवहार तुम निष्पाप पाण्डवों के साथ किये हैं॥१०।१२॥हे पार्थ ! तुम किसी प्रकार का सोच विचार किये बिना इस अनार्यप्रकृति, सदाक्रोधी, कामरूपी दुर्योधन को मारो। क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म युद्ध ही है और उस युद्ध में शत्रु को अवश्य मारना चाहिए। छलपूर्वक राज्य हरण, वनवास, द्रौपदी के क्लेश आदि का स्मरण करके तुम इस समय पराक्रम प्रकट करो और दुर्योधन को मारो॥१३।१४॥यह तुम्हारा सौभाग्य है कि आज यह दुष्ट तुम्हारे कार्य में विघ्न डालने के लिए, युद्ध की आकांक्षा से, तुम्हारे बाणों के मार्ग में आ गया है। बड़ी बात जो यह तुम्हारे आगे आकर तुमको रोकने का यत्न कर रहा है। बड़ी बात जो यह युद्धभूमि में तुमसे युद्ध करना अपना परम कर्तव्य समझता है। आज सौभाग्यवश तुम्हारी अचिन्तित इच्छाएँ सफल होंगी। देवासुर युद्ध में इन्द्र ने जैसे जम्भासुर को मारा था वैसे ही तुम इस अधम कुलाङ्गार को मारो।इसको मार डालने पर यह शत्रुसेना, अनाथ होकर, भाग खड़ी होगी। इस समय तुम सहज ही इन दुरात्माओं के वैर की जड़ काट सकते हो॥१५।१८॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! महामति वासुदेव के यों कहने पर, उनसे सहमत होकर, अर्जुन ने कहा—हे केशव ! आपने जो कहा वह मेरा आवश्यक कर्तव्य है। अतएव अन्यान्य कार्य छोड़कर जहाँ पर दुर्योधन है वहाँ मेरा रथ ले

येनैतद्दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्य च्छिन्द्यां मूर्धानमाहवे ॥ २० ॥
अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥ २१ ॥
इत्येवं वादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान्हयोत्तमान् ।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥
तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३ ॥
तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाऽभ्यपूजयन् ।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् ॥ २४ ॥
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
महानादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥
आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद्भूयः स च तस्मिन्परन्तपः ॥ २७ ॥
तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ ।
अभ्यवेक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥

चाहिए। हे गोविन्द! जो पापिष्ठ बहुत समय से हमारे राज्य को निष्कण्टक होकर भोग रहा है, उसके सिर को क्या मैं आज पराक्रमपूर्वक काट सकूँगा? क्लेश के अयोग्य द्रौपदी को केश पकड़कर खींचने से जो दुःख मिला था उसे क्या मैं, इसे मारकर, दूर कर सकूँगा॥१९।२१॥ हे राजेन्द्र! वासुदेव और अर्जुन परस्पर इस प्रकार बातें करते करते दुर्योधन पर आक्रमण करने के निमित्त प्रसन्नतापूर्वक रणभूमि में आगे बढ़े। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के श्वेत घोड़े हाँक दिये। उधर राजा दुर्योधन उनके सम्मुख निर्भय भाव से उपस्थित हुए। वे उस भयानक समर में आगे बढ़कर अर्जुन और श्रीकृष्ण को रोकने का यत्न करने लगे। यह देखकर योद्धा क्षत्रियगण उनकी प्रशंसा करने लगे॥२२।२४॥ उस समय कौरव-दल के लोग भयानक सिंहनाद करने लगे। इससे शत्रुनाशन वीर अर्जुन क्रोध से विह्वल हो उठे। दुर्योधन भी क्रोधान्ध होकर युद्ध कर रहे थे। दुर्योधन और अर्जुन को कुपित होकर भिड़ते देख भीमरूप राजा लोग बड़ी उत्सुकता के साथ उनका युद्ध देखने लगे। राजा दुर्योधन कुपित वासुदेव और अर्जुन को देखकर हँसने और उन्हें युद्ध के निमित्त ललकारने लगे। यह देखकर वासुदेव और अर्जुन प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद और शङ्खनाद करने लगे॥२५।३०॥ उन दोनों वीरों की प्रसन्नता और उत्साह देखकर सब कौरव लोग दुर्योधन के जीवन से निराश हो गये। वे दुर्योधन

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
व्यक्रोशतां महानादं दध्मतुश्चाऽम्बुजोत्तमौ ॥ ३० ॥
तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः ।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥
शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥
तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥ ३३ ॥
जनस्य सन्निनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥
इत्युक्त्वा सैनिकान्सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः ।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च ।
तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥
यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च ।
तत्कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥
अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते ।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

को प्रचण्ड अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मानकर व्याकुल हो उठे। कौरवपक्ष के योद्धा लोग अत्यन्त शङ्कित और भयविह्वल होकर "राजा मारे गये! राजा मारे गये!" कहकर चिल्लाने लगे॥३१।३३॥ अपने पक्ष के लोगों का आर्तनाद सुनकर दुर्योधन कहने लगे—हे वीरो! तुम भयभीत होओ नहीं। मैं तुम्हारे देखते ही देखते कृष्ण और अर्जुन को यमलोक भेजे देता हूँ। इस प्रकार अपने सैनिकों को ढाढ़स बँधाकर कुपित दुर्योधन ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! यदि तुम सचमुच पाण्डु के पुत्र हो, तो तुमने दिव्य और मानुष जितने अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है वे सब मेरे ऊपर छोड़कर दिखाओ। और, केशव का जो कुछ बल है उसे वे भी दिखावें। मैं तुम दोनों के पौरुष को देखना चाहता हूँ। मैं सुनता हूँ कि मेरे पीछे तुमने बहुत से अद्भुत कार्य किये हैं, जिनके कारण लोग श्रेष्ठ वीर कहकर तुम्हारी प्रशंसा किया करते हैं। इस समय मेरे सम्मुख वह अपनी प्रशंसनीय क्षमता और अद्भुत पराक्रम प्रकट करो॥३४।३८॥

द्रोणपर्व का एक सौ दो अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०२ ॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वाऽर्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः ।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
प्रतोदं चाऽस्य भल्लेन च्छित्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥
तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणांस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥
अष्टाविंशांस्तु तान्बाणानस्तान्विप्रेक्ष्य निष्फलान् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥
अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् ।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नाऽर्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥
कच्चिद्गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥
न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः ।
तव चैवाऽस्य शत्रोश्च तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥
विस्मयो मे महान्पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान् ।
व्यर्थान्निपतितान्संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥
वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः ।
शराः कुर्वन्ति ते नाऽर्थं पार्थ काऽद्य विडम्बना ॥ १० ॥
अर्जुन उवाच—द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता ।
अभेद्या हि ममाऽस्त्राणामेषा कवचधारणा ॥ ११ ॥

एक सौ तीन अध्याय ॥ १०३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार अर्जुन से कहकर दुर्योधन ने मर्मभेदी तीन बाण अर्जुन को, चार बाण उनके चारों घोड़ों को और दस बाण श्रीकृष्ण को मारकर एक भल्ल बाण से श्रीकृष्ण के हाथ की चाबुक काट डाली॥१।२॥तब अर्जुन ने क्रुद्ध होकर दुर्योधन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण चौदह बाण छोड़े । अर्जुन के ये बाण दुर्योधन के कवच में लगकर व्यर्थ होकर गिर पड़े । यह देखकर अर्जुन बहुत ही क्रुद्ध हुए । उन्होंने फिर चौदह बाण दुर्योधन को मारे । ये भी दुर्योधन के कवच में लगकर व्यर्थ हो गये॥३।४॥इस प्रकार दुर्योधन के ऊपर चलाये गये अर्जुन के अट्ठाईस बाणों को व्यर्थ होते देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे धनञ्जय ! मैं आज अटल पर्वत के चलने के समान यह अद्भुत बात देख रहा हूँ कि तुम्हारे छोड़े हुए बाण कुछ भी नहीं कर पाते। आज क्या गाण्डीव धनुष का वेग कम हो गया है,या तुम्हारे हाथों में और मुट्ठी में वह पहले का सा बल और दृढ़ता नहीं रह गई है ? अथवा तुम्हारे इस शत्रु की मृत्यु का और इसके साथ तुम्हारी अन्तिम भेंट का समय ही नहीं आया ? हे पार्थ ! तुम्हारे इन बाणों को दुर्योधन पर व्यर्थ होकर गिरते देखने मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । आज शत्रुओं के शरीर को छिन्न भिन्न करनेवाले वज्र तुल्य ये तुम्हारे

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि ।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥
न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन ।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥
जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् ।
यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्त्तते ॥ १४ ॥
तथा भविष्यच्चैव तत्सर्वं विदितं तव ।
न त्विदं वेद वै कश्चिद्यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥
एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् ।
तिष्ठत्यभीतवत्संख्ये बिभ्रत्कवचधारणाम् ॥ १६ ॥
यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति माधव ।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥
पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन ।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनाऽपि रक्षितम् ॥ १८ ॥
इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् ।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरन्दरः ॥ १९ ॥
पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद्ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥

बाण तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध नहीं कर पाते, यह कैसी विचित्र बात है! इसका कारण मुझे बतलाओ॥५।१०॥ अर्जुन ने कहा—हे कृष्णचन्द्र! महात्मा द्रोणाचार्य ने अवश्य ही इसे अभेद्य कवच पहनाकर युद्ध में भेजा है। यह दारुण कवच अस्त्र-शस्त्र से फट-कट नहीं सकता। त्रिभुवन में द्रोणाचार्य के और मेरे अतिरिक्त कोई भी इस कवच को नहीं जानता। मैंने भी उन्हीं द्रोणाचार्य से यह कवच प्राप्त किया है। स्वयं इन्द्र भी अपने वज्र से इस कवच को नहीं तोड़ सकते। बाणों से तो यह कवच कभी टूट ही नहीं सकता ॥११।१३॥हे श्रीकृष्ण! आप सब समाचार जानकर भी इस प्रकार पूछकर मुझे क्यों मोहित कर रहे हैं! त्रिलोक में त्रिकाल में होनेवाला सारा वृत्तान्त आप जानते हैं। इस कवच के बारे में आपकी ऐसी जानकारी और किसी को नहीं है। हे श्रीकृष्ण! यह दुर्योधन द्रोणाचार्य के पहनाये हुए कवच को पहने हुए मेरे सम्मुख खड़ा है; किन्तु इस कवच को पहनकर जिस प्रकार युद्ध करना चाहिए सो कुछ भी नहीं जानता। एक स्त्री जैसे इस कवच को पहनकर युद्ध में आ जाय वैसे ही यह भी खड़ा है॥१४।१७॥हे जनार्दन! इस समय आप मेरे धनुष और हाथों के पराक्रम को देखिए। यह कहाँ जायगा, कवच से सुरक्षित रहने पर भी इसे मैं अवश्य ही परास्त करूँगा। यही कवच मैं भी पहने हुए हूँ। इस तेजोमय कवच को पहले देव देव शङ्कर ने अङ्गिरा को दिया था। अङ्गिरा से बृहस्पति ने, बृहस्पति से इन्द्र ने और इन्द्र से मैंने प्राप्त किया है। इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर विधि-सहित यह कवच मुझे दिया था। यद्यपि इसका यह कवच देवनिर्मित अथवा स्वयं ब्रह्मा जी के द्वारा विरचित है, तथापि मेरे बाण मारने पर इस कवच के द्वारा दुष्ट दुर्योधन की रक्षा नहीं हो

नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ।

सञ्जय उवाच — एवमुक्त्वाऽर्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥

मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना ।

विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥

तानस्याऽस्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना ।

तान्निकृत्तानिषून्दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥

न्यवेदयत्केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ।

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥

अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम ।

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥

अविध्यत रणे राजञ्शरैराशीविषोपमैः ।

भूय एवाऽभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥

शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।

चक्रुर्वादित्रनिनदान्सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन् ।

नाऽपश्यच्च ततोऽस्याऽङ्गं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम् ॥ २८ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।

हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २९ ॥

धनुरस्याऽच्छिनत्तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान् ।

रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३० ॥

सकती॥१८।२१॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! अब अर्जुन ने मन्त्रों से अभिमन्त्रित बाण धनुष पर चढ़ाकर उसकी डोरी कान तक खींची । माननीय अर्जुन ने सब प्रकार के कवच आदि आवरणों को तोड़ने वाले मानवास्त्र का प्रयोग किया । किन्तु जिस समय वे धनुष पर चढ़ाकर उन बाणों को खींचने लगे उसी समय अश्वत्थामा ने सब अस्त्रों को नष्ट करने वाले अस्त्र से स्फूर्ति के साथ वे बाण काट डाले । दूर से ही अश्वत्थामा ने जब उन बाणों को काट डाला तब अर्जुन ने विस्मित होकर कहा—हे श्रीकृष्ण ! मैं दो बार इस अस्त्र का प्रयोग नहीं कर सकता; क्योंकि दुबारा प्रयोग करने पर यह अस्त्र मुझे और मेरी सारी सेना को ही नष्ट कर देगा॥२१।२५॥हे नरनाथ ! इसी मध्य में दुर्योधन ने विषैले सर्प के समान प्राणघातक नव-नव बाण श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारे । इसके उपरान्त वे फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा-सी करने लगे । यह देखकर कौरवपक्ष के सब योद्धा प्रसन्न होकर बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे॥२५।२७॥महातेजस्वी अर्जुन बहुत ही कुपित होकर होंठ चाटने लगे । उन्होंने देखा कि दुर्योधन का ऐसा कोई अङ्ग नहीं है जो उस दिव्य कवच से सुरक्षित न हो । तब उन्होंने तीक्ष्ण बाण मारकर दुर्योधन के रथ के घोड़े मार डाले, पार्श्वरक्षक और सारथी को भी मार गिराया ।

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम् ।
आविद्ध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१ ॥
प्रयतज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः ।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२ ॥
तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः ।
समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥ ३३ ॥
तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः ।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३४ ॥
अथ नाऽर्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत ।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चाऽपि संवृतौ ॥ ३५ ॥
ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम् ।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३६ ॥
ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् ।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७ ॥
ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत् ।
धनुर्विस्फारयाऽत्यर्थमहं ध्मास्यामि चाऽम्बुजम् ॥ ३८ ॥
ततो विस्फार्य बलवद्गाण्डीवं जघ्निवान्रिपून् ।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चाऽर्जुनः ॥ ३९ ॥
पाञ्चजन्यं च बलवान्दध्मौ तारेण केशवः ।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४० ॥

साथ ही बड़ी स्फूर्ति के साथ दुर्योधन का धनुष और हस्तावाप (दस्ताने) भी काटकर वे रथ के टुकड़े-टुकड़े कर डालने का उद्योग करने लगे। रथ को काटकर अर्जुन ने दुर्योधन की हस्तावाप-हीन हथेलियों में भी दो सुतीक्ष्ण बाण मारे। मर्मस्थल में चोट मारने में अत्यन्त चतुर अर्जुन के बाण उँगलियों के मांस और नाखूनों के मध्य लगने से दुर्योधन भाग खड़े हुए॥२८।३२॥कौरवपक्ष के योद्धा लोग दुर्योधन को इस प्रकार कठिन सङ्कट में पड़े देखकर उनकी सहायता और रक्षा करने के निमित्त चारों ओर से दौड़ पड़े। सहस्रों रथ, सुसज्जित हाथी, घोड़े, पैदल आदि से अर्जुन को घेरकर सब योद्धा उनपर अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥३३।३४॥इतने अस्त्र शस्त्र और बाण बरसाये गये कि अर्जुन, श्रीकृष्ण और उनका रथ छिप गया। तब अर्जुन, अपने अस्त्रबल से, उस सेना का संहार करने लगे। सैंकड़ों रथी, हाथी और घोड़े अङ्गहीन, प्राणहीन हो होकर गिरने लगे। मारी जाती हुई और मारी गई सेना ने एक कोस तक रथ की राह रोक ली। [उस सेना की दीवार-सी सम्मुख दूर तक खड़ी होने के कारण अर्जुन के घोड़े रुक गये और रथ भी ठहर गया।]॥३५।३७॥तब श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही कहा—हे अर्जुन! तुम बड़े जोर से अपने धनुष का शब्द करो और मैं अपना शङ्ख बजाता हूँ। महाबली अर्जुन, श्रीकृष्ण के कथनानुसार,

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च ।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१ ॥
तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाऽम्बुदः ।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२ ॥
ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु ।
चक्रुर्नादान्महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ ४३ ॥
बाणशब्दरवांश्चोग्रान्विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम् ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४५ ॥
तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥
स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश ।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७ ॥
तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥
अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

बड़े वेग से धनुष चढ़ाकर बाणवर्षा करके शत्रुओं को मारने लगे। बलवान् श्रीकृष्ण ने भी पूर्ण बल से पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय श्रीकृष्ण के मुखमण्डल और पलकों पर धूल छा गई थी, धूल भरी हुई थी और पसीना निकल रहा था॥३८।४०॥श्रीकृष्ण के शङ्ख-शब्द और गाण्डीव धनुष के भयानक नाद को सुनकर कौरवपक्ष के सबल-दुर्बल अथवा सजीव निर्जीव,सभी पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार उस सेना के घेरे से अर्जुन का रथ निकल आया और वायु-सञ्चालित मेघ के समान वेग से आगे जाने लगा। यह देखकर अनुचरों सहित जयद्रथ के रक्षक योद्धा लोग आगे बढ़े। एकाएक अर्जुन को निकटवर्ती देखकर जयद्रथ की रक्षा करनेवाले महारथी लोग अपने भयानक सिंहनाद से पृथ्वी को कँपाने लगे॥४१।४३॥वे लोग धनुष पर बाण चलाने के शब्द, शङ्खनाद, उग्र सिंहनाद आदि करके अपना उत्साह प्रकट करने लगे। हे महाराज! आपके पक्ष की सेना में उठनेवाले घोर शब्द को सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी अपना-अपना शङ्ख बजाने लगे। वह महा-शब्द पर्वत,समुद्र,द्वीप और पाताल सहित सारी पृथ्वी में व्याप्त हो गया। हे भरतकुलश्रेष्ठ! वह शब्द दसों दिशाओं में व्याप्त हो जाने से उसकी प्रतिध्वनि कौरवों और पाण्डवों की सेना में गूँज उठी॥४४।४७॥आपके पक्ष के महारथी योद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुन को वहाँ उपस्थित देखकर व्याकुल हो उठे और उन्हें रोकने के निमित्त शीघ्रता करने लगे। क्रोध से विह्वल आपके पक्ष के योद्धा लोग कवचधारी श्रीकृष्ण और अर्जुन

को देखकर बड़े वेग से उनकी ओर बढ़ने लगे। उस समय अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ने लगा॥४८।४९॥

द्रोणपर्व का एक सौ तीन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०३ ॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

सञ्जय उवाच— तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥
सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः ।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥
रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते ।
कूजद्भिरतुलान्नादान्कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥
भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः ।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥
ते पिबन्त इवाऽऽकाशमश्वैरष्टौ महारथाः ।
व्यराजयन्दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥
ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः ।
समावृण्वन्दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान्महारथान् ।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥
आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः ।
पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥

एक सौ चार अध्याय ॥ १०४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर आपके दल के लोग उन्हें मारने के निमित्त शीघ्रता करने लगे। अर्जुन भी शत्रुओं को मारने का उद्योग करने लगे। प्रज्वलित अग्नि के समान प्रभासम्पन्न, सुवर्णमण्डित, व्याघ्रचर्मशोभित और घोर शब्द करनेवाले बड़े-बड़े रथों पर बैठे हुए योद्धा लोग सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। क्रुद्ध सर्प के समान भयङ्कर, सुवर्ण से अलङ्कृत और नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाले धनुष से घोर शब्द निकलने लगा। सुन्दर कवच पहने हुए भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा, ये आठों महारथी योद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुन के मारने का उद्योग करने लगे। वे व्याघ्रचर्म और सुवर्णमय चन्द्रचिह्नों से शोभित, गरजते हुए मेघ के समान शब्द कर रहे रथों पर बैठकर अर्जुन के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे॥१।५॥अर्जुन के आसपास और ऊपर-नीचे बाण ही बाण दिखाई देने लगे। उन महारथियों के रथों में कुलूत देश के बहुमूल्य घोड़े

ते प्रगृह्य महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
पूरयन्तो दिवं राजन्पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११ ॥
देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः ।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ॥ १२ ॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत् ।
तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ।
तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ।
महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६ ॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥
अमर्षिता महाशङ्खान्दध्मुर्वीरा महारथाः ।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्याऽर्जुनस्य च ॥ १८ ॥
बभूव तव तत्सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम् ।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥

हुने हुए थे। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र की सहायता करनेवाले कुरुकुल के श्रेष्ठ योद्धा लोग श्रेष्ठ जाति के, नेत्र, अनेक देशों के, पहाड़ी, नदी-तट के देशोंवाले, सिन्धु देश के घोड़ों से युक्त श्रेष्ठ रथों पर बैठकर शीघ्रता के साथ अर्जुन के रथ की ओर चले॥६।७॥ वे लोग बड़े-बड़े शङ्खों को बजाकर सारी पृथ्वी और आकाश को उस शब्द से पूर्ण करने लगे। इधर श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख और अर्जुन ने देवदत्त शङ्ख बजाया। इनका शङ्खनाद ऐसा हुआ कि शत्रुओं के शङ्खनाद और सिंहनाद उसमें छिप गये। अर्जुन के बजाये हुए देवदत्त शङ्ख का शब्द और श्रीकृष्ण के बजाये हुए पाञ्चजन्य शङ्ख का शब्द पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष और सब दिशाओं में व्याप्त हो गया॥१०।१४॥ हे राजेन्द्र! कायरों के निमित्त भयङ्कर और शूरों के निमित्त हर्ष को बढ़ानेवाला दारुण शब्द रणभूमि में गूँज उठा। उसके साथ ही तुरही, मृदङ्ग, झाँझ, घड़ियाल, नगाड़े आदि बाजे भी बजने लगे। उस समय आपकी सेना के रक्षक और दुर्योधन के हितचिन्तक कर्ण आदि आठों महारथी, अनेक देशों के राजाओं के साथ, युद्ध के निमित्त आगे बढ़े और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन शङ्खनाद को सहन न कर सकने के कारण क्रोधपूर्वक अपने-अपने महाशङ्खों को बजाने लगे। वे लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन के शङ्खनाद का उत्तर देने के लिए अपने शङ्ख बजाने लगे॥१५।१८॥ उस सब घन-सदृश शङ्ख-

तत्प्रविद्धमिवाऽऽकाशं शूरैः शङ्खविनादितम् ।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥
स शब्दः सुमहान्राजन्दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत्सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥
ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः ।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥
ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥
तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥
कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २५ ॥
गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥
कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७ ॥
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।
ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८ ॥
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यत्स तान्सर्वान्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३० ॥

नाद से रथी, हाथी, घोड़े आदि सब व्याकुल होकर अस्वस्थ-से हो गये। सब दिशाएँ और आकाशमण्डल प्रतिध्वनित हो उठा। प्रलयकाल के से उस घोर शब्द से सारी सेना भयभीत हो गई॥२०।२१॥ तब दुर्योधन और वे आठों महारथी योद्धा, जयद्रथ की रक्षा करने के निमित्त, अर्जुन को रोकने लगे। अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण को तिहत्तर और अर्जुन को तीन भल्ल बाण मारे। फिर अर्जुन की ध्वजा और घोड़ों को पाँच बाण मारे॥२२।२३॥ जनार्दन को घायल देखकर अर्जुन ने अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामा को छःसौ बाण मारे। इसके पश्चात् कर्ण को दस और वृषसेन को तीन बाण मारकर शल्य के बाणयुक्त धनुष को मुट्ठी के समीप से काट डाला। शल्य दूसरा धनुष लेकर अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे। भूरिश्रवा ने सुवर्ण पुंखयुक्त तीखे तीन बाण, कर्ण ने बत्तीस बाण, वृषसेन ने सात बाण, जयद्रथ ने तिहत्तर बाण, कृपाचार्य ने दस बाण और मद्रराज शल्य ने दस बाण एक साथ अर्जुन को मारे। इसके पश्चात् अश्वत्थामा ने

शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।
सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ॥ ३१ ॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाऽष्टभिः ।
गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२ ॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।
भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

अर्जुन को साठ और वासुदेव को बीस बाण मारकर फिर अर्जुन को पाँच बाण मारे॥२४।२९॥अर्जुन ने हँसते-हँसते, अपने हाथ की स्फूर्त्ति दिखाते हुए,उन सब वीरों को उनके प्रहारों का उत्तर दिया। उन्होंने कर्ण को बारह,वृषसेन को तीन,भूरिश्रवा को तीन, शल्य को दस,कृपाचार्य को पचीस और जयद्रथ को सौ बाण मारकर अश्वत्थामा को अग्निशिखा-सदृश आठ और फिर सत्तर बाण मारे॥३०।३२॥हाथ ही मूठ की जगह पर शल्य के बाणयुक्त धनुष को काट डाला। भूरिश्रवा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण के हाथ की घोड़ों की रास काट डाली और अर्जुन को तिहत्तर तीक्ष्ण बाण मारे। महावीर अर्जुन अत्यन्त क्रोध करके उसी प्रकार अपने शत्रुओं को मारकर भगाने लगे कि जिस प्रकार प्रचण्ड आँधी मेघों को छिन्न भिन्न करती चली जाती है॥३३।३५॥

—▪—

द्रोणपर्व का एक सौ चार अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०४ ॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—ध्वजान्बहुविधाकारान्भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—ध्वजान्बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥
तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥
काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥

एक सौ पाँच अध्याय ॥ १०५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पाण्डवपक्ष के और कौरवपक्ष के वीरों के रथों में अनेक प्रकार की ध्वजाएँ लगी हुई होंगी। इस समय तुम उन ध्वजाओं का वर्णन करो॥१॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज!सुनिए,वीरों के रथों में लगी हुई अनेक प्रकार की ध्वजाओं का रूप, रङ्ग और नाम मैं आपको सुनाता हूँ। रणभूमि में महा-

अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
नानावर्णविरागाभिः शुशुभः सर्वतो वृताः ।
पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ।
इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।
सिंहलांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥
धनञ्जयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।
स वानरवरो राजन्पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥
त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।
तथैव सिंहलांगूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।
काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।
हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाऽधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।
पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।
आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥

रथी योद्धाओं के रथों पर सुवर्ण के आभूषणों और मालाओं से सजी हुई सुवर्णदण्डयुक्त ध्वजाएँ प्रज्वलित अग्नि के समान, अथवा सुवर्ण के पर्वत सुमेरु के सुन्दर शिखरों के समान शोभायमान हो रही थीं॥२। ५॥उन ध्वजाओं के ऊपर अनेक रङ्गों की इन्द्रधनुष सी विचित्र पताकाएँ वायुवेग से फहरा रहीं थीं, जिन्हें देखने से जान पड़ता था मानों रङ्गभूमि में वेश्याएँ नाच रही हैं॥६।८॥अर्जुन की पताका के मध्य में सिंह की सी पूँछ और उग्र मुख से युक्त भयानक वानर विराजमान था, जो कौरवपक्ष की सेना को भयभीत करता रहा था। महावीर अश्वत्थामा की श्रेष्ठ ध्वजा भी सिंहपुच्छयुक्त, बालसूर्य के समान चमकीली, सुवर्णमण्डित, वायु से फहरा रही, इन्द्रधनुष के समान बहुत ऊँची और कौरवों के हर्ष को बढ़ानेवाली थी॥९। १२॥महारथी कर्ण की ध्वजा का चिह्न हाथी की सुवर्णमयी शृङ्खला था। वह इतनी ऊँची थी कि मानों आकाश तक को छू रही हो। वह पताका सुवर्णमाला आदि से शोभित थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह वायु के द्वारा सञ्चालित होकर रथ पर नाच रही है॥१२। १४॥कौरवों के आचार्य तपस्वी ब्राह्मण कृपाचार्य की ध्वजा का चिह्न बैल का सा था। उनकी वह स्वच्छ ध्वजा नन्दी के चिह्न से युक्त त्रिपुरारि शङ्कर के रथ की ध्वजा के समान शोभायमान थी॥१४।१६॥वृषसेन की ध्वजा पर मणिरत्नजटित सुवर्णनिर्मित मयूर

गोवृषो गौतमस्याऽऽसीत्कृपस्य सुपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन्गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥-
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजता ।
मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
व्याहरिष्यन्निवाऽतिष्ठत्सेनाग्रमुपशोभयन् ।
तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥
यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ।
मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥ १८ ॥
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् ।
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ।
वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ।
शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।
सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥
ध्वजः सूर्य इवाऽऽभाति सोमश्चाऽत्र प्रदृश्यते ।
स यूपः काञ्चनो राजन्सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।
शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥ २४ ॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ।
स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

शोभायमान था। वह मानो बोलना चाहता था। वह ध्वजा सेना के अग्रभाग में उपस्थित थी। वृषसेन का रथ उस मोर से मयूरचिह्नयुक्त स्वामिकार्तिक के रथ के समान शोभायमान था। मद्रराज शल्य की ध्वजा के अग्रभाग में सब बीजों को उत्पन्न करनेवाली खेती की अधिष्ठात्री देवी के समान सुनहरा, अग्निशिखा-तुल्य, हल का चिह्न बना हुआ था॥१६।२०॥ जयद्रथ के रथ में सुनहली रङ्ग का सुवर्णमण्डित रजत-निर्मित वराह का चिह्न था। सिन्धुराज उस ध्वजा से देवासुर-युद्ध में आदित्य के समान शोभायमान थे। याज्ञिक बुद्धिमान् भूरिश्रवा के रथ की सूर्यसदृश ध्वजा में यूप (खम्भे) का चिह्न था। उस सुवर्णमय यूप में चन्द्रमा का चिह्न बना हुआ था। राजसूय यज्ञ के उन्नत यूप के समान वह यूप ध्वजा के ऊपर था। ऐरावत जैसे इन्द्र की सेना को शोभित करता है वैसे ही शल के रथ की ध्वजा में रजतनिर्मित हाथी का चिह्न देख पड़ता था॥२०।२४॥ आपकी सेना को शोभायमान करनेवाली शल की ध्वजा में गजचिह्न के

यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥ २६ ॥
किङ्किणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन्पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ।
नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥ २८ ॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसन्निभाः ।
दशमस्त्वर्जुनस्याऽऽसीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
अदीप्यताऽर्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ।
ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परन्तपाः ।
तथैव धनुरायच्छत्पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद्राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
तत्राऽपराधाद्राजानो निहता बहुशो युधि ॥ ३२ ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।
तेषामासीद्व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।
तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥ ३४ ॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।
अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ॥ ३५ ॥
जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।
तत्राऽर्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥

आस-पास सुवर्णमय मयूर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा दुर्योधन के श्रेष्ठ रथ की सुवर्णमण्डित ध्वजा में मणिमय नाग का चिह्न था। सैकड़ों सुवर्ण के घुँघरू या छोटी घण्टियाँ उसमें बज रहीं थीं। हे महाराज! उस ऊँची उत्तम ध्वजा से कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन की बड़ी शोभा हो रही थी। ये ऊँची और प्रलयकाल के सूर्य के समान प्रकाशमान नव महारथियों की श्रेष्ठ ध्वजाएँ आपकी सेना को शोभायमान कर रही थीं॥२४।२८॥ दसवें महारथी अकेले कपिध्वज अर्जुन थे, जो अग्नि से शोभित हिमालय पर्वत के समान शोभित हो रहे थे। इसके उपरान्त शत्रुदलदलन वीर महारथी लोग अर्जुन को हराने के लिये विचित्र चमकीले बड़े-बड़े श्रेष्ठ धनुष लेकर युद्ध करने को प्रस्तुत हुए। शत्रु-नाशन वीर अर्जुन ने भी अपना श्रेष्ठ दिव्य गाण्डीव धनुष चढ़ाया। हे महाराज! अनेक देशों से बुलाये और आये हुए असंख्य राजा लोग अपनी चतुरङ्गिणी सेना सहित आपकी ही अनीति के कारण मारे गये ॥२८।३३॥ गरजते हुए दुर्योधन आदि योद्धा और

अदृश्यांस्तावकान्योधान्प्रचक्रे शत्रुतापनः ।
ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।
संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ॥
महानासीत्समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

अर्जुन एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय अकेले ही अर्जुन ने वहाँ निर्भय भाव से बहुतेरे महारथियों से युद्ध किया। उन महारथियों को जीतने और जयद्रथ को मारने के निमित्त उद्यत वीर अर्जुन गाण्डीव धनुष को घुमाते और बाण बरसाते समय बहुत ही शोभायमान हुए॥३३।३६॥शत्रुतापन अर्जुन ने असंख्य बाण बरसाकर कौरव पक्ष के योद्धाओं को अदृश्य कर दिया। उधर उन महारथियों ने भी चारों ओर से बाण बरसाकर अर्जुन को छिपा दिया। इस प्रकार पुरुषसिंह अर्जुन जब उन महारथियों के बाणों से छिप गये तब आपकी सेना में बड़ा भारी कोलाहल होने लगा॥३६।३८॥

द्रोणपर्व का एक सौ पाँच अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०५ ॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥ २ ॥
पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः ।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥
ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्त्तताऽद्भुतः ।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥
सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
तदनीकं विभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥
द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्त्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥

एक सौ छः अध्याय ॥ १०६ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! अर्जुन जब इधर जयद्रथ के समीप पहुँच गये तब उधर पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य के द्वारा रक्षित कौरवों के साथ क्या किया ? ॥१॥सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! तीसरे पहर में लोमहर्षण संग्राम होने लगा। पाञ्चाल और कौरव द्रोणाचार्य के प्राणों का जुआ खेलने लगे। उत्साहपूर्ण पाञ्चालगण द्रोणाचार्य को मारने का और कौरवगण उनको बचाने का प्रयत्न करते हुए बाण बरसाने लगे। उस समय कौरवों और पाञ्चालों का, देवासुर-युद्ध के समान, अद्भुत संग्राम होने लगा॥२।४॥पाण्डवों सहित सब पाञ्चालगण द्रोणाचार्य के रथ के समीप पहुँचकर उनकी सेना को छिन्न भिन्न करने के निमित्त

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन्निशितान्बाणान्महेन्द्राशनिसन्निभान् ॥ ७ ॥
तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन्निशितान्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥
तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥
युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥
नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत्समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥
सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥
सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन्वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥
द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायकोत्तमान् ।
संरब्धान्रथिनः श्रेष्ठान्सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥
भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥

अपने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। द्रोण के रथ तक रथसवार रथी योद्धा देख पड़ते थे और वे रणभूमि को कँपाते हुए युद्ध कर रहे थे। केकय देश के महावीर राजा बृहत्क्षत्र, इन्द्र के वज्र के समान, तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए द्रोणाचार्य की ओर चले ॥५।७॥इधर से महायशस्वी क्षेमधूर्ति भी सैंकड़ों-सहस्रों बाण छोड़ते हुए बृहत्क्षत्र को रोकने के लिए आगे को बढ़े। यह देखकर महापराक्रमी धृष्टकेतु अत्यन्त कुपित हो उठे। शम्बासुर पर आक्रमण करने के निमित्त जैसे इन्द्र चले थे वैसे ही वे स्फूर्ति के साथ द्रोणाचार्य की ओर बढ़े। मुख फैलाये हुए मृत्यु के समान आते हुए चेदिराज धृष्टकेतु से युद्ध करने के निमित्त महाबाहु वीरधन्वा चले॥८।१०॥तब महावीर्यशाली द्रोणाचार्य विजय की अभिलाषा से सेना सहित सम्मुख उपस्थित महाराज युधिष्ठिर को अपने बाणों-से रोकने का प्रयत्न करने लगे। युद्धकुशल पराक्रमी नकुल को आते देखकर उनसे युद्ध करने के निमित्त आपके पराक्रमी पुत्र विकर्ण चले। सहदेव को आते देखकर शत्रुदमन दुर्मुख सहस्रों शीघ्रगामी बाण बरसाते हुए उनका सामना करने लगे। वीर सात्यकि को विचलित करते हुए व्याघ्रदत्त उनपर तीक्ष्ण भयानक बाण छोड़ने लगे। महावीर शल अपने ऊपर तीक्ष्ण बाण चला रहे कुपित द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को रोकने लगे॥११।१५॥महाबली भयानक ऋष्यशृङ्ग

तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥
ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥ १८ ॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे ।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥
भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत् ।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥
ताञ्शरान्द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २१ ॥
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे ।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३ ॥
अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना ॥ २५ ॥
स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत्कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥ २६ ॥
आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ।
ततस्तान्सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान्सहस्रशः ॥ २७ ॥

के पुत्र ने कुपित होकर आ रहे भीमसेन का सामना किया। उन दोनों, मनुष्य और राक्षस, में ऐसा ही घोर युद्ध होने लगा जैसा पूर्वकाल में राम और रावण का हुआ था। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर ने तीक्ष्ण नब्बे बाण महावीर द्रोणाचार्य के मर्मस्थानों में मारे। आचार्य ने भी क्रोधविह्वल होकर उनके वक्षःस्थल में पचीस बाण मारे। और फिर सब योद्धाओं के सम्मुख ही उनकी ध्वजा, सारथी और घोड़ों को बीस बाण मारे। तब धर्मात्मा युधिष्ठिर ने फुर्ती के साथ अपने बाणों से द्रोणाचार्य के सब बाण काट डाले॥१६।२१॥ यह देखकर श्रेष्ठ धनुर्द्धर आचार्य ने कुपित होकर शीघ्र ही युधिष्ठिर का धनुष काट डाला और असंख्य बाण मारकर उनको घायल कर दिया। आचार्य के असंख्य बाणों में जब राजा युधिष्ठिर छिप गये तब समरभूमि में स्थित सभी लोग समझने लगे कि राजा मार डाले गये। किसी किसी ने समझा कि आचार्य के बाण-प्रहार से विह्वल होकर धर्मराज युधिष्ठिर युद्धभूमि से भाग गये॥२२।२५॥ उधर द्रोणाचार्य के बाणों से विपन्न

चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
छित्त्वा तु ताञ्शरान्राजन्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम् ।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली ।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥
शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे ।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥
सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा ।
तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत्समुद्यतम् ॥ ३५ ॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
विध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदाऽस्य महद्धनुः ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर उस कटे हुए धनुष को छोड़कर एक बहुमूल्य दृढ धनुष लेकर बाणवर्षा करने लगे। उन्होंने क्षण भर में द्रोण के सब बाणों को काट गिराया। यह देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। आचार्य के बाण काट डालने के पश्चात् क्रोध से लाल नेत्र करके राजा युधिष्ठिर ने पर्वतों को भी फाड़ देनेवाली, स्वर्ण-दण्डयुक्त, आठ घण्टों से शोभित, भयानक शक्ति हाथ में ली। उस शक्ति को उठाकर बली युधिष्ठिर ने सिंह-नाद किया, जिससे सब प्राणी भयभीत हो गये॥२६।३०॥ युद्ध में युधिष्ठिर को शक्ति तानते देखकर सब लोग शङ्कित हो उठे और द्रोणाचार्य के लिए "स्वस्ति" कहने लगे। युधिष्ठिर के हाथ से छूटी हुई, महासर्प के समान, भयानक शक्ति दिशा-विदिशा और आकाश को प्रज्वलित करती हुई द्रोणाचार्य के समीप आ पहुँची ॥३१।३३॥ अग्निमय मुख से भयानक नागिन के समान उस शक्ति को आते हुए देखकर अस्त्र विद्या में निपुण महारथी द्रोण ने तत्काल ही ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र उस घोर शक्ति को भस्म करके स्फूर्ति के साथ यशस्वी युधिष्ठिर के रथ पर पहुँचा। राजा युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के उस अस्त्र को ब्रह्मास्त्र के ही द्वारा शान्त कर दिया। फिर पाँच तीक्ष्ण बाण द्रोण के पाँव में मार करके एक क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला॥३३।३७॥ धनुष कट जाने पर आचार्य ने युधिष्ठिर पर एक भारी गदा चलाई। उस गदा को रोकने

गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष ।
तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
गदामेवाऽग्रहीत्क्रुद्धश्चिक्षेप च परन्तप ।
ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥ ३९ ॥
सङ्घर्षात्पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले ।
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः ।
चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चाऽर्दयत्त्रिभिः ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।
विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥ ४३ ॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून्सर्वसैन्यानि वा विभो ।
मुञ्चन्निषुगणांस्तीक्ष्णाँल्लघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।
तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनाऽमित्रघातिना ॥ ४५ ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ।
हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥
इत्यासीत्सुमहाञ्शब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत ।
ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

के निमित्त युधिष्ठिर ने अपनी सुदृढ गदा का प्रयोग किया । वीरों के हाथ से छूटी हुई दोनों गदाएँ, परस्पर टकराने से, चिनगारियाँ उगलती हुई टूटकर गिर पड़ीं॥३७।४०॥महावीर द्रोणाचार्य ने अत्यन्त क्रोध करके चार बाणों से उनके घोड़े मार डाले, एक से धनुष और अन्य एक से इन्द्रध्वज के समान उन्नत ध्वजा काट डाली और उनको ताककर तीन बाण मारे। युधिष्ठिर तुरन्त ही रथ से उतर पड़े और शस्त्र फेंककर ऊपर को हाथ उठाकर खड़े हो गये॥४१।४३॥उन्हें रथ और शस्त्र से हीन देख द्रोणाचार्य जी बाण बरसाकर उनकी सेना को पीड़ित करने लगे। भयङ्कर सिंह जैसे मृगों को भगाता है वैसे ही द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना को मारकर भगाने लगे। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने जब युधिष्ठिर को परास्त कर दिया तब पाण्डवपक्ष के सब योद्धा हाहाकार करके कहने लगे कि आचार्य ने राजा युधिष्ठिर को मार डाला। उस समय महाराज युधिष्ठिर, सहदेव के रथ पर बैठकर, शीघ्रता से रथ हँकाते हुए आचार्य के सम्मुख से हट गये॥४४।४७॥

द्रोणपर्व का एक सौ छः अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०६ ॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच—बृहत्क्षत्रमथाऽऽयान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥
बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन्द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥
क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥
तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ७ ॥
तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाऽभ्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥
तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥

एक सौ सात अध्याय ॥ १०७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! महारथी क्षेमधूर्ति ने रणभूमि में उपस्थित कैकेयदेश के योद्धा अतुल पराक्रमी बृहत्क्षत्र की छाती में असंख्य बाण मारे। राजा बृहत्क्षत्र ने भी आचार्य की सेना को छिन्न भिन्न करने के निमित्त स्फूर्ति के साथ उनको सन्नतपर्ववाले नब्बे बाण मारे। तब क्षेमधूर्ति ने क्रुद्ध होकर धारदार भल्ल बाण से वीर बृहत्क्षत्र का धनुष काट डाला और उन को तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया॥१।४॥बृहत्क्षत्र ने भी हँसते-हँसते दूसरा धनुष लेकर क्षेमधूर्ति के घोड़े, सारथी और रथ आदि के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और फिर भयानक भल्ल बाण से उनका मणि कुण्डल-मण्डित सिर काटकर गिरा दिया। क्षेमधूर्ति का, घुँघराले बालों से शोभित, किरीटयुक्त कटा हुआ सिर एकाएक गिरकर आकाश से गिरी हुई उल्का के समान शोभा को प्राप्त हुआ। इस प्रकार वीर क्षेमधूर्ति को मारकर प्रसन्नचित्त बृहत्क्षत्र, पाण्डवों की सहायता करने के निमित्त, शीघ्रता के साथ कौरव सेना की ओर बढ़े॥५।८॥महावीर धृष्टकेतु आचार्य पर आक्रमण करने के निमित्त उनके सम्मुख चले। उनको महापराक्रमी वीरधन्वा ने रोका। दोनों पराक्रमी वीर

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥
गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥
तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥
वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥
तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥
तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥
तस्मिन्विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥
सहदेवे ततः षष्टिं सायकान्दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
ननाद च महानादं तर्जयन्पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥
माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥

सहस्रों बाणों से एक दूसरे को घायल करते हुए दुर्गम जङ्गल में विचरनेवाले यूथपति मत्त दो गजराजों के समान, अथवा कन्दरा में स्थित दो सिंहों के समान, एक दूसरे को मारने की अभिलाषा से घोर समर करने लगे॥९।१२॥ सिद्धचारणगण आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से उनका वह अद्भुत युद्ध देखने लगे। उस समय महावीर वीरधन्वा ने क्रोध और उन्माद से परिपूर्ण होकर भल्ल बाण से धृष्टकेतु का धनुष काट डाला॥१३।१४॥ चेदिराज धृष्टकेतु ने उसी क्षण वह धनुष फेंककर सुवर्णदण्ड-मण्डित एक लोहे की भयानक शक्ति हाथ में ली और तानकर वीरधन्वा के रथ पर फेंकी। उस वीरघातिनी शक्ति के प्रहार से महावीर वीरधन्वा का हृदय फट गया और वे पृथ्वी पर गिरकर मर गये॥१५।१७॥ हे राजेन्द्र! त्रिगर्तदेश के वीर वीरधन्वा की मृत्यु हो जाने पर पाण्डवपक्ष की सेना ने बड़े वेग के साथ कौरव-सेना के ऊपर आक्रमण किया और उसका संहार करना आरम्भ कर दिया। उधर सहदेव को साठ बाण मारकर परम प्रतापी वीर दुर्मुख तर्जन-गर्जन और सिंहनाद करने लगे। सहदेव उस तर्जन-गर्जन से क्रोधित होकर बाणों के प्रहार से उन्हें पीड़ित करने लगे॥१८।२०॥ सहदेव की शीघ्रता को देखकर उनको दुर्मुख ने नव बाण मारे। अब सहदेव ने एक भल्ल बाण से दुर्मुख की ध्वजा काट डाली, चार बाणों से उनके चारों घोड़े मार डाले, एक तीक्ष्ण भल्ल बाण

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥
दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥
क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद्धनुः ।
सहदेवो रणे छित्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥
सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥
स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्त्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥
तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥
हाहाकारो महानासीत्त्रिगर्त्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९ ॥
नकुलस्ते सुतं राजन्विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्त्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३० ॥
सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१ ॥

से सारथी का सिर काट डाला, एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला और फिर पाँच बाण मारकर उन्हें घायल कर दिया॥२१।२४॥बिना घोड़ों के रथ को छोड़कर दुर्मुख चिन्तित भाव से निरमित्र के रथ पर चले गये। शत्रुनाशन सहदेव ने निरमित्र पर क्रुद्ध होकर एक भल्ल बाण मारा, जिस से वे मृत्यु को प्राप्त हुए। सहदेव का दारुण बाण लगने से त्रिगर्तराज के पुत्र निरमित्र मृत्यु को प्राप्त होकर शीघ्र रथ से गिर पड़े। यह देखकर कौरवपक्ष की सेना अत्यन्त व्यथित हुई और त्रिगर्त देश के लोग हाहाकार करने लगे।हे नरनाथ! राक्षस खर को मारकर रामचन्द्र जैसे शोभायमान हुए थे वैसे ही, निरमित्र को मारकर, सहदेव शोभायमान हुए॥२५।२९॥हे नरनाथ! महाबाहु नकुल ने आपके पुत्र विशाललोचन विकर्ण को क्षण भर में परास्त करके सब लोगों को विस्मित कर दिया। उधर महावीर व्याघ्रदत्त ने तीक्ष्ण बाण बरसाकर सेना के मध्य में स्थित घोड़े, सारथी, ध्वजा आदि सहित वीर सात्यकि को

तान्निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥
कुमारे निहते तस्मिन्मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥
विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान्मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३४ ॥
अयोधयन्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
तांस्तु सर्वान्स बलवान्सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥
नाऽतिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।
मागधान्द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान्समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।
नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।
भज्यमानं बलं राजन्सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाऽभ्यवर्त्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाऽभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अदृश्य सा कर दिया। महावीर सात्यकि ने भी हाथों की स्फूर्ति दिखाते हुए व्याघ्रदत्त के बाणों को व्यर्थ कर दिया और उनके घोड़े, सारथी आदि को मारकर रथ की ध्वजा काट गिराई। साथ ही तीक्ष्ण बाण के प्रहार से व्याघ्रदत्त को मार गिराया॥३०।३२॥ इस प्रकार मगधराज के पुत्र के मारे जाने पर मगधदेश के वीर क्रोधान्ध हो उठे। वे सात्यकि के सम्मुख आकर उन पर असंख्य बाण, तोमर, भिन्दिपाल, प्रास, मुसल, मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे। युद्धनिपुण सात्यकि ने हँसते-हँसते सहज ही उन सब वीरों को परास्त कर दिया॥३३।३६॥ मृत्यु से बचे हुए मगधदेश के योद्धा, प्राण बचाने के निमित्त, चारों ओर भागने लगे। हे राजेन्द्र! सात्यकि इस प्रकार धनुष कँपाते और आपके सैनिकों का संहार करते हुए समरभूमि में विचरने लगे। उनसे संग्राम करने का साहस कोई भी नहीं कर सका। तब महावीर द्रोणाचार्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर लाल-लाल नेत्र करके सात्यकि की ओर चले ॥३६।३९॥ —०—

द्रोणपर्व का एक सौ सात अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०७ ॥

अथ अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सञ्जय उवाच—द्रौपदेयान्महेष्वासान्सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किञ्चन ॥ २ ॥
नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विध्वाऽनदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥ ३ ॥
तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥
स तान्प्रति महाराज चिक्षेप पञ्च सायकान् ।
एकैकं हृदि चाऽऽजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मनः ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥
आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥
भैमसेनिर्धनुश्छित्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥
यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाऽथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥
साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन्निचकर्त्त महात्मनः ॥ १० ॥
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥

एक सौ आठ अध्याय ॥ १०८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! सोमदत्त के पुत्र महाधनुर्द्धर यशस्वी शल द्रौपदी के पुत्रों से युद्ध करने लगे। उन्होंने पहले पाँच पाँच बाण पाँचों को मार-कर फिर सात-सात बाणों से उन्हें पीड़ित किया। शल के बाण लगने से द्रौपदी के पाँचों पुत्र अचेत-से हो गये। वे कुछ निश्चय न कर सके कि अब उन्हें क्या करना चाहिए॥१।२॥इसके उपरान्त नकुल के पुत्र शतानीक,नरश्रेष्ठ शल को दो तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करके, सिंहनाद करने लगे। द्रौपदी के अन्य चारों पुत्रों ने भी शल को तीन तीन बाण मारे॥३।४॥महावीर शल ने भी प्रत्येक की छाती ताककर एक-एक बाण मारा। शल के प्रहार से पीड़ित पाँचों भाई चारों ओर से शल के ऊपर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे॥५।६॥अर्जुन के पुत्र ने कुपित होकर तीक्ष्ण चार बाणों से शल के चारों घोड़े मार डाले। भीमसेन के पुत्र ने उनका धनुष काट डाला और सिंहनाद करके तीक्ष्ण बाणों से उन्हें घायल किया। अब युधिष्ठिर के पुत्र ने शल की ध्वजा काट डाली और नकुल के पुत्र ने स्फूर्ति के साथ उनके सारथी का सिर काट डाला। सहदेव के पुत्र ने अपने भाइयों के प्रहार से शल को शिथिल देखकर एक क्षुरप्र बाण से उनका सिर काट डाला। तरुण सूर्य के समान तेजस्वी,सुवर्ण

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन्प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥
अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥
सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्राजन्राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥
तद्रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
भैमान्परिजघानाऽऽशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥
पुनश्चतुःशतान्हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
निपपात रथोपस्थे मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन्प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥

के आभूषणों से अलङ्कृत, शल का सिर पृथ्वी पर गिरने से समरभूमि प्रकाशित हो उठी॥७।११॥उस समय शल की मृत्यु हुई देखकर आपके सैनिक लोग भय के मारे इधर-उधर भागने लगे। हे राजेन्द्र! जैसे रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने लक्ष्मण से घोर युद्ध किया था वैसे ही क्रुद्ध राक्षस अलम्बुष महापराक्रमी भीमसेन से युद्ध करने लगा॥इन दोनों वीरों का भयङ्कर युद्ध देखकर सब लोग विस्मित और आह्लादित हुए॥१२।१४॥उस समय महावीर भीमसेनने हँसकर क्रुद्ध राक्षसराज अलम्बुष को तीक्ष्ण नव बाण मारे। ऋष्यशृङ्गका पुत्र अलम्बुषउन बाणोंसे घायल होकर गरजताहुआ भीमसेन और उनके साथियों के सम्मुख पहुँचा। उसने भीमसेन को पाँच बाण मारकर उनके साथी तीस रथी योद्धाओं को मार गिराया। फिर और चार सौ रथी योद्धाओं को मारकर भीमसेन को उसने तीक्ष्णबाण मारे॥१५।१८॥ राक्षस के बाणों से महावीर भीमसेन अत्यन्त विह्वल हो उठे। वे रथ के ऊपर ही मूर्छित हो गये। क्षण भर के पश्चात् वे सावधान हुए। वे क्रोध से काँपने लगे। उन्होंने धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से राक्षस अलम्बुष को अत्यन्त पीड़ित किया॥१८।२०॥ भीमसेन के बाणों से घायल होने पर काला-कलूटा निशाचर फूले हुए ढाक के पेड़ के समान जान पड़ने लगा। हे नरनाथ! उस समय अलम्बुष को अपने भाई के वध का स्मरण हो आया। उसने भयानक

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन्भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।
तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद्वृत्तं यद्भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥
भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसाऽगमत् ॥ २७ ॥
उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत्पुनः स्थूलो नादान्मुञ्चन्निवाऽम्बुदः ॥ २८ ॥
उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥
शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥ ३० ॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥
जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्रणमूर्धनि ।
तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥

रूप धारण करके भीमसेन से कहा—हे नराधम ! खड़े रहो, आज समरभूमि में तुम मेरा पराक्रम देखो। तुम पहले मेरे भाई महावीर बक राक्षस को मार करके भाग्यवश जीते बच गये थे। मैं उस समय वहाँ पर होता तो अवश्य ही तुम्हें जीता न छोड़ता। भीमसेन से इतना कहकर वीर अलम्बुष देखते ही देखते अन्तर्द्धान हो गया। राक्षस ने बाणवर्षा से भीमसेन को छिपा दिया॥२१। २५॥उन्होंने भी उसको सम्मुख न पाकर तीक्ष्ण बाणोंसे आकाश को परिपूर्ण कर दिया। भीम के बाणों से पीड़ित राक्षस मायाबल से रथ सहित कभी पृथ्वी पर आ जाता था और कभी आकाश में चला जाता था। कभी सूक्ष्म, कभी बड़ा और कभी स्थूल आकार धारण करके वह मेघ के समान गरजने, कटुवचन कहने और आकाशमार्ग में रह-कर चारों ओर से बाण बरसाने लगा॥२६।२९॥राक्षस के चलाये हुए शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, परिघ, तोमर, शतघ्नी, भिन्दिपाल, परशु, शिला, खड्ग, लुगड़, ऋष्टि, वज्र आदि अस्त्र-शस्त्र जलधारा की भाँति गिरकर भीमसेन की असंख्य सेना का संहार करने लगे। बहुत

हयाश्च वहवो राजन्पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥ ३३ ॥
शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥
नदीं प्रावर्त्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥
तं तथा समरे राजन्विचरन्तमभीतवत् ।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥
तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत ।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान्रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः ।
नाऽमृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः ।
सन्दधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्समन्ततः ।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥
तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे ।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमर्दयत् ॥ ४१ ॥
स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः ।
सन्त्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

से हाथी, घोड़े, रथी और पैदल कट-कटकर गिरने लगे। हे राजेन्द्र! [वीर अलम्बुष इस प्रकार पाण्डवपक्ष की सेना को मारकर अपना पराक्रम प्रकट करने लगा।] ॥३०।३३॥ उसने राक्षसगण-सेवित रक्त की नदी बहा दी। रथ उस नदी के आवर्त के से, हाथी उसके ग्राह के से, छत्र उसमें हंस के से और कटे हुए हाथ सर्प के से जान पड़ते थे। चेदि, पाञ्चाल और सृञ्जयगण उस नदी में बहने लगे ॥३४।३५॥ उस भयानक संग्राम में निशाचर का निर्भय होकर विचरना, युद्ध करना और अद्भुत पराक्रम देखकर पाण्डवगण बहुत ही उद्विग्न हो उठे। कौरव-सेना के लोग अत्यन्त हर्षित होकर बाजे बजाने और रोमहर्षण सिंहनाद करने लगे ॥३६।३७॥ सर्प जैसे ताली पीटने के शब्द को नहीं सह सकता वैसे ही भीमसेन कौरवपक्ष के बाजों के शब्द और सिंहनाद को नहीं सह सके। वे क्रोध के मारे लाल नेत्र करके शत्रुसेना की ओर देखने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर त्वाष्ट्र अस्त्र का प्रयोग किया। तब चारों ओर से सहस्रों बाण प्रकट हुए जिससे कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। कौरवों की सेना भय के मारे व्याकुल होकर भागने लगी। उस समय भीमसेन के छोड़े हुए उस त्वाष्ट्र अस्त्र ने रणभूमि में राक्षस की माया को मिटा दिया ॥३८।४१॥ उस अस्त्र से राक्षस पीड़ित होने लगा। वह निशाचर पीड़ित होकर युद्ध छोड़कर आचार्य की सेना की ओर भागा। हे राजेन्द्र!

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन्राक्षसेन्द्रे महात्मना ।
अनादयन्सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ॥ ४३ ॥
अपूजयन्मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम् ।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार राक्षस को जब भीमसेन ने परास्त कर दिया तब पाण्डवगण अतीव प्रसन्न होकर सिंहनाद और शङ्खनाद से दसों दिशाओं को परिपूर्ण करने लगे। प्रह्लाद के परास्त होने पर देवताओं ने इन्द्र की जैसे प्रशंसा की थी वैसे ही सब लोग भीमसेन की प्रशंसा करते हुए उन्हें असंख्य धन्यवाद देने लगे॥४२।४४॥

द्रोणपर्व का एक सौ आठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०८ ॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सञ्जय उवाच— अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत् ।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥
तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः ।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥
अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् ।
तयोर्युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो ।
घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥ ४ ॥
अलम्बुषमथो विध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।
तथैवाऽलम्बुषो राजन्हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥
विध्वा विध्वाऽनदद्धृष्टः पूरयन्खं समन्ततः ।
तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥ ६ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् ।
मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥

एक सौ नौ अध्याय ॥ १०७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महावीर अलम्बुष इस प्रकार भीमसेन के सम्मुख से भागकर रणभूमि में दूसरी ओर जा निकला। तब घटोत्कच वेग के साथ उसके सम्मुख आकर तीक्ष्ण बाणों से उसे पीड़ित करने लगा। [अलम्बुष भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर घटोत्कच के ऊपर प्रहार करने लगा।] वे दोनों राक्षसश्रेष्ठ इस प्रकार परस्पर भिड़कर बहुत सी मायाएँ प्रकट करते हुए इन्द्र और शम्बरासुर के समान घोर संग्राम करने लगे। पहले राम और रावण ने जैसे घोर युद्ध किया था वैसे ही उस समय दोनों राक्षस घोरतर युद्ध करने लगे॥१।४॥बीस नाराच बाणों से अलम्बुष का हृदय भेदकर घटोत्कच बारम्बार सिंह की भाँति गरजने लगा। अलम्बुष भी बारम्बार तीक्ष्ण बाणों से रणदुर्मद घटोत्कच को घायल करता हुआ सिंहनाद

मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।
यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृपः ॥ ८ ॥
तां तामलम्बुषो राजन्माययैव निजघ्निवान् ।
तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाऽक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।
त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥
सर्वतो व्यकिरन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।
स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्याऽस्त्रमायया ॥ १२ ॥
तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।
स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ १४ ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥
तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥
नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥

करने लगा। वे मायायुद्ध में निपुण महापराक्रमी दोनों राक्षस क्रोधान्ध होकर सैकड़ों माया प्रकट करके एक दूसरे को मोहित करते हुए मायायुद्ध करने लगे। घटोत्कच ने जो-जो माया प्रकट की, वह वह माया अलम्बुष ने अपनी माया के प्रभाव से उसी समय नष्ट कर दी॥४।९॥इसी समय भीमसेन आदि पाण्डव मायायुद्धनिपुण अलम्बुष के ऊपर क्रुद्ध होकर, रथों पर बैठकर, चारों ओर से उसकी ओर चले और अपने दल के असंख्य रथों से उसे घेरकर उसपर बाण बरसाने लगे। उन वीरों के बाणों की चोट खाकर वह राक्षस जलती हुई लकड़ियों से मारे जा रहे हाथी के समान जान पड़ने लगा। अस्त्रमाया के प्रभाव से उन सब अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट करता हुआ अलम्बुष, जले हुए वन से निकलते हुए हाथी के समान, रथों के घेरे से बाहर निकल आया॥९।१२॥इन्द्र के वज्र के समान शब्द करते हुए भयानक धनुष को चढ़ाकर उसने भीमसेन को पचीस, घटोत्कच को पाँच, युधिष्ठिर को तीन, सहदेव को सात, नकुल को तिहत्तर और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को पाँच पाँच बाण मारकर सिंहनाद किया॥१३।१५॥तब उधर से भीमसेन ने नव, सहदेव ने पाँच, युधिष्ठिर ने सौ, नकुल ने चौसठ और द्रौपदी के पुत्रों ने तीन तीन बाण उस राक्षस को मारे। इस समय महाबली घटोत्कच ने भी पहले उसे पचास और फिर सत्तर बाण मारकर सिंहनाद

पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।
तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुन्धरा ॥ १८ ॥
सपर्वतवना राजन्सपादपजलाशया ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥
प्रतिविव्याध तान्सर्वान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।
सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिशृङ्गं महाबलाः ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्समन्तान्निशिताञ्शरान् ॥ २३ ॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।
स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नाऽन्वपश्यत ।
ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥ २५ ॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायाऽस्य मनो दधे ।
वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥ २६ ॥
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥ २७ ॥
उद्बवर्ह रथाच्चाऽपि पन्नगं गरुडो यथा ।
समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविद्ध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥

किया। उसके भयानक सिंहनाद से पर्वत, वन, जलाशय आदि सहित यह पृथ्वी काँप उठी॥१८।१९॥ हे राजेन्द्र! निशाचर अलम्बुष ने इस प्रकार इन महारथियों के तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त पीडित होकर सबको पाँच-पाँच बाण मारे। राक्षस घटोत्कच ने भी कुपित होकर फिर अलम्बुष को तीक्ष्ण सात बाण मारे। राक्षसेन्द्र अलम्बुष उन बाणों से पीडित होकर स्फूर्ति के साथ घटोत्कच के ऊपर सुवर्णपुङ्खयुक्त और तेज किये गये बाण बरसाने लगा॥१९।२२॥ महाबली कुपित नाग जैसे शीघ्रता के साथ पर्वत के शिखर में प्रवेश होते हैं वैसे ही वे बाण घटोत्कच के शरीर में प्रवेश कर गये। महाबली पाण्डवगण घटोत्कच के साथ मिलकर चारों ओर से अलम्बुष के ऊपर बाण बरसाने लगे। विजयाभिलाषी पाण्डवों के विकट बाणों से व्यथित अलम्बुष उस समय साधारण मनुष्यों की भाँति शिथिल और कर्तव्य निश्चित करने में असमर्थ हो गया॥२२।२५॥ उसकी यह दशा देखकर उसे मार डालने के निमित्त युद्धनिपुण महाबली घटोत्कच बड़े वेग से अपने रथ से अलम्बुष के, जले हुए शैलशिखर अथवा अञ्जन-राशि के तुल्य, रथ पर झपटा॥२५।२७॥ गरुड जैसे

निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाऽश्मनि ।
बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ।
स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।
ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ॥ ३१ ॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ।
तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥ ३२ ॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥
जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४ ॥
घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥
स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवैर्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याऽभिननन्द वै तदा ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा॥ ३६ ॥
ततो निनादः सुमहान्समुत्थितः सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवास्ततो ध्वनिर्भुवनपथाऽस्पृशद्भृशम्॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सर्प को पकड़ ले वैसे ही घटोत्कच ने अलम्बुष को पकड़कर ऊपर को उठा लिया और कई बार ऊपर घुमाकर नीचे पटक दिया । पत्थर पर पटके गये घड़े की भाँति अलम्बुष के अङ्ग चूर-चूर हो गये । बली, स्फूर्तिशाली, पराक्रमी, क्रुद्ध घटोत्कच ने रणभूमि में सब सैनिकों को भयभीत करवा दिया । इस प्रकार वीर घटोत्कच ने, शालकटंकट नाम से भी प्रसिद्ध, भयानक राक्षस अलम्बुष को पटककर मार डाला ॥२७।३१॥ उसका वध देखकर पाण्डवों की सेना में आनन्द-कोलाहल होने लगा । लोग सिंहनाद करके, वस्त्र हिला-हिलाकर, हर्ष प्रकट करने लगे । कौरवदल के सैनिक और शूर योद्धा लोग राक्षसराज अलम्बुष को पर्वत के फटे हुए शिखर की भाँति रणस्थल में गिरते देखकर क्षोभ को प्राप्त हुए और हाहाकार करने लगे। युद्ध देखने के निमित्त आये हुए लोग कौतूहल के साथ उस युद्धभूमि में, आकाश से अपने आप गिरे हुए मङ्गल ग्रह की भाँति, पड़े हुए राक्षस को देखने लगे । हे महाराज ! महाबली घटोत्कच इस प्रकार महातेजस्वी अलम्बुष को, पके हुए अलम्बुष फल की भाँति, पृथ्वी पर गिराकर बहुत ही प्रसन्न हुआ । यह दुष्कर कर्म करके, बल दैत्य को मारने पर इन्द्र की भाँति शोभायमान, घटोत्कच जोर से सिंहनाद करने लगा॥३१।३५॥ उसके पिता, चाचा और उनके बान्धवगण उसकी प्रशंसा करते हुए साधुवाद देने लगे । पाण्डवों की सेना में अनेक प्रकार के बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों का और शङ्खों का महान् शब्द होने लगा । इस प्रकार घोरतर नाद से तीनों लोक प्रतिध्वनित-से हो उठे॥३६।३७॥

द्रोणपर्व का एक सौ नौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०९ ॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥
वध्यमानं वलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत्स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥
तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥
द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत्पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥
ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥
दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यन्नाराचैरग्निसन्निभैः ॥ ७ ॥
भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं वहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ९ ॥
स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नाऽन्वपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते ॥ १० ॥

एक सौ दस अध्याय ॥ ११० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! युद्धनिपुण सात्यकि ने द्रोणाचार्य को युद्ध में किस प्रकार परास्त किया? यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहो। मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है॥१॥सञ्जय ने कहा—हे महाप्राज्ञ महाराज! सात्यकि आदि पाण्डवपक्ष के वीरों के साथ द्रोणाचार्य का जैसा घोर युद्ध हुआ, उसे सुनिए। महाबली द्रोणाचार्य सत्यविक्रमी सात्यकि की सेना का संहार करते देखकर स्वयं उनकी ओर बढ़े। महारथी आचार्य को, एकाएक अपने समीप आते देखकर, सात्यकि ने पचीस क्षुद्रक बाण मारे॥२।४॥महावीर्यशाली द्रोण ने भी शीघ्रता के साथ सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण पाँच बाणों से उन्हें घायल कर दिया। वे शत्रुओं के मांस को खाने-वाले बाण सात्यकि के सुदृढ़ कवच को तोड़कर वैसे ही पृथ्वी में प्रवेश हो गये जैसे फुफकार रहे सर्प बिल में प्रवेश होवें। तब महाबाहु सात्यकि ने अंकुशपीड़ित गजराज की भाँति क्रुद्ध होकर अग्नितुल्य पचीस नाराच बाण आचार्य को मारे। उन्होंने सात्यकि के प्रहार से घायल होकर बहुत से बाणों से उनको पीड़ित किया॥५।९॥ द्रोणाचार्य को अपने ऊपर निरन्तर बाण बरसाते देखकर महावीर सात्यकि किङ्कर्तव्यविमूढ़ और

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥
तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १२ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम् ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥
एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत ।
न पश्यसि भयं द्रोणाद्घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥
असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे ।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥
तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः ।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८ ॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः ।
सात्यकिं मोक्षयस्वाऽद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १९ ॥
एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥

चिन्तित हो उठे। हे महाराज! तब आपके पुत्र और सैनिक लोग सात्यकि की यह दशा देखकर प्रसन्नता के साथ बारम्बार सिंहनाद करने लगे ॥१०।१२॥ वह भयानक सिंहनाद सुनकर और सात्यकि को अत्यन्त पीड़ित देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने सैनिकों और योद्धाओं से कहने लगे—हे वीर योद्धाओ! राहु जैसे सूर्य को ग्रसता है वैसे ही महारथी द्रोणाचार्य बाण-वर्षा के द्वारा यादवश्रेष्ठ सात्यकि को अत्यन्त पीड़ित कर रहे हैं। इस कारण तुम लोग शीघ्र ही वहाँ पर जाओ जहाँ द्रोणाचार्य के साथ सात्यकि घोर संग्राम कर रहे हैं; तुम उनकी सहायता करो॥१३।१५॥ अपने सैनिकों और योद्धाओं को इस प्रकार आज्ञा देकर धर्मराज युधिष्ठिर पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न से बोले—हे धृष्टद्युम्न! तुम इस समय भी निश्चिन्त क्या खड़े हो, शीघ्र ही द्रोणाचार्य के समीप जाओ। आचार्य की ओर से हम लोगों पर विषम विपत्ति उपस्थित है। तुम्हें क्या उस घोर भय और विपत्ति का खयाल नहीं है? धागे में बँधे हुए पक्षी से जैसे कोई बालक खेले वैसे ही महावीर द्रोणाचार्य सात्यकि के साथ खेल-सा कर रहे हैं। इसलिए तुम भीमसेन आदि वीरों को साथ लेकर शीघ्र सात्यकि के रथ के समीप जाओ। मैं भी सेना लेकर तुम्हारे पीछे आता हूँ। हे पाञ्चाल-राजकुमार! इस समय तुम मृत्यु के मुख में पड़े हुए सात्यकि को बचाओ॥१५।१९॥ अब सात्यकि की रक्षा

तत्राऽऽरावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम् ।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २१ ॥
ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥
स्मयन्नेव तु तान्वीरान्द्रोणः प्रत्यग्रहीत्स्वयम् ।
अतिथीनागतान्यद्वत्सलिलेनाऽऽसनेन च ॥ २३ ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः ।
आतिथेयगृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २४ ॥
भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांऽशुमान् ॥ २६ ॥
वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥
द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः ।
गभस्तय इवाऽर्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥
तस्मिन्द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः ।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥
पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च ।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान्वरान् ॥ ३० ॥

और सहायता करने के निमित्त धर्मराज युधिष्ठिर, वीर योद्धाओं को साथ लेकर, आचार्य द्रोण के रथ की ओर शीघ्रता से चले। पाण्डव और सृञ्जयगण जब अकेले ही द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे तब रणभूमि में महाकोलाहल होने लगा। सब वीर एकत्र होकर आचार्य के ऊपर कङ्कपत्र और मयूरपङ्ख से शोभित अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥२०।२२॥ लोग जैसे अतिथियों को जल, आसन आदि दे करके ग्रहण करते हैं वैसे ही द्रोणाचार्य भी हँसते हुए उन वीरों को ग्रहण करके असंख्य बाणों से उनका सत्कार करने लगे। द्रोणाचार्य के बाणों से वे धनुर्द्धर योद्धा वैसे ही तृप्त हो गये जैसे किसी अतिथि-सेवक मनुष्य के घर पर आये हुए अतिथि, सत्कार और भोजन आदि से, तृप्त होते हैं। मध्याह्नकाल के सूर्य के समान तपते हुए द्रोणाचार्य को कोई भलीभाँति देख भी न सकता था ॥२३।२५॥ सूर्य जैसे अपनी तीक्ष्ण किरणों से सब लोकों को तपाते हैं वैसे ही धनुर्द्धरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने असंख्य तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से सब वीरों को पीड़ित करने लगे। दलदल में फँसे हुए हाथी के समान निरुपाय होकर मारे जा रहे पाण्डवों और सृञ्जयों को उस समय अपनी रक्षा करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता था ॥२६।२८॥ द्रोणाचार्य के बड़े-बड़े बाण चारों ओर लोगों को तपाते हुए सूर्य की किरणों के समान फैलते दिखाई पड़ रहे थे। उस युद्ध में महारथी द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः ।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवाऽन्तकः॥ ३१ ॥
पञ्चालान्सृञ्जयान्मत्स्यान्केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥
तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवाऽऽरण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥ ३३ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाऽब्रुवन्नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥
तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान्रणे ।
न चाऽप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥
वर्त्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अशृणोत्सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम्॥ ३६ ॥
पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याऽभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्त्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।
एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनाऽन्तरात्मना ॥ ४० ॥

के साथी पाञ्चाल देश के पचीस प्रधान-प्रधान वीरों को मार डाला। इस प्रकार पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना के चुने हुए योद्धाओं को द्रोणाचार्य ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने लगे। कैकेयसेना के सौ वीरों को मारकर और अन्यान्य सब वीरों को भगाकर रणभूमि में, मुख फैलाये हुए काल के समान, द्रोणाचार्य विचरने लगे॥२९।३२॥ पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और कैकेय देश के बहुत से वीर पुरुष द्रोणाचार्य के बाणों से छिन्न-भिन्न, पराजित और रणविमुख होकर—वन में दावानल से घिरे हुए वनवासी जीवों की तरह—चिल्लाने और आर्तनाद करने लगे। उस समय युद्ध देखने के निमित्त आये हुए देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध, चारण आदि सब परस्पर कहने लगे कि वह देखो, पाञ्चाल और पाण्डव लोग अपनी-अपनी सेना के साथ भागे जा रहे हैं॥३३।३४॥ हे महाराज! महाप्रतापी द्रोणाचार्य जब शत्रुसंहार के लिए उद्यत हुए तब न तो कोई उनके समीप जा ही सकता था और न कोई उन्हें बाण आदि शस्त्रों से घायल करने का अवसर ही पाता था। द्रोणाचार्य के साथ पाण्डवों का ऐसा वीरविनाशन घोरतर युद्ध होने पर एकाएक धर्मराज युधिष्ठिर को कृष्णचन्द्र के पाञ्चजन्य का गम्भीर शब्द सुन पड़ा। वह शङ्ख महात्मा वासुदेव के मुख की वायु से परिपूर्ण होकर बड़े जोर से बज रहा था। उस समय जयद्रथ के रक्षक महारथी वीर पुरुष वेग से बाण बरसाते हुए अर्जुन के रथ के समीप

अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्याऽनन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥
सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाऽभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥
यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥
सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि ।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥
स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥
यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत्तनुम् ।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात्स समो भवेत् ॥ ४९ ॥

सिंहनाद कर रहे थे। इसी कारण उनके गाण्डीव धनुष का शब्द उस कोलाहल में छिप गया॥३५।३८॥तब श्रीकृष्णके शङ्ख का शब्द सुनकर और गाण्डीव धनुष का शब्द न सुन पड़ने के साथ ही कौरवों का सिंहनाद सुन पड़ने से खिन्न होकर युधिष्ठिर सोचने लगे कि श्रीकृष्ण का शङ्खनाद और कौरवों का प्रसन्नतासूचक सिंहनाद सुन पड़ रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अवश्य अर्जुन के विषय में कोई अमङ्गल दुर्घटना हुई है। व्याकुल-हृदय धर्मराज इसी विचार में पड़ गये,बारम्बार मोहाभिभूत होकर वे कर्तव्य का निश्चय न कर सके। उन्होंने अश्रुगद्गद स्वर में कहा—हे सात्यकि! पहले सज्जन लोग संग्राम के समय सुहृदों के कर्तव्य के बारे में जो कुछ कह गये हैं, उसी कर्तव्य के करने का यह समय उपस्थित है। हे महात्मन्! बहुत खोजने पर भी सब योद्धाओं में तुम्हारे समान प्रिय सुहृद और हितकारी मुझे कोई नहीं देख पड़ता॥३८।४३॥हे यादवश्रेष्ठ! जो व्यक्ति सदा प्रफुल्लचित्त और अनुगत हो उसी को,मेरे मत, में संग्राम के काम में नियुक्त करना चाहिए। तुम वासुदेव के समान महाबली हो और उन्हीं की तरह सदा हम लोगों को आश्रय देते हो। अतएव इस समय जो भार मैं तुमको सौंपता हूँ उसे वहन करो। मेरी इच्छा और अनुरोध को अस्वीकार न करना। महावीर अर्जुन तुम्हारे भाई,सखा और गुरु हैं। इस कारण विपत्ति के समय तुम उनकी सहायता करो॥४४।४७॥तुम सत्यव्रत,बलवीर्यशाली,प्रियदर्शन और अपने आचरणके प्रभावसे सर्वसाधारण में सत्यवादी

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः ।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५० ॥
एवं त्वामपि धर्मात्मन्प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः ।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५१ ॥
एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः ।
रणे सन्त्यजति प्राणान्द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥ ५२ ॥
विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः ।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥
ईदृशे तु परामर्दे वर्त्तमानस्य माधव ।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥
श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
मम सञ्जनयन्हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५ ॥
लघुहस्तश्चित्रयोधी तथाऽलघुपराक्रमः ।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५६ ॥
महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः ।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५७ ॥
शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे ।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥

प्रसिद्ध हो। हे शिनिवंशी! जो व्यक्ति अपने मित्र के लिए युद्ध में लड़कर प्राण दे देता है और जो व्यक्ति सत्पात्र ब्राह्मणों को सम्पूर्ण पृथ्वी दान करता है, वे दोनों समान फल के भागी होते हैं। मैंने सुना है कि असंख्य राजा लोग यज्ञ करके, सारी पृथ्वी ब्राह्मणों को दान करके, स्वर्गलोक को गये हैं॥४८।५०॥इस समय तुम मित्र की सहायता करके पृथ्वी दान के सदृश अथवा उससे भी अधिक फल प्राप्त करो। मैं हाथ जोड़कर तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ। हे यदुकुल-तिलक! केवल महारथी केशव और तुम, ये दोनों जने मित्रों को अभय दान करके जीवन से निरपेक्ष होकर युद्ध करते हैं। और देखो, महाबली वीर पुरुष ही यश के लाभ की अभिलाषा से वीर पुरुषों की सहायता करते हैं, साधारण पुरुष कभी ऐसा नहीं कर सकते॥५१।५३॥अतएव इस विपत्ति के समय में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मुझे अर्जुन का रक्षक या सहायक नहीं देख पड़ता। हे वीर! अर्जुन बारम्बार तुम्हारी प्रशंसा और तुम्हारे अद्भुत कार्यों का वर्णन करके मेरे हर्ष को बढ़ाया करते हैं। एक बार उन्होंने द्वैतवन में, सज्जन-समाज में, तुम्हारे पीछे तुम्हारे यथार्थ गुणों का वर्णन करते करते कहा था—हे महाराज! सात्यकि महाबली, चित्रयुद्ध में निपुण, बुद्धिमान्, सब अस्त्रों के प्रयोग में कुशल और महावीर हैं। वे कभी न तो युद्ध में व्याकुल होते ही हैं और न मोहित ही होते हैं। वे विशाल लोचन, चौड़ी छाती और बैल के से ऊँचे पुष्ट कन्धोंवाले, महारथी, मेरे शिष्य और सखा हैं। मैं उनका प्रियपात्र हूँ और वे मुझे बहुत ही प्यारे हैं। वे मेरे सहायक होकर कौरवों को नष्ट करेंगे ॥५४।५८॥यदि महावीर श्रीकृष्ण, बलदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, गद, सारण, साम्ब और अन्यान्य वृष्णिवंश

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः ।
रामो वाऽप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥
गदो वा सारणो वाऽपि साम्बो वा सह वृष्णिभिः ।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६० ॥
तथाऽप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नाऽस्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१ ॥
इति द्वैतवने तात मामुवाच धनञ्जयः ।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान्कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥
तस्य त्वमेवं सङ्कल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि ।
धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥
यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राऽहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥
न तत्सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान्भजसे वर्त्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥
सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याऽऽचार्यकस्य च ।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च ।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥
सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।
पूर्वमेवाऽनुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥
सुमहाञ्जनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।
स शैनेय जवेनाऽऽशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥

के वीर यादव युद्ध में मेरी सहायता करें, तो भी मैं नरश्रेष्ठ सात्यकि को अवश्य अपना सहायक बनाऊँगा। उनके समान योद्धा और कोई नहीं है॥५९।६२॥हे प्रिय सात्यकि ! अर्जुन इस प्रकार तुम्हारे गुणों का वर्णन किया करते हैं। इसलिए तुम उन अर्जुन के, भीमसेन के और मेरे उक्त विचार को कदापि निष्फल न करना। तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में द्वारका में पहुँचकर मैंने अर्जुन के ऊपर तुम्हारी दृढ़ भक्ति देखी है। विशेषकर हम लोगों की इस विपत्ति के समय तुम जैसी मित्रता और अनुगत भाव दिखा रहे हो, वैसा भाव मुझे और किसी में नहीं देख पड़ता। तुम कुलीन हो, एकान्त अनुगत हो, सत्यवादि और महावीर्यशाली हो। इसलिए इस समय अपने प्रिय सखा, विशेषकर आचार्य, अर्जुन के प्रति कृपा दिखाने के लिए अपने योग्य कार्य करने में प्रवृत्ति दिखाओ॥६३।६८॥दुर्योधन आचार्य के बाँधे हुए कवच को धारण करके अर्जुन के समीप गया है और कौरवपक्ष के अन्यान्य महारथी पहले से ही वहाँ जुटे हुए हैं। वह देखो, अर्जुन के रथ के सम्मुख

भीमसेनो वयं चैव संयताः सहसैनिकाः ।
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रतियास्यति ॥ ७० ॥
पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे ।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७१ ॥
महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु ।
धार्त्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह ।
सैन्यं रजःसमुद्भूतमेतत्सम्परिवर्त्तते ॥ ७३ ॥
संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः ।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥
नैतद्बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः ।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे सन्त्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥
शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम् ।
पश्यैतद्धार्त्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान् ।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥
नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः ।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥
पुरस्तात्सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः ।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥

बहुत ही कोलाहल हो रहा है। अतएव उस स्थान पर शीघ्र पहुँचना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि महाबली द्रोणाचार्य तुम पर आक्रमण करेंगे, तो हम महावीर भीमसेन को और असंख्य सेना को साथ लेकर उन्हें रोकेंगे ॥६९।७०॥ हे सात्यकि ! वह देखो, कौरवपक्ष के सब सैनिक, पूर्वकाल में वायु के वेग से क्षोभ को प्राप्त महासागर की भाँति, अर्जुन के बाणों से छिन्न-भिन्न होकर, युद्ध छोड़कर, महाकोलाहल करते हुए भागे जा रहे हैं, वह देखो, मनुष्य, घोड़े और रथ जो दौड़ रहे हैं, उससे इतनी धूल उड़ी है कि चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छाया हुआ है, कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता ॥७१।७३॥ महापराक्रमी सिन्धु-सौवीरगण तोमर, प्रास आदि शस्त्र उठाये हुए शत्रुनाशन अर्जुन को चारों ओर से घेर रहे हैं। उन्हें नष्ट किये बिना अर्जुन कभी जयद्रथ को नहीं मार सकेंगे। वे लोग जयद्रथ की रक्षा के निमित्त प्राणपण से युद्ध करेंगे। वह देखो, बाण, शक्ति, ध्वजा आदि से परिपूर्ण, हाथियों और घोड़ों से व्याप्त, अत्यन्त दुरधिगम्य कौरव-सेना, समरभूमि में सम्मुख डटी खड़ी है ॥७४।७६॥ दुन्दुभियों का शब्द, गम्भीर शङ्खध्वनि, सिंहनाद, रथों के पहियों की घरघराहट, हाथियों की चिंग्घार, घोड़ों की हिनहिनाहट और भागते हुए पैदलों के पाँवों की धमक सुनाई पड़ रही है। उनके चलने से पृथ्वीतल कम्पायमान हो रहा है। अगले भाग में सिन्धुदेश की सेना

अपर्यन्ते चले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् ।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
सर्वथाऽहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१ ॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चाऽतिवर्तते ॥ ८२ ॥
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा।
कुरूणां चापि तत्सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥
न हि मे वर्त्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन ।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥ ८५ ॥
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथाऽसौ चरति द्विजः ।
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद ।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७ ॥
अर्जुनस्य परित्राणं कर्त्तव्यमिति संयुगे ।
नाऽहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥
स हि शक्तो रणे तात त्रीँल्लोकानपि सङ्गतान् ।
विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥

और पिछले भाग में द्रोणाचार्य उपस्थित हैं। वे लोग संख्या में इतने अधिक हैं कि इन्द्र के भी छक्के छुड़ा सकते हैं॥७७।७९॥ इसी असीम सेना के भीतर महातेजस्वी अर्जुन प्रवेश कर गये हैं और इसी लिए उनके जीवननाश की आशङ्का है। अर्जुन यदि समर में मारे गये तो फिर मैं किस प्रकार जीवित रहूँगा? हे सात्यकि! तुम्हारे जीवित रहने पर भी क्या मुझे ऐसा कष्ट सहना पड़ेगा? प्रियदर्शन अर्जुन ने सूर्योदय के समय कौरवों की सेना में प्रवेश किया था। वह सेना समुद्र-सदृश है; उसके भीतर देवगण सहज में नहीं घुस सकते; किन्तु अर्जुन अकेले ही उसके भीतर चले गये हैं। उनके अमङ्गल की आशङ्का से मेरी बुद्धि किसी प्रकार युद्ध के विषय में प्रस्फुरित नहीं होती॥८०।८४॥ यह देखो, महाबाहु द्रोणाचार्य युद्ध के निमित्त उत्सुक होकर तुम्हारे सम्मुख ही मेरी सेना को पीड़ित कर रहे हैं। हे सात्यकि! हे शूरशिरोमणे! तुम जटिल कर्तव्य की उलझन को सुलझाने में निपुण हो। इसलिए इस समय जो उचित समझो, वही करो; किन्तु मेरे विचार में और सब कार्य छोड़कर अर्जुन की रक्षा और सहायता ही करनी चाहिए॥८५।८८॥ मुझे जगत्पति श्रीकृष्ण के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि इस कौरव-सेना की कौन कहे, यदि तीनों लोकों के योद्धा भी एकत्र होकर सम्मुख आवें तो उनको भी वे परास्त कर सकते हैं! महा[illegible] अर्जुन [illegible]

किं पुनर्धार्त्तराष्ट्रस्य बलमेतत्सुदुर्बलम् ।
अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥
प्रजह्यात्समरे प्राणांस्तस्माद्विन्दामि कश्मलम् ।
तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाऽभिनोदितः ।
रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवाऽतिरथौ स्मृतौ ॥ ९२ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्यत विश्रुतः ।
अस्त्रे नारायणसमः सङ्कर्षणसमो बले ॥ ९३ ॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि ।
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ।
नाऽशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥ ९५ ॥
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत्कुरुष्व महाबल ।
सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ९६ ॥
नाऽन्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहाऽर्हसि ।
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्रणे चर विभीतवत् ॥ ९७ ॥
नहि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ।
तवाऽर्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥

में असंख्य योद्धाओं के चलाये हुए बाणों से पीड़ित होकर कहीं प्राण न खो बैठें, इसी चिन्ता के मारे मैं मूढ़ सा हो रहा हूँ। अतएव मेरे कहने से तुम अर्जुन के पीछे जाओ॥८८।९०॥हे वीर यादवश्रेष्ठ! वृष्णिवंश में तुम और प्रद्युम्न यही केवल दो अतिरथी हैं। हे वीर! तुम अस्त्र बल में श्रीकृष्ण के तुल्य, बाहुबल में सङ्कर्षण के समान और पराक्रम तथा वीरता में महावीर अर्जुन के सदृश हो। सज्जन यह कहकर तुम्हारी प्रशंसा किया करते हैं कि सात्यकि के निमित्त समर में कोई काम असाध्य नहीं है, महावीर सात्यकि युद्धनिपुण और भीष्म द्रोण से भी बढ़कर प्रतापी हैं। इसलिए तुम मेरे कहने के अनुसार कार्य करो॥९२।९६॥ हे महाबली! अपने दल के सब लोगों की, मेरी और अर्जुन की धारणा को मिथ्या न करना। इस समय परम प्रिय प्राणों का मोह त्यागकर तुम वीरों की भाँति समरभूमि में निर्भय विचरण करो। हे शिनिनन्दन! यादवों का यह जीवन है कि वे रण में जाकर अपने जीवन का मोह नहीं करते। युद्धभूमि में प्रवेश करके युद्ध न करना, अस्थिर होना या संग्राम से भागना डरपोक असत् पुरुषों का काम है। यादवों को इन बातों का अभ्यास नहीं है ॥९६।९८॥ धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारे गुरु हैं और कृष्णचन्द्र तुम्हारे और अर्जुन के भी गुरु हैं। इसी से सहायता के निमित्त अर्जुन के समीप जाने को मैं तुमसे कहता हूँ। मैं तुम्हारे गुरु का गुरु हूँ; अतएव मेरी बात न

वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ।
कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥१००॥
माऽवमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ।
वासुदेवमतं चैव मम चैवाऽर्जुनस्य च ॥१०१॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनञ्जयः ।
एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥१०२॥
प्रविशैतद्बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
प्रविश्य च यथान्यायं सङ्गम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥१०३॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११० ॥

मानना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। हे सात्यकि! यह मेरा कथन श्रीकृष्ण और अर्जुन के मत के अनुकूल ही है। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। अब तुम अर्जुन के समीप शीघ्र गमन करो। हे सत्यपराक्रम! मेरे वचनों को मानकर तुम दुर्मति दुर्योधन की इस सेना में प्रवेश करो। युद्ध में महारथी वीरों का सामना करते हुए तुम अपने योग्य कर्म करके सबको दिखलाओ॥९९।१०३॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ दस अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११० ॥

अथ एकादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच—प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाऽच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥
एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥ ४ ॥
न मे धनञ्जयस्याऽर्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किन्न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥

एक सौ ग्यारह अध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! धर्मराज युधिष्ठिर के प्रीतियुक्त, समयोचित, न्यायानुकूल वाक्य सुनकर सात्यकि ने कहा—हे राजेन्द्र! आपने महावीर अर्जुन के निमित्त जो नीतिपूर्ण यशस्कर वाक्य कहे हैं उन्हें मैंने सुन लिया। मेरे समान और अर्जुन को जैसे आप आज्ञा देते वैसे ही मुझे भी दे सकते हैं और आपकी दी हुई आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है॥१।४॥ मैं अर्जुन की रक्षा के निमित्त प्राण तक भी दे देने को उद्यत हूँ। विशेषकर जब आप आज्ञा करते हैं तब समरभूमि में चाहे जो कार्य हो, उसे करना ही मेरा कर्तव्य है। मैं आपकी

लोकत्रये योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत्सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥
सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनञ्जयम् ।
हते जयद्रथे राजन्पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥
अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद्वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥
दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥
अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥
त्वयि चाऽहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥
जानीषे हि रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै प्रभो ॥ १३ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥
एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥

अनुमति पाकर देवता, असुर, मनुष्य आदि सहित इस समग्र त्रिभुवन से संग्राम कर सकता हूँ; इस हीन-बल दुर्योधन की सेना के साथ संग्राम करना तो कोई बड़ी बात ही नहीं है। मैं अवश्य ही समरभूमि में इस सम्पूर्ण कौरव सेना को परास्त करूँगा। हे महाराज! मैं बिना किसी रोक-टोक और विघ्न के अर्जुन के समीप जाऊँगा और दुरात्मा जयद्रथ के मारे जाने पर फिर आपसे आ मिलूँगा॥५।८॥ किन्तु वासुदेव और अर्जुन जो कुछ मुझसे कह गये हैं वह आपसे निवेदन कर देना भी मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक है। महावीर अर्जुन ने जाते समय सब सैनिकों के और महात्मा श्रीकृष्ण के सम्मुख बारम्बार मुझसे ऐसा कहा कि "हे सात्यकि! मैं जब तक जयद्रथ को मारकर नहीं लौट आता तब तक सावधान होकर धर्मराज युधिष्ठिर की रक्षा करना। मैं तुम्हें या प्रद्युम्न को धर्मराज की रक्षा का भार देकर ही निश्चिन्त होकर जयद्रथ को मारने के निमित्त जा सकता हूँ॥९।१२॥ तुम कौरवपक्ष के प्रधान योद्धा द्रोणाचार्य को भली भाँति जानते ही हो और उनकी प्रतिज्ञा भी सुन चुके हो। वे युधिष्ठिर को पकड़ने के निमित्त अत्यन्त यत्न कर रहे हैं और वास्तव में अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण भी कर सकते हैं। इसलिए मैं इस समय धर्मात्मा युधिष्ठिर को तुम्हें सौंपकर जयद्रथ के मारने को जाता हूँ। उसे मारकर बहुत शीघ्र लौट आऊँगा। तुम यही यत्न करना कि महावीर द्रोणाचार्य धर्मराज को किसी प्रकार पकड़

जयद्रथं च हत्वाऽहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे बलात् ॥ १६ ॥
निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाऽप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥
एवं गते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत्पुनः ॥ १८ ॥
सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥
स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥
स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥
तस्याऽपि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे ।
नाऽन्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥
मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥ २३ ॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ।
आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः ।
यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥ २५ ॥

न सकें॥१३।१६॥यदि द्रोणाचार्य उन्हें पकड़ ले गये तो मैं जयद्रथ के मारने में अकृतकार्य और अत्यन्त ही अप्रसन्न होऊँगा। सत्यव्रत युधिष्ठिर यदि संग्राम में पकड़ लिये गये तो अवश्य ही हम लोगों को फिर वन में जाकर रहना पड़ेगा और फिर हमारी जीत भी निष्फल हो जायगी। अतएव हे सात्यकि! आज तुम मेरा प्रिय करने के निमित्त, विजय और यश प्राप्त करने के निमित्त, युधिष्ठिर की रक्षा अवश्य करो" ॥१७।२०॥ हे धर्मराज! द्रोणाचार्य की आशङ्का से महावीर अर्जुन आपको मेरे हाथ में सौंप गये हैं। इस समय यहाँ मुझे महावीर प्रद्युम्न के अतिरिक्त और कोई योद्धा ऐसा नहीं देख पड़ता, जो कि द्रोणाचार्य का सामना कर सके। कोई कोई मुझे भी द्रोणाचार्य का सामना करने में समर्थ कहते हैं॥२१।२३॥ सो मैं अपने ऊपर होने वाले इस विश्वास अथवा आ गौरव, और अपने गुरु अर्जुन की आज्ञा को कैसे व्यर्थ कर सकता हूँ! मैं ऐसी अवस्था में आपको छोड़कर कैसे जाऊँ! दुर्भेद्य कवच धारण किये हुए आचार्य का हस्तलाघव (फुर्ती) प्रसिद्ध है। वे युद्धभूमि में आपको पाकर, अपने वश में करके, वैसे ही खेल सा खेलेंगे जैसे कोई बालक किसी चिड़िया को पकड़ कर क्रीड़ा करे। वसुदेव के पुत्र प्रद्युम्न यदि इस स्थान पर होते तो मैं उनके हाथ में आपको सौंप जाता। वे महावीर अर्जुन की ही भाँति आपकी रक्षा करते। मैं अर्जुन के समीप जाग

तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथाऽर्जुनः ।
कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥
यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम् ।
मा च ते भयमद्याऽस्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥ २७ ॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।
ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥ २८ ॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन्रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ।
उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥
सराक्षसगणा राजन्सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नाऽलं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥
एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥ ३२ ॥
न तत्र कर्मणो व्यापत्कथञ्चिदपि विद्यते ।
दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाऽऽहवे ॥ ३३ ॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।
मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ३४ ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।
आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्यां कर्तुं च भारत ।
कुरुष्वाऽद्याऽऽत्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ ३६ ॥

जाऊँगा तो ऐसा योद्धा कोई नहीं है जो आचार्य के सम्मुख ठहरकर युद्ध करे और आपको बचावे ।] इसलिए आप और सब विचार छोड़कर अपनी रक्षा कीजिए । मैं चला जाऊँगा तो आपकी रक्षा कौन करेगा ?॥२३।२७॥ हे राजेन्द्र ! महावीर अर्जुन किसी कार्य का भार उठाकर कभी हिम्मत नहीं हारते, इसलिए आप उनके विषय में किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। ये सौवीर, सिन्धु, पुरु और उत्तर, दक्षिण आदि देशों के सब योद्धा और कर्ण आदि महारथी वीर कुपित अर्जुन के सोलहवें अंश के भी समान नहीं हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, महानाग आदि चराचर प्राणी युद्धभूमि में अर्जुन का सामना नहीं कर सकते ॥२७।३१॥ इस कारण आप उनके निमित्त कोई शङ्का न करें। जहाँ महाबली अर्जुन और वासुदेव एक साथ हैं, वहाँ कार्य में किसी प्रकार के विघ्न की सम्भावना नहीं है । हे महाराज ! आप अपने भाई के दैवबल, अस्त्रशिक्षा, धनुर्विद्या के अभ्यास, अमर्ष, शूरता, कृतज्ञता, दया आदि गुणों पर विचार

यस्याऽहं प्रत्ययात्पार्थं गच्छेयं फाल्गुनं प्रति ।
नह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥ ३७ ॥
क्वचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन्प्रशाधि माम् ॥ ३९ ॥
युधिष्ठिर उवाच—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥
करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४१ ॥
आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चाऽर्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत्स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥ ४२ ॥
स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनञ्जयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥
पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥
धृष्टकेतुश्च बलवान्कुन्तिभोजश्च मातुलः ।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चाला सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥

कीजिए। साथ ही यह भी विचार कीजिए कि आपका सहायक मैं यदि अर्जुन के समीप चला जाऊँगा तो द्रोणाचार्य न जाने क्या-क्या करेंगे। महावीर द्रोणाचार्य, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त आपको पकड़ने की बहुत चेष्टा कर रहे हैं॥३२।३६॥इसलिए इस समय आत्मरक्षा करना ही आपका परम कर्त्तव्य है। हे राजेन्द्र! इस समय यदि मैं चला जाऊँ तो ऐसा कौन है जिसे आपका रक्षक बनाकर आपको उसके हाथ में सौंपूँ? मैं सत्य कहता हूँ, आपको किसी को सौंपे बिना मैं अर्जुन के समीप कदापि न जाऊँगा॥ अतएव इन सब बातों पर विचार करके आपको जो श्रेयस्कर जान पड़े वह अनुमति कीजिए॥३६।३९॥अब युधिष्ठिर ने कहा—हे यादवश्रेष्ठ! तुमने जो कहा है, उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं; किन्तु अर्जुनके अनिष्ट की आशङ्का निरन्तर मुझे उद्विग्न कर रही है। अतएव मैं स्वयं अपनी रक्षा का यत्न करूँगा। तुम मेरी अनुमति के अनुसार अर्जुन के समीप जाओ। मैं अपनी रक्षा, और अर्जुन की रक्षा के निमित्त तुमको भेजना, इन दोनों बातों पर विचार करके यही उचित समझता हूँ कि अर्जुन की रक्षा के निमित्त तुमको भेज दूँ। अतएव तुम तुरन्त ही अर्जुन के समीप जाने का यत्न करो॥४०।४३॥ महापराक्रमी भीमसेन, धृष्टद्युम्न, उनके भाई, द्रौपदी के पुत्र, केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई, राक्षस घटोत्कच, राजा विराट, द्रुपद, महाबली शिखण्डी, पराक्रमी धृष्टकेतु, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव और पाञ्चाल-सृञ्जयगण तथा अन्यान्य राजा लोग सावधान होकर

एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।
न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ।
धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परन्तपः ॥ ४८ ॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।
यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत्क्रामेत्तत्र कथञ्चन ।
एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥ ५० ॥
कवची सशरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ।
विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

मेरी रक्षा करेंगे। इससे द्रोणाचार्य और कृतवर्मा दोनों न तो मुझे पकड़ ही सकेंगे और न मुझपर आक्रमण ही कर सकेंगे॥४२।४८॥जैसे तटभूमि महासमुद्र के वेग को रोके रहती है वैसे ही वीर्यशाली धृष्टद्युम्न भी बल प्रकट करके द्रोणाचार्य को रोकेंगे। जहाँ धृष्टद्युम्न रहेंगे वहाँ महाबली द्रोणाचार्य अपनी सेना साथ लेकर कभी आक्रमण न कर सकेंगे। द्रोणाचार्य के मारने के निमित्त ही महावीर धृष्टद्युम्न अग्नि से प्रकट हुए हैं। इस समय तुम विश्वासपूर्वक कवच पहनो, धनुष-बाण-खड्ग आदि शस्त्र लो और अर्जुन के समीप जाओ। मेरे निमित्त तनिक भी चिन्ता न करो। महावीर धृष्टद्युम्न ही कुपित द्रोणाचार्य को रोक सकेंगे॥४८।५१॥

द्रोणपर्व का एक सौ ग्यारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ १११ ॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

सञ्जय उवाच—धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाद्भयमाशंसन्परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात्पश्यन्विशेषतः ।
ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ २ ॥
निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते ।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥

एक सौ बारह अध्याय ॥ ११२ ॥

सञ्जय कहते हैं--हे राजेन्द्र ! रण में दुर्द्धर्ष, शिनिवंशी सात्यकि धर्मराज युधिष्ठिर के वचन सुनकर मन में आशङ्का करने लगे कि इनको छोड़कर जाने से मैं अर्जुन की दृष्टि में अपराधी होऊँगा और लोग भी मुझे अर्जुन के समीप जाते देखकर समझेंगे कि मैं आचार्य से भयभीत होकर भाग गया। महाबली

नहि मे पाण्डवात्कश्चित्त्रिपु लोकेपु विद्यते ।
यो मे प्रियतरो राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥
तस्याऽहं पदवीं यास्ये सन्देशात्तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्त्तव्यं कथञ्चन ॥ ६ ॥
यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥
प्रिये हि तव वर्त्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥ ८ ॥
तवाऽऽज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥
द्रोणानीकं विशाम्येप क्रुद्धो झप इवाऽर्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्राऽसौ राजन्राजा जयद्रथः ॥ १० ॥
यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥
इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥
त्रियोजनगतस्याऽपि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद्राजन्सुदृढेनाऽन्तरात्मना ॥ १३ ॥
अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन्को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥

सात्यकि बारम्बार इस प्रकार सोचकर धर्मराज से कहने लगे—हे नरनाथ ! यदि आप आत्मरक्षा के बारे में निश्चिन्त हो चुके हैं तो मैं आपकी आज्ञा से महाबाहु अर्जुन के समीप जाता हूँ;आपका कल्याण हो॥१।४॥मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे त्रिभुवन भर में महाबाहु अर्जुन से अधिक प्रिय और कोई नहीं है । आपके हित के लिए मैं कुछ न्यूनता नहीं रख सकता। अपने गुरुजन की आज्ञा की तरह आपकी आज्ञा का पालन करना मेरे लिए सर्वथा कर्तव्य है। आपके अन्य भाई, अर्जुन और श्रीकृष्ण, जिस प्रकार आपका प्रिय कार्य पूर्ण करने में तत्पर हैं उसी प्रकार मैं भी अर्जुन और श्रीकृष्ण का प्रिय करने में सावधान हूँ॥५।८॥इसलिए हे प्रभो!मैं आपकी आज्ञा मान करके महावीर अर्जुन के लिए,क्रुद्ध मत्स्य जैसे समुद्र में प्रवेश होकर उसको मथ डालता है वैसे ही, दुर्भेद्य द्रोणाचार्य की सेना को छिन्न-भिन्न करता हुआ उस स्थान को जाऊँगा जहाँ जयद्रथ अर्जुन के भय से विह्वल होकर अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य आदि महारथियों के साथ असंख्य सेना के द्वारा सुरक्षित है। जयद्रथ-वध के लिए महावीर अर्जुन जिस स्थान पर हैं वह स्थान शायद यहाँ से तीन योजन की दूरी पर है॥९।१२॥किन्तु मैं निश्चय के साथ यह कहता हूँ कि अर्जुन के तीन योजन दूर रहने पर भी उनके समीप अवश्य जाऊँगा और उनके साथ जयद्रथ के मारे जाने के समय तक रहूँगा । हे राजेन्द्र ! गुरुजन

अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।
यदेतत्कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥ १७ ॥
नागा मेघनिभा राजन्क्षरन्त इव तोयदाः ।
नैते जातु निवर्त्तेरन्प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन्पराजयः ।
अथ यान्रथिनो राजन्सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥
खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चाऽसिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥
नित्यं हि समरे राजन्विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन्दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥
एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान्प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥

की आज्ञा बिना मिले कौन वीर पुरुष सम्राम में जायगा? और बड़ों की आज्ञा मिलने पर मुझ सरीखा कौन व्यक्ति संग्राम से विमुख होगा? हे महाराज! मुझको जिस स्थान पर जाना होगा उसे मैं भली भाँति जानता हूँ। आज मैं असंख्य हल, शक्ति, गदा, प्रास, चर्म, खड्ग, ऋष्टि, तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण इस अथाह सैन्य-सागर को मथ डालूँगा॥१३।१६॥ये जो रणप्रिय बहुत से म्लेच्छ वीरों से सुशोभित और जल बरसानेवाले मेघ के सदृश बड़े डील-डौल के हाथी महावतों के द्वारा सञ्चालित होकर आगे बढ़ रहे हैं, ये अब पीछे नहीं लौट सकेंगे। इनका संहार किये बिना मुझे जय नहीं प्राप्त हो सकती॥१७।१९॥और, ये जो सुवर्ण शोभित रथों पर विराजमान महावीर राजपुत्र दिखाई पड़ रहे हैं, ये सभी धनुर्वेदविशारद और रथ तथा हाथी की सवारी के युद्ध, अस्त्रयुद्ध, मुष्टियुद्ध, गदायुद्ध, मल्लयुद्ध तथा ढाल तलवार के युद्ध में निपुण, शूर, कृतविद्य, परस्पर स्पर्धा रखकर समर में शत्रुओं को जीतनेवाले हैं। इन्हें रुक्मरथ कहते हैं। इन महारथियों को कर्ण ने यहाँ पर व्यूहरक्षा के निमित्त नियुक्त कर रक्खा है। ये सब दुःशासन के अनुगत हैं॥१९।२३॥इनके पराक्रम की प्रशंसा श्रीकृष्ण भी करते हैं। ये कर्ण के वशवर्ती और उसका प्रिय करने में तत्पर हैं और कर्ण के ही कहने से अर्जुन से नहीं लड़े हैं। दृढ़ कवच और धनुष धारण किये हुए ये वीर, दुर्योधन की आज्ञा से,

तस्यैव वचनाद्राजन्निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ।
तेन क्रान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥
मदर्थे धिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान्प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात्पदवीं सव्यसाचिनः ।
यांस्त्वेतानपरान्राजन्नागान्सप्तशतानिमान् ॥ २७ ॥
प्रेक्षसे वर्मसञ्छन्नान्किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान्प्रादाद्द्विरदान्सव्यसाचिनः ॥ २८ ॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ।
आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥
त्वामेवाऽद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।
एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाऽग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥
मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान्हत्वा शरैः राजन्किरातान्युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।
ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥

मुझे रोकने को खड़े हैं। ये कभी नहीं थकते। हे कुरुकुल-तिलक! मैं इस समय आपका हित करने के निमित्त इन वीरों को समर में मारकर अर्जुन के समीप जाऊँगा॥२४।२७॥आप जो ये दिव्यभूषण-भूषित, कवचों से रक्षित, सात सौ हाथी देख रहे हैं, इन पर वीर दुर्द्धर्ष किरातगण बैठे हुए हैं।पहले किरातों के राजा ने, अपने जीवन की रक्षा के निमित्त, महावीर अर्जुन को ये हाथी भेंट किये थे। ये सब पहले आपके ही कार्य में निरत रहते थे; किन्तु काल की गति कैसी विचित्र और अद्भुत है! इस समय ये आपके ही विरुद्ध युद्ध करने को उद्यत हैं॥२७।३०॥इनके महावत और म्लेच्छ किरात योद्धा गजशिक्षा में निपुण हैं। ये अग्नि-योनि किरात पहले वीर अर्जुन से हारकर उनके अधीन हुए थे;किन्तु आज दुर्योधन के वशीभूत होकर आपके विरुद्ध मुझसे युद्ध करने को सम्मुख खड़े हैं। मैं इस समय समर में दुर्द्धर्ष इन किरातों को अपने बाणों से मारकर अर्जुन के समीप जाऊँगा॥३०।३३॥हे महाराज! ये जो सुनहरे कवचों से सुरक्षित, वरुण के वाहन अञ्जन नामक दिग्गज के वंश में उत्पन्न, सुशिक्षित, कठिन शरीरवाले, ऐरावत तुल्य मस्त गजराज दिखाई पड़ रहे हैं, इन पर उत्तरगिरि से आये हुए, बड़े कर्कश स्वभाव के, शूर दस्यु बैठे हैं। ये दस्यु गोयोनि, वानरयोनि, मनुष्ययोनि आदि अनेक योनियों से उत्पन्न हैं। इन हिमदुर्गनिवासी, पापाचारी म्लेच्छों

लब्धलक्षा रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात्पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥
कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ।
सन्ति गोयोनयश्चाऽत्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥
अनेकयोनयश्चाऽन्ये तथा मानुषयोनयः ।
अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥ ३७ ॥
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम् ।
एतद्दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥ ३९ ॥
कृतार्थमथ चाऽऽत्मानं मन्यते कालचोदितः ।
ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः ।
तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥ ४१ ॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः ।
ये त्वेते रथिनो राजन्दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ॥ ४२ ॥
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ।
अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्त्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥

के एकत्र होने से सेना का वह भाग धुएँ के रङ्ग का सा जान पड़ता है॥३३।३८॥हे महाराज! काल के द्वारा प्रेरित दुर्योधन इन राजाओं और योद्धाओं को तथा कृपाचार्य, भूरिश्रवा, महारथी द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ और कर्ण आदिको सहायक पाकर अपने को कृतार्थ समझता है और वीर पाण्डवों को तुच्छ मानता है। किन्तु यदि ये वीर वायु के समान वेग से भागें तो भी इस समय मेरे नाराच बाणों के आगे से भागकर नहीं जा सकेंगे। पराये बल पर फूला न समानेवाला दुर्योधन सदा इन वीरों का सम्मान करता है; परन्तु आज ये सब अवश्य ही मेरे हाथ से मारे जायँगे ॥३८।४२॥और, ये जो सुवर्णमण्डित ध्वजाओं से शोभित महारथी देख पड़ रहे हैं, ये काम्बोज देश के शूर योद्धा हैं। ये सभी कृतविद्य, धनुर्वेद की शिक्षा पाये हुए और रण-निपुण हैं। आपने इनके बल विक्रम का वर्णन सुना ही होगा। यह एक दूसरे की सहायता और हित करने के निमित्त यहाँ आये हुए हैं। ये सब योद्धा और कौरवोंके द्वारा सुरक्षित दुर्योधन की कई अक्षौहिणी

तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।
तस्मात्सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन्यथावद्रथकल्पकाः ।
अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥ ४७ ॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।
काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ ४८ ॥
नानाशस्त्रसमावापैर्विविधायुधयोधिभिः ।
किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः ।
शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः ।
तथाऽन्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥
समेष्यामि रणे राजन्बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।
तस्माद्वै वाजिनो मुख्या विश्रुताः शुभलक्षणाः ॥ ५२ ॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।
सञ्जय उवाच—तस्य सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥
रथे चाऽस्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च ।
ततस्तान्सर्वतोयुक्तान्सदश्वांश्चतुरो जनाः ॥ ५४ ॥
रसवत्पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।
पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नान्समलंकृतान् ॥ ५५ ॥

सेना कुपित होकर सावधानी के साथ मुझे रोकने के लिए खड़ी है। किन्तु अग्नि जैसे फूस के ढेर को जला देती है वैसे ही मैं इन सबको मारूँगा॥४२।४६॥अतएव अब आप रथ सजानेवालों को शीघ्र आज्ञा दीजिए कि वे बाण-पूर्ण तरकस और अन्यान्य सब सामान मेरे रथ पर यथा-स्थान रख दें। इस समर में बड़े-बड़े योद्धाओं का सामना करना पड़ेगा, इसलिए अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र ले जाना आवश्यक है। आचार्यों के उपदेश के अनुसार ही रथ पर पँचगुनी सामग्री रखनी चाहिए॥४६।४७॥ विषैले साँप के समान घोर काम्बोज देश के योद्धा, अनेक अस्त्र-शस्त्र धारण किये अत्यन्त उग्र विष तुल्य किरातगण, सदा दुर्योधन के द्वारा प्रतिपालित सम्मानित और उनके हितचिन्तक पराक्रमी शक लोग तथा प्रज्व-लित अग्नि के समान दुर्द्धर्ष दुर्जय कालतुल्य युद्धदुर्मद अन्यान्य अनेक देशों के असंख्य योद्धा मुझसे युद्ध करने को खड़े हैं। इस समय युद्धभूमि में मुझे उन सबसे भिड़ना होगा। रथ सजानेवाले अनुचरों को आज्ञा दीजिए कि वे सम्पूर्ण सुलक्षणों से युक्त श्रेष्ठ जाति के प्रसिद्ध घोड़ों को जल पिलाकर टहलाकर फिर मेरे रथ में जोतें ॥४९।५३॥सञ्जय कहते हैं—हे महा-राज! सात्यकि के यों कह चुकने पर युधिष्ठिर ने रथ सजानेवाले अनुचरों को आज्ञा दी कि वे शीघ्र ही तरकस, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और अन्य सब सामग्री यथास्थान रखकर उनका रथ तैयार कर दें।

विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ।
तान्युक्तान्रुक्मवर्णाभान्विनीताञ्शीघ्रगामिनः॥ ५६ ॥
संहृष्टमनसो व्यग्रान्विधिवत्कल्पितान्रथे ।
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥
संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५९ ॥
दारुकस्याऽनुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥ ६१ ॥
आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महताऽन्वितः ॥ ६३ ॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४ ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाऽभिनन्दितः॥ ६५ ॥

तब उन लोगों ने सात्यकि के रथ में जुते हुए चारों घोड़ों को खोलकर मस्त करनेवाली मदिरा पिलाई, नहलाया, टहलाया, मला और उनके अङ्गों में लगे हुए शल्य निकाले॥५३।५६॥इसी समय सात्यकि के प्रिय सखा सारथी दारुक के छोटे भाई ने उन प्रसन्न-चित्त, सुन्दर रङ्ग के, सुवर्ण की मालाओं से अलङ्कृत, बहुमूल्य घोड़ों को सात्यकि के रथ में जोता । वह रथ मणि मोती मूँगा आदि रत्नों और श्वेत पताकाओं से शोभित, ऊँचे छत्र के दण्ड से युक्त, सिंहचिह्नयुक्त ध्वजा और अन्यान्य बहुमूल्य सुवर्ण की सामग्री से अलङ्कृत था॥५६।५९॥उस रथ को सम्मुख लाकर, इन्द्र से मातलि सारथी की तरह, उस सारथी ने सात्यकि से कहा हे नरश्रेष्ठ! रथ तैयार खड़ा है। तब श्रीमान् सात्यकि स्नान आदि करके पवित्र हुए। उन्होंने उस समय सहस्र स्नातक ब्राह्मणों को सुवर्ण की मुद्राएँ दान कीं। ब्राह्मण लोग उन्हें आशीर्वाद देने लगे। अब किरात देश की तीव्र मदिरा पीने से श्रेष्ठ महारथी सात्यकि के नेत्र लाल हो गये। फिर उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर, दर्पण देखकर, धनुष बाण धारण किया। उनका तेज दुगना हो उठा; वे प्रज्वलित प्रचण्ड अग्नि के समान जान पड़ने लगे ॥६०।६४॥ ब्राह्मण लोग स्वस्त्ययन-पाठ करने लगे। तब कवच और आभूषणों से अलङ्कृत सात्यकि का कन्याओं ने अक्षत, चन्दन, माला आदि से अभिनन्दन किया।

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्द्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥
ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणा स्म सैन्धवाः ॥ ६७ ॥
तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात्सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥
तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिन्दमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥
सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याऽब्रवीद्वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥
त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाऽहमरिन्दम ॥ ७२ ॥
तस्माद्भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥
गच्छ गच्छ द्रुतं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।
यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥

सात्यकि ने दोनों हाथ जोड़कर राजा युधिष्ठिर के पाँव छुए। धर्मराज ने स्नेहपूर्वक उनका मस्तक सूँघा। अब सात्यकि अपने श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए॥६५।६६॥ हृष्ट-पुष्ट, शीघ्रगामी, सिन्धु देश के बहुमूल्य घोड़े उन्हें लेकर चले। धर्मराज को प्रणाम करके और उनसे आशीर्वाद पाकर महावीर भीमसेन भी सात्यकि के साथ चले। हे राजेन्द्र ! उस समय द्रोणाचार्य आदि कौरवपक्ष के वीर योद्धा लोग उन दोनों वीरों को सेना के भीतर प्रवेश करते देखकर, सावधान होकर, अपने-अपने स्थान पर स्थिर हो गये॥६७।६९॥ उधर कवच धारी वीर भीमसेन को अपने साथ आते देखकर, प्रणाम करके, महावीर सात्यकि ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे वीरवर ! मेरी सम्मति में इस समय आपको महाराज युधिष्ठिर की ही रक्षा करनी चाहिए। मैं अकेला ही इस कौरवसेना को छिन्न भिन्न करके इसके भीतर जाऊँगा। आप तो मेरे पराक्रम को भली भाँति जानते ही हैं। इसलिए यदि आप मेरा प्रिय और हित करना चाहते हैं तो धर्मराज के समीप जाकर उनकी रक्षा कीजिए। वर्तमान और भविष्य को देखते हुए राजा की रक्षा करना ही आपका कर्तव्य है॥७०।७३॥ यह सुनकर अब महावीर भीमसेन ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा है वही मैं करूँगा। अब तुम शीघ्र ही अर्जुन के समीप गमन करो। तुम्हारा कार्य सिद्ध हो। तब फिर सात्यकि ने कहा—हे भीमसेन !

निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६ ॥
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ७७ ॥
एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ।
सम्प्रैक्षत्तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥ ७८ ॥
तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ।
भूय एवाऽभवन्मूढं सुभृशं चाऽप्यकम्पत ॥ ७९ ॥
ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ।
दिदृक्षुरर्जुनं राजन्धर्मराजस्य शासनात् ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११२ ॥

आप धर्मराज की रक्षा के निमित्त तुरन्त जाइए। आप मेरे स्नेही, अनुरक्त और वशवर्ती हैं; इधर सब प्रकार के सुलक्षण और सगुन देख पड़ते हैं। इससे जान पड़ता है कि मुझे युद्ध में अवश्य जय-प्राप्ति होगी। हे भीमसेन! महात्मा अर्जुन के हाथ से पापी जयद्रथ की मृत्यु हो जाने पर मैं लौटकर फिर महाराज युधिष्ठिर के समीप जाऊँगा॥७४।७७॥महावीर सात्यकि अब भीमसेन को विदा करके, बाघ जैसे मृगों के झुण्ड की ओर देखता है वैसे ही, कौरव-सेना की ओर देखने लगे। उनको प्रवेश करते देखकर कौरवों की सेना काँप उठी। सात्यकि भी धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन की सूचना लाने के निमित्त कौरव-सेना के भीतर प्रवेश कर गये॥७८।८०॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ बारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११२ ॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११३ ॥

सञ्जय उवाच—प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनाऽनीकेन संवृतः ॥ १ ॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २ ॥
प्राक्रोशत्पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥ ४ ॥

एक सौ तेरह अध्याय ॥ ११३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! महारथी सात्यकि इस प्रकार हमारी सेना के सम्मुख युद्ध करने को आये। उनके पीछे राजा युधिष्ठिर भी बहुत सी सेना साथ लेकर द्रोणाचार्य के रथ के सम्मुख चले। उस समय युद्ध प्रिय दुर्द्धर्ष पाञ्चालराज द्रुपद के पुत्र और राजा वसुदान पाण्डव-सेना के मध्य चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—शीघ्र आओ, आगे बढ़ो, मारो काटो, जिसमें प्रतापी सात्यकि सहज ही शत्रुसेना के भीतर जा सकें। देखो, अनेक महारथी योद्धा लोग उन्हें जीतने का यत्न करेंगे॥१।४॥यों कहते हुए पाण्डवपक्ष के महारथियों ने

इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान्समभिद्रुताः ॥ ५ ॥
ततः शब्दो महानासीद्युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ ६ ॥
सात्वतेन महाराज शतधाऽभिव्यशीर्यत ।
तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पुत्रो महारथः ॥ ७ ॥
सप्त वीरान्महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।
अथाऽन्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥ ८ ॥
शरैरनलसङ्काशैर्निन्ये वीरान्यमक्षयम् ।
शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥
द्विपारोहान्द्विपांश्चैव हयारोहान्हयांस्तथा ।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥ १० ॥
तं तथाऽद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् ।
न केचनाऽभ्यवर्तन्त सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥
ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥
तमेकं बहुधाऽपश्यन्मोहितास्तस्य तेजसा ।
चक्रैर्विमथितैश्चैव भग्नैर्नीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥
चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चाऽपि भुजङ्गाभोगसन्निभैः ॥ १५ ॥

कौरवसेना पर आक्रमण किया । उधर से विजय की आकांक्षा रखनेवाले कौरवदल के योद्धा भी प्रत्याक्रमण करने लगे । सात्यकि के रथ के समीप बड़ा कोलाहल होने लगा । दुर्योधन के सैनिक चारों ओर से सात्यकि पर टूट पड़े । महावीर सात्यकि ने क्षण भर में ही उन सबको बाण मारकर छिन्न भिन्न कर दिया । उन्होंने सम्मुख स्थित सात प्रसिद्ध धनुर्द्धर योद्धाओंको और अन्य अनेक राजाओं को मार गिराया । वे कभी एक बाण से सौ मनुष्यों को और कभी सौ बाणों से एक ही व्यक्ति को मारते थे ॥५।९॥ महारुद्र जैसे प्रलयकाल में प्राणियों का संहार करते हैं वैसे ही वे हाथियों, हाथियों के सवारों, घोड़ों और उनके सवारों, रथों और उनके सवारों को स्फूर्ति के साथ मारकर नष्ट करने लगे । उस समय कौरवपक्ष का कोई भी वीर उन बाण-वर्षा करनेवाले सात्यकि के सम्मुख ठहरना कैसा, जा ही नहीं सकता था । सात्यकि के बाणों से विमर्दित, विमोहित और विह्वल होकर वे चारों ओर भागने लगे ॥१०।१२॥ उन्हें सात्यकि ही सात्यकि नजर आते थे । टूटे फूटे रथ, रथों के पहिये,

ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।
शशाङ्कसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।
गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥
रराजाऽतिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।
तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्त्वा महीं प्राप्य प्रहृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १९ ॥
नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ २० ॥
ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः ।
इत्येष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥
भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।
न न्यवर्त्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥
निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥
सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन्विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥
तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥

छत्र, ध्वजा, अनुकर्ष, पताका, सुवर्णमय शिरस्त्राण, हाथी की सूँड के समान अङ्गदयुक्त चन्दन-चर्चित कटे हुए हाथ और सर्प के आकार की जाँघें, कुण्डलमण्डित चन्द्र-सदृश सिर आदि अङ्ग समरभूमि में पड़े हुए थे ॥१३।१७॥ पर्वत ऐसे बड़े-बड़े हाथी पृथ्वी पर गिरने लगे, जिनसे वह समरभूमि पर्वतों से परिपूर्ण सी जान पड़ने लगी। मोतियों की माला, सुवर्ण के जोत और विचित्र आकार के कवच-जाल आदि से भूषित घोड़े सात्यकि के बाणों से मथित होकर, पृथ्वी पर गिर-गिरकर, एक अपूर्व शोभा को प्राप्त हुए। हे महाराज! महावीर सात्यकि इस प्रकार आपकी सेना को मारते, गिराते और भगाते हुए उसके भीतर प्रवेश हुए और जिस मार्ग से अर्जुन गये थे उसी मार्ग से जाने को उद्यत हुए। द्रोणाचार्य उनको रोकने लगे॥१८।२१॥ यह देखकर महावीर सात्यकि लौटे नहीं; किन्तु यत्नपूर्वक द्रोणाचार्य के साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे और उमड़ा हुआ सागर जैसे तटभूमि को तोड़ने की चेष्टा करता है वैसे ही द्रोणाचार्य को हटाने का यत्न करने लगे। महावीर द्रोणाचार्य ने सात्यकि को मर्मभेदी अत्यन्त तीक्ष्ण पाँच बाण मारे। सात्यकि ने भी कङ्कपत्र-शोभित, शिला पर घिसकर तीक्ष्ण किये गये, सुवर्णपुङ्खयुक्त सात बाण आचार्य को मारे। आचार्य ने छः बाण मारकर उन्हें और उनके सारथी को पीड़ित किया॥२२।२५॥ सात्यकि भी आचार्य द्रोण के पराक्रम को न सह सकने के कारण क्रुद्ध होकर

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चाऽन्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥
युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।
तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥
त्वरन्प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।
तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।
तवाऽऽचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्त्तत ।
त्वं हि मे युध्यतो नाऽद्य जीवन्यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।
सात्यकिरुवाच—धनञ्जयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्न मे कालात्ययो भवेत् ।
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।
सञ्जय उवाच—एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
प्रयातः सहसा राजन्सारथिं चेदमब्रवीत् ।
द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥

क्रमशः दस, छः और आठ बाणों से उन्हें घायल करके सिंहनाद करने लगे। फिर और दस बाण मारकर उनके घोड़ों को चार बाण मारे, ध्वजा में एक बाण और सारथी को एक बाण मारा॥२६।२८॥तब महावीर द्रोणाचार्य ने एकदम टीड़ीदल के समान असंख्य बाणों से सात्यकि के रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथी को ढक दिया। अब सात्यकि ने भी आचार्य को बहुत से बाण मारे॥२८।३०॥द्रोणाचार्य ने हँसकर सात्यकि से कहा—हे शिनिनन्दन! तुम्हारे गुरु अर्जुन आज मुझसे युद्ध करते-करते कायरों की भाँति युद्ध छोड़कर चले गये हैं, वैसे ही यदि तुम भी मुझसे युद्ध करते-करते भाग न गये तो मेरे आगे से जीते बचकर न जा सकोगे॥३०।३२॥सात्यकि ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। मैं धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन के समीप उन्हीं की राह से, जाना चाहता हूँ। मैं अधिक विलम्ब नहीं कर सकता। गुरु जिस मार्ग पर चलते हैं उसी मार्ग पर शिष्य भी चला करते हैं। इसलिए मैं उसी राह से जाता हूँ, जिस राह से मेरे गुरु गये हैं॥३२।३४॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! सात्यकि इतना कहकर द्रोणाचार्य को छोड़ उनके दक्षिण ओर से अकस्मात् अपना रथ निकाल ले गये। उन्होंने जाते समय सारथी से कहा—हे सारथी! आचार्य मुझे रोकने के लिए कुछ कमी न रक्खेंगे, इसलिए तुम सावधानी से निकल चलो॥३४।३९॥और यह जो अवन्तिदेशकी अत्यन्त प्रभावशालिनी

यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।
एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥
अस्याऽनन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महद्बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च वाल्हिकानां महद्बलम् ॥ ३७ ॥
वाल्हिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद्बलम् ।
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥
अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यजन्ति रणाजिरम् ।
एतदन्तरमासाद्य चोदयाऽश्वान्प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।
वाल्हिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ४० ॥
दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चाऽनीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिराधिष्ठितम् ।
एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥
मध्यतो याहि यत्रोग्रं कर्णस्य च महद्बलम् ।
तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन्विशिखान्बहून् ॥ ४३ ॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।
कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥
प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः ।
प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।
तमापतन्तं विशिखैः शड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥

अगम्य सेना देख पड़ रही है, इसके पश्चात् दाक्षिणात्य शूरों की अपार सेना है; उसके समीप ही वाह्लीक देश के योद्धाओं का भारी जमघट है। इन सेनाओं के समीप ही कर्ण की सेना देख पड़ती है। ये सब सेनाएँ भिन्न-भिन्न होने पर भी एक दूसरे की रक्षा कर रही हैं। ये जो प्रहार करने के लिए उद्यत वाह्लीकगण, दाक्षिणात्यगण, सूत-पुत्र कर्ण और अनेक देशों की पैदल और चतुरङ्गिणी सेना का दल देख पड़ता है इसके भीतर होकर तुम मेरा रथ ले चलो, आचार्य को छोड़ दो॥४०।४२॥महावीर सात्यकि ने जब यह आज्ञा दी तब सारथी ने उसी समय वेग से रथ हाँक दिया। द्रोणाचार्य क्रोधविह्वल होकर बेधड़क जानेवाले सात्यकि के ऊपर असंख्य बाण बरसाते हुए उनके पीछे चले। अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण की सेना को नष्ट-भ्रष्ट करके महावीर और सात्यकि कौरव सेना के भीतर प्रवेश हुए॥४३।४५॥सात्यकि जब सेना के भीतर प्रवेश हो गये और सेना तितर-बितर हो गई तब असहनशील वीर कृतवर्मा उन्हें रोकने का यत्न करने लगे। महावीर

चतुर्भिश्चतुरोऽस्याऽश्वानाजघानाऽऽशु वीर्यवान्
ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यस्तनान्तरे ।
स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।
स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिलसन्निभम् ॥ ४९ ॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।
स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ ५० ॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।
अथाऽस्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥
समार्गणगणं राजन्कृतवर्मा शरासनम् ।
विव्याध च रणे राजन्सात्यकिं सत्यविक्रमं ॥ ५२ ॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।
ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।
ततोऽन्यत्सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥
व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥
छादयित्वा रणे राजन्हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथाऽस्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥
स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवन्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥

सात्यकि ने कृतवर्मा को आते देखकर छः बाण मारे। चार बाणों से उनके चारों घोड़ों को भी मार गिराया, साथ ही अत्यन्त तीक्ष्ण सोलह बाण उनके वक्षःस्थल में मारे। इस प्रकार सात्यकि के तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित होने पर भी कृतवर्मा विह्वल नहीं हुए। उन्होंने उसी समय वायु के समान वेग से जानेवाला सर्प-सदृश वत्सदन्त बाण कान तक तानकर सात्यकि के वक्षः-स्थल में मारा। वह बाण शीघ्रता से सात्यकि के कवच और शरीर को भेदकर रक्त में भीगकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। अस्त्रविद्या में निपुण कृतवर्मा ने अनेक बाणों से सात्यकि का धनुष काट डाला और फिर उनके वक्षःस्थल में तीक्ष्ण दस बाण मारे ॥४८।५३॥ धनुष कटने पर सात्यकि ने एक शक्ति उठाकर कृतवर्मा के दाहने हाथ में मारी और फिर दूसरा धनुष लेकर उनके ऊपर सहस्रों बाण बरसाकर रथ सहित उन्हें अदृश्य कर दिया। हे राजेन्द्र! इस प्रकार कृत-वर्मा को बाणों से व्याप्त करके उन्होंने एक भल्ल बाण से उनके सारथी का सिर काट डाला। उसके मृत्यु

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान्स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५८ ॥
स मुहूर्तमिवाऽऽश्वस्य सदश्वान्समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत्सुमहद्भयम् ॥ ५९ ॥
सात्यकिश्चाऽभ्यगात्तस्मात्स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद्विनिःसृतः ॥ ६० ॥
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।
स तत्र बहुभिः शूरैः सन्निरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥
न चचाल तदा राजन्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सन्धाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ॥ ६२ ॥
अभ्यधावद्रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।
तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।
समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।
विक्रम्य वारिता राजन्वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥
यतमानांश्च तान्सर्वानीषद्विगतचेतसः ।
अभितस्ताञ्शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥
निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे ।
अतिष्ठन्नार्यवद्वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

को प्राप्त हो जाने पर, बिना सारथी के घोड़े इधर-उधर रथ को लिए भागने लगे॥५४।५७॥भोजराज कृतवर्मा ने शीघ्रता से स्वयं घोड़ों को सँभाला। धनुष हाथ में लिये हुए वे अपनी सेना को युद्ध के निमित्त उत्साहित करने लगे। क्षण भर में घोड़ों को सँभालकर वे फिर अपने घोर युद्ध से शत्रुओं के भय को बढ़ाने लगे। कृतवर्मा की सेना पर सात्यकि बड़े वेग से टूट पड़े॥५८।६०॥उस सेना के भीतर से निकलकर वे स्फूर्ति के साथ काम्बोज-सेना के भीतर जा प्रवेश हुए। वहाँ महाबली वीरों ने उनको घेर लिया, उनके रथ की गति रुक गई; परन्तु वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। इधर द्रोणाचार्य भी कृतवर्मा को अपनी सेना की रक्षा का भार सौंपकर सात्यकि से युद्ध करने के निमित्त आगे बढ़े॥६१।६३॥इस प्रकार द्रोणाचार्य को सात्यकि का पीछा करते देखकर पाण्डवों की सेना के योद्धा उन्हें रोकने का उद्योग करने लगे। भीमसेन और पाञ्चालगण कृतवर्मा के समीप पहुँचकर उत्साहहीन हो गये। कृतवर्मा ने अपने पराक्रम से उनके भीतर प्रवेश होने का यत्न करनेवाले पाञ्चाल-देश के योद्धाओं को रोक दिया। वे अचेत से हो गये और उनके वाहन भी थक गये। कृतवर्मा ने उस समय असंख्य बाण बरसाकर अपना अद्भुत रणकौशल

दिखलाया। भीमसेन से रक्षित पाञ्चालगण कृतवर्मा के समीप जाकर आगे नहीं बढ़ सके। कृतवर्मा ने उन युद्ध की आकांक्षा से आगे बढ़नेवाले वीरों को बाणों से पीड़ित कर दिया; किन्तु वे सब वीर कृतवर्मा के बाणों से जर्जर हो जाने पर भी, यश प्राप्त करने के निमित्त, सम्मुख ही स्थित हो रहे। वे लोग कृतवर्मा की सेना को परास्त करने के निमित्त अत्यन्त यत्न करने लगे ॥६३।६७॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ तेरह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११३ ॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् ।
व्यूढमेवं यथान्यायमेव बहु च सञ्जय ॥ १ ॥
नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा ।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृढविक्रमम् ॥ २ ॥
नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं नाऽतिपीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥
आत्तसन्नाहसञ्छन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥
आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥
नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥
न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः ।
नाऽनाहूतं नाऽप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥
कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम् ।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥

एक सौ चौदह अध्याय ॥ ११४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरी सेना के योद्धा महाबलशाली, फुर्तीले, दृढ़, लम्बे चौड़े डील डौल के, नीरोग, कवचधारी और शस्त्र चलाने में बड़े ही निपुण हैं। उनके समीप युद्ध के सभी सामान विद्यमान् हैं। उनके व्यूह की रचना भी शास्त्रोक्त विधि से की गई है ॥१।२॥ उनमें न कोई बहुत वृद्ध है, न बालक है, न बहुत दुबला है और न बहुत मोटा। हम लोग सदा उनका सत्कार करते रहे हैं और वे भी निरन्तर हमारी इच्छा के अनुसार कार्य करते चले आये हैं। वे सवारी में, पीछे हटने में, धावे में, भली भाँति प्रहार करने तथा व्यूह के भीतर जाने और बाहर निकलने में अत्यन्त ही निपुण हैं। हाथी, घोड़े, रथ की सवारी और युद्ध में कई बार उनकी परीक्षा ले ली गई है। उचित वेतन देकर सब नौकर रक्खे गये हैं; केवल बातचीत करके ही कोई नहीं रक्खा गया। किसी उपकार या सम्बन्ध के कारण ही हमारी ओर से कोई युद्ध करने नहीं आया है। मेरी सेना का ऐसा कोई सैनिक नहीं, जो बिना बुलाये आया हो या जिसे वेतन न दी जाती हो ॥३।६॥ सभी बड़े कुलीन, हृष्ट-पुष्ट, यशस्वी, मनस्वी, नम्र और आज्ञा पर चलनेवाले हैं। लोकपाल सदृश

सचिवैश्चाऽपरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥
बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानधिसृतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥
महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥
प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद्भागधेयतः ॥ १२ ॥
योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसञ्चितम् ।
वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसन्धमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥
गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
सञ्जयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ १७ ॥
तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वाऽतीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥

पुण्यकर्मा मुख्य सचिव और अन्य श्रेष्ठ राजा लोग उनके प्रतिपालक हैं॥७।८॥हमारे हितचिन्तक महाबली असंख्य राजा लोग भी अपनी ही इच्छा से वशवर्ती होकर, अपनी-अपनी सेना और प्रधान अनुचरों को साथ लेकर, हमारी ओर से युद्ध करने को आये हैं। चारों ओर से आई हुई नदियाँ जैसे समुद्र को भर देती हैं वैसे ही अनेक देशों से आये हुए राजाओं की सेनाओं ने मिलकर हमारे सैन्यदल को बढ़ाया है। पङ्ख न होने पर भी पक्षियों के समान उड़नेवाले रथ, घोड़े और हाथी मेरी विशाल सेना में भरे पड़े हैं; किन्तु मेरी ऐसी चुनी हुई उत्तम सेना भी मेरे दुर्भाग्य से नष्ट हो गई॥९।१२॥मेरी सेना सागर के समान अथाह है। योद्धा लोग उसमें अक्षय जल की भाँति भरे पड़े हैं। वाहन तरङ्गों के समान हैं। क्षेपणी, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण, प्रास आदि अस्त्र-शस्त्र ही छोटी-बड़ी मछलियाँ हैं। ध्वजा और भूषण ही रत्न तथा चट्टानें हैं। दौड़ते हुए वाहन ही वायु का वेग हैं, जिससे कि वह सागर उमड़ता हुआ प्रतीत होता है। द्रोणाचार्य ही उसका गम्भीर पाताल-तल हैं। कृतवर्मा उसके महाकुण्ड के समान हैं। उसमें वीर जलसन्ध को महाग्राह मानना चाहिए। कर्ण ही उसके निमित्त पूर्ण चन्द्र का उदय है, जिसके कारण वह उमड़ उठा है॥१३।१५॥हे सञ्जय! ऐसे अपार सैन्यसागर को चीरकर केवल एक रथ से अर्जुन और सात्यकि

किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणेकायनेऽकाले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥
ग्रस्तान्हि कौरवान्मन्ये मृत्युना तात सङ्गतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥
अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥ २१ ॥
भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चाऽपरे ॥ २२ ॥
असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥
न चाऽयोधोऽभवत्कश्चिन्मम सैन्ये तु सञ्जय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाऽभृतको नरः ॥ २४ ॥
पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥
ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥ २६ ॥
रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च सञ्जय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥
अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याऽग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥

निकल गये। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अर्जुन और सात्यकि के प्रवेश होने पर मेरी सेना निष्कुल न बची होगी। काल प्रेरित कौरवों ने उन दोनों वीरों को अपनी सेना के भीतर प्रवेश होते और जयद्रथ को गाण्डीव धनुष के सम्मुख उपस्थित देख कर उस दारुण समय में क्या कर्तव्य करना विचारा? ॥१८।१९॥ मैं तो यह समझता हूँ कि कौरव अवश्य ही काल का ग्रास बन चुके हैं। इस समय रण में उनका वैसा पराक्रम भी नहीं देख पड़ता। महावीर श्रीकृष्ण और अर्जुन घावों से बचे रहकर मेरी सेना के भीतर प्रवेश कर गये। उन्हें रोकनेवाला शायद इस लोक में कोई है ही नहीं ॥२०।२१॥ देखो, मेरी सेना में अच्छी तरह जाँचकर, यथेष्ट वेतन देकर, अनेक महारथी योद्धा नौकर रक्खे गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें प्रिय वचन और सत्कार से सन्तुष्ट करके रक्खा गया है। मेरी सेना में ऐसा कोई नहीं है, जिसे सत्कार अथवा वेतन से सन्तुष्ट न रक्खा जाता हो। सभी को अपने-अपने काम [और योग्यता] के अनुसार भोजन और वेतन प्राप्त होता है। मेरी सेना में ऐसा कोई नहीं है, जो अपने काम में चतुर न हो, या कम वेतन पाता हो अथवा जिससे बेगार में काम लिया जाता हो। मैंने और मेरे सजातियों, पुत्रों और भाई-बन्धुओं ने दान, मान और सभा में यथायोग्य आसन देकर यथाशक्ति सबको सम्मानित किया है ॥२२।२५॥ किन्तु ऐसे वीर महारथी

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २९ ॥
सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥
विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विषज्जये ।
पलायनकृतोत्साहान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥
शून्यान्कृतान्रथोपस्थान्सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
हतांश्च योधान्सन्दृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥
व्यश्वनागरथान्दृष्ट्वा तत्र वीरान्सहस्रशः ।
धावमानान्रणे व्यग्रान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३५ ॥
महानागान्विद्रवतो दृष्ट्वाऽर्जुनशराहतान् ।
पतितान्पततश्चाऽन्यान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥
विहीनांश्च कृतानश्वान्विरथांश्च कृतान्नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥

योद्धा भी सात्यकि के बाहु-बल से निमर्दित और अर्जुन के सम्मुख जाते ही परास्त हो गये, तो इसे निःसन्देह मेरा दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। जिस जयद्रथ की रक्षा की जाती है और जो लोग उनकी रक्षा करनेवाले हैं, उन दोनों की एक ही गति (मृत्यु) नजर आती है।हे सञ्जय!मेरे पुत्र मूढमति दुर्योधन ने अर्जुन को जयद्रथ के रथ के समीप पहुँचते और सात्यकि को सेना के भीतर निर्भय चित्त से प्रवेश करते देखकर उस समय के योग्य क्या काम किया ?॥२६।२९॥ हमारे पक्ष के वीरों ने भी श्रीकृष्ण और अर्जुन को, सब तरह की बाण-वर्षा को व्यर्थ करके,सेना के भीतर प्रवेश होते देखकर क्या किया ? ऐसा जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण और सात्यकि को अर्जुन की सहायता के निमित्त उद्यत देखकर मेरे पुत्र शोक से अत्यन्त व्याकुल हो उठे होंगे। सात्यकि और अर्जुन को सब सेनाएँ लाँघकर आगे बढ़ते और कौरवपक्ष के योद्धाओं को भागते देखकर मेरे पुत्र शोक के वेग को सँभाल न सकते होंगे। वे अपने पक्ष के रथी, महारथी योद्धाओं को शत्रु विजय में निरुत्साह और भागने के लिए उद्यत देखकर खेद कर रहे होंगे ॥३०।३३॥ सात्यकि तथा अर्जुन के बाणों से सब रथों के आसनों को रथी और सारथी से रहित, योद्धाओं को निहत और असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल वीरों को व्यग्रभाव से इधर उधर भागते हुए देखकर मेरे पुत्र अत्यन्त ही शोकपीड़ित हो रहे होंगे। हाथियों को अर्जुन के बाणों की चोट से भागते और पृथ्वी पर गिरते देखकर,और अर्जुन तथा सात्यकि के बाणों से घोड़ों को सवारों से रहित और मनुष्यों को रथ हीन देखकर, वे अत्यन्त

हयौघान्निहतान्दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥
पत्तिसङ्घान्रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥
द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥
संमूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाऽच्युतौ ॥ ४१ ॥
तस्मिन्प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥
तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत्तत्र तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४३ ॥
द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन्कथं रणे ॥ ४४ ॥
बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनञ्जयजयैषिणः ।
भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच—आत्मापराधात्सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद्वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥

पश्चात्ताप कर रहे होंगे॥३४।३६॥सहस्रों घोड़ों का मरना और बचे हुओं का भागना देखकर मेरे पुत्र पश्चात्ताप कर रहे होंगे।पैदल सिपाहियों को युद्ध से भागते हुए देखकर उनके हृदय से जय की आशा दूर हो गई होगी॥३७।३९॥अत्यन्त दुर्जय महावीर अर्जुन और वासुदेव को क्षण भरमें आचार्य की सेनाको भेदकर चले गये देखकर मेरे पुत्र पश्चात्ताप कर रहे होंगे।हे सञ्जय! श्रीकृष्ण सहित अर्जुन और सात्यकि को कौरव-सेना के भीतर प्रवेश होते सुनकर भी मैं अत्यन्त मोहित हो रहा हूँ॥४०।४१॥महावीर सात्यकि जब कृतवर्मा की सेना को छिन्न भिन्न करके कौरव-सेना के भीतर गये तब मेरी सेना के वीरों ने क्या किया? द्रोणाचार्य के बाणों से पाण्डवों के अत्यन्त पीड़ित होने पर किस प्रकार युद्ध हुआ? यह सब विस्तार के साथ मुझसे कहो॥४२।४३॥महावीर द्रोणाचार्य प्रधान बली, अस्त्रविद्या में बड़े निपुण, युद्धकला के आचार्य और परम पराक्रमी हैं। पाञ्चालों ने उनसे किस प्रकार युद्ध किया? द्रोणाचार्य से पाञ्चालों का पुराना वैर है, वे सब प्रकार से अर्जुन की जय चाहते हैं।महारथी द्रोणाचार्य भी पाञ्चालों को अपना वैरी मानते हैं। हे सञ्जय! अर्जुन ने जयद्रथ को मारने के निमित्त क्या किया? तुम सब वृत्तान्त अच्छी प्रकार जानते हो। इसलिये सब वृत्तान्त ठीक ठीक कहो॥४४।४६॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! आपके ही दोष से यह दारुण दुःख उपस्थित हुआ है। इस समय साधारण

पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान्राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८ ॥
सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद्‌व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥
याचितोऽसि पुरा राजन्दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान्कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५० ॥
तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान्प्रति ।
आर्त्तप्रलापांश्च बहून्मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥
आत्मापराधात्सुमहान्प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्त्तुमर्हसि मानद ॥ ५४ ॥
नहि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥
तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥
प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ५७ ॥

मनुष्य की भाँति शोक करना आपके लिए उचित नहीं। अनुभवी विदुर आदि मित्रों ने पहले आपको मना किया था कि आप पाण्डवों को न निकालिए; किन्तु आपने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। जो मनुष्य हितैषियों की बातों पर ध्यान नहीं देता उसे आपकी ही तरह विपत्ति में फँसकर व्याकुल होना पड़ता है॥४७।४९॥ पहले भी महात्मा वासुदेव सन्धि कराने के निमित्त आपके समीप प्रार्थना करने आये थे; किन्तु आपने उनकी वह प्रार्थना नहीं पूर्ण की। उन्होंने जब देखा कि आप निकम्मे हैं, पुत्रों का पक्ष लेते हैं, धर्म पर विचार न करके दुरङ्गी बातें करते हैं और पाण्डवों के प्रति द्वेष तथा धकमात्र आपके हृदय में है, तभी निराश होकर उन्होंने कौरवों को भस्म करनेवाली समर की अग्नि जलाई है॥५०।५३॥ हे महाराज! आपके दोष से ही यह युद्ध छिड़ा है, जिसमें असंख्य प्राणियों का संहार हो रहा है। अब इसके लिए दुर्योधन को दोषी ठहराना उचित नहीं है। पहले, मध्य में या अन्त में कभी आपका कोई सत्कार्य नहीं देख पड़ता। वास्तव में देखा जाय तो आप ही इस घोर पराजय के मूल कारण हैं। इसलिए इस समय स्थिर होकर, इस लोक की अनित्यता का विचार करके, इस देवासुर युद्ध के समान अत्यन्त घोर युद्ध का वृत्तान्त ब्योरेवार सुनिए ॥५४।५६॥ सत्यपराक्रमी सात्यकि जब सेना के भीतर प्रवेश हो गये तब भीमसेन को आगे किये हुए पाण्डव

आगच्छतस्तान्सहसा क्रुद्धरूपान्सहानुगान् ।
दधारैको रणे पाण्डून्कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥
यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाऽतिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥
ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥
सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३ ॥
विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ ६४ ॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।
कृतवर्मा ततो राजन्सर्वतस्तान्महारथान् ॥ ६५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं चाऽस्य तदा रथाद्भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥

लोग भी आपकी सेना के अग्र भाग में प्रवेश होने लगे। उस समय महारथी कृतवर्मा अकेले ही क्रोधपूर्ण अनुचरों समेत पाण्डवों को, एकाएक आते देखकर, रोकने लगे। जैसे तटभूमि उमड़े हुए समुद्र को रोक रखती है वैसे ही महावीर कृतवर्मा ने पाण्डव-सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। पाण्डवदल मिलकर भी उन्हें निवारण नहीं कर सका। कृतवर्मा का यह पराक्रम देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥५७।६०॥इसी मध्य में भीमसेन ने कृतवर्मा को तीन बाणों से घायल करके पाण्डवों को प्रसन्न करनेवाला शङ्ख बजाया। तब सहदेव ने बीस, युधिष्ठिर ने पाँच, नकुल ने सौ, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने तिहत्तर, घटोत्कच ने सात और धृष्टद्युम्न ने तीन बाण मारकर एक साथ कृतवर्मा को पीड़ित किया। इसके पश्चात् राजा द्रुपद और विराट ने कृतवर्मा को पाँच-पाँच बाण मारे। शिखण्डी ने पहले पाँच बाण मारकर फिर हँसते हँसते बीस बाण और मारे॥६१।६५॥महावीर कृतवर्मा ने प्रत्येक को पाँच पाँच बाण मारकर भीमसेन को सात बाण मारे और उनका धनुष तथा ध्वजा काट डाली। फिर उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर शीघ्रता के साथ भीमसेन की छाती में तीक्ष्ण सत्तर बाण मारे। धनुष कट जाने के कारण भीमसेन कुछ नहीं कर सके। कृतवर्मा के बाण लगने से महावीर भीमसेन भूकम्प के समय भारी पर्वत के समान काँप उठे॥६५।६८॥

स गाढविद्धो बलवान्हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ ६८ ॥
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान्राजन्कृतवर्माणमार्दयन् ॥ ६९ ॥
तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ ७० ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ ७१ ॥
चिक्षेप च रथात्तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ॥ ७२ ॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।
तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ ७३ ॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा ।
सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४ ॥
द्योतयन्ती दिशो राजन्महोल्केव नभश्च्युता ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ ७५ ॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ ७६ ॥
अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ७७ ॥
भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ ७८ ॥

युधिष्ठिर आदि सब वीर योद्धा लोग भीमसेन की वह दशा देखकर, उनकी रक्षा के निमित्त, रथों द्वारा चारों ओर से कृतवर्मा को घेरकर तीक्ष्ण बाणोंसे पीड़ित करने लगे। उधर महापराक्रमी भीमसेन ने सावधान होकर, सुवर्णदण्ड-शोभित लोहे की बनी शक्ति उठाकर, उसी समय कृतवर्मा के रथ के ऊपर फेंकी॥६९।७१॥केंचुल से निकले हुए सर्पके समान भयानक वह भीम की भुजाओं से छूटी हुई उग्र शक्ति कृतवर्मा के आगे प्रज्वलित हो उठी। महावीर कृतवर्मा ने दो बाणों से उस प्रलय-काल की अग्नि के समान, सुवर्णभूषित, शक्ति के दो टुकड़े कर दिये। उस समय कृतवर्मा के बाणों से कटी हुई वह शक्ति आकाशमण्डल से गिरी हुई उल्का के समान चारों ओर प्रकाश फैलाती हुई गिर पड़ी ॥७२।७५॥अपनी शक्ति को निष्फल होते देखकर पराक्रमी भीमसेन बहुत ही कुपित हो उठे। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्मा को रोकने के निमित्त उनकी छाती में पाँच बाण मारे॥७५।७७॥भीमसेन के बाणों से भोजराज कृतवर्मा के अङ्ग कट-फट गये

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान्सर्वान्प्रत्यविध्यत ॥ ७९ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान्महारथान् ।
तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ ८० ॥
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥ ८१ ॥
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं भास्वरम् ॥ ८२ ॥
भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३ ॥
स तस्य सशरं चापं छित्त्वा राजन्महानसिः ।
अभ्यगाद्धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ८४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ८५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद्धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ८६ ॥
विव्याध पाण्डवान्युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ८७ ॥
धनुरन्यत्समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।
अजघ्नत्कूर्मनखैराशु गौर्हार्दिक्यमजम् ॥ ८८ ॥

और रक्त बहने लगा, जिससे वे लाल अशोक के फूल के समान शोभायमान हुए । क्रोध के मारे विकट हँसी हँसकर कृतवर्मा फिर युद्ध करने लगे। उन्होंने भीमसेन को तीन बाणों से घायल किया । साथ ही, रोकने के निमित्त चेष्टा करनेवाले,अन्य महारथियों को भी तीन-तीन बाण मारे । उन्होंने भी कृतवर्मा को सात-सात बाण मारे॥७८।८०॥महावीर कृतवर्मा ने क्रोध और अवज्ञा की हँसी हँसकर एक क्षुरप्र बाण से शिखण्डी का धनुष काट डाला। महावीर शिखण्डी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर खड्ग और सुवर्णालङ्कृत प्रकाशमान ढाल हाथ में ली । उन्होंने ढाल घुमाते हुए आगे बढ़कर कृतवर्मा के रथ पर खड्ग का वार किया। यह भयानक खड्ग लगने से कृतवर्मा का धनुष और बाण दोनों कट गये । आकाश से गिरे हुए तारे के समान वह खड्ग पृथ्वी पर गिर पड़ा॥८१।८४॥इसी अवसर में सब महारथी लोग तीक्ष्ण बाणों से कृतवर्मा पर गहरे वार करने लगे । महावीर कृतवर्मा ने यह कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष हाथ में लिया। उन्होंने तीन-तीन बाणों से पाण्डवों को और आठ बाणों से शिखण्डी को पीड़ित किया॥८५।८७॥महावीर शिखण्डी भी कृतवर्मा के बाणों से घायल होकर अत्यन्त कुपित हो उठे और उसी क्षण दूसरा धनुष लेकर कूर्म-नख बाणों के प्रहार से कृतवर्मा को पीड़ित करने लगे। यह देखकर वे अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए। बाघ

ततः क्रुद्धो रणे राजन्हार्दिक्यस्याऽऽत्मसम्भवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन्मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन्बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९० ॥
तौ दिशां गजसङ्काशौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिन्दमौ ॥ ९१ ॥
विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे सन्दधानौ च सायकान् ।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्करौ ॥ ९२ ॥
तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ९३ ॥
कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम् ।
विध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ९४ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ॥ ९५ ॥
तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ ९६ ॥
शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम् ।
अपोवाह रणाद्यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ९७ ॥
सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम् ।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८ ॥
तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान्वारयामास सानुगान् ॥ ९९ ॥

जैसे हाथी पर झपटता है वैसे ही कृतवर्मा भी महात्मा भीष्म को गिरानेवाले महावीर शिखण्डी के प्रति बल दिखाते हुए वेग से दौड़े । दिग्गज-सदृश और प्रज्व-लित अग्नितुल्य वे दोनों वीर एक दूसरे के ऊपर अनन्त बाण बरसाने लगे॥८८।९१॥वे कभी धनुष बजाते,कभी बाण चढ़ाते और कभी सूर्यकिरण-सदृश असंख्य बाण चलाते थे । प्रलयकाल में प्रकट प्रचण्ड सूर्य के समान वे दोनों वीर इस प्रकार एक दूसरे को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे । महावीर कृतवर्मा ने महाबाहु शिखण्डी को पहले तिहत्तर और फिर सात बाण मारे । कृतवर्मा के बाणों की चोट से शिखण्डी बहुत ही व्यथित हुए । उनके हाथ से धनुष-बाण छूट पड़ा और वे अचेत से होकर रथ पर बैठ गये । उनको इस प्रकार पीड़ित देखकर कौरवपक्ष के वीर कृतवर्मा की प्रशंसा करने और वस्त्र हिलाकर आनन्द प्रकट करने लगे॥९२।९६॥शिखण्डी का सारथी अपने स्वामी की अवस्था बुरी देखकर उसी क्षण समरभूमि से रथ को हटा ले गया । हे राजेन्द्र ! पाण्डवों ने शिखण्डी

पार्थाञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्पञ्चालान्सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान्कृतवर्मा महारथः ॥ १०० ॥
ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ १०१ ॥
जित्वा पाण्डुसुतान्युद्धे भीमसेनपुरोगमान् ।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद्विधूम इव पावकः ॥ १०२ ॥
ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥ १०३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

को अत्यन्त पीड़ित और शिथिल देखकर बड़ी स्फूर्ति के साथ अनके रथों के द्वारा चारों ओर से कृतवर्मा को घेर लिया। महावीर कृतवर्मा अकेले होने पर भी अद्भुत बल प्रकट करके पाण्डवों को और उनके साथी योद्धाओं को रोकने लगे॥९७।९९॥इसके पश्चात् उन्हें हराकर चेदि, पाञ्चाल, सृञ्जय और केकयदेश के वीरों को जीत लिया। पाण्डवपक्ष के लोग कृतवर्मा के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगे; वे किसी प्रकार जमकर संग्राम न कर सके। भीमसेन आदि पाण्डवों और पाञ्चालों को परास्त करके महावीर कृतवर्मा धूमहीन प्रचण्ड अग्नि के समान शोभायमान हुए। हे महाराज! इस प्रकार कृतवर्मा के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर पाण्डव-पक्ष के वीर युद्ध छोड़कर इधर-उधर भागने लगे॥१००।१०३॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौदह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११४ ॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

सञ्जय उवाच—शृणुष्वैकमना राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन्हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥
लज्जयाऽवनते चापि प्रहृष्टैश्चाऽपि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत्पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥
श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन्कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४ ॥

एक सौ पन्द्रह अध्याय ॥ ११५ ॥

सञ्जय कहते हैं— हे महाराज! आपने जो सब वृत्तान्त मुझसे पूछा था उसे आप एकाग्र होकर सुनिए। पाण्डवों की सेना जब यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा के बाणों से पीड़ित होकर भाग खड़ी हुई और लज्जा के मारे वीरों के सिर झुक गये तब कौरवों को असीम आनन्द प्राप्त हुआ। अगाध सैन्यसागर में आश्रय पाने के निमित्त लालायित पाण्डवों का, टापू की भाँति, उबारनेवाले महाबाहु सात्यकि ने कौरवों का भयङ्कर सिंहनाद सुनकर उसी समय कृतवर्मा पर आक्रमण किया॥१।३॥ सात्यकि ने क्रुद्ध होकर सारथी से कहा—हे सूत! मेरे रथ को कृतवर्मा के समीप ले चलो। यह क्रोध करके पाण्डवों की सेना का संहार कर रहा है। उसे

कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्पितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥ ५ ॥
एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत्सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्ध्यत्स सात्यकिः ॥ ७ ॥
अथाऽऽशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८ ॥
ते तस्य जघ्निरे वाहान्भल्लेनाऽस्याऽच्छिनद्धनुः ।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥
ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्यार्दयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १० ॥
अभज्यताऽथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात्स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ११ ॥
शृणु राजन्यदकरोत्तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ १२ ॥
पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा तु तव तत्सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत्सारथिं पुनः ॥ १४ ॥
यदेतन्मेघसङ्काशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत्कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १५ ॥

जीतकर फिर अर्जुन के समीप चलेंगे। अब सारथी क्षण भर में ही रथ को कृतवर्मा के समीप ले गया॥४।६॥महारथी कृतवर्मा भी सात्यकि के ऊपर असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर चार बाणों से उनके चारों घोड़े मार डाले, एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से धनुष काट डाला और उनके पृष्ठरक्षक तथा सारथी आदि को अनेक बाण मारे। महावीर सात्यकि ने कृतवर्मा को रथ-हीन करके तीक्ष्ण बाणों से उनकी सेना को नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ कर दिया॥७।१०॥सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर कृतवर्मा के सैनिक तितर-बितर होने लगे। महापराक्रमी सात्यकि अब वहाँ से चल दिये। हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् महावीर सात्यकि ने जो कुछ किया, सो सब आपसे कहता हूँ, सुनिए। ये द्रोणाचार्य की सेना को लाँघकर और कृतवर्मा को परास्त करके प्रसन्नतापूर्वक अपने सारथी से बोले—हे सूत! तुम निर्भय होकर धीरे-धीरे रथ हाँको॥११।१३॥अब महाबाहु सात्यकि ने असंख्य रथ, हाथी, घोड़े, पैदल आदि

एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६ ॥
राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
त्रिगर्त्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥
मामेवाऽभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८ ॥
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥ १९ ॥
रथेनाऽऽदित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।
तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥ २० ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।
आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान्सायकाँल्लघुवेधिनः ॥ २२ ॥
सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥
वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन्रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥
शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥

से परिपूर्ण कौरवों की चतुरङ्गिणी सेना की ओर देखकर कहा—हे सारथी ! यह जो आचार्य की सेना के बाँये भाग में सुवर्णमय ध्वजाओं से भूषित महामेघतुल्य हाथियों पर सवार योधाओं की सेना दिखाई पड़ रही है, उसमें त्रिगर्तदेश के राजपुत्र महापराक्रमी विचित्र वीर योद्धा और महारथी लोग हैं। उन्हें हराना कोई सहज काम नहीं है । ये लोग अपने प्रधान रुक्मरथ को आगे करके, दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, मुझसे प्राणपण से युद्ध करने को खड़े हुए हैं। इसलिए तुम तुरन्त ही उनके आगे मेरा रथ ले चलो। मैं द्रोणाचार्य के सम्मुख ही उन लोगों से युद्ध करूँगा ॥१४।१९॥अब सारथी ने सात्यकि की आज्ञा से धीरे-धीरे घोड़ों को उसी ओर हाँका । कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा और चाँदी के समान श्वेत,वायुवेगगामी, सारथी के वशवर्ती, हिनहिना रहे वे घोड़े सात्यकि के रथ को ले चले । उस चमकीले रथ पर पताका फहरा रही थी । उस समय शत्रुपक्ष के फुर्तीले, लघुवेधी, महारथी योद्धा उन्हें आते देखकर अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए आगे बढ़े। उन्होंने हाथियों के घेरे में सात्यकि को घेर लिया॥१९।२२॥वर्षा ऋतु आने पर प्रचण्ड मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसाते हैं वैसे ही महापराक्रमी सात्यकि उस गज सेना पर बाण बरसाने लगे। सात्यकि के चलाये हुए,वज्र के समान स्पर्शवाले, बाणों की चोट से पीड़ित होकर वे हाथी

सम्भिन्नवर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन्भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥
रुवन्तो विविधान्नादाञ्जलदोपमनिःस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक्तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥
बभ्रमुश्चस्खलुश्चाऽन्ये पेतुर्मम्लुस्तथाऽपरे ।
एवं तत्कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥ २९ ॥
शरैरग्न्यर्कसङ्काशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।
तस्मिन्हते गजानीके जलसन्धो महाबलः ॥ ३० ॥
यतः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।
रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥ ३१ ॥
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः ।
शिरसा धारयन्दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥
उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।
चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन्गाजमूर्धनि ॥ ३३ ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।
तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ।
नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥ ३५ ॥

रणभूमि में इधर उधर भागने लगे। किसी के दाँत टूट गये, किसी का मस्तक फट गया और उनके शरीर रक्त से नहा गये। किसी के कान कट गये, किसी की सूँड़ कट गई, किसी का महावत मारा गया, किसी की पताकाएँ कटकर गिर पड़ीं, किसी का चमड़ा छिन्न भिन्न हो गया, किसी का घण्टा चूर्ण हो गया, किसी के ऊपर की ध्वजा का डण्डा टुकड़े-टुकड़े हो गया, किसी के ऊपर का योद्धा मर गया और किसी के हौदे से बहु मूल्य कम्बल गिर पड़ा॥२३।२५॥इस प्रकार मेघ की भाँति गरजनेवाले हाथियों के झुण्ड सात्यकि के नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र और अर्धचन्द्र आदि अनेक बाणों से नष्ट होने लगे। उनके शरीर फटने-फटने लगे और वे आर्तस्वर से चिल्लाने, मल मूत्र त्यागने और व्याकुल हो-होकर चारों ओर भागने लगे। उनके शरीरों से रक्त के फुहारे छूट रहे थे। उनमें से कुछ इधर-उधर घूमने लगे, कुछ लड़खड़ाकर गिर पड़े, कुछ बाणों की चोट से विह्वल होकर गिर पड़े और कुछ अधमरे से हो गये॥२६।३०॥हे राजेन्द्र! उस गज-सेना के इस प्रकार नष्ट होने पर महाबलशाली राजा जलसन्ध बड़े यत्न से आगे बढ़कर सात्यकि के सम्मुख अपना हाथी ले आये। वे सुवर्ण के वर्णाभरण और सुवर्णमणिमय अङ्गद आदि आभूषण पहने हुए थे। किरीट तथा कुण्डल आदि पहने, लाल चन्दन लगाये वे महावीर मस्तक में सुवर्ण की माला और वक्ष-

अक्रुध्यत रणे राजञ्जलसन्धो महाबलः ।
ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि ।
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त्त शरासनम् ।
सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसन्धेन वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
नाऽकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
अचिन्तयन्वै स शरान्नाऽत्यर्थं सम्भ्रमाद्बली ॥ ४० ॥
धनुरन्यत्समादाय तिष्ठतिष्ठेत्युवाच ह ।
एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥ ४१ ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ ४२ ॥
जलसन्धस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।
जलसन्धस्तु तत्त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥
अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।
निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥

स्थल में निष्क तथा कण्ठसूत्र आदि आभूषण धारण किये हुए थे और हाथी पर सवार थे। उस समय महाधनुष बजाते हुए राजा जलसन्ध बिजली से युक्त मेघ के समान शोभायमान होने लगे॥३०।३४॥उनके गजराज को एकाएक अपनी ओर आते देखकर सात्यकि ने शीघ्र ही उस हाथीको इस प्रकार रोका जैसे तटभूमि उमड़े हुए समुद्र को रोकती है। महावीर जलसन्ध ने सात्यकि को बाण-वर्षा से विह्वल हाथी को भागते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो तीक्ष्ण बाणों से उनको घायल करना आरम्भ किया। सात्यकि के वक्षःस्थल में कई बाण मारकर हँसते-हँसते उन्होंने एक भल्ल बाण से सात्यकि का धनुष काट डाला और पाँच बाण फिर मारे॥३४। ३८॥जलसन्ध के बाण लगने से सात्यकि तनिक भी विचलित नहीं हुए। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। महावीर सात्यकि ने स्थिरचित्त से यह सोचा कि कौन और कैसा बाण जलसन्ध पर छोड़ना चाहिए। अपना कर्तव्य निश्चित करके अन्य धनुष लेकर "ठहर जा, ठहर जा!" कहते और हँसते हुए सात्यकि ने जलसन्ध की छाती में साठ बाण मारे, एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उनके धनुष की मूठ काट डाली और फिर तीन बाण उनको ताककर मारे॥३८।४३॥महावीर जलसन्ध ने धनुष-बाण छोड़कर उस घड़ी सात्यकि के ऊपर एक तीक्ष्ण तोमर फेंका। जलसन्ध का चलाया हुआ वह तोमर सात्यकि के बायें बाहु को भेदकर

त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् ।
प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महाबलः ॥ ४६ ॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥
शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥
अथान्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह ।
ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥ ५० ॥
सात्यकिर्जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।
तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥
वसुन्धराधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।
तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥
द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ।
जलसन्धं निहत्याऽऽजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥ ५४ ॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद्विशाम्पते ।
रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसन्धस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥
विलम्बमानमवहत्संश्लिष्टं परमासनम् ।
शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥

फुफकारते हुए नाग के समान पृथ्वी में प्रवेश हो गया। इस प्रकार उनके प्रहार से हाथ घायल होने पर भी सात्यकि विचलित नहीं हुए। उन्होंने जलसन्ध को सात बाण मारे। अब खड्ग और शतचन्द्रशोभित वृषचर्म की ढाल घुमाते हुए महाप्रतापी जलसन्ध झपटे। उन्होंने वह खड्ग सात्यकि पर चलाया। उस खड्ग के प्रहार से सात्यकि का धनुष कट गया और वह खड्ग भी पृथ्वी पर गिरकर अङ्गारचक्र के समान शोभा को प्राप्त हुआ। यह देखकर महाबली सात्यकि के क्रोध का कोई ठिकाना नहीं रहा॥४३—४८॥ उन्होंने तुरन्त साखू की शाखा के समान बड़ा और वज्र की भाँति घोर शब्द करनेवाला दूसरा धनुष लेकर जलसन्ध को बाण मारा और हँसते-हँसते दो तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणों से उनके दोनों हाथ काट डाले। जलसन्ध के, बेलन के समान मोटे, दोनों हाथ पर्वत से गिरे हुए पाँच-पाँच सिरोंवाले दो विषैले नागों की भाँति हाथी की पीठ पर से नीचे गिर पड़े॥४९—५२॥ इसके पश्चात् पराक्रमी सात्यकि ने अन्य क्षुरप्र बाण

घोरमार्त्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥
जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।
विमुखाश्चाऽभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५९ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।
तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥ ६० ॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन्घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसन्धवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥

से जलसन्ध का कुण्डल-भूषित और मनोहर दन्त-पंक्ति से शोभित सिर काट डाला। जलसन्ध के कबन्ध की रक्तधाराओं से हाथी नहा गया। रक्त से तर और घायल वह हाथी सात्यकि के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर आर्तनाद करता हुआ, लटके हुए हौदे को लिये, अपनी ही सेना को रौंदता हुआ भागा॥५२।५७॥ हे राजेन्द्र ! यह देखकर आपकी सेना में हाहाकार मच गया। महावीर जलसन्ध की मृत्यु देखकर योद्धा लोग जयलाभ से निरुत्साह और युद्ध से विमुख होकर इधर-उधर भागने लगे। इसी समय महारथी द्रोणाचार्य ने बड़े वेग से रथ हाँककर सात्यकि का सामना किया। कौरव लोग भी सात्यकि को प्रचण्ड रूप से आक्रमण करते देखकर क्रोधपूर्वक आचार्य के साथ उन पर आक्रमण करने को चले। तब महात्मा द्रोणाचार्य और कौरवों के साथ सात्यकि का अत्यन्त घोर संग्राम होने लगा॥५७।६१॥

द्रोणपर्व का एक सौ पन्द्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११५ ॥

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच—ते किरन्तः शरव्रातान्सर्वे यत्ताः प्रहारिणः ।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥
तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः ।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥ २ ॥
विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः ।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥ ३ ॥

एक सौ सोलह अध्याय ॥ ११६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! युद्धनिपुण वीरगण इस प्रकार समर में प्रवृत्त होकर सात्यकि पर बाण बरसाने लगे। अब महापराक्रमी द्रोणाचार्य ने सतहत्तर, दुर्मर्षण ने बारह, दुःसह ने दस, विकर्ण ने तीस, दुर्मुख ने दस, दुःशासन ने आठ और चित्रसेन ने दो बाण एक साथ ही सात्यकि के बायें पार्श्व और

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः ।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥ ४ ॥
दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ।
अपीडयद्रणे राजञ्शूराश्चाऽन्ये महारथाः ॥ ५ ॥
सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः ।
तान्प्रत्यविध्यद्वार्ष्णेयः पृथक्पृथगजिह्मगैः ॥ ६ ॥
भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः ।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥ ७ ॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम् ।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥
ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः ।
अभ्ययात्सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥
राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम् ।
शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥ १० ॥
विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्सन्दधानौ च सायकान् ।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११ ॥
सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत ।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥
सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥
माधवस्तु रणे राजन्कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥

छाती में मारे। दुर्योधन और अन्य अनेक वीर सात्यकि को असंख्य बाण मारने लगे॥१।५॥महाबली सात्यकि उन वीरों के बाणों से घायल होकर भी हटे नहीं। उन्होंने द्रोणाचार्य को तीन, दुःसह को नव, विकर्ण को पचीस, चित्रसेन को सात, दुर्मर्षण को बारह, विविंशति को आठ, सत्यव्रत को नव और विजय को दस बाण मारे॥६।८॥अब रुक्माङ्गद धनुष को बजाते हुए सात्यकि शीघ्र ही आपके पुत्र राजा दुर्योधन के सम्मुख पहुँचे और असंख्य बाण मारकर उनको पीड़ित करने लगे। उस समय उन दोनों वीरों में घोर संग्राम होने लगा। तीक्ष्ण बाण बरसाकर उन्होंने एक दूसरे को अदृश्य कर दिया॥९।११॥दुर्योधन के बाणों से घायल सात्यकि का शरीर रक्त से भीग गया। उस समय वे लाल चन्दन के उस वृक्ष के समान जान पड़ने लगे जिससे रस बह रहा हो॥राजा दुर्योधन भी सात्यकि के बाणों से घायल होकर सुवर्णमय शिरोभूषण-भूषित ऊँचे यज्ञयूप के समान शोभायमान हुए॥१२।१३॥ तब महापराक्रमी सात्यकि ने सहज ही एक क्षुरप्र बाण

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत् ।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥ १५ ॥
नाऽमृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह ।
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत् ।
पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥
सात्यकिं शरवर्षेण च्छादयामासुरोजसा ।
स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥ १९ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाऽष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥
प्रहसंश्चाऽस्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१ ॥
हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥
स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत्सहसा राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥

[सात्यकि ने] राजा दुर्योधन का धनुष काटकर उन्हें असंख्य बाणों से ढक दिया। शत्रु के बाणों से राजा दुर्योधन अत्यन्त पीड़ित हो उठे और उनके विजय के लक्षण को न सह सके। सुवर्णमण्डित पीठवाला दूसरा धनुष लेकर दुर्योधन ने सात्यकि को सौ बाण मारे॥१४।१७॥ महायशी सात्यकि भी दुर्योधन के बाण-प्रहार से अत्यन्त व्यथित और क्रुद्ध होकर उनको बड़े जोर से बाण मारने लगे। आपके अन्य पुत्रों ने राजा दुर्योधन को पीड़ित और सङ्कट में पड़े देखकर सात्यकि पर इतने बाण बरसाये कि वे छिप से गये। इस प्रकार अपने को बाण-जाल में देखकर महावीर सात्यकि ने [पहले तो उन बाणों को काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया और फिर] उनमें से प्रत्येक को क्रमशः पाँच-पाँच और सात-सात बाण मारे। उन्होंने हँसते हँसते स्फूर्ति के साथ वेग से जानेवाले तीक्ष्ण आठ बाणों से राजा दुर्योधन को विह्वल करके उनका धनुष और मणि-मुक्तामण्डित नागचिह्नयुक्त बड़ी ध्वजा काट डाली॥१७।२१॥ फिर अन्य चार तीक्ष्ण बाणों से राजा के रथ के चारों घोड़े मार डाले, एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से सारथी को मार गिराया और अनेक मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणों से उनके भारी रथ को ढक दिया। इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधन, सात्यकि के बाणों से पीड़ित और विह्वल होकर युद्ध छोड़कर भाग गये हुए। उन्होंने धनुर्धर चित्रसेन के रथ में जाकर आश्रय लिया।

आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ।
हाहाभूतं जगच्चाऽऽसीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा ।
तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६ ॥
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्राऽऽस्ते माधवः प्रभुः ।
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥
भर्त्सयन्सारथिं चाऽग्रे याहि याहीति सत्वरम् ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥ २८ ॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ।
कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।
ततः प्रजविताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ॥ ३० ॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।
ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।
कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३२ ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चाऽस्य पञ्चभिः ।
चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥
अविध्यत्साधुदान्तान्वै सैन्धवान्सात्वतस्य हि ।
रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४ ॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।
ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान्कृतवर्मणे ॥ ३५ ॥

सात्यकि के बाणों के मारे सब लोग प्राण सङ्कट में पड़ गये और छिपे हुए राजा दुर्योधन को राहुग्रस्त चन्द्रमा के समान देखकर हाहाकार करने लगे॥२२।२६॥उस हाहाकार को सुनकर महारथी कृतवर्मा भी धनुष कँपाते हुए शीघ्रता के साथ रथ हाँकने के लिए, तिरस्कारपूर्वक, सारथी से ऐसा कहने लगे—हे सूत! बहुत शीघ्र रथ हाँको, आगे बढ़ो। कृतवर्मा को मुख फैलाये हुए यमराज के समान आते देखकर महारथी सात्यकि ने सारथी से कहा—हे सारथी! वह देखो, रथ पर सवार कृतवर्मा अस्त्र शस्त्र लिये युद्ध करने आ रहे हैं; तुम शीघ्र ही इनके सम्मुख मेरा रथ ले चलो। सारथी ने उसी क्षण सात्यकि की आज्ञा के अनुसार, सुसज्जित घोड़ों को हाँककर, कृतवर्मा के सम्मुख रथ पहुँचा दिया॥२६।३०॥प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी वे दोनों वीर दो विकट क्रुद्ध शार्दूलों की भाँति, आमने सामने आ गये। वीर कृतवर्मा ने सुवर्ण से मढ़ी हुई पीठवाला धनुष चढ़ाकर पहले सात्यकि को छब्बीस, उनके सारथी को पाँच और चारों घोड़ों को

प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याऽश्वान्सप्तभिः सारथिं तथा॥ ३७ ॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सुवर्णपुङ्खविशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥ ३८ ॥
व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।
सोऽविध्यत्कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३९ ॥
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥
सञ्जातरुधिरश्चाऽऽजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥
स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥
सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४३ ॥
खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्त्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवाऽऽसुरीं चमूम् ॥ ४५ ॥
समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चाऽन्यन्महद्धनुः ।
तस्थौ स तत्र बलवान्वारयन्युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ११६॥

चार बाण मारे। फिर वे सात्यकि पर सुवर्णपुङ्खयुक्त असंख्य बाण बरसाने लगे॥३०।३४॥ अर्जुन के समीप जाने की अभिलाषा से शीघ्रता करनेवाले यादवश्रेष्ठ सात्यकि ने, स्फूर्ति के साथ, कृतवर्मा को तीक्ष्ण अस्सी बाण मारे। पश्चात् शत्रु के बाणों की चोट से पीड़ित होकर महावीर कृतवर्मा भूकम्प के समय भारी पर्वत की भाँति, काँपने लगे। इसी अवसर में सत्यपराक्रमी सात्यकि ने उनके चारों घोड़ों को तिरसठ बाण और सारथी को सात बाण मारे। इसके पश्चात् उन्होंने क्रुद्ध विषैले सर्प के समान भयङ्कर सुवर्णपुङ्ख बाण कृतवर्मा को मारा। वह यमदण्ड-सदृश बाण कृतवर्मा के सुवर्णमय विचित्र कवच को काटकर, शरीर भेद-कर, रक्त से तर हो पृथ्वी में प्रवेश हो गया। उस भयानक बाण की चोट से महावीर कृतवर्मा अत्यन्त पीड़ित, रक्त से तर और अचेत होकर रथ से गिर पड़े। उनके हाथ से छूटकर धनुष और बाण गिरे

गिर पड़े॥३८।४२॥हे राजेन्द्र! अब इस प्रकार सत्य-पराक्रमी सात्यकि उन सहस्रबाहु अर्जुन के सदृश पराक्रमी और महासागर के समान अक्षोभ्य महारथी कृतवर्मा को परास्त करके फिर आगे बढ़े। इन्द्र जैसे असुरों की सेना को चीरकर निकल गये थे वैसे ही सात्यकि भी सब योद्धाओं के आगे ही उस खड्ग,शक्ति धनुष आदि शस्त्रों से अगम्य, हाथी घोड़े रथ आदि से परिपूर्ण और रक्त से तर कौरवसेना को लाँघकर आगे जाने लगे। इधर महाबली कृतवर्मा भी जब सावधान हुए तब वे और अन्य धनुष लेकर रणक्षेत्र में पाण्डवों को रोकने लगे॥४३।४६॥

—:o:—

द्रोणपर्व का एक सौ सोलह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११६ ॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच—काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥
ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥
तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥
ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥
तान्द्रोणचापनिर्मुक्तान्दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६ ॥
तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाऽविध्यत्त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥
पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

एक सौ सत्रह अध्याय ॥ ११७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस प्रकार जब सात्यकि ने आपकी सेना में भगदड़ मचा दी तब द्रोणाचार्य उनके ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। पहले राजा बलि के साथ इन्द्र का जैसा घोर समर हुआ था वैसे ही उस समय सब सैनिकों के सम्मुख सात्यकि और द्रोणाचार्य दारुण युद्ध करने लगे॥१।२॥महाबली द्रोण ने सात्यकि के मस्तक में विषैले सर्प के आकार के तीन लोहमय बाण मारे। वे तीनों बाण सात्यकि के मस्तक में लगे, जिनसे वे त्रिशृङ्ग (तीन शिखर-वाले) पर्वत के समान शोभा को प्राप्त हुए। इसी समय में अवसर पाकर द्रोणाचार्य उनके ऊपर बाण बरसाने लगे। उन बाणों की गति से वज्र का सा घोर शब्द होता था॥३।५॥श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता सात्यकि ने भी दो-दो बाणों से आचार्य के एक-एक बाण को काट डाला। महावीर द्रोणाचार्य ने सात्यकि की ऐसी स्फूर्त्ति देखकर हँसकर उनसे अधिक स्फूर्त्ति दिखाने

समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥
तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन्द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥
लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाऽभ्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाऽक्षिपत् ॥ १६ ॥
तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥

के निमित्त पहले तीस और फिर पचास तीक्ष्ण बाण उनके ऊपर छोड़े॥६।८॥क्रुद्ध सर्प जैसे बिल से निकलते हैं वैसे ही द्रोणाचार्य के रथ से,शरीर को छिन्न-भिन्न करनेवाले, बाण निकलते दिखाई पड़ रहे थे। उसी क्षण सात्यकि के चलाये हुए सैंकड़ों सहस्रों बाणों ने द्रोणाचार्य के रथ को ढक दिया । इस प्रकार वे दोनों योद्धा समान भाव से युद्ध करने लगे । द्रोणाचार्य और सात्यकि दोनों की स्फूर्ति और पराक्रम समान दिखाई दे रहा था । कोई किसी से कम न था ॥९।११॥फिर सात्यकि ने द्रोणाचार्य का सन्नतपर्व तीक्ष्ण नव बाणों से घायल करके उनकी ध्वजा में असंख्य बाण मारे और सौ बाणों के प्रहार से उनके सारथी को भी विह्वल कर दिया । महावीर द्रोण ने सात्यकि की स्फूर्ति देखकर उनके सारथी को सत्तर बाण मारकर घोड़ों को तीन तीन बाणों से पीड़ित किया और एक बाण से उनके रथ की ध्वजा काट डाली । फिर सुवर्णपुङ्खशोभित भल्ल बाण से उनका धनुष भी काटडाला॥१२।१५॥उस समय क्रोधसे अत्यन्त अधीर सात्यकि ने धनुष छोड़कर भारी गदा उठाई और आचार्य को ताककर फेंकी । आती हुई उस सुवर्णपत्र-भूषित लोहे की गदा को आचार्य ने बहुत से विचित्र तीक्ष्ण बाणों से व्यर्थ कर दिया। तब सात्यकि ने क्रुद्ध होकर दूसरा धनुष लेकर सान पर तेज किये गये बाणों से आचार्य को पीड़ित करके घोर सिंहनाद किया । शत्रु-

स विध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥
ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥
अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसन्निभा ।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन्भरतर्षभ ॥ २२ ॥
द्रोणोऽपि समरे राजन्माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥
मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥
चकार सात्यकी राजन्सूतकर्माऽतिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥
ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥
तस्य द्रोणः शरान्पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥
निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत्सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान्व्यसृजच्चाऽपि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥
ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान्व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥

धारियों में श्रेष्ठ आचार्य उस सिंहनाद को न सह सके। उन्होंने सुवर्णदण्ड मण्डित,लोहे की बनी,शक्ति उठाकर सात्यकि के रथ पर फेंकी॥१६।२०॥वह कालसदृश शक्ति सात्यकि के शरीर में तो नहीं छू गई, किन्तु उनके रथ को तोड़कर घोर शब्द करती हुई पृथ्वी में प्रवेश हो गई। महावीर सात्यकि ने भी आचार्य के दाहने हाथ में बाण मारा।आचार्य ने एक अर्धचन्द्र बाण से सात्यकि का धनुष काट डाला और रथशक्तिके प्रहारसे उनके सारथी को अचेत कर दिया। उस भयानक रथशक्ति के प्रहार से सारथी कुछ देर के लिए रथ पर अचेत हो गया ॥२१।२४॥उस समय सात्यकि ने अद्भुत कार्य किया। वे घोड़ों की रास भी सँभाले हुए थे और द्रोणाचार्य से युद्ध भी कर रहे थे। यह देखकर सब लोग आश्चर्य के साथ उनकी प्रशंसा करने लगे। सात्यकि ने उत्साह के साथ आचार्य को सौ बाण मारे। द्रोणाचार्य ने भी सात्यकि को भयङ्कर पाँच बाण मारे। वे बाण उनके कवच को तोड़कर शरीर में प्रवेश होकर रक्त पीने लगे॥२५।२७॥आचार्य के बाणों से अत्यन्त पीड़ित

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन्भ्राजमान इवांऽशुमान् ॥ ३० ॥
अभिद्रवत गृह्णीत हयान्द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
ते सात्यकिमपास्याऽऽशु राजन्युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥
तान्दृष्ट्वा प्रद्रुतान्संख्ये सात्वतेन शरार्दितान् ।
प्रभग्नं पुनरेवाऽऽसीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥
व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥
पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् ।
शैनेयेनाऽकरोद्यत्नं व्यूहमेवाऽभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥
निवार्य पाण्डुपञ्चालान्द्रोणाग्निः प्रदहन्निव ।
तस्थौ क्रोधेध्मसन्दीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

और क्रुद्ध होकर सात्यकि उनके ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे । सात्यकि ने एक बाण से आचार्य के सारथी को मार डाला और अन्य अनेक बाण मारकर उनके घोड़ों को पीड़ा पहुँचाई। सात्यकि के बाणों से पीड़ित वे घोड़े इधर-उधर मण्डलाकार गति से भागने लगे। सूर्य के समान प्रकाशमान आचार्य का रथ इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा॥२८।३०॥यह देखकर कौरवपक्ष के सब राजा और राजपुत्र यह कहकर चिल्लाने लगे कि "दौड़ो दौड़ो, आचार्य के घोड़ों को पकड़ो—सँभालो ।" वे महारथी लोग रण में सात्यकि को छोड़कर तुरन्त ही द्रोणाचार्य के समीप दौड़े गये। सात्यकि के बाणों से पीड़ित महावीरों को इस प्रकार भागते देखकर सब सेना भयभीत हो गई और प्राण लेकर चारों ओर भाग खड़ी हुई॥३१।३३॥सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर आचार्य के घोड़े वायु के समान वेग से उनके रथ को फिर व्यूह के द्वार पर ले गये । पाण्डवों और पाञ्चालों के प्रयत्न से व्यूह को टूटते देखकर पराक्रमी द्रोण व्यूह की ही रक्षा करने लगे; उन्होंने सात्यकि को रोकने की चेष्टा छोड़ दी । पाण्डवों और पाञ्चालों को भगाकर क्रोधरूपी ईंधन से प्रज्वलित अग्निरूप द्रोणाचार्य, मानों भस्म कर देंगे इस प्रकार, व्यूह के द्वार पर विराजमान हुए। उस समय वे कालसूर्य के समान प्रचण्ड हो उठे॥३४।३६॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ सत्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११७ ॥

अथ अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच—द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीरस्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् ।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १ ॥
निमित्तमात्रं वयमद्य सूत दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम् ।
हतान्निहन्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन्समन्तात्सहसा शरान्बली समापतच्छ्येन इवाऽऽमिषं यथा ॥ ३ ॥
तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४ ॥
असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥
अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥
तयोरभूद्भारत सम्प्रहारः सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन् ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवाऽमरौघाः ॥ ७ ॥
शरैःसुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ ।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥
तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः सुदर्शने यान्क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत्सुदर्शनः शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥
तान्वीक्ष्य बाणान्निहतांस्तदानीं सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥

एक सौ अठारह अध्याय ॥ ११८ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि ने द्रोणाचार्य और कृतवर्मा आदि महारथियों को जीतकर हँसते-हँसते अपने सारथी से कहा—हे सूत! महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन पहले ही इन महारथियों और रथियों को प्राणहीन कर गये हैं । हम सब लोग तो इनके मारने में कारणमात्र हैं । अर्जुन के द्वारा पहले ही मारे गये इन योद्धाओं को मारने में हमारी विशेष प्रशंसा नहीं है॥१।२॥शत्रुनाशन सात्यकि अब बाण बरसाते हुए, मांसलोभी श्येन पक्षी की भाँति, समरभूमि में विचरने लगे । उन इन्द्र के तुल्य प्रभावशाली, असह्य पराक्रमी, उत्साही, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि को चन्द्र और शङ्ख के सदृश श्वेत घोड़ों से शोभित रथ पर चढ़कर शरदऋतु के प्रचण्ड सूर्य की भाँति युद्धस्थल में भ्रमण करते देखकर आपके पक्ष के वीर और दल मिलकर भी रोक नहीं सके॥३।५॥तब विचित्रयुद्ध-निपुण, आमर्षपूर्ण, सुवर्ण का कवच पहने हुए, धनुष धारण किये हुए, राजा सुदर्शन सात्यकि को रोकने के लिए उनके सम्मुख आये । उस समय उन दोनों महावीरों का घोर संग्राम होने लगा । पहले देवताओं ने इन्द्र और वृत्रासुर के रण की जैसे प्रशंसा की थी वैसे ही सात्यकि और सुदर्शनका युद्ध देखकर कौरवपक्ष के योद्धा और सोमकगण बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगे । अब महावीर सुदर्शन बार-बार सात्यकि को अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारने लगे । वे बाण सात्यकि के शरीर में लगने भी नहीं पाये; सात्यकि ने उन्हें मध्य में ही काट डाला ॥६।८॥उधर इन्द्र-सदृश प्रभावशाली सात्यकि ने सुद-

तथैव तस्याऽवनिपालपुत्रः सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशांश्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥
तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णैर्हयान्निहत्याऽऽशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥
अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन ।
सुदर्शनस्याऽपि शिनिप्रवीरः क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४ ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥
निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन्सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥
ततो ययावर्जुन एव येन निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥
तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यमपूजयन्योधवराः समेताः ।
प्रवर्त्तमानानिषुगोचरेऽरीन्ददाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥ १८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

र्शन के ऊपर जितने बाण छोड़े उन्हें महावीर सुदर्शन ने श्रेष्ठ बाणों से काट डाला । सात्यकि के बाणों से अपने बाणों को निष्फल होते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो महावीर सुदर्शन उनके ऊपर सुवर्ण शोभित विचित्र बाण बरसाने लगे । सुदर्शन ने कानों तक धनुष की डोरी खींचकर फिर उनको अग्नि-सदृश तीन बाण मारे। सुदर्शन के बाण सात्यकि के कवच को तोड़कर शरीर के भीतर प्रवेश हो गये॥९।११॥सुदर्शन ने और अग्नि सदृश प्रज्वलित चार बाण सात्यकि के घोड़ों को मारे। पराक्रमी सात्यकि ने तीक्ष्ण बाणों से सुदर्शन के घोड़ों को मार डाला और घोर सिंहनाद किया । फिर इन्द्र के वज्र के समान भयानक भल्ल बाण से सुदर्शन के सारथी का सिर काट डाला और साथ ही एक कालाग्नि-सदृश क्षुरप्र बाण से सुदर्शन का कुण्डल शोभित पूर्ण-चन्द्र-सदृश मस्तक काटकर गिरा दिया । पहले समय में वज्रपाणि इन्द्र जैसे महाबली बलनामक दानव का सिर काटकर सुशोभित हुए थे, वैसे ही सात्यकि भी सुदर्शन का सिर काटकर शोभायमान हुए॥१२।१५॥ उत्तम घोड़ों से युक्त रथपर बैठे हुए परम प्रसन्न सात्यकि बाण-वर्षा से कौरव सेना को परास्त और अपने अद्भुत कार्य से लोगों को विस्मित करते हुए अर्जुन की ओर चले । वे बाणों के सम्मुख पड़नेवाले शत्रुओं को अग्नि की भाँति भस्म करते चले जा रहे थे । रणभूमि में एकत्र सब योद्धा लोग सात्यकि के उन आश्चर्यजनक श्रेष्ठ कर्मों की प्रशंसा करने लगे॥१६।१८॥

—o—

द्रोणपर्व का एक सौ अठारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११८ ॥

अथ एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

सञ्जय उवाच ततः स सात्यकिर्धीमान्महात्मा वृष्णिपुङ्गवः ।
सुदर्शनं निहत्याऽऽजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम् ।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम् ।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम् ।
जलसन्धबलेनाऽऽजौ पुरुषादैरिवाऽऽवृतम् ॥ ४ ॥
अतोऽन्यत्पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव ।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाऽश्वानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥
हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम् ।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥
हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् ।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे ।
पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ।
द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे ।
कौशेयारुणसङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥

एक सौ उन्नीस अध्याय ॥ ११९ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! इस प्रकार वीर सुदर्शन को मारकर वृष्णिवीर सात्यकि ने अपने सारथी से कहा—हे सूत ! बाण शक्तिरूप तरङ्ग, खड्गरूप मछली और गदारूप ग्राह से युक्त, असख्य हाथी-घोड़े रथ आदि से परिपूर्ण अनेक प्रकार के शस्त्रों के परस्पर टकराने के शब्द और बाजों की ध्वनिरूप गर्जन से भयङ्कर, वीरों के लिए कठिन स्पर्श, जय की आकाक्षा रखनेवालों के निमित्त दुर्द्धर्ष, जलसन्ध की राक्षस सदृश सेना से उमड़े हुए द्रोणसेनारूप महासागर के पार जब हम पहुँच गये हैं तब यह, मरने से बची हुई, सेना क्या है !॥१।४॥यह तो क्षुद्र नदी सी जान पड़ती है। इसलिए अब तुम तुरन्त ही घोड़ों को हाँक दो। मैं इस स्वल्प सेना को स्फूर्ति से लाँघकर अर्जुन के समीप पहुँचना चाहता हूँ। दुर्जय द्रोण और कृतवर्मा को जीत लिया तो अब मैं मानों अर्जुन के समीप ही पहुँच गया। सामने की सेना को देखकर मुझे किञ्चित् मात्र भी भय नहीं प्रतीत पड़ता। ये सैनिक योद्धा, अग्नि में सूखी घास की तरह, मेरे बाणों से भस्म हो रहे हैं॥५।८॥वह देखो, पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन जिस मार्ग से गये हैं उस मार्ग में असख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के मृत शरीर तथा रथ नष्ट भ्रष्ट हुए पड़े हैं। अर्जुन के वज्रसदृश बाणों से पीड़ित होकर कौरवदल के योद्धा रण छोड़कर भाग रहे हैं। हाथियों, घोड़ों और रथों के शीघ्रता के साथ भागने से रेशमी वस्त्र सी लाल धूल उड़ रही है और महातेजस्वी अर्जुन के गाण्डीव धनुष का उग्र शब्द सुनाई

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्याऽमितौजसः ॥ ११ ॥
यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै ।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १२ ॥
शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान्याहि यत्राऽरिवाहिनी ।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३ ॥
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४ ॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ।
मामेवाऽभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १६ ॥
एतान्सरथनागाश्वान्निहत्याऽऽजौ सपत्तिनः ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥
सूत उवाच—न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।
यद्यपि स्यात्तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥ १८ ॥
द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।
तथाऽपि संभ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ १९ ॥
त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥

पड़ रहा है। इससे जान पड़ता है कि महावीर अर्जुन यहाँ से निकट ही यहीं हैं॥८।११॥हे सूत! इस समय जो लक्षण और सगुन देख पड़ते हैं, उनसे जान पड़ता है कि दिन ढलने के पहले ही वीर अर्जुन जयद्रथ को मार लेंगे। अब तुम इस स्थान पर मेरा रथ ले चलो, जहाँ शत्रु-सेना का जमघट है और जहाँ दुर्योधन आदि वीरगण, युद्धदुर्मद क्रूरकर्मा कवचधारी काम्बोजगण, धनुष बाण लिये यवनगण और बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक आदि, और म्लेच्छगण मेरे साथ युद्ध करने के निमित्त एकत्र हैं। तुम यह समझ लो कि मैं इन सब वीरों को रथ, हाथी, घोड़े आदि वाहनों सहित नष्ट करके इस विषम सङ्कट से निकल गया हूँ॥१२।१७॥यह सुनकर सारथी ने कहा—हे महात्मन्! यदि यमदग्नि के पुत्र परशुराम, महारथी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अथवा मद्रराज शल्य कुपित होकर एक साथ आपके सम्मुख आवें तो भी, आपके आश्रय में रहकर, मैं शङ्कित नहीं हो सकता। समर में रणदुर्मद

अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
न च मे संभ्रमः कश्चिद्भूतपूर्वः कथञ्चन ॥ २२ ॥
किमुतैतत्समासाद्य धीर संयुगगोष्पदम् ।
आयुष्मन्कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः ।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४ ॥
के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् ।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज ।
सात्यकिरुवाच—मुण्डानेतान्हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह ।
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥
अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चाऽसकृत् ॥ २८ ॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥
अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥
अद्य मद्बाणनिहतान्योधमुख्यान्सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥

[क्रूरकर्मा कवचधारी काम्बोजगण, धनुष बाण धारण किये और प्रहार करने में निपुण यवनगण, विविध अस्त्र धारण करनेवाले किरात, दरद, बर्बर, शक और ताम्रलिप्तक आदि म्लेच्छ] लोगों को आज आपने हराया है। मैं पहले कभी बड़े युद्ध में भी नहीं भयभीत हुआ; फिर आज इस साधारण संग्राम में किस प्रकार भयभीत होऊँगा?॥१८।२३॥अब आप मुझे यह बतलाइए कि मैं आपको किस मार्ग से अर्जुन के समीप ले चलूँ? हे आयुष्मन्! आप किन लोगों पर कुपित हुए हैं? किनकी मृत्यु आई है? किन्होंने यमपुर जाने की इच्छा की है? कौन लोग आपको यम के समान आते देखकर रणभूमि से भागेंगे? यमराज ने किनको स्मरण किया है? आज्ञा दीजिए, उन्हीं के सम्मुख आपका रथ ले चलूँ॥२३।२६॥सात्यकि ने कहा—हे सूत! तुम शीघ्र ही रथ हाँककर ले चलो। इन्द्र ने जैसे दानवों का संहार किया था वैसे ही आज मैं इन मुण्डित-मस्तक काम्बोजगण का संहार करके प्रतिज्ञापालन, और वीर अर्जुन से भेंट, करूँगा। आज दुर्योधन आदि कौरव, इस सेना का विनाश देखकर, समर में मेरे पराक्रम का अनुभव करेंगे। मेरे बाणों से जिनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये होंगे, उन कौरवदल के सैनिकों का करुण विलाप सुनकर आज दुर्योधन को अवश्य ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा॥२६।२९॥आज मैं पाण्डवश्रेष्ठ वीर अर्जुन का बताया हुआ युद्धकौशल समर में दिखाऊँगा।

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥
मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥
अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान्वरान् ।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥
अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥
अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः ।
सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान्साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥
शशाङ्कसन्निकाशान्वै वाजिनो व्यनुदद्भृशम् ।
तेऽपिबन्त इवाऽऽकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥
प्रापयन्यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ।
सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥ ३९ ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ।
तेषामिषूनथाऽस्त्राणि वेगवान्नतपर्वभिः ॥ ४० ॥
अच्छिनत्सात्यकी राजन्नैनं ते प्रानुवञ्शराः ।
रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१ ॥

मेरे बाणों से सहस्रों वीरों को मरते देखकर आज राजा दुर्योधन अवश्य ही पश्चात्ताप करेंगे। आज कौरवगण मेरी बाण चलाने की स्फूर्ति और मेरे धनुष का अलातचक्र की भाँति घूमना देखेंगे। आज राजा दुर्योधन मेरे बाणों से घायल और रक्त से भीगे हुए अपने सैनिकों की दुर्दशा और संहार देखकर खेद करेंगे। वे संग्राम में मेरा भयानक रूप और कौरवदल के चुने हुए वीरों का मारा जाना देखकर अवश्य ही सोचेंगे कि इस लोक में दूसरे अर्जुन का अवतार हुआ है॥३०।३३॥आज मैं कौरवपक्ष के सहस्रों नरपतियों का वध करूँगा जिससे दुर्योधन पछतायेंगे और मैं पाण्डवों के प्रति अपनी भक्ति और स्नेह का परिचय दूँगा। आज कौरव लोग मेरे बल वीर्य और कृतज्ञता को विशेष रूप से जानेंगे ॥३४।३७॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! सारथी ने सात्यकि के ये वचन सुनकर श्वेत सुशिक्षित घोड़ों को उधर ही हाँक दिया। वायु के समान वेग से घोड़े इस प्रकार चले मानों जैसे आकाश को पी लेंगे। सात्यकि शीघ्र ही यवनों के समीप पहुँच गये॥३७।३९॥वे भी मिलकर स्फूर्ति दिखाते हुए आगे बढ़कर, सेना के अगले भाग में स्थित, सात्यकि पर असह्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। सात्यकि ने अपने सन्नतपर्व बाणों से उनके बाणों को मध्य में ही काट डाला। वीर सात्यकि सुवर्णपुङ्खयुक्त, सीधे और दूर जानेवाले तीक्ष्ण बाणों से यवनों के सिर और हाथ

उच्चकर्त्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥
भित्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ।
ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।
सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥
पञ्च षट् सप्त चाऽष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः ।
काम्बोजानां सहस्त्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥ ४५ ॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ।
दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥ ४७ ॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥ ४८ ॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवाऽऽवृतम् ।
वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुन्धराम् ।
अल्पावशिष्टाः संभग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥ ५० ॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥ ५१ ॥

काटने लगे। सात्यकि के सुदृढ बाण उनके लाल रङ्ग के लोहमय और कांस्यमय कवचों को तोड़कर शरीरों को फोड़ते हुए पृथ्वी में प्रवेश हो जाते थे॥४०।४३॥ इस प्रकार सात्यकि के बाणों के प्रहार से सैंकड़ों यवन मरने और पृथ्वी पर गिरने लगे। वीर सात्यकि धनुष को खींचकर निरन्तर बाण बरसा रहे थे। वे एक एक बार में पाँच-पाँच, छ-छ, सात-सात, आठ-आठ यवनों को मार रहे थे। सात्यकि के प्रहार से काम्बोज, शक, शबर, किरात, बर्बर आदि म्लेच्छ गण सहस्रों की संख्या में मर-मरकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। उनके मांस और रक्त की कीच से समर-भूमि अगम्य हो गई। हे महाराज! वीर सात्यकि इस प्रकार आपकी सेना को चौपट करने लगे। दस्युओं के शिरस्त्राण शोभित सिर चारों ओर बिछ गये। उनके सिर के बाल कटे हुए [और दाढ़ी-मूँछ के बाल बड़े-बड़े] थे॥४३।४७॥ उनके कटे हुए सिर पङ्ख और पूँछ से रहित पक्षियों के समान जान पड़ते थे। रक्त से नहाये हुए कबन्धों से वह पृथ्वी लाल रङ्ग के मेघों से शोभित आकाश के समान जान पड़ने लगी। इस प्रकार सात्यकि के वज्रसमस्पर्श, सीधे जानेवाले, तीक्ष्ण बाणों से मारे गये शत्रुओं के मृत शरीरों से वह पृथ्वी व्याप्त हो गई॥४७।५०॥ मृत्यु से बचे हुए योद्धा भयविह्वल और अचेतनप्राय होकर घोड़ों को एड़ी मारकर, जोर जोर से कोड़े लगाकर, भागने हुए

जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन्भयात् ।
काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥
यवनानां च तत्सैन्यं शकानां च महद्बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।
तत्तस्य समरे कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।
तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥ ५५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

भाग खड़े हुए। हे राजेन्द्र! इस प्रकार सत्यपराक्रमी सात्यकि ने दुर्जय काम्बोज, शक, यवन आदि की भारी सेना को मारकर भगा दिया और विजय प्राप्त करके सारथी से आगे रथ बढ़ाने के निमित्त कहा। हे महाराज! अर्जुन की पृष्ठ-रक्षा करने के निमित्त अद्भुत पराक्रम और अलौकिक कार्य करके जाते हुए सात्यकि की गन्धर्व चारण आदि बारम्बार प्रशंसा करने लगे। यहाँ तक कि कौरवदल के लोग भी उन्हें धन्य-धन्य कहने लगे॥५०।५५॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ उन्नीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११९ ॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

सञ्जय उवाच—जित्वा यवनकाम्बोजान्युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥
चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाऽऽजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥
स रथेन चरन्मार्गान्धनुरभ्रामयद्भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥
रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाऽऽबभौ ॥ ४ ॥

एक सौ बीस अध्याय ॥ १२० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महारथी सात्यकि इस प्रकार यवन काम्बोज आदि को जीतकर, कौरवसेना के मध्यभाग में होकर, अर्जुन के समीप जाने लगे। सुन्दर दाँतोंवाले विचित्र कवच-ध्वज धारी वीरश्रेष्ठ सात्यकि, मृगों पर बाघ की भाँति, शत्रुसेना पर झपटकर उसे भयविह्वल करने लगे। वे धनुष को घुमाते नज़र आते थे और उनका रथ विचित्र गति से जा रहा था॥१। २॥सुवर्ण के अङ्गद, शिरस्त्राण, कवच, ध्वजा और धनुष से शोभित शूर सात्यकि सुमेरु पर्वत के शिखर की भाँति जान पड़ते थे। वे मण्डलाकार धनुषरूप मण्डल और बाणरूप तेजोमय किरणों से शरद् ऋतु में उदय हुए सूर्य के समान शोभायमान हुए। साँढ़

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्वररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥
वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥
मत्तद्विरदसङ्काशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।
द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ ८ ॥
जलसन्धार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ।
दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।
तानभिद्रवतः सर्वान्समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत्प्रहसन्निव ।
इदमेतत्समुद्भूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ॥ १४ ॥

के से ऊँचे कन्धे और पराक्रम से शोभित, उसी की सी बड़ी-बड़ी आँखोंवाले वीर सात्यकि गउओं के झुण्ड में बड़े साँड़ की भाँति आपकी सेना में थे॥५।६॥ मस्त हाथी के समान पराक्रमी, उसी की सी चाल से चलनेवाले और सेनादल के मध्य में मस्त हाथी के समान स्थित सात्यकि को मारने की अभिलाषा से व्याघ्र के समान आपके पक्ष के योद्धा चारों ओर से दौड़े। द्रोण की सेना, कृतवर्मा की दुस्तर सेना, समुद्र-सदृश जलसन्ध की सेना और काम्बोज आदि की सेना के पार पहुँचे हुए सात्यकि को कृतवर्मा रूप ग्राह के मुख से उबरते और सैन्यसागर के पार जाते देखकर आपके पक्ष के अनेक योद्धा कुपित हो उठे, उन सबने एकत्र होकर चारों ओर से सात्यकि को घेर लिया॥७।१०॥ दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, युवा दुर्धर्षण, क्रथ और अन्य अनेक शस्त्रधारी दुर्द्धर्ष क्रोधी योद्धा लोग सात्यकि के पीछे दौड़े। उस समय तूफान की आँधी से उमड़े हुए समुद्र के समान आपकी सेना में बड़ा कोलाहल होने लगा॥१०।१३॥ उन सबको वेग से अपनी ओर आते देखकर सात्यकि ने हँसकर अपने सारथी से कहा—हे सूत। रथ को धीरे-धीरे ले चलो। यह देखो, उमड़े हुए समुद्र के समान रथों की घरघराहट होती है और कोलाहल से सब दिशाओं, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सागरों को कँपाती और प्रतिध्वनित करती हुई दुर्योधन की

नादयन्वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च कम्पयन्सागरानपि ।
ममेवाऽभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
एतद्बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम् ।
पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।
निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
मच्छरैरग्निसङ्काशैर्विभिन्नदेहान्सहस्रशः ।
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥
तानेवं ब्रुवतो वीरान्सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान्कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्त्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥
मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥
प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असम्भ्रमन्महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥ २४ ॥

सेना मेरी ओर झपटती आ रही है। पूर्णिमा के दिन उमड़े हुए समुद्र के समान इस सैन्यसागर को मैं अपने पराक्रम से, तटभूमि की भाँति, रोकूँगा॥१३।१७॥ आज इस महासागर में तुम इन्द्र के समान मेरा पराक्रम देखो। मैं अभी ही अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुसेना का नाश करता हूँ। तुम देखना कि मेरे अग्नितुल्य बाणों से सहस्रों पैदल, हाथी, घोड़े और रथ छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। महाबली सात्यकि अपने सारथी से इस प्रकार कह ही रहे थे कि युद्ध की अभिलाषा रखनेवाले कौरवपक्ष के सैनिक "मारो, ठहरो, दौड़ो, देखो देखो" कहते हुए उनके समीप आ गये। यह कहनेवाले शत्रुओं को सात्यकि अपने तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। उन्होंने देखते ही देखते तीन सौ घोड़ों, चार सौ हाथियों और असंख्य वीरों को मार डाला। उस समय सात्यकि के साथ कौरवपक्ष के योद्धाओं का ऐसा घोर युद्ध हुआ कि जान पड़ा फिर देवासुर-संग्राम हो रहा है॥१७।२२॥ सात्यकि अपने विषैले सर्प-सदृश बाणों से आपके पुत्र की सेना को छिन्न-भिन्न करने लगे। चारों ओर से सात्यकि के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा हो रही थी, पर वे तनिक भी नहीं विचलित होते थे। उन्होंने आपकी सेना के बहुत से वीरों को मार डाला। हे राजेन्द्र! उस समय मैंने यह बड़ा आश्चर्य देखा कि पराक्रमी सात्यकि का एक भी बाण कदापि निष्फल नहीं जाता था। रथ-हाथी-

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम् ।
न मोघः सायकः कश्चित्सात्यकेरभवत्प्रभो ॥ २५ ॥
रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६ ॥
सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्त्तत मुहुर्मुहुः ।
तत्सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥
बभ्राम तत्रतत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८ ॥
अविद्धं तत्र नाऽद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः ।
न तादृक्कदनं राजन्कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यादृक्क्षयमनीकानामकरोत्सात्यकिर्नृप ।
अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन् ।
ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥
दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् ।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।
उत्स्मयन्वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥

घोड़े आदि के जल से पूर्ण और पैदल सेनारूप तरङ्गों से युक्त यह सैन्यसागर तट-भूमि-सदृश सात्यकि के समीप जाकर जहाँ था तहाँ रुक रहा॥२३।२६॥सात्यकि के बाणों से मारे जाते हुए आपकी सेना के मनुष्य, हाथी और घोड़े बारम्बार इधर से उधर ऐसे परिभ्रमण कर रहे थे जैसे शीतसे पीड़ित गउएँ इधर उधर परिभ्रमण करती हैं। उस समय आपकी सेना में ऐसा कोई पैदल, रथ, हाथी, घोड़ा या घोड़े का सवार नहीं देख पड़ता था जिसको सात्यकि ने घायल न किया हो। वीर सात्यकि ने निर्भय होकर हाथों की स्फूर्ति और अस्त्र-धारण रण निपुणता दिखाकर जिस प्रकार आपकी सेना का नाश किया उस प्रकार अर्जुन ने भी नहीं किया था। मेरी समझ में तो सात्यकि ने उस समय युद्ध में अर्जुन से भी बढ़कर काम किया॥२६।३०॥ इसी समय राजा दुर्योधन ने सात्यकि को पहले तीन और फिर आठ बाण मारे। उन्होंने सात्यकि के सारथी को भी तीन और घोड़ों को चार बाण मारे। दुःशासन ने सात्यकि को सोलह बाण मारे; साथ ही शकुनि ने पचीस, चित्रसेन ने पाँच और दुःसह ने पन्द्रह तीक्ष्ण बाण उनकी छाती में मारे। यादव-श्रेष्ठ सात्यकि इस प्रकार शत्रुओं के बाणों की चोट खाकर भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने हँसते-हँसते उन सबको तीन-तीन बाण मारे। अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को गहरी चोट पहुँचाकर रथिश्रेष्ठ सात्यकि, श्येन पक्षी

तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ।
गाढविद्धानरीन्कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥ ३५ ॥
शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ।
सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥
अष्टाभिः सात्यकिं विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९ ॥
दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन्विव्याध सात्यकिम् ।
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् ।
तान्सर्वान्सहिताञ्शूरान्यतमानान्महारथान् ॥ ४१ ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः ।
ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥
आजघानाऽऽशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ।
पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत सङ्गरात् ।
ततस्तव सुतो राजन्सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन् ।
विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥

की भाँति,झपटते हुए चारों ओर समरभूमि में विचरने लगे॥३१।३६॥उन्होंने फिर शकुनि का धनुष और हस्तावाप (दस्ताने) काटकर दुर्योधन की छाती में तीन, चित्रसेन को सौ,दु सह को दस और दु शासन को बीस बाण मारे । शकुनि ने दूसरा धनुष लेकर पहले आठ और फिर पाँच बाण मारकर सात्यकि को घायल किया । साथ ही दु शासन ने दस,दु सह ने तीन और दुर्मुख ने बारह बाण उनको मारे।हे महाराज! दुर्योधन ने भी सात्यकि को तिहत्तर और उनके सारथी को तीक्ष्ण तीन बाण मारे॥३७।४१॥महावीर सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सबको पाँच पाँच बाणों से घायल करके एक भयङ्कर भल्ल बाण से दुर्योधन के सारथी को मार गिराया। सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर दुर्योधन के घोड़े, सारथी न रहने पर, बड़े वेग से उनके रथ को ले भागे। उस समय अन्य सैंकड़ों वीर योद्धा भी राजा दुर्योधन के रथ के साथ भाग खड़े हुए॥४१।४४॥वीर सात्यकि उस सेना को भागते देख कर उस पर सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ।

अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥ ४६ ॥
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति ।
तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम् ।
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार आपकी सेना के सहस्रों योद्धाओं को भगाकर महारथी सात्यकि,अर्जुन के समीप जाने के निमित्त, आगे बढ़े । कौरवपक्ष के योद्धा सात्यकि को एक साथ बाण छोड़ते और सारथी की तथा अपनी रक्षा करते देखकर बहुत ही विस्मित हुए और उनकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे॥४४।४७॥

द्रोणपर्व का एक सौ बीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२० ॥

अथ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सम्प्रमृद्य महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
कथं वैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम् ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥
किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः ।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥
कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जय ।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥
अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम् ।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥
विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति ।
यत्राऽवघ्नन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥
एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय ॥ १२१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा–हे सञ्जय ! महावीर सात्यकि जब कौरवसेना को नष्ट भ्रष्ट करते हुए अर्जुन के समीप जाने लगे तब मेरे निर्लज्ज पुत्रों ने क्या किया ? अर्जुन के ही समान सात्यकि का पराक्रम देखकर मेरे मरणोन्मुख पुत्र किस प्रकार सात्यकि के सम्मुख ठहरे ? सेना के मध्य में सात्यकि से हारकर वे क्षत्रियों के आगे क्या कहेंगे ? महायशस्वी सात्यकि मेरे पुत्रों के जीते जी किस प्रकार उस सेना के पार पहुँचे॥१। ॥४॥हे सञ्जय ! सात्यकि अकेले ही शत्रुपक्ष के असंख्य महारथियों से युद्ध करके उनका संहार कर रहे हैं, यह अद्भुत बात तुमसे सुनकर मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि दैव ही मेरे पुत्रों के प्रतिकूल है । बड़े आश्चर्य

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
यथा पशुगणान्सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान्मम ॥ ८ ॥
कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥
नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान्युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥
सञ्जय उवाच—तव दुर्मन्त्रिते राजन्दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥
ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तका मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥
त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शककाम्बोजवाल्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।
युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥
शूराः पञ्चशतं राजञ्शैनेयं समुपाद्रवन् ।
ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६ ॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥

की बात है ! मेरी सेना, सब पाण्डवों की कौन कहे, अकेले सात्यकि का सामना भी नहीं कर सकती ! ॥५।७॥इस समय मुझे स्पष्ट प्रतीत पड़ता है कि अकेले सात्यकि ही चित्रयुद्ध में निपुण महारथी द्रोणाचार्य को जीतकर, पशुओं को सिंह की भाँति, मेरे पुत्रों को मार डालेंगे। जब कृतवर्मा आदि अनेक महारथी वीर मिलकर भी सात्यकि को नहीं मार सके तब वे अवश्य ही मेरे पुत्रों को परास्त करेंगे। यशस्वी सात्यकि ने जैसा युद्ध किया वैसा युद्ध तो महापराक्रमी अर्जुन भी नहीं कर सके ॥८।१०॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! केवल आपकी कुमन्त्रणा और दुर्योधन की दुर्बुद्धि ही इस घोरतर नाश का कारण है। अब जो घटनाएँ हुई हैं उनका मैं वर्णन करता हूँ, आप सावधान होकर सुनिए। जो योद्धा भाग खड़े हुए थे वे, दुर्योधन के कहने से, फिर युद्ध की क्रूरबुद्धि करके प्राणपण से युद्ध करने की सौगन्ध खाकर लौट पड़े॥११।१२॥दुर्योधन के अनुगामी तीन सहस्र घुड़सवार योद्धा, शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर और पत्थर हाथों में लिये कुपित पहाड़ी जातियों के लोग, अग्नि में कूदने को उद्यत पतङ्गदल की भाँति सात्यकि का सामना करने को आ गये॥१३।१६॥पत्थर हाथों में लिये पाँच सौ शूर पहाड़ी लोग भी सात्यकि पर आक्रमण करने को चले। उस समय सहस्र रथ, सौ महारथी, एक सहस्र हाथी, दो सहस्र घोड़े और असङ्ख्य

अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।
तांश्च सञ्चोदयन्सर्वान्घ्नतैनमिति भारत ॥ १८ ॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।
अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम् ॥ २० ॥
सादिनश्चैव तान्सर्वान्दस्यूनपि च सर्वशः ।
तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
वर्मभिश्च तथाऽनीकैर्व्यवकीर्णा वसुन्धरा ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्योर्ग्रहैरिव भारत ।
गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥
ऐरावतकुले चैव तथाऽन्येषु कुलेषु च ।
जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥
वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजान्बाल्हिकानपि ।
तथा हयवरान्राजन्निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥

पैदल सेना बाणों की वर्षा करती हुई सात्यकि के सम्मुख आई। उन सबको वीर दुःशासन यह कहकर उत्तेजित करते जाते थे कि "इसे मारो, भयभीत होओ नहीं।" हे महाराज ! इस प्रकार बहुत सी सेना और महारथी योद्धाओं को लेकर दुःशासन ने सात्यकि पर आक्रमण किया॥१६।१९॥ किन्तु वैसे ही आश्चर्य की बात है। हमने सात्यकि का अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने अकेले ही उन सबके साथ युद्ध किया और तनिक भी नहीं विचलित हुए। वे उन महारथियों का सामना करते हुए अपने तीक्ष्ण बाणों से असंख्य हाथी, उनके सवार, घुड़सवार, रथ और दस्युगण आदि को नष्ट करने लगे। उनकी बाणवर्षा से टूटे फूटे और कटे-फटे रथोंके पहिये, ईषादण्ड, अक्ष, शस्त्र, हाथी, घोड़े, ध्वजा, कवच, माला, वस्त्र, आभूषण, रथ के नीचे की लकड़ी इत्यादि के इधर-उधर बिखरने और ढेर होने से उस समय समरभूमि ग्रह-तारागण आदि से शोभित गगनमण्डल के समान शोभायमान हो रही थी॥१९।२४॥ अञ्जन, वामन, सुप्रतीक, महापद्म और ऐरावत आदि महादिग्गजों के वंश में उत्पन्न पर्वताकार हाथी रणभूमि में उनके बाणों की चोट से गिर-गिरकर मर रहे थे। महावीर सात्यकि ने वनायु, काम्बोज, बाह्लीक आदि देशों के, और पहाड़ी, श्रेष्ट घोड़ों को मार डाला। उन्होंने अनेक देशों और बहुत सी जातियों के सैकड़ों-सहस्रों हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को मारकर पृथ्वीमें बिछा दिया॥२५।२८॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥
तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून्दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्त्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥
तांश्चाऽतिभग्नान्सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान्पार्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥
अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं हतैनं युद्धकार्मुकम् ॥ ३१ ॥
तथैव कुरवः सर्वे नाऽश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः॥ ३२ ॥
ते पार्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥
ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥
क्षेपणीयैस्तथाऽप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥
तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसन्धाय निशितान्प्राहिणोच्छरान्॥ ३६ ॥
तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसङ्काशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर मृत्यु मे बचे हुए सैनिक इधर उधर भागने लगे। उस समय दस्यु आदि को भागते देखकर दुःशासन कहने लगे—अरे क्षत्रिय धर्म के जाननेवालो! लौट आओ, शत्रु से युद्ध करो। इस प्रकार भागने से क्या होगा? इस ढँग से उत्साहित किये जाने पर भी उन्हें न लौटते देखकर आपके पुत्र दुःशासन ने पत्थरों की वर्षा करनेवाले, पहाड़ी जाति के, शूर योद्धाओं को युद्ध के निमित्त प्रेरित करते हुए कहा—हे वीरो! तुम पाषाणयुद्ध में बड़े निपुण हो, और सात्यकि इस शिलायुद्ध को बिलकुल नहीं जानते। इसलिए तुम लोग पाषाण-वर्षा करके इन्हें मारो। कौरव गण शिलायुद्ध में निपुण नहीं हैं [नहीं तो वे तुम्हारी सहायता करते]। तुम लोग आक्रमण करो। सात्यकि तुम्हारा सामना नहीं कर सकेंगे॥२९।३२॥ हे महाराज! पाषाणयुद्ध में निपुण वे पहाड़ी योद्धा, राजा के समीप मन्त्री की भाँति, सात्यकि की ओर वेग से चले। वे पहाड़ी लोग हाथी के सिर के समान बड़े बड़े पत्थर तानकर सात्यकि के सम्मुख आये। क्षेपणीय यन्त्रों से शिलाएँ बरसाते हुए उन पहाड़ियों ने दुःशासन की आज्ञा से चारों ओर से सात्यकि को, मारने की अभिलाषा से, घेर लिया॥३३।३५॥ यादवश्रेष्ठ सात्यकि ने उन्हें पत्थर बरसाते आते देखकर तीक्ष्ण बाण बरसाना प्रारम्भ किया। सात्यकि ने सर्प सदृश नाराच बाणों से उनकी फेंकी हुई शिलाओं को चूर-

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥
ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन्निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥
पुनर्दशशताश्चाऽन्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥
पाषाणयोधिनः शूरान्यतमानानवास्थितान् ।
न्यवधीद्बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४१ ॥
ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥
अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन्संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥
अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥
हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तदा ॥ ४६ ॥

चूर कर डाला। जुगनुओं की भाँति चमककर चारों ओर गिरते हुए उन पत्थरों के चूर्ण से सेना का सहार होने लगा और हाहाकार मच गया॥३६।३८॥ शिलाएँ ताने प्रहार करने को उद्यत पाँच सौ शूर योद्धाओं के हाथ सात्यकि ने काट डाले। हाथ काट दिये जाने पर वे सब मर गये। सहस्रों पहाड़ी लोग सात्यकि पर पत्थरों की घोर वर्षा कर रहे थे और सात्यकि स्फूर्ति के साथ उनके प्रहारों को निष्फल करते हुए भी उनका सहार करते ही जाते थे। मारने का यत्न करनेवाले सहस्रों पाषाण युद्ध निपुण पहाड़ी वीरों को सात्यकि ने मार गिराया। उन्होंने यह बहुत ही अद्भुत कार्य किया॥३९।४१॥ तब फिर व्यात्तमुख (एक प्रकार के म्लेच्छ), अयोहस्त, शूलहस्त, दरद, खस, तङ्गण, लम्पाक, कुलिन्द आदि अनेक जातियों के योद्धा लोग बारम्बार सात्यकि पर शिलाओं की वर्षा करने लगे। किन्तु उपाय जाननेवाले चतुर सात्यकि ने नाराच बाणों से उन शिलाओं को व्यर्थ कर दिया। सात्यकि के तीक्ष्ण बाणों से टूटती हुई शिलाओं का शब्द चारों ओर विस्तृत हो गया॥४२।४४॥ वह भयानक शब्द सुनकर झुण्ड के झुण्ड रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सिपाही भय के मारे इधर उधर भागने लगे। उस शिलाचूर्ण के गिरने से मनुष्य, हाथी और घोड़े वैसे ही व्याकुल हो उठे जैसे किसी को भिड़े लिपटकर काटने लगें और वह तिलमिलाने लगे। उनके लिए समरभूमि में ठहरना असम्भव हो गया। उस समय मृत्यु से बचे हुए, रक्त से नहाये, भिन्न मस्तक बड़े-बड़े हाथी सात्यकि के रथ के समीप से दूर भागने लगे। पूर्णिमा के दिन उमड़े हुए समुद्र का शब्द जैसे सुनाई पड़ता है वैसे ही घोर कोलाहल सात्यकि के बाणों से पीड़ित कौरवों की सेना में सुनाई पड़ने लगा

ततः शब्दः समभवत्तत्र सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनाऽर्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन्बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥
पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥
विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्रतत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चाऽऽयुष्मन्कौरवेयं समन्ततः ।
पश्य योधान्रणे भग्नान्धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥
इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥
अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥
तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन्बहुविधान्रथान् ॥ ५६ ॥

॥४४।४७॥हे राजेन्द्र ! उस समय महावीर द्रोणाचार्य ने यह तुमुल शब्द सुनकर अपने सारथी से कहा—हे सूत ! महारथी सात्यकि क्रुद्ध होकर कौरवों की सेना को अनेक प्रकार से छिन्न भिन्न करते हुए युद्धभूमि में मृत्यु की भाँति विचर रहे हैं । जान पड़ता है कि वे इस समय शिला बरसानेवाली जातियों के योद्धाओं से युद्ध कर रहे हैं, इसलिए तुम इसी समय वहीं पर मेरा रथ ले चलो । यह देखो, रथी योद्धाओं को लिए हुए घोड़े रणभूमि से भागे जा रहे हैं । शस्त्र और कवच आदि से हीन योद्धा घायल होकर गिर रहे हैं । सारथी लोग किसी प्रकार घोड़ों को सँभाल नहीं सकते॥४८। ५१॥तब सारथी ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के वचन सुनकर कहा—हे आयुष्मन् ! यह देखिए, कौरव पक्ष के योद्धा लोग संग्राम छोड़कर भय के मारे चारों ओर भाग रहे हैं । इधर महाबली पाञ्चाल और पाण्डव मिलकर आपके मारने की अभिलाषा से आ रहे हैं। उधर सात्यकि भी बहुत दूर निकल गये हैं । अतएव उनके पीछे जाना चाहिए, या यहीं ठहरकर पाण्डवों को रोकना चाहिए । इन दोनों बातों में जो उचित हो सो आप निश्चय कीजिए॥५२।५५॥इधर द्रोणाचार्य और सारथी से इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि उधर महावीर सात्यकि बहुत से रथी योद्धाओं का नाश करते हुए दिखाई पड़े । रथी लोग सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर, उनके रथ का घेरा छोड़कर,

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥
यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्त्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १२१ ॥

द्रोणाचार्य की सेना की ओर भागने लगे। दुःशासन जिन रथी योद्धाओं को साथ लेकर सात्यकि पर आक्रमण करने गये थे वे भय के मारे द्रोणाचार्य के रथ की ओर भाग खड़े हुए॥५३।५८॥

द्रोणपर्व का एक सौ इक्कीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२१ ॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सञ्जय उवाच—दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित्क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥
राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवसे युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥
दासी जिताऽसि द्यूते त्वं यथा कामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥ ४ ॥
न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य षण्ढतिलैः समाः ।
दुःशासनैवं कस्मात्त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ६ ॥
न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान्दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥

एक सौ बाईस अध्याय ॥ १२२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! महावीर द्रोणाचार्य ने दुःशासन के रथ को अपने रथ के समीप खड़ा देखकर कहा—हे दुःशासन ! ये सब रथी क्यों भाग खड़े हुए हैं ? राजा दुर्योधन तो कुशल से हैं ? सिन्धुराज जयद्रथ तो जीवित है ? तुम राजा के पुत्र, राजा के भाई, महारथी योद्धा और युवराज होकर भी क्यों युद्ध से इस प्रकार भाग रहे हो?॥१।३॥ तुमने पहले द्यूत के समय द्रौपदी से कहा था कि "हे दासी ! हमने तुम्हें जुए में जीत लिया है, इसलिए अब तुम स्वेच्छाचारिणी होकर हमारे बड़े भाई राजा दुर्योधन के वस्त्र धोकर दिया करो। तुम्हारे पति सार हीन तिलों के समान निकम्मे हैं। तुम अब समझ लो कि तुम्हारे पति हैं ही नहीं।" हे दुःशासन ! पहले द्रौपदी से ऐसे दुर्वचन कहकर और आप ही पाण्डवों तथा पाञ्चालों से वैर उत्पन्न करके अब क्यों युद्ध से भाग रहे हो? इस समय सात्यकि को ही युद्ध में उपस्थित देखकर

अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत्पुरा ॥ ८ ॥
क ते मानश्च दर्पश्च क ते वीर्यं क गर्जितम् ।
आशीविषसमान्पार्थान्कोपयित्वा क यास्यसि ॥ ९ ॥
शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ १० ॥
ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥
स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये।
एकेन सात्वतेनाऽद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३ ॥
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्त्तते ।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥ १४ ॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ।
युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ।
त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥ १६ ॥
पृथिव्यां धावमानस्य नाऽन्यत्पश्यामि जीवनम्।
यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥

क्यों भय के मारे व्याकुल हो रहे हो ?॥४।६॥पहले द्यूत-क्रीड़ा में हाथ में पाँसे लेते समय तुमने क्या नहीं जाना था कि ये पाँसे ही विषैले सर्प-सदृश बाणों का रूप धारण करेंगे? तुमने पहले पाण्डवों को बहुत कटुवचन सुनाये हैं और तुम्हारे ही कारण द्रौपदी को क्लेश सहने पड़े हैं। हे महारथी! इस समय तुम्हारा वह अभिमान, वह बल और चतुराई कहाँ है? तुम विषैले सर्प-सदृश पाण्डवों को छोड़कर अब कहाँ भाग रहे हो ?॥७।९॥तुम दुर्योधन के साहसी भाई होकर अब युद्ध से भागोगे तो कहना पड़ेगा कि कुरुराज और कौरव पक्ष के वीरों की अत्यन्त शोचनीय दशा उपस्थित है। हे वीर! आज इन भयभीत हुए हुए कौरव-दल के सैनिकों की तुम्हें अपने बाहुबल से रक्षा करनी चाहिए।किन्तु तुम यह अपना कर्त्तव्य न करके, संग्राम छोड़कर,केवल शत्रुपक्षके हृदयमें हर्ष उत्पन्न कर रहे हो। हे शत्रुदमन युवराज! तुम सेनापति होकर, भय के मारे समर छोड़कर,इस प्रकार भागोगे तो और कौन व्यक्ति रणभूमि में स्थित हो सकेगा ?॥१०।१३॥हे कौरव! तुम आज अकेले ही सात्यकि से ही युद्ध करके उनके आगे से भाग रहे हो तो गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन, महाबली भीमसेन, और नकुल और सहदेव का सामना होने पर क्या करोगे? सात्यकि के बाण तो महावीर अर्जुन के,सूर्य और अग्नि के समान,भयङ्कर उग्र बाणों के तुल्य नहीं हैं। सो तुम सात्यकि के इन बाणों

पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।
यावत्फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसन्निभाः ॥ १८ ॥
नाऽऽविशन्ति शरीरं ते तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥
नाऽऽक्षिपन्ति महात्मानस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥ २१ ॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणाऽसौ सुयोधनः ॥ २२ ॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह।
न च तत्कृतवान्मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३ ॥
स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम् ॥ २४ ॥
तच्चाऽप्यवितथं तस्य तत्तथैव भविष्यति ।
किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥ २५ ॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।
गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २६ ॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २७ ॥

की चोट से ही भयभीत होकर भाग खड़े हुए। तुम शीघ्र ही गान्धारी के पेट में जा छिपो। अन्य स्थान तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते॥१३।१८॥यदि भागने का निश्चय ही कर लिया हो तो जब तक महाबाहु अर्जुन के, केंचुल छोड़े हुए विषैले सर्प के आकार के, नाराच बाण तुम्हारे शरीर में नहीं प्रवेश करते; जब तक महावीर पाण्डवगण तुम सौ भाइयों को मारकर अपना राज्य नहीं ले लेते, जब तक धर्मराज युधिष्ठिर और समरविजयी वासुदेव क्रोध नहीं करते, तथा जब तक महावीर भीमसेन इस विशाल सेना के भीतर प्रवेश होकर तुम्हारे भाइयों को गदा के प्रहार से यमपुर को नहीं भेजते तब तक तुम उसके पहले ही पाण्डवों से सन्धि करके धर्मराज युधिष्ठिर को उनका राज्य दे दो॥१८।२२॥ पहले पितामह भीष्म ने तुम्हारे बड़े भाई राजा दुर्योधन से कहा था कि तुम समरभूमि में युद्ध करके किसी प्रकार पाण्डवों को परास्त नहीं कर सकोगे। इसलिए उनसे सन्धि कर लो। किन्तु मन्दमति दुर्योधन इस पर प्रसन्न नहीं हुए। अतएव इस समय तुम पुरुषार्थ करके यत्नपूर्वक पाण्डवों के साथ युद्ध करो। मैंने सुना है कि भीमसेन तुम्हारा रक्त पियेंगे। उनकी बात कदापि विपरीत नहीं हो सकती है। हे मन्दमति! क्या तुम्हें भीमसेन के पराक्रम का पता नहीं है? जब तुम युद्ध से भागते हो तो भीमसेन से वैर क्यों मोल ले लिया था?॥२३।२६॥जहाँ पर सात्यकि तुम्हारी सेना का

एवमुक्तस्तव सुतो नाऽब्रवीत्किञ्चिदप्यसौ ।
श्रुतं चाऽश्रुतवत्कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥ २८ ॥
सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २९ ॥
द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान्पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥
प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान्वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥
तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान्वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ ३३ ॥
स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाऽभ्यवर्तत ॥ ३५ ॥
सन्निरुद्धं रणे द्रोणं पाञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन्धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥
ते शरैरग्निसङ्काशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन्द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥

नाश कर रहे हैं, वहाँ शीघ्र जाओ; नहीं तो तुम्हारी सब सेना भाग खड़ी होगी॥२६।२७॥हे महाराज! द्रोणाचार्य के ये वचन सुनकर आपके पुत्र दुःशासन मौन हो रहे। आचार्य की बात मानों सुनी ही नहीं ऐसा भाव दिखलाकर वे, समाम से कदापि न विमुख होनेवाले, शूर म्लेच्छों की सेना साथ लेकर उधर ही चले जिधर सात्यकि गये थे। वहाँ पहुँचकर फिर वे सात्यकि के साथ समाम करने लगे। इधर वीरवर द्रोणाचार्य अत्यन्त ही कुपित होकर वेग से पाण्डवों और पाञ्चालों की सम्मिलित सेना की ओर चले॥२८।३०॥ वे शत्रुओंकी सेना में प्रवेश हो पड़े और बाणों की वर्षा से असंख्य वीरों को भगाने लगे। महारथी आचार्य ऊँचे स्वर से अपना नाम सुनाकर पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य आदि की सेना के वीरों को मारने लगे। तब अत्यन्त ही तेजस्वी पाञ्चाल राजकुमार वीरकेतु ने समरविजयी द्रोणाचार्य को युद्ध के निमित्त ललकारा॥३१।३२॥ वीरकेतु ने सन्नतपर्व युक्त तीक्ष्ण पाँच बाण आचार्य द्रोण को मारे, एक बाण उनकी ध्वजा में मारा और सात बाण उनके सारथी को भी मारे। अब महारथी द्रोणाचार्य अत्यन्त ही यत्न करके भी वीरकेतु को हटा नहीं सके। यह देखकर हम लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥३३।३५॥इसी समय युधिष्ठिरकी विजय चाहनेवाले पाञ्चालगण रणभूमिमें आचार्य को रुकते देखकर चारों ओर से घेरकर, उनपर अग्नि-सदृश सुदृढ सैंकड़ों

निहत्य तान्बाणगणैर्द्रोणो राजन्समन्ततः ।
महाजलधरान्व्योम्नि मातरिश्वेव चाऽऽवभौ ॥ ३८ ॥
ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसन्निभम् ।
सन्दधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥
स भित्त्वा तु शरो राजन्पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥
ततोऽपतद्रथात्तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ४१ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥
चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातुर्व्यसनकर्शिताः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ४४ ॥
स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
क्रोधमाहारयत्तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥
ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् ।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥ ४६ ॥
कर्तव्यं नाऽभ्यजानन्वै कुमारा राजसत्तम ।
तान्विमूढान्रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥

तोमर और अन्य प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥३६।३७॥किन्तु उन लोगों के बाण और शस्त्र आचार्य के बाणों से मार्ग में ही कट-कुट गये और वायु के वेग से टुकड़े-टुकड़े हो गये मेघों के समान आकाश में दिखाई पड़ने लगे। तब शत्रुनाशन आचार्य ने, सूर्य और अग्नि के समान प्रज्वलित, एक भयङ्कर बाण धनुष पर चढ़ाकर वीरकेतु के ऊपर छोड़ा। आचार्य के छोड़े हुए उस बाण ने वेग से आकर वीरकेतु के शरीर को मध्य में छेद कर डाला और फिर वह रक्त में तर होकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। आँधी से उखड़ा हुआ चम्पा का वृक्ष जैसे पर्वत पर से नीचे गिर पड़ता है वैसे ही पाञ्चाल-राजकुमार वीरकेतु रथ पर से गिर पड़े॥३८।४१॥इस प्रकार धनुर्द्धर महाबली राजकुमार वीरकेतु के मारे जाने पर पाञ्चालों की सेना और भी कुपित होकर चारों ओर से आचार्य द्रोण पर आक्रमण करने लगी। तब भाई की मृत्यु से शोकार्त होकर महावीर सुधन्वा चित्रकेतु, चित्रवर्मा और चित्ररथ आचार्य से युद्ध करने के निमित्त सम्मुख आये और वर्षाऋतु के मेघ जैसे जल बर्साते हैं वैसे ही आचार्य के ऊपर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। ब्राह्मण-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उन महावीर राजकुमारों के बाणों से अत्यन्त ही घायल होकर कोपित हो उठे और उन्हें मारने के निमित्त भयानक बाण छोड़ने लगे॥४२।४६॥ कान तक खींचकर छोड़े गये आचार्य के बाणों की

व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान्कुपितो रणे ।
अथाऽपरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन्हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत् ।
ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन्सुवर्चसः ॥ ४९ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः ।
तान्निहत्य रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५० ॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
पञ्चालान्निहतान्दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान् ॥ ५१ ॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।
अभ्यवर्त्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥
ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥
स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवाऽन्वयुध्यत ॥ ५४ ॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्छितः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥
स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५६ ॥
तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५७ ॥

चोट से पीड़ित राजकुमार व्याकुल हो गये और यह निश्चय न कर सके कि अब हमें क्या करना उचित है। महायशस्वी द्रोणाचार्य ने उन्हें व्याकुल हुए-हुए देखकर फिर कुछ हँसकर पहले उनके रथ, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया और फिर पीछे से भल्ल बाणों से उनके कुण्डल-भूषित सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये। इस प्रकार आचार्य के बाणों से मरकर वे राज-पुत्र, देवासुर-युद्ध में मरनेवाले दानवों की भाँति रथों से पृथ्वी पर गिर पड़े॥४६।५०॥हे राजेन्द्र! उन्हें मारकर महापराक्रमी द्रोणाचार्य अपना सुवर्णमण्डित दुर्द्धर्ष धनुष नचाने लगे। अपने वीर भाइयों की मृत्यु हुई देखकर महावीर धृष्टद्युम्न अत्यन्त ही शोकाकुल हुए। उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे। इसके पश्चात् वे क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य के सम्मुख आये और उनके ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। धृष्टद्युम्न के बाणों की वर्षा में आचार्य द्रोण छिप गये। यह देखकर युद्ध-भूमि में एकाएक हाहाकार मच गया॥५०।५३॥ किन्तु महारथी द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न के बाणों के प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे कुछ मुसकराते हुए [उन बाणों को व्यर्थ करके] धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने लगे। इसी क्षण महावीर धृष्टद्युम्न ने बहुत ही क्रोध करके आचार्य के वक्ष स्थल में बड़े भयङ्कर नब्बे बाण मारे। उन बाणों की गहरी चोट से महायशस्वी आचार्य मूर्च्छित हो गये। महारथी धृष्टद्युम्न ने आचार्य को,

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥
हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥ ५९ ॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ।
शरैर्वैतस्तिकै राजन्विव्याधाऽऽसन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥
योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ६१ ॥
द्रोणस्य विहिता राजन्यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।
स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ॥ ६३ ॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकांक्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥
मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥
छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥

अचेत पाकर, मार डालने का विचार किया। क्रोध के मारे उनके नेत्र लाल हो रहे थे। धृष्टद्युम्न धनुष रखकर, तलवार लेकर, उनका सिर काटने के निमित्त बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने रथ से उनके रथपर कूद गये। किन्तु उसी समय आचार्य सचेत हो गये। वध की आकांक्षा से आये हुए धृष्टद्युम्न को देखकर वे विचलित नहीं हुए। वे हाथ में धनुष लेकर, निकट युद्ध के लिए उपयोगी, अंगुल के प्रमाण के छोटे-छोटे बाण धृष्टद्युम्न को मारने लगे॥५७।६१॥महाबली धृष्टद्युम्न आचार्य के बाणों से घायल होकर शीघ्र ही उनके रथ से अपने रथ पर चले गये और धनुष लेकर फिरआचार्य पर बाण बरसाने लगे।द्रोणाचार्य भी उन पर प्रहार कर रहे थे॥६१।६४॥त्रैलोक्य के राज्य की आकांक्षा रखनेवाले इन्द्र और प्रह्लाद के समान वे दोनों महाघोर युद्ध करने लगे। दोनों रणनिपुण वीर विचित्र मण्डल और यमक आदि विविध गतियाँ दिखाकर चारों ओर विचरते हुए अनेक प्रकार के बाणों से एक दूसरे के अङ्गों को छिन्न-भिन्न करने लगे॥६५।६७॥वीरों को भी

क्षत्रियाश्च महाराज ये चाऽन्ये तव सैनिकाः ।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९ ॥
वशमेष्यति नो राजन्पञ्चाला इति चुक्रुशुः ।
द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव ।
ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥
विजित्य पाण्डुपञ्चालान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिन्दमः ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२२ ॥

मोहित करनेवाला युद्ध करनेवाले उन दोनों महारथियों ने, वर्षा ऋतु के दो मेघों की जलधारा के समान, बाण बरसाकर एकदम पृथ्वीमण्डल, आकाशमण्डल और सब दिशाओं को बाणों से व्याप्त कर दिया । रणभूमि में उपस्थित सब सैनिक क्षत्रिय योद्धा बारम्बार धन्य धन्य कहते हुए उस युद्ध की प्रशंसा करने लगे। इसी अवसर में पाञ्चालगण यह कहकर चिल्लाने लगे कि जब आचार्य धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने लगे हैं तब वे अवश्य ही हमारे वश में हो जायँगे, धृष्टद्युम्न अवश्य ही उन्हें परास्त करेंगे॥६७।७०॥उधर महाबाहु द्रोणाचार्य ने, वृक्ष में पके हुए फल की भाँति, धृष्टद्युम्न के सारथी का सिर काट गिराया। सारथी के न रहने से धृष्टद्युम्न के घोड़े रथ को लेकर इधर उधर भागने लगे। तब अवसर पाकर द्रोणाचार्य पाञ्चालों और सृञ्जयों की सेना से युद्ध करने लगे। प्रबल प्रतापी शत्रुदमन द्रोणाचार्य इस प्रकार पाण्डवों और पाञ्चालों को परास्त करके फिर अपने व्यूह के द्वार पर डट गये। पाण्डवों और पाञ्चालों में से कोई भी उन्हें परास्त नहीं कर सका ॥७०।७३॥

द्रोणपर्व का एक सौ बाईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२२ ॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२३ ॥

सञ्जय उवाच — ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत् ।
किरञ्शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥
स विध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः ।
नाऽकम्पयत्स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥
तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्भृशम् ।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥

एक सौ तेईस अध्याय ॥ १२३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इधर वीर दुःशासन जलधारा बरसानेवाले मेघ के समान बाण बरसाते हुए सात्यकि के समीप चले। उन्होंने सात्यकि को पहले साठ और फिर सोलह तीक्ष्ण बाण मारे; किन्तु

सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन्सायकान्बहून् ।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन्वै दिशो दश ॥ ४ ॥
तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे ।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥ ५ ॥
ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः ।
प्राद्रवन्समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥
तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव ।
तस्थौ व्यपेतभी राजन्सात्यकिं चाऽर्दयच्छरैः ॥ ७ ॥
चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ विध्वा नादं मुमोच सः ॥ ८ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे ।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥
स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद्भृशम् ।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥
त्वरन्समावृणोद्बाणैर्दुःशासनममित्रजित् ।
दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ।
तेऽगच्छन्युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः ।
ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥

महावीर सात्यकि उनके प्रहार से तनिक भी विचलित न होकर मैनाक पर्वत की भाँति अटल ही खड़े रहे। तब कुरुश्रेष्ठ दुःशासन ने अनेक देशों के वीर योद्धाओं के साथ बाण बरसाते हुए, मेघगर्जन सदृश सिंहनाद से दसों दिशाओं को कँपाते हुए, वीर सात्यकि पर पूर्ण वेग से आक्रमण किया॥१।४॥यह देखकर सात्यकि ने क्रोध से आगे बढ़कर बाणों की वर्षा से दुःशासन आदि को अदृश्य सा कर दिया। दुःशासन के साथी अन्यान्य वीरगण सात्यकि के बाणों के भय से सेना के सम्मुख ही भागने लगे। उस समय अकेले दुःशासन समरभूमि में स्थित होकर सात्यकि को बाण मारने लगे॥५।७॥उन्होंने सात्यकि के घोड़ों को चार, सारथी को तीन और सात्यकि को सौ बाणों से घायल करके सिंहनाद किया। शत्रुनाशन सात्यकि क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने इतने बाण छोड़े कि दुःशासन का रथ, सारथी और ध्वजा तक उनमें छिप गई। मकड़ा जैसे मक्खी को अपने जाल में फँसा लेता है वैसे ही उन्होंने दुःशासन को बाणजाल में फँसा दिया॥८।११॥हे राजेन्द्र! राजा दुर्योधन ने दुःशासन को इस प्रकार बाणजाल में फँसते देखकर युद्धविशारद क्रूरकर्मा त्रिगर्त देश के तीन सहस्र वीरों को सात्यकि से युद्ध करने के निमित्त भेजा। उन्होंने दुर्योधन की आज्ञा से सात्यकि के सम्मुख जाकर, तत्परता के साथ समर से न हटने का प्रण करके,

स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः ।
तेषां प्रपततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥
योधान्पञ्चशतान्मुख्यानग्र्यानीके व्यपोथयत् ।
तेऽपतन्निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः ।
नागैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥
हयैश्च कनकापीडैःपतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।
ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।
ततस्ते पर्यवर्त्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥
भयात्पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।
हत्वा पञ्चशतान्योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥
प्रायात्स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति ।
तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥

चारों ओर से सात्यकि को रथों से घेरकर तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ किया॥११।१४॥उस समय सात्यकि ने उन बाणवर्षा करनेवाले त्रिगर्त देश के योद्धाओं में से पाँच सो प्रधान वीरों को मार डाला। वे वायु के वेग से उखड़े हुए या टूटे हुए बड़े बड़े वृक्षों की भाँति गिरने लगे। सात्यकि के बाणों से कटे, रक्त से भीगे हुए, असङ्ख्य हाथी, सुवर्ण के से आभूषणों से भूषित घोड़े और ध्वजा आदि के गिरने से वह समरभूमि खिले हुए दारु के पेड़ों से व्याप्त सी जान पड़ने लगी ॥१४।१८॥सात्यकि के बाणों से घायल होकर कौरव पक्ष के सब योद्धा, दलदल में फँसे हुए हाथियों के समान सङ्कट में पड़कर नि सहाय हो गये। महा नाग जैसे गरुड़ के भय से बिल में प्रवेश हो जाते हैं वैसे ही वे कौरव पक्ष के सेनिक, सात्यकि के भय से विह्वल होकर द्रोणाचार्य के समीप भागकर पहुँचे। इस प्रकार सात्यकि घोर विषैले सर्प सदृश तीक्ष्ण बाणों के द्वारा पाँच सौ योद्धाओं को मारकर धीरे धीरे अर्जुन के समीप जाने लगे॥१८।२२॥इसी अवसर में आपके

धनुश्चाऽस्य रणे छित्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।
ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥
सर्वपारसवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।
तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥
चिच्छेद शतधा राजन्निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननंद ह ।
सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २९ ॥
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाऽष्टभिः ।
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ॥ ३० ॥
सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३१ ॥
ततोऽस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ॥ ३३ ॥
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ३४ ॥

पुत्र दुःशासन ने सन्नतपर्वयुक्त नव बाण सात्यकि को मारे। महाधनुर्धर सात्यकि ने भी सुवर्णपुङ्खशोभित पाँच बाण उनको मारे। दुःशासन ने हँसते हँसते सात्यकि को पहले तीन और फिर पाँच बाण मारे॥२२।२४॥ महाबली सात्यकि ने यह देखकर उनके ऊपर पाँच बाण छोड़े और फिर धनुष भी काट डाला। दुःशासन को यों आश्चर्य में डालकर वे अर्जुन की ओर बढ़े। अब दुःशासन ने क्रुद्ध होकर उन्हें मार डालने के निमित्त लोहे की एक भयानक शक्ति फेंकी। वीर सात्यकि ने स्फूर्ति के साथ कङ्कपत्र-शोभित तीक्ष्ण बाणों से उस शक्ति के सैकड़ों टुकड़े कर डाले॥२५।२७॥ महातेजस्वी दुःशासन ने दूसरा धनुष लेकर सात्यकि को बाणों से घायल किया और सिंह की भाँति गर्जना की। वह सिंहनाद सुनकर पराक्रमी सात्यकि क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने दुःशासन को व्याकुलता में डालकर, उनकी छाती में अग्निशिखा के समान बहुत से बाण मारकर, तीन और फिर बड़े भयानक आठ बाण मारे। वीर दुःशासन ने सात्यकि को बीस बाण मारे। तब अस्त्र जाननेवालों में प्रधान सात्यकि ने दुःशासन की छाती में तीन सन्नतपर्व बाण मारे और फिर बहुत ही उग्र कई बाणों से उनके सारथी और घोड़ों को मार डाला॥२७।३१॥ एक भल्ल बाण से दुःशासन का धनुष, पाँच भल्लों से दस्ताना, दो भल्लों से ध्वजा और रथशक्ति को काटकर अन्य तीक्ष्ण बाणों से उनके दोनों पृष्ठरक्षकों को

त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनाऽपवाहितः ।
तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ॥ ३५ ॥
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ।
भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत ॥ ३६ ॥
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ।
ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ।
जगाम त्वरितो राजन्येन यातो धनञ्जयः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२३॥

मार डाला॥३२।३४॥त्रिगर्तसेना के सेनापति ने जब देखा कि दुःशासन का धनुष कट गया, घोड़े और सारथी मर गये तथा रथ भी नष्ट हो गया तब उसने स्फूर्ति के साथ उनको अपने रथ पर बिठा लिया। वह उन्हें युद्धस्थल से हटा ले गया। महावीर सात्यकि ने दुःशासन को मार डालने के अभिप्राय से क्षण भर उसका पीछा किया; किन्तु फिर वह स्मरण करके कि भीमकर्मा भीमसेन ने सभा में सबके सम्मुख आपके सब पुत्रों को मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रक्खी है, फिर दुःशासन पर प्रहार नहीं किया। हे राजेन्द्र! शिनिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकि,दुःशासन को परास्त करके, उस मार्ग से आगे बढ़ने लगे जिस मार्ग से अर्जुन गये थे॥३४।३७॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ तेईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—किं तस्यां मम सेनायां नाऽऽसन्केचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाऽघ्नन्नाऽप्यवारयन् ॥ १ ॥
एको हि समरे कर्म कृतवान्सत्यविक्रमः ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥
अथवा शून्यमासीत्तद्येन यातः स सात्यकिः ।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥
यत्कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे ।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि सञ्जय ॥ ४ ॥
अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः ।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥

एक सौ चौबीस अध्याय ॥ १२४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरी सेना में क्या कोई ऐसे महारथी योद्धा नहीं थे, जो अर्जुन के समीप अकेले जाते हुए सात्यकि को रोक लेते? इन्द्र के समान पराक्रमी,सत्यविक्रमी सात्यकि ने दानवों के नाश करने- वाले इन्द्र की भाँति अकेले ही समरभूमि में इतना बड़ा कार्य कर दिखाया। सात्यकि क्या सारी कौरव-सेना को मारकर,राह को बिल्कुल खाली करके,उधर से गये थे अथवा उधर बहुत से वीर मृत्यु को प्राप्त

न सन्ति तस्मात्पुत्रा मे यथा सञ्जय भाषसे ।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात्सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥
कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम् ।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच—राजन्सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान् ।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ८ ॥
आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नाऽभूल्लोके समः कश्चित्समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥
तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥
न च वै तादृशो व्यूह आसीत्कश्चिद्विशाम्पते ।
यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥
चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद्बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥
पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन्नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥
संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्राऽऽसीत्सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥

हो चुके थे जिधर से सात्यकि गये ? हे सञ्जय ! तुम सात्यकि के द्वारा रण में जिस अद्भुत कर्म का होना बतलाते हो उसे स्वयं इन्द्र भी तो नहीं कर सकते ! ॥१।४॥यादवश्रेष्ठ सात्यकि के अश्रद्धेय चिन्त्य अद्भुत पराक्रम का समाचार सुनकर मैं बहुत ही व्यथित हो रहा हूँ। हे सञ्जय ! तुम जैसा वर्णन कर रहे हो उससे तो यही जान पड़ता है कि मेरे पुत्र किसी प्रकार बच नहीं सकते। सात्यकि ने अकेले ही बहुत सी सेना का संहार कर डाला। अब तुम यह समाचार मुझे सुनाओ कि अकेले सात्यकि बहुत सी सेना को लाँघकर किस प्रकार अर्जुन के समीप गये॥५।७॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आपकी सेना में असंख्य रथ, हाथी, घोड़े और पैदल योद्धा थे । आपकी सेना का उद्योग अपूर्व था। उतनी सेना कभी किसी युद्ध में एकत्र न हुई होगी। ऐसा जान पड़ता था कि यह सेना प्रलय कर देगी। आपकी सेनाओं में इतने देशों के शूर योद्धा आये थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। देखने के लिये आये हुए देवता और सिद्ध-चारण आदि परस्पर कह रहे थे कि संसार में इससे अधिक सेना एकत्र न हो सकेगी॥८।१०॥हे राजेन्द्र ! जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा सुनकर द्रोणाचार्य ने जैसा व्यूह बनाया था वैसा व्यूह और नहीं हो सकता। दोनों ओर से आक्रमण के निमित्त दौड़नेवाले सेना के झुण्डों में ऐसा कोलाहल हो रहा था कि मानों तूफान से उमड़े हुए सागरों का घोर गर्जन सुनाई पड़ रहा हो। आपके और पाण्डवों के दल में सहस्रों राजा लोग अपनी-अपनी सेना लेकर सम्मिलित हुए थे। समर में प्रशंसनीय कर्म करनेवाले कुपित वीरों का

अथाऽऽक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टाववरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६ ॥
यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥
तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा ।
भीमसेनेन ते राजन्पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥ १९ ॥
आजघ्नुः कौरवान्संख्ये त्यक्त्वाऽसूनात्मनः प्रियान् ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २० ॥
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाऽभ्यनन्दन्त जीवितम् ।
तथैव तावका राजन्प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ २१ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥
जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात्सात्यकिरर्जुनम् ।
कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः ।
तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥

लोमहर्षण शब्द सुनाई पड़ रहा था॥ ११।१४॥ उस समय महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर अपने सैनिकों से पुकार पुकारकर कहने लगे-तुम लोग शीघ्र आओ, दौड़ो, प्रहार करो। महातेजस्वी अर्जुन और सात्यकि शत्रुसेना के भीतर गये हैं। इस समय ऐसा यत्न करो, जिसमें वे शीघ्र ही सहज में जयद्रथ के समीप पहुँचकर उसको मार सकें। आज यदि महावीर अर्जुन और सात्यकि मारे गये तो कौरवगण कृतार्थ और हम परास्त होंगे। अतएव तुम सब मिलकर यत्नपूर्वक उसी प्रकार कौरवसेना को मथ डालो जिस प्रकार तूफान महासागर को मथ डालता है॥ १५।१९॥ इस प्रकार धर्मराज आदि की आज्ञा सुनकर महातेजस्वी योद्धा लोग, जीवन का मोह छोड़कर, कौरवों पर टूट पड़े। वे लोग अपने सुहृद पाण्डवों के हित के लिए अस्त्रप्रहार से निहत होकर स्वर्ग जाने में तनिक भी शङ्कित नहीं हुए। कौरवदल के योद्धा भी यश प्राप्त करने के निमित्त उत्सुक होकर घोर युद्ध करते हुए आगे बढ़ने लगे॥ १९।२१॥ हे राजेन्द्र! उस लोमहर्षण युद्ध में वीर सात्यकि सारी कौरव सेना को जीतते हुए अर्जुन की ओर बढ़ते ही चले जा रहे थे। कवचों पर सूर्य की किरणों से जो चमक उत्पन्न होती थी उससे सैनिकों के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न होने लगती थी। हे महाराज! उस समय वीर और मानी राजा दुर्योधन ने शूर पाण्डवों को व्यूह तोड़ने का प्रयत्न करते

दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् ।
स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
अभवत्सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।
धृतराष्ट्र उवाच—तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥ २६ ॥
कच्चिद्दुर्योधनः सूत नाऽकार्षीत्पृष्ठतो रणम् ।
एकस्य च बहूनां च सन्निपातो महाहवे ॥ २७ ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे ।
सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥ २८ ॥
एको बहून्समासाद्य कच्चिन्नाऽऽसीत्पराङ्मुखः ।
सञ्जय उवाच—राजन्संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥
एकस्य बहुभिः सार्धं श्रृणुष्व गदतो मम ।
दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्प्रतिलोडिता ।
ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।
स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च रथान्रणे ॥ ३४ ॥

देखकर उनकी भारी सेना के भीतर प्रवेश किया। तब पाण्डवों की सेना के साथ दुर्योधन का महाभयङ्कर और जनसंहारी संग्राम होने लगा॥२२।२६॥राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरे पुत्र राजा दुर्योधन ने शत्रुसेना में प्रवेश हो करके और सङ्कट में पड़-कर युद्ध में पीठ तो नहीं दिखाई? एक तो अकेले बहुत लोगों से युद्ध करना, उस पर स्वयं राजा का ऐसा करना, मुझे बहुत ही विषम जान पड़ता है। दुर्योधन सदा सुख में पला है; वह लक्ष्मी और प्रजा का स्वामी है। वह अकेला ही बहुत लोगों से युद्ध करने जाकर विषम विपत्ति देख रण से भाग तो नहीं खड़ा हुआ?॥२६।२९॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्योधन ने अकेले ही अनेक लोगों के साथ बड़ा अद्भुत संग्राम किया। मैं सब वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए। जैसे मस्त हाथी कमल के वन को रौंदता है वैसे ही महावीर दुर्योधन पाण्डवों की सेना को रौंदने लगे। महावीर भीमसेन और पाञ्चालगण अपनी सेना को नष्ट होते देखकर दुर्योधन की ओर वेग से दौड़ पड़े॥२९।३१॥तब वीर दुर्योधन ने भीमसेन को दस, नकुल को तीन, सहदेव को तीन, युधिष्ठिर को सात, विराट और द्रुपद को छः, शिखण्डी को सौ, धृष्टद्युम्न को बीस और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को तीन-तीन तीक्ष्ण बाण मारे। क्रुद्ध काल जैसे प्रजा का संहार करता है वैसे ही राजा दुर्योधन सैकड़ों अन्य योधाओं,

ततः शब्दो महानासीत्पुनर्येन धनञ्जयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥
अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥ ४६ ॥
द्रोणस्याऽपि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४ ॥

महाकोलाहल सुनाई पड़ा।महावीर अर्जुन और सात्यकि कौरवपक्ष की सेना से और व्यूह के द्वार पर स्थित द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना से घोर संग्राम करने लगे। इन वीरों के क्रुद्ध होकर संग्राम करने से भयङ्कर संहार हुआ॥४३।४७॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ चौबीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२४ ॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

सञ्जय उवाच—अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥
शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत्पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥
तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥
वरान्वरान्हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
आक्रीडत रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥
तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥
विमुञ्चन्विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत् ।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन्गन्धमादने ॥ ६ ॥

एक सौ पचीस अध्याय ॥ १२५ ॥

सञ्जय कहते हैं —हे नरनाथ ! इसके पश्चात् मध्याह्न काल होने पर फिर सोमकों के साथ आचार्य भयङ्कर युद्ध करने लगे। आपके हितचिन्तक, महा धनुर्दर, वीरवरों में अग्रगण्य द्रोणाचार्य लाल रङ्ग के घोड़ों से शोभित रथ पर बैठे हुए धीमी चाल से पाण्डव-सेना की ओर बढ़ने लगे। वे विचित्र पुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाणों से प्रधान-प्रधान योद्धाओं को मारते हुए समर-भूमि में विचर रहे थे॥१।४॥उस समय केकय देश के राजकुमार पाँचों भाइयों में सबसे बड़े युद्धनिपुण महावीर बृहत्क्षत्र महामेघ जैसे गन्धमादन पर्वत पर निरन्तर जल बरसाते हैं वैसे ही अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाकर आचार्य को पीड़ित करने लगे॥५।६॥बाणों

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्दश पञ्च च ॥ ७ ॥
तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान्क्रुद्धाशीविषसन्निभान् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥
तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणः ॥ ९ ॥
तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान् ।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १० ॥
ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १२ ॥
कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १३ ॥
ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १४ ॥
तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥ १५ ॥
कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथाऽत्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥

की मार से कुपित होकर आचार्य ने उनको क्रुद्ध सर्प-सदृश सुवर्णपुङ्ख-शोभित पन्द्रह बाण मारे। महाबाहु बृहत्क्षत्र ने आचार्य के प्रत्येक बाण को पाँच-पाँच बाणों से काट करके व्यर्थ कर दिया। आचार्य ने उनकी स्फूर्ति देखकर हँसकर उन पर फिर सन्नतपर्व-युक्त आठ उग्र बाण चलाये। बृहत्क्षत्र ने आचार्य के बाणों को अपनी ओर आते देखकर अपने उतने ही तीक्ष्ण बाणों से काट डाला। बृहत्क्षत्र का यह दुष्कर कार्य देखकर कौरवदल के सैनिक बहुत ही विस्मित हुए ॥७।११॥ तब बृहत्क्षत्र की प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्य ने उनके ऊपर एक बड़ा दिव्य ब्रह्मास्त्र छोड़ा। महाबाहु बृहत्क्षत्र ने भी स्फूर्ति के साथ दुर्जय ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से ही शान्त कर दिया। उन्होंने फिर द्रोणाचार्य को सुवर्णपुङ्खयुक्त पैने साठ बाण मारे॥१२।१४॥ तब वीरवर द्रोण ने बृहत्क्षत्र को घोर नाराच बाण मारा। वह बाण बृहत्क्षत्र के कवच को छिन्न-भिन्न करता हुआ वैसे ही पृथ्वी में प्रवेश हो गया जैसे कोई काला नाग बिल में प्रवेश करता है। आचार्य के बाणों की गहरी

द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सारथिं चाऽस्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ १८ ॥
द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान्कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥
व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः ॥ २० ॥
सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत् ।
द्वाभ्यां ध्वजं च च्छत्रं च छित्वा भूमावपातयत् ॥ २१ ॥
ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः ।
ह्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥
बृहत्क्षत्रे हते राजन्केकयानां महारथे ।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥
सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
विनिघ्नन्केकयान्सर्वान्पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् ।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५ ॥
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
वधायाऽभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥
सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम् ।
पुनश्चाऽन्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥

चोट खाने पर वीर बृहत्क्षत्र के नेत्र क्रोध से लाल हो आये। उन्होंने सत्तर तीक्ष्ण बाण आचार्य को और एक भयङ्कर बाण उनके सारथी को मर्मस्थल में मारा। ॥१५।१८॥ बृहत्क्षत्र के बाणों से महारथी द्रोणाचार्य बहुत ही पीड़ित हुए। उन्होंने भी अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाण मारकर बृहत्क्षत्र को व्याकुल कर दिया। फिर चार बाणों से उनके चारों घोड़ों को और एक बाण से सारथी को रथ से नीचे गिरा दिया, अन्य दो बाणों से छत्र और ध्वजा काट डाली और एक भयानक नाराच बाण से बृहत्क्षत्र का हृदय फाड़ करके उन्हें रथ से गिरा दिया॥१९।२२॥ कैकेयराज वीर बृहत्क्षत्र के मारे जाने पर शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु अत्यन्त ही कुपित होकर सारथी से बोले—हे सूत! सुदृढ़ कवचधारी आचार्य द्रोण जहाँ पर सारी केकेय और पाञ्चालसेना का नाश कर रहे हैं वहाँ मेरा रथ ले चलो॥२३।२४॥ यह सुनकर उनका सारथी काम्बोज देश के वेगगामी घोड़ों को हाँककर द्रोणाचार्य के समीप रथ ले गया। महाबली चेदिराज धृष्टकेतु, अग्नि में कूदने को उद्यत पतङ्ग की भाँति मरने के लिए आचार्य के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने आचार्य के रथ, ध्वजा और घोड़ों को ताककर साठ बाण मारे और आचार्य के ऊपर भी असंख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की। सोता हुआ बाघ जैसे छेड़ने से कुपित होता है वैसे ही महावीर द्रोण भी धृष्टकेतु के बाण-प्रहार से कुपित हो उठे। उन्होंने एक क्षुरप्र

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २९ ॥
तस्य द्रोणो हयान्हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥ ३१ ॥
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् ।
तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥ ३३ ॥
सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष ।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः ।
तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥ ३५ ॥
तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः ।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥
ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥

बाण से धृष्टकेतु के धनुष के दो टुकड़े कर डाले। तब धृष्टकेतु ने शीघ्रता से अन्य और धनुष लेकर कङ्कपत्रयुक्त बाण आचार्य को मारे॥२५।२७॥महावीर द्रोण ने चार बाणों से धृष्टकेतु के चारों घोड़े मारकर हँसते-हँसते उनके सारथी का सिर काट डाला। फिर धृष्टकेतु को तीक्ष्ण पचीस बाण मारे॥२८।३१॥तब महावीर धृष्टकेतु पत्थर की बहुत भारी सुवर्णभूषित भयानक गदा लेकर रथ से कूद पड़े। उन्होंने वह भयानक गदा आचार्य के ऊपर चलाई। वीर द्रोणाचार्य ने कुपित काली नागिन या कालरात्रि के समान उस गदा को, आते देख, बहुत से बाण मारकर स्फूर्ति के साथ काट डाला। द्रोणाचार्य के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर उस गदा के पृथ्वी पर गिरने से बड़ा भारी शब्द हुआ॥३१।३४॥ तब क्रोधविह्वल महावीर धृष्टकेतु ने उस गदा को व्यर्थ होते देख द्रोणाचार्य के ऊपर तीक्ष्ण तोमर और सुवर्णभूषित भयानक शक्ति फेंकी। द्रोणाचार्य ने पाँच-पाँच बाणों से तोमर और शक्ति को भी काट डाला। गरुड़ के काटे हुए सर्पों के समान दोनों शस्त्र कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥३५। ३६॥इसके पश्चात् प्रबल प्रतापी आचार्य ने धृष्टकेतु को मारने के निमित्त एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़ा। द्रोणाचार्य के उस बाण ने धृष्टकेतु का कवच तोड़कर हृदय विदीर्ण कर डाला। इस प्रकार धृष्टकेतु को मार करके वह बाण, कमलवन में प्रवेश होनेवाले हंस

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चाऽमितौजसः ।
अभ्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥
पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥ ३९ ॥
निहते चेदिराजे तु तत्खण्डं पित्र्यमाविशत् ।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥
तमपि प्रहसन्द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥
तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासन्धसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥
स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे ।
अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥
छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासन्धिं जघानाऽऽशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥
यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः ।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथाऽन्तकः ॥ ४६ ॥
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान्समावृणोत् ॥ ४७ ॥

की भाँति, पृथ्वी में प्रवेश हो गया। भूखा नीलकण्ठ पक्षी जैसे क्षुद्र पतङ्ग को ग्रस लेता है वैसे ही महारण में शूर द्रोणाचार्य ने धृष्टकेतु को मार डाला॥३७।३९॥ हे राजेन्द्र! चेदिराज धृष्टकेतु के मारे जाने पर उनके पुत्र ने कुपित होकर द्रोणाचार्य का सामना किया। वह भी शूर और श्रेष्ठ अस्त्रों का जानकार था; किन्तु बली व्याघ्र जैसे हिरन के बच्चे को मार डालता है वैसे ही आचार्य ने हँसते हँसते उसे भी मार डाला॥४०। ४१॥हे कुरुराज! इस प्रकार पाण्डव सेना को नष्ट होते देखकर महावीर जरासन्ध के पुत्र द्रोणाचार्य के सम्मुख आये और मेघ जैसे सूर्य को छिपा लेते हैं वैसे ही उन्होंने बाणवर्षा से आचार्य को अदृश्य सा कर दिया॥४२।४३॥क्षत्रियमर्दन द्रोणाचार्य ने उसकी स्फूर्ति देखकर उसपर सैंकड़ों-सहस्रों बाण बरसाये और सब धनुर्द्धर योद्धाओं के सम्मुख ही जरासन्ध के पुत्र को मार डाला। हे नरनाथ! उस समय रणभूमि में जो-जो वीर योद्धा उन यम-सदृश द्रोणाचार्य से युद्ध करने के निमित्त सम्मुख आते थे, उन सबको वे देखते ही देखते मार डालते थे॥४४।४६॥हे महाराज! इसके पश्चात् वीर द्रोणाचार्य समरभूमि में अपना नाम सुनाकर सहस्रों-लाखों बाणों से पाण्डव-सेना को पीड़ित करने लगे। सिल्ली पर घिसकर तीक्ष्ण किये गये और द्रोणाचार्य के नाम से शोभित वे बाण सैंकड़ों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के प्राण हरने लगे। इन्द्र के हाथों

ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनाऽस्ताः शिलाशिताः ।
नरान्नागान्हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥
ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥
प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा सन्त्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥
मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥
चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥
ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥
यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥
यतमानांस्तु तान्वीरान्भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान्विशेषतः ॥ ५६ ॥
तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥

से मारे जा रहे असुरों के समान आचार्य के हाथों मारे जाते हुए पाञ्चालसेना के वीरगण शीत से पीड़ित गायों की तरह भय से काँपने लगे॥४७।४९॥हे भरतवंशावतंस ! इस प्रकार आचार्य के बाणों से सब सेना का संहार होने पर पाण्डवपक्ष में कोलाहल सुन पड़ने लगा। एक तो सम्मुख सूर्य का असह्य तेज, दूसरे द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण बाणों की असह्य चोट का सामना था ! पाञ्चालसेना के लोग बहुत ही व्याकुल और भय से विह्वल हो उठे। द्रोण के बाणों की वर्षा से पाञ्चालसेना के वीर महारथी ऐसे मोहित हो गये जैसे किसी ने उनके पाँव पकड़ लिये हों॥५०।५२॥इसी समय चेदि, सृञ्जय, काशी और कोशल आदि देशों की सेनाओं के वीरगण द्रोणाचार्य से युद्ध करने के निमित्त आगे बढ़े। चेदि, पाञ्चाल, सृञ्जय आदि सब "द्रोण को मारो, द्रोण को मारो" कहते हुए आचार्य पर आक्रमण करने चले। वे सब वीर एकत्र होकर अपनी पूर्ण शक्ति से महातेजस्वी द्रोणाचार्य को मार डालने का यत्न करने लगे। उन्हें इस प्रकार अपने वध के निमित्त विशेष यत्न करते देखकर द्रोणाचार्य ने बाण बरसाना आरम्भ किया॥५३।५५॥उन्होंने क्षण भर में चेदि आदि वीरों का विनष्ट कर दिया। चेदिगण जिनमें प्रधान थे, उन वीरों का समूह क्षीण होने पर द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित पाञ्चालगण भय से काँपने लगे। द्रोणाचार्य का उग्र रूप और भयानक कर्म देख-

प्राक्रोशन्भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥
ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥
धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ॥ ६० ॥
द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्राऽदह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥
यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन्सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६२ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।
स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राऽऽधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६६ ॥
स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७ ॥

कर सब सेना अपनी रक्षा के निमित्त महाबली भीमसेन और धृष्टद्युम्न को चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगी। उस समय भीमसेन आप ही आप कहने लगे कि इन ब्राह्मण द्रोणने अवश्य ही कोई दुष्कर तप किया है तभी तोउसके प्रभाव से ये क्रुद्ध होकर हमारे पक्ष के श्रेष्ठ-श्रेष्ठ क्षत्रियों को मार रहे हैं॥५६।६९॥क्षत्रिय का धर्म युद्ध है और ब्राह्मणों का परम धर्म तपस्या। तपस्वी और कृतविद्य ब्राह्मण केवल दृष्टिपात से ही भस्म कर सकता है।अग्नि के समान तेजस्वी द्रोणाचार्य के अस्त्रों की अग्नि में बहुत से प्रधान-प्रधान क्षत्रिय भस्म हो गये हैं। ये महातेजस्वी महारथी द्रोणाचार्य अपने बल, उत्साह और शक्ति के अनुसार सब प्राणियों को मोहित करते हुए हमारी सेना का संहार कर रहे हैं॥६०।६२॥ हे राजेन्द्र! भीमसेन के ये वचन सुनकर धृष्टद्युम्न के पुत्र महापराक्रमी महावीर क्षत्रधर्मा क्रोधान्ध द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने अर्धचन्द्र बाण से आचार्य का बाणयुक्त धनुष काट डाला। क्षत्रियदलदलन द्रोणाचार्य ने और अधिक क्रोधित होकर दूसरा सुदृढ़ धनुष हाथ में लिया। बलवान् आचार्य ने शत्रुसेना को नष्ट करनेवाला एक बाण धनुष पर चढ़ाकर, कान तक खींचकर, क्षत्रधर्मा को मारा। वह बाण क्षत्रधर्मा के प्राण लेकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। क्षत्रधर्मा का हृदय फट गया और वे मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। धृष्टद्युम्न के पुत्र की मृत्यु हुई देखकर पाञ्चालसेना

अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः ।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत्त्रिभिः ।
तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥ ७० ॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।
चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥
तान्समेतान्रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन्द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥
आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरत् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥
अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४ ॥
ततो ब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान्नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान्हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५ ॥
कृच्छ्रान्दुर्योधनो लोकान्पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद्विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥
शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वभृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥

भय के मारे काँपने लगी॥६३।६७॥तब महाबली चेकितान ने आचार्य पर आक्रमण किया। उन्होंने आचार्य के वक्षःस्थल में तीव्र दस बाण मारे। फिर आचार्य के सारथी को चार और घोड़ों को भी चार बाण मारे। आचार्य ने भी उनके वक्षःस्थल और हाथों में तीन तीव्र बाण मारकर सात बाणों से ध्वजा काट डाली। फिर तीन बाणों से सारथी को मार गिराया। सारथी के मरने पर चेकितान के घोड़े रथ को ले भागे। द्रोणाचार्य ने बाण मारकर घोड़ों को व्याकुल कर दिया ॥६८।७१॥चेकितान को घोड़े रथ सारथी से हीन देख द्रोणाचार्य ने शूर चेदि,पाञ्चाल, सृञ्जय आदि को मारना और भगाना प्रारम्भ किया।उस समय साँवले वृद्ध द्रोणाचार्य—जिनकी अवस्था चार सौ वर्ष की थी और जिनके कानों तक के बाल पक गये थे—सोलह वर्ष के युवा की भाँति स्फूर्ति और उत्साह के साथ युद्ध कर रहे थे। निर्भय भाव से समरभूमि में विचरते हुए द्रोणाचार्य को उनके शत्रु इन्द्र समझ रहे थे॥७१। ७४॥हे महाराज! तब महाबाहु बुद्धिमान् द्रुपद राजा ने कहा—बाघ जैसे क्षुद्र मृगों को मारता है वैसे ही ये, लोभ के मारे दुर्योधन का पक्ष लेनेवाले, द्रोणाचार्य क्षत्रियों को मार रहे हैं। दुर्मति दुर्योधन मरकर नरक में घोर यातना भोगेगा, क्योंकि इसी के लोभ के कारण अकारण समर में शूर क्षत्रिय मार जा रहे हैं। कटे हुए बैलों की भाँति ये सब क्षत्रिय रक्त

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान्द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

से नहाये हुए पृथ्वी पर पड़े हैं; कुत्ते और गीदड़ इन्हें खा रहे हैं। हे राजेन्द्र ! अक्षौहिणीपति राजा द्रुपद यों कहकर, पाण्डवों को आगे करके, शीघ्रता के साथ द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने चले॥७५।७८॥

द्रोणपर्व का एक सौ पचीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२५ ॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

सञ्जय उवाच—व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥
द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥
नाऽपश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥ ४ ॥
ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाऽथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥
सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन्व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
अपश्यन्सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाऽभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥
नाऽध्यगच्छत्तदा शान्तिं तावपश्यन्नरोत्तमौ ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥

एक सौ छब्बीस अध्याय ॥ १२६ ॥

सञ्जय कहते हैं— हे महाराज ! पाण्डवों के व्यूहों को द्रोणाचार्य ने इस प्रकार विमर्दित किया कि पाञ्चाल और सोमक लोग उनसे बहुत दूर चले गये। प्रलयकाल-तुल्य जगत् का नाश करनेवाला लोमहर्षण संग्राम होने लगा। पराक्रमी आचार्य युद्धभूमि में वारम्बार सिंहनाद कर रहे थे। पाञ्चालों की सेना कम हो चली और पाण्डवों की सेना बहुत ही पीड़ित हुई। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर को ऐसा कोई वीर न देख पड़ा, जो उनकी सेना की रक्षा करता। हे राजेन्द्र ! वे वारम्बार यह सोचकर भी कुछ निश्चय न कर सके कि किस प्रकार उनकी सेना की रक्षा हो सकेगी॥१।४॥ इसके पश्चात् अर्जुन को देखने के लिए व्याकुल होकर वे चारों ओर देखने लगे; किन्तु अर्जुन या श्रीकृष्ण न देख पड़े। केवल अर्जुन के रथ की वानरचिह्नयुक्त ऊँची धजा देख पड़ी और गाण्डीव धनुष का भयानक शब्द सुनाई पड़ा। व्यथित युधिष्ठिर को महारथी

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।
पदवीं प्रेपितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९ ॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयङ्करः ।
तदिदं ह्येकमेवाऽऽसीद् द्विधा जातं ममाऽद्य वै ॥ १० ॥
सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
सात्यकिं प्रेपयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेपयिष्ये पदानुगम् ।
करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेपणं यदि ॥ १२ ॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।
भ्रातुरन्वेपणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
लोकापवादभीरुत्वात्सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥
पदवीं प्रेपयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।
यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥ १६ ॥
स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥
असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८ ॥

सात्यकि भी नहीं देख पड़े। सात्यकि, अर्जुन और वासुदेव को न देखकर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत ही व्याकुल और चिन्तित हुए; उन्हें किसी प्रकार शान्ति नहीं प्राप्त होती थी॥५।८॥ लोकापवाद से भयभीत होकर धर्मराज, सात्यकि के रथ की ओर देखते हुए, सोचने लगे कि मैंने मित्रों को अभय देनेवाले सत्यपराक्रमी सात्यकि को अर्जुन की सूचना लाने के निमित्त भेज दिया है। पहिले मुझे एक अर्जुन के लिये ही चिन्ता थी, परन्तु अब मुझे सात्यकि और अर्जुन दोनों के लिए चिन्ता हो रही है। सात्यकि और अर्जुन दोनों के कुशल समाचार प्रतीत होने चाहिएं। अर्जुन की सूचना लाने के निमित्त तो सात्यकि को भेजा था; अब सात्यकि की सूचना लाने के लिए किसको भेजूं ?॥९।१२॥ यदि मैं सात्यकि के कुशल-समाचार प्राप्त करने का यत्न न करके अपने भाई अर्जुन की ही खोज करूंगा तो लोग मेरी निन्दा करेंगे। सो लोकापवाद के भय से मैं इस समय महाबली भीमसेन को सात्यकि का पता लगाने के निमित्त भेजूंगा॥१२।१५॥ ऐसा न करने से लोग कहेंगे कि धर्मराज ने भाई की सूचना लाने के निमित्त सात्यकि को तो भेज दिया, परन्तु उनकी सूचना न ली। शत्रुनाशन अर्जुन मुझे जितने प्यारे हैं, उतने ही प्रिय वृष्णिवीर सात्यकि भी हैं। मैंने महावीर सात्यकि को बड़ा भारी काम सौंपकर भेजा है। वे भी मित्र के अनुरोध और अपने गौरव-लाभ

प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।
न चाऽप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन ॥ २० ॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥
यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२ ॥
इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥ २३ ॥
कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥
अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥ २५ ॥
ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
यन्तारमब्रवीद्राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।
धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥ २७ ॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।
भीमसेनमनुज्ञाप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८ ॥

का विचार करके, महासागर में मगर की भाँति, शत्रुओं की भारी सेना के भीतर प्रवेश कर गये हैं। महारथी सात्यकि के साथ ऐसे सैनिक युद्ध कर रहे हैं जो समर से कदापि पीछे नहीं हटते। यह उन्हीं का घोर कोलाहल सुन पड़ रहा है॥१५।१८॥अतएव मैं इस समय अवसर के अनुरूप कर्तव्य का निश्चय करके अर्जुन और सात्यकि के समीप भीमसेन को भेजना ही उचित समझता हूँ। इस लोक में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे महाबली भीमसेन न कर सकते हों। वे अकेले ही अपने बाहुबल के प्रभाव से पृथ्वी के सब वीरों से युद्ध कर सकते हैं। हम उन्हीं के बाहुबल के आश्रय वनवास के कष्टों से उबरकर लौटे हैं और अपराजित समझे जाते हैं॥१९।२२॥वही महाबली भीमसेन, अर्जुन और सात्यकि के समीप जाकर, अवश्य उनकी सहायता कर सकेंगे। सात्यकि और अर्जुन दोनों ही सब प्रकार के अस्त्रों के ज्ञान में निपुण हैं; विशेषकर श्रीकृष्ण ही उनके रक्षक हैं। उनके निमित्त तो किसी प्रकार की चिन्ता करना उचित नहीं है; किन्तु फिर भी मेरा अन्तःकरण उनकी कुशल जानने के निमित्त बहुत उत्कण्ठित हो रहा है। अतएव सात्यकि की सूचना लाने के निमित्त मैं इस समय भीमसेन को भेजूँगा। ऐसा करने से ही मैं सात्यकि के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सकूँगा॥२३।२६॥धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने मन में अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया

कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्र समादिशत् ।
स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥ २९ ॥
अब्रवीद्वचनं राजन्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यः सदेवान्सगन्धर्वान्दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥ ३० ॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनाऽनुजस्य ते ।
ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाऽद्राक्षं न चाऽश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।
पुराऽतिदुःखदीर्णानां भवान्गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ।
नह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥ ३३ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।
यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनञ्जयः ॥ ३६ ॥
तस्मिन्विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीं चमूम् ॥ ३८ ॥

और फिर सारथी से कहा—हे सूत ! तुम इसी समय मेरे रथ को भीमसेन के रथ के समीप ले चलो। अश्वविद्या-विशारद सारथी ने युधिष्ठिर के रथ को भीमसेन के समीप पहुँचा दिया॥२६।२९॥व्याकुल हुए-हुए राजा युधिष्ठिर ने वहाँ पहुँचकर,ठीक अवसर जानकर,भीमसेन से कहा—"हे भाई भीमसेन ! केवल एक रथ से जिन महावीर ने देवता,गन्धर्व,दैत्य आदि को जीत लिया था उन्हीं तुम्हारे भाई अर्जुन का कोई चिह्न नहीं देख पड़ता"॥२९।३१॥इतना कहकर शोक से व्याकुल राजा युधिष्ठिर अचेत से हो गये। उनकी यह दशा देखकर भीमसेन ने कहा—हे धर्मराज ! आपको इस प्रकार व्याकुल होते मैंने कभी देखा या सुना नहीं है। पहले वनवास आदि के समय,असह्य दुःख के अवसरों पर, आप हमें समझाते और धैर्य देते थे। हे महात्मन् ! उठिए, उठिए, शोक करना छोड़िए। हे राजेन्द्र ! आज्ञा कीजिए, मैं क्या करूँ ? हे कुरुश्रेष्ठ ! शोक न कीजिए। कहिए, क्या आज्ञा है ? इस लोक में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मैं आपके निमित्त न कर सकूँ॥३१।३४॥[सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज !] काले नाग की भाँति श्वास लेते हुए युधिष्ठिर नेत्रों में आँसू भरकर मलिन मुख हो भीमसेन से कहने लगे—हे भीम ! यशस्वी श्रीकृष्ण कुपित होकर शङ्ख बजा रहे हैं। उनके शङ्ख का जैसा शब्द सुन पड़ रहा है उससे मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारे

तस्य वै गमनं विद्धो भीम नाऽऽवर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥
व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥ ४० ॥
तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिन्दम ।
अर्जुनार्थं महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥
वर्धते हविषेवाऽग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥ ४२ ॥
तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवाऽनुजम् ॥ ४३ ॥
तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥
सहायो नाऽस्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलम्।
तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥
न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परन्तप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः ॥ ४८ ॥

भाई अर्जुन संग्राम में मारे गये हैं। और,उनके मरने से क्रुद्ध होकर,स्वयं कृष्णचन्द्र शत्रुसेना से युद्ध कर रहे हैं॥३४।३७॥पाण्डवगण जिनके बल-वीर्य के आश्रय जीवित हैं, जो वीर विपत्ति के समय हम लोगों का प्रधान सहारा हैं,उन पराक्रमी,मत्त हाथी के समान बलशाली, प्रियदर्शन अर्जुन को जयद्रथ-वध के लिए कौरवों की सारी सेना के भीतर प्रवेश किये बड़ी देर हुई;परन्तु वे अभी तक नहीं लौटे। उनकी कुछ सूचना भी नहीं प्राप्त हुई। यही मेरे शोक का कारण है॥३७।४१॥महाबाहु अर्जुन और सात्यकि के निमित्त मेरा शोक, घी की आहुति पड़ने से अग्नि के समान, बढ़ता ही जा रहा है। मुझे अर्जुन की ध्वजा नहीं देख पड़ती। इससे मैं शोकाभिभूत हो रहा हूँ॥४१।४४॥ मुझे जान पड़ता है कि अर्जुन को निहत देखकर युद्ध-निपुण श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध कर रहे हैं। महारथी सात्यकि भी अकेले ही तुम्हारे भाई अर्जुन की सूचना लेने गये हैं। उनके लिए मैं भी मोहित सा हो रहा हूँ। हे भीमसेन! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। यदि मेरी आज्ञा का पालन करना तुम अपना कर्तव्य समझते हो, यदि मेरे प्रति तुम्हें श्रद्धा भक्ति है तो जहाँ अर्जुन और सात्यकि हैं वहाँ के लिए चल दो॥४५।४७॥सात्यकि को तुम अर्जुन से भी प्रिय समझो। वे महावीर मेरे हित के लिए अत्यन्त दुर्गम, साधारण लोगों के लिए अगम्य, बहुत ही भयानक मार्ग से अकेले ही अर्जुन

पद्वीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ।
दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

के समीप गये हैं। हे वीरश्रेष्ठ ! तुम अभी जाओ। यदि वासुदेव, अर्जुन और सात्यकि कुशल से हों तो जोर से सिंहनाद करके उनकी सूचना मुझको देना ॥४८।४९॥

द्रोणपर्व का एक सौ छब्बीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२६ ॥

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

भीमसेन उवाच—ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥
आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः ।
समेत्य तान्नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम् ।
धृष्टद्युम्नाय बलवान्सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्त्तते ।
न च मे गमने कृत्यं तादृक्पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः ।
एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥ ६ ॥
प्रयास्ये तत्र यत्राऽसौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः ।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥ ७ ॥
यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः ।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

एक सौ सत्ताईस अध्याय ॥ १२७ ॥

भीमसेन ने कहा—हे धर्मराज ! महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण जिस बहुमूल्य रथ पर बैठकर गये हैं उस पर पहले समय में ब्रह्मा, महेश्वर, इन्द्र और वरुण बैठते थे। इस कारण श्रीकृष्ण और अर्जुन के लिए किञ्चित्-मात्र भी भय नहीं है, तथापि मैं आपकी आज्ञा को मानकर उनके समीप जाता हूँ। आप वृथा शोक न करें, मैं अभी उनके समीप पहुँचकर उनके कुशल समाचार दूँगा॥१।२॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! युधिष्ठिर से यों कहकर और धृष्टद्युम्न तथा अन्य मित्रों को युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंप करके महाबली भीमसेन शत्रुसेना की ओर बढ़े। उन्होंने परम प्रतापी धृष्टद्युम्न को सम्बोधन करके कहा—हे महाबाहो ! तुम भली-भाँति जानते ही हो कि महारथी द्रोणाचार्य धर्मराज को पकड़ने के लिए पूर्ण यत्न कर रहे हैं। इस समय

एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ।
तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाऽविचारयन् ।
नाऽहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १० ॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ।
ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ।
परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाऽऽशिषः शुभाः ।
कृत्वा प्रदक्षिणान्विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु ।
द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥ १४ ॥
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः ।
पश्यन्नेवाऽऽत्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥
अनुलोमानिलैश्चाऽऽशु प्रदर्शितजयोदयः ।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदी सतलत्राणः स रथी रथिनां वरः ।
तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्धिमत् ॥ १७ ॥

उनकी रक्षा करना ही मेरा मुख्य कर्त्तव्य है॥३।८॥ अर्जुन के समीप मेरे जाने की उतनी आवश्यकता नहीं; किन्तु धर्मराज मुझसे जाने के निमित्त कह रहे हैं। मैं उनकी आज्ञा को टाल नहीं सकता। निर्भय धर्मराज की आज्ञा मानना ही मेरा कर्त्तव्य है। इस कारण मैं अर्जुन और सात्यकि की सूचना लेने जाता हूँ। अब तुम सावधान होकर रणभूमिमें युधिष्ठिर की रक्षा करो; मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ मरनेवाला जयद्रथ छिपा हुआ है। धर्मराज की रक्षा करना ही हम लोगों का आवश्यक कर्त्तव्य है॥८।९॥हे राजेन्द्र!महावीर धृष्टद्युम्नने भीमसेन के वचन सुनकर कहा—हे पार्थ! तुम कुछ सोच-विचार न करो। जाओ,मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही धर्मराज की रक्षा करूँगा। मैं सत्य कहता हूँ कि मेरे जीते जी द्रोणाचार्य किसी प्रकार धर्मराज को नहीं पकड़ सकेंगे॥९।११॥कुण्डल, अङ्गद आदि आभूषणों से शोभित और ढाल-तलवार बाँधे हुए भीमसेन इस प्रकार धृष्टद्युम्न को युधिष्ठिर की रक्षा का काम सौंपकर, उनके चरणों में प्रणाम करके, जाने को प्रस्तुत हुए। धर्मराज ने उन्हें गले से लगाकर उनका मस्तक सूँघा और आशीर्वाद दिये। पूजित सम्मानित प्रसन्न चित्त ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके आठ प्रकार के माङ्गलिक पदार्थों(अग्नि, गाय, सुवर्ण, दूब, गोरोचन, अमृत अर्थात् घी, अक्षत और दही) को छूकर भीमसेन ने कैरातक तीव्र मदिरा पी। उनके नेत्र लाल हो आये और तेज दुगना हो उठा। वायु उनके अनुकूल चलकर विजय की सूचना देने लगी॥११।१४॥ ब्राह्मणों ने विजय के लिए उनका स्वस्त्ययन किया। वे मन ही मन अपने को विजयी समझकर आनन्दित हो उठे। उनके अङ्गों में स्वर्णखचित मणिमुक्तामण्डित महामूल्य लोहमय कवच होने से वे विद्युद्दाममण्डित

विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।
पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाऽम्बुदः ।
प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशाम्पते ।
तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।
एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥ २१ ॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत्सव्यसाचिनि ॥ २२ ॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।
आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः ।
स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः ॥ २४ ॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ २५ ॥
गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः ।
ततः पाण्डुसुतो राजन्भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियङ्करः ॥ २७ ॥

मेघजाल के समान शोभा को प्राप्त हुए। पीले, लाल, श्वेत, काले आदि रङ्गों के चित्र-विचित्र वस्त्र और कण्ठत्राण पहनने से वे इन्द्रधनुष से शोभित मेघ के समान जान पड़ने लगे॥१५।१९॥इसी समय फिर पाञ्चजन्य शङ्ख का शब्द सुन पड़ा। धर्मराज युधिष्ठिर उस त्रिभुवन को भयभीत करा देनेवाले शङ्खनाद को सुन कर भीमसेन से कहने लगे—हे भीमसेन! यह देखो, महात्मा वासुदेव का श्रेष्ठ शङ्ख पाञ्चजन्य पृथ्वी और अन्तरिक्ष को प्रतिध्वनित कर रहा है। अवश्य ही अर्जुन महाविपत्ति में पड़ गये हैं और श्रीकृष्ण कौरवों से युद्ध कर रहे हैं॥१९।२३॥आज अवश्य ही आर्या कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा बन्धु बान्धवों सहित ऐसी कठिन आपत्ति को, असगुनों के रूप में, देख रही होंगी। अतएव तुम शीघ्र ही यहाँ से जाओ। महावीर सात्यकि और अर्जुन को न देख पाने से मुझे सब ओर अँधेरा ही अँधेरा देख पड़ रहा है॥२३।२५॥हे महाराज! भाइयों के हितचिन्तक प्रतापी महावीर भीमसेन, इस प्रकार बड़े भाई के बार-बार व्याकुल होकर अनुरोध करने से, उसी समय गोह के चमड़े के अंगुलित्राण उंगलियों में पहनकर धनुष बाण लेकर धनुष को बारम्बार बजाने लगे। उस समय भीमसेन ने दुन्दुभि और शङ्ख बजाकर सिंहनाद किया। इससे वीरों के भी हृदय दहल गये। भीमसेन अब युद्ध के निमित्त अपनी सेना से बाहर निकले॥२६।२७॥विशोक

आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चाऽसकृत् ।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ॥ २८ ॥
तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत ।
दर्शयन्घोरमात्मानममित्रान्सहसाऽभ्ययात् ॥ २९ ॥
तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः ।
विशोकेनाऽभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥
आरुजन्विरुजन्पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना ।
सम्प्रकर्षन्विकर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवाऽमराः ॥ ३२ ॥
तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।
दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशति ॥ ३३ ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखौ दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥
तैः समन्तादृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान्समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥

सारथी के द्वारा रथ में जोते गये। उत्साहपूर्ण, मन और वायु के सदृश वेग से जानेवाले घोड़े उनके रथ को ले चले। महावीर भीमसेन धनुष की डोरी खींचकर बाण बरसाकर शत्रुपक्ष की सेना को मारते-भगाते और शस्त्रों के प्रहार से छिन्न-भिन्न करते हुए आगे बढ़ने लगे। इन्द्र के पीछे जानेवाले देवताओं के समान पाञ्चालगण और सोमकगण भीमसेन के पीछे-पीछे जाने लगे॥२९।३२॥ हे राजेन्द्र! उस समय दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन, ये सब आपके पुत्र असंख्य सेना और पैदल योद्धाओं को साथ लेकर भीमसेन की ओर दौड़े और उन्हें आगे न बढ़ने देने का प्रयत्न करने लगे॥३३।३६॥ उन वीर राजकुमारों से घिरे हुए भीमसेन ने क्रोध-पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा और कुपित सिंह जैसे मृगों के झुण्ड पर आक्रमण करता है वैसे ही उनपर आक्रमण किया। मेघ जैसे सूर्यमण्डल को ढक लेते हैं वैसे ही उन वीरों ने दिव्य अस्त्र-शस्त्र बरसाकर भीमसेन को ढक दिया। महापराक्रमी भीमसेन बड़े वेगसे उन्हें लाँघकर द्रोणाचार्य की सेना के सम्मुख पहुँचे। अपने सम्मुख की गज-सेना के ऊपर वे तीक्ष्ण

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥
स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥
सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत्पवनात्मजः ॥ ४० ॥
त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन्द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ४१ ॥
पुनश्चाऽतीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवाऽर्णवम् ॥ ४२ ॥
ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवाऽऽदित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥
स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममाऽयं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ४४ ॥
भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५ ॥
यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ४६ ॥
अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥

बाण बरसाने लगे॥३७।३९॥उनके बाणों से छिन्न-भिन्न हाथियों के दल चारों ओर भागने लगे। वन में शरभ (सिंह से भी बढ़कर जीवधारी) के गरजने से मृगों के झुण्ड जैसे भयभीत हो जाते हैं वैसे ही भीमसेन के सिंहनाद और बाण-प्रहार से वे हाथी बहुत ही भयभीत हो गये और भयानक शब्द करते हुए इधर-उधर भागने लगे। महावीर भीमसेन इस प्रकार गज-सेना को लाँघकर बड़े वेग से द्रोणाचार्य की सेना के सम्मुख दौड़े। तटभूमि जैसे महासमुद्र के वेग को रोकती है वैसे ही आचार्य ने भीमसेन को रोका और हँसकर उनके मस्तक में एक बाण मारा। मस्तक में आचार्य का बाण लगनेसे भीमसेन उस समय ऊर्ध्वरश्मि सूर्य के समान शोभायमान हुए॥४०।४३॥द्रोणाचार्य ने, यह समझकर कि अर्जुन की भाँति भीमसेन भी मेरा सम्मान करेंगे, उनसे कहा—हे भीमसेन! मैं तुम्हारा शत्रु हूँ। इस समय मुझे परास्त किये बिना तुम शत्रु-सेना के भीतर नहीं जा सकते। श्रीकृष्ण सहित अर्जुन मेरी अनुमति से इस व्यूह के भीतर गये हैं, किन्तु तुम किसी प्रकार नहीं जा सकते॥४४।४६॥क्रोध से लाल नेत्र किये और बारम्बार श्वास ले रहे भीमसेन ने गुरु द्रोणाचार्य के ये वचन सुनकर कहा—हे ब्राह्मण! अर्जुन तुम्हारी अनुमति से इस व्यूह के भीतर नहीं गये हैं। महापराक्रमी दुर्द्धर्ष अर्जुन इन्द्र की सेना के भीतर भी अपने बाहुबल से जा सकते हैं। और, जो

तवाऽर्जुनो नाऽनुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्याऽपि विशेद्बलम् ॥ ४८ ॥
तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नाऽर्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः॥ ४९ ॥
पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥
अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथाऽस्त्विह ॥ ५१ ॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम् ।
अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवाऽन्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद्राजन्स रथादवपुप्लुवे ।
साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्याऽपोथयत्तदा ॥ ५३ ॥
प्रामृद्नाच्च बहून्योधान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः ।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी ।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥
ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः ।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥

उन्होंने तुम्हारी पूजा और सम्मान किया भी हो तो मैं वैसा नहीं कर सकता। मैं दयालु अर्जुन नहीं, तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ॥४७।५०॥हे आचार्य! जब तुम हमारे पिता, गुरु और हितैषी थे तब हम भी तुम्हारे पुत्र थे। उस समय हम प्रणत होकर तुम्हारा सम्मान करते थे; किन्तु अब तुम उसके विपरीत आचरण कर रहे हो और अपने को हमारा शत्रु बता रहे हो, इसलिए अब वह सम्बन्ध नहीं रहा। यदि तुम अपने को पाण्डवों का शत्रु मानते हो तो वही सही। यह देखो, भीमसेन तुम्हारे साथ शत्रु के योग्य कार्य ही करके दिखाता है॥५०।५२॥अब उन्होंने वैसे ही गदा घुमाकर द्रोणाचार्य के ऊपर फेंकी जैसे यमराज कालदण्ड को घुमावें। द्रोणाचार्य शीघ्र ही अपने रथ पर से कूद पड़े। उस गदा के प्रहार से द्रोणाचार्य का रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथी सब चूर-चूर हो गये। हे महाराज! महाबली भीमसेन इस प्रकार आचार्य को रथहीन करके आपकी सेना को नष्ट करने लगे। प्रचण्ड आँधी जैसे वृक्षों को तोड़ती और गिराती है वैसे ही वायु के तुल्य पराक्रमी भीमसेन वेग से आपकी सेना को रौंदने और मारने लगे। तब अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य दूसरे रथ पर बैठकर व्यूह के द्वार की रक्षा करने लगे॥५२।५४॥हे राजेन्द्र! उस समय आपके पुत्रों ने फिर भीमसेन को घेर लिया। महापराक्रमी भीमसेन क्रुद्ध होकर, सम्मुख स्थित रथसेना का लक्ष्य करके, तीक्ष्ण

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत् ।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥
आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५९ ॥
अथाऽन्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम् ।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ६० ॥
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत्पुनः ॥ ६१ ॥
अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥
वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥
ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि ।
मेघा इवाऽऽतपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥ ६४ ॥
स तद्बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाऽचलः ।
प्रतीच्छन्पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥
विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम् ।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६ ॥
ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥

बाण बरसाने लगे। आपके वीर पुत्रगण भीमसेन के बाणों से पीड़ित होकर भी जय की आकाँक्षा से मैदान में स्थिर रहे और भीमसेन से भिड़कर घोर संग्राम करने लगे। तब दुःशासन ने कुपित होकर भीमसेन को मार डालने की आकाँक्षा से उन पर, यमदण्ड के समान, लोहे की उग्र रथशक्ति चलाई। महावीर भीम ने दुःशासन की फेंकी हुई उस शक्ति को आते देखकर उसके दो टुकड़े कर डाले। उन्होंने यह बहुत ही अद्भुत कार्य किया॥५५।५९॥भीमसेन ने क्रुद्ध होकर तीन तीन बाणों से कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन को मार डाला। फिर कुरुकुल की कीर्ति बढ़ाने वाले वीर वृन्दारक को मार गिराया। इसके पश्चात् उन्होंने तीन बाणों से अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन नाम के आपके तीन पुत्रों को यमपुर भेज दिया॥६०।६२॥महाबली भीमसेन के हाथों मारे जा रहे आपके पुत्र भी भीमसेन को चारों ओर से घेरकर उन पर उसी प्रकार तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे जिस प्रकार वर्षा-ऋतु में मेघ पर्वतों पर जलधारा छोड़ते हैं। पर्वतों की भाँति अटल होकर पराक्रमी भीमसेन उस शिला-वर्षा के तुल्य बाणवर्षा को सहने लगे। उन्हें उससे तनिक भी व्यथा नहीं हुई। इसके पश्चात् भीमसेन ने हँसते-हँसते तीक्ष्ण बाणों से सुवर्मा, विन्द और अनुविन्द को मार डाला; फिर आपके पुत्र वीर सुदर्शन को भी उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया॥६३।६६॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत्पाण्डुनन्दनः ॥ ६८ ॥
ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥
प्राद्रवन्सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।
अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ ७० ॥
विव्याध समरे राजन्कौरवेयान्समन्ततः ।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् ।
तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥ ७२ ॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।
तलशब्दं च सुमहत्कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

महापराक्रमी भीमसेन ने बहुत ही शीघ्र उस रथसेना को तीव्र बाणों से नष्ट कर दिया। कुछ योद्धा मर गये और कुछ भाग गये॥६७।६८॥तब भीमसेन के रथ के शब्द और सिंहनाद से भयभीत होकर बाणवर्षा से पीड़ित आपके पुत्र, सिंह के आगे से मृगों के समान, भागने लगे। भीमसेन ने कौरवों की उस विशाल सेना का पीछा किया और चारों ओर से कौरवों को बाणों से घायल करना प्रारम्भ कर दिया। उनके हाथों मारे जा रहे आपकी सेना के वीर योद्धा, उन्हें छोड़कर, वेग से अपने वाहनों को हाँकते हुए समरभूमि से भागने लगे॥६८।७२॥हे महाराज! महाबली भीमसेन इस प्रकार उन सबको जीतकर सिंह की भाँति गरजने और ताल ठोकने लगे। उस रथसेना को परास्त करके, वीरों को मारकर और रथियों को लाँघकर भीमसेन फिर द्रोणाचार्य की सेना की ओर बड़े वेग से चले ॥७२।७४॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ सत्ताईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२७ ॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

सञ्जय उवाच—समुत्तीर्णरथानीकं पाण्डवं विहसन्रणे ।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥
पिबन्निव शरौघांस्तान्द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान्मोहयन्बलमायया ॥ २ ॥

एक सौ अट्ठाईस अध्याय ॥ १२८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्य ने भीमसेन को जब विशाल रथसेना लाँघकर आगे बढ़ते हुए देखा तब उन्हें रोकने के निमित्त वे बाणों की वर्षा करने लगे। द्रोणाचार्य के धनुष से छूटे हुए बाणों को

तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उद्यच्छन्स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ॥ ४ ॥
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ।
इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
प्रामथ्नात्सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥
घोषेण महता राजन्पूरयन्तीव मेदिनीम् ।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥
तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ७ ॥
तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥
ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव ॥ ९ ॥
स तान्विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान्दुरासदान् ।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥
तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ११ ॥
भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत्सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥

भीमसेन मानों पीते ही जाते थे। वे अपना बल प्रकट करके आपके पुत्रों को मोहित करते हुए उनकी ओर वेग से चले। तब राजा लोग बड़े बड़े धनुष लेकर, आपके पुत्रों की प्रेरणा से, भीमसेन की ओर बढ़े और घेर कर उन पर प्रहार करने लगे॥१।३॥ उनसे घिरे हुए भीम, मुसकुराते हुए, गदा तानकर भयानक सिंहनाद करने लगे। शत्रुपक्ष को नष्ट करनेवाली गदा घुमाकर भीमसेन ने उन पर आक्रमण किया। भीमसेन की चलाई हुई, इन्द्र के वज्र के समान, भयङ्कर गदा रण-भूमि में आपके सैनिकों को नष्ट करने लगी। महा शब्द से पृथ्वी को परिपूर्ण करती और तेज से प्रज्व-लित वह गदा आपके पुत्रों को भयविह्वल करने लगी ॥४।६॥ आपके पक्ष के सब वीर योद्धा उस तेजोराशि गदा को अपने ऊपर गिरते देखकर आर्तनाद करते हुए चारों ओर भागने लगे। गदा का असह्य शब्द सुनकर रथी लोग इतने भयभीत हो गये कि रथों पर से नीचे गिरने लगे। भीमसेन की गदा से मारे जा रहे आपके पक्ष के सैनिक, सिंह को देखकर भागनेवाले मृगों के समान, भयभीत होकर भागने लगे॥७।९॥ महापराक्रमी भीमसेन इस प्रकार दुर्जय दुर्दर्प शत्रुओं को भगाकर गरुड़ के समान वेग से उस सेना को लाँघ गये। महावीर द्रोणाचार्य महान् महारथी भीमसेन को

तद्युद्धमासीत्सुमहद्धोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥
यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन्पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ ।
वेगमास्थाय बलवान्मनोनिलगरुत्मताम् ॥ १६ ॥
यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया ।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥
स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष ।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १८ ॥
द्रोणस्तु सत्वरो राजन्क्षिप्तो भीमेन संयुगे ।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥ १९ ॥
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा ।
गत्वा वेगात्पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः ।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥ २१ ॥
व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः ।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ २२ ॥

इस प्रकार सेना का संहार करते देखकर उनके सम्मुख आये। बाण-वर्षा से भीमसेन को रोककर उन्होंने एकाएक पाण्डवों को भय-विह्वल कर देनेवाला सिंहनाद किया ॥१०।१२॥ उस समय देवासुर युद्धके समान द्रोणाचार्य और भीमसेन का घोर युद्ध होने लगा। आचार्य सुतीक्ष्ण बाणों से सहस्रों वीरों को मारने और गिराने लगे। तब भीमसेन अपने रथ से कूद पड़े और अपने नेत्र मूँदकर बड़े वेग से पैदल ही द्रोणाचार्य की ओर दौड़े॥१३।१६॥ नड़ा भारी साँड़ जैसे सहज ही जल की वर्षा को सह लेता है वैसे ही द्रोणाचार्य के बाणों की कुछ चिन्ता न करके भीमसेन आचार्य के समीप पहुँच गये। कन्धे में सिर और वक्षःस्थल में दोनों हाथ रखकर मन, वायु और गरुड़ के समान वेग से दौड़कर भीमसेन ने द्रोणाचार्य के रथ का धुरा पकड़कर उसे उठाया और पटक दिया॥१७।१९॥ उस रथ से आचार्य शीघ्र कूद पड़े। [रथ चूर-चूर हो गया।] अब दूसरे रथ पर बैठकर आचार्य व्यूह के द्वार पर आ गये। भीमसेन ने गुरु को उत्साह-हीन भाव से आते देखकर फिर वही काम किया; अर्थात् अत्यन्त कुपित भीमसेन ने धुरा पकड़कर उस रथ को भी पटक दिया। हे महाराज! इस प्रकार महाबली भीमसेन ने, जैसे कोई बालक खेल करे वैसे, द्रोणाचार्य के आठ रथ चूर-चूर कर डाले; किन्तु द्रोणाचार्य फिर क्षण भर में अन्य रथ पर बैठकर आ जाते थे। आपके पक्ष के योद्धा लोग आश्चर्य-

तस्मिन्क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २३ ॥
ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥
स मृद्नन्क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
आगच्छद्दारयन्सेनां सिन्धुवेगो नगानिव ॥ २५ ॥
भोगानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाऽभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६ ॥
सन्त्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत्सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २७ ॥
भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान्बहून्युद्धविशारदान् ॥ २८ ॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥
भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान्पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥
सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥ ३२ ॥

पूर्ण दृष्टि से भीमसेन का यह अद्भुत कर्म देख रहे थे॥१९।२२॥इसी समय भीमसेन का सारथी स्फूर्ति के साथ घोड़ों को हाँककर उनके समीप रथ ले आया। महाबली भीमसेन अपने रथ पर बैठकर बड़े वेग से आपके पुत्र की सेना को मारते हुए आगे चले। प्रचण्ड आँधी जैसे वृक्षों को तोड़ती और गिराती है वैसे ही युद्धभूमि में क्षत्रियों को मारते और सिन्धु का वेग जैसे वृक्षों की रुकावट को नहीं मानता वैसे ही शत्रु-सेना को चीरते फाड़ते महाबली भीमसेन आगे बढ़ने लगे॥२३।२५॥फिर कृतवर्मा के द्वारा सुरक्षित भोज-सेना के समीप जाकर उसे भी उन्मथित करते हुए वे और आगे निकल गये। तल-शब्द से सब सेनाओं को भयभीत कराते हुए महाबली भीमसेन ने वैसे ही सबको परास्त कर दिया जैसे बैलों के झुण्ड को सिंह मार भगाता है। भोज-सेना को लाँघकर काम्बोजों, दरदों तथा अन्य बहुत से युद्धनिपुण म्लेच्छों की सेना को मारते और लाँघते हुए भीमसेन ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से उन्हें युद्ध कर रहे महारथी सात्यकि देख पड़े। महाबली भीमसेन वेग से रथ हाँककर आगे बढ़ने लगे। हे महाराज! अर्जुन को देखने के निमित्त उत्कण्ठित भीमसेन इस प्रकार आपके सब योद्धाओं को हराते और लाँघते हुए अर्जुन के समीप पहुँच गये ॥२६।३०॥उन्होंने देखा कि पराक्रमी अर्जुन, जय-द्रथ को मारने के निमित्त, यत्नपूर्वक घोर युद्ध कर

तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥
तौ श्रुत्वा युगपद्वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥
ततः पार्थौ महानादं मुञ्चन्वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥
भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥
विशोकश्चाऽभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनञ्जयस्य समरे जयमाशास्तवान्विभुः ॥ ३७ ॥
तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।
दत्ता भीम त्वया संविरकृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥
नहि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टाऽसि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥ ४० ॥
दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४१ ॥
येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४२ ॥

रहे हैं। वर्षाकाल में मेघ जैसे जोर से गरजते हैं वैसे ही, अर्जुन को देखकर, भीमसेन भयानक सिंहनाद करने लगे॥३०।३२॥उस समय तेजस्वी भीमसेन का भयङ्कर सिंहनाद सुनकर, उन्हें देखने की अभिलाषा से, महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण बारम्बार गरजते हुए दो बली साँडों की भाँति आगे बढ़ने लगे।हे महाराज! भीमसेन और अर्जुन का सिंहनाद सुनकर इधर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए और समर में अर्जुन की विजय की आशा करने लगे॥३४।३७॥मदमत्त गजराज की भाँति भीमसेन का गरजना सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर हँसकर मन में कहने लगे कि हे भीमसेन! तुमने गुरुजन की आज्ञा का पालन करके अर्जुन के कुशल समाचार को मुझ तक पहुँचा दिया, इससे मेरी चिन्ता दूर हो गई। हे पाण्डव! जिनसे तुम शत्रुता रखते हो वे कभी युद्ध में विजय नहीं प्राप्त कर सकते। बड़ी बात तो यह है कि जो अर्जुन जीवित हैं। यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि सत्यपराक्रमी सात्यकि कुशल से हैं। बड़ी बात तो यह है कि जो मैं रणभूमि में श्रीकृष्ण और अर्जुन के गरजने का शब्द सुन रहा हूँ॥३८।४१॥इन्द्र को रण में जीतकर अग्नि को तृप्त करनेवाले और शत्रुओं का नाश करनेवाले अर्जुन रणभूमि में जीवित हैं, यह बड़े ही भाग्य की बात है। जिनके बाहुबल के आश्रय हम लोग जीवित हैं वे रण में शत्रुसेना का नाश करनेवाले अर्जुन जीवित हैं,

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः ।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४३ ॥
निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः ।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४४ ॥
कौरवान्सहितान्सर्वान्गोग्रहार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥
कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे ।
योऽवधीद्भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४६ ॥
गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै ।
जितवान्योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४७ ॥
किरीटमाली बलवाञ्श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४८ ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तश्चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान्हि यः ॥ ४९ ॥
कच्चित्स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनञ्जयः ।
कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥ ५० ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ।
कच्चित्सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान्हि फाल्गुनेन निपातितः ।
कच्चिद्दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति ।
दृष्ट्वा विनिहतान्भ्रातॄन्भीमसेनेन संयुगे ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति ॥ ५३ ॥

यह बड़े भाग्य की बात है। देवताओं के लिए दुर्जय निवातकवच दानवों को एक धनुष से जीतनेवाले अर्जुन जीवित हैं, यह बड़े ही भाग्य की बात है॥४३।४५॥ विराट नगर में गोहरण के निमित्त आये हुए सब कौरवों को परास्त करनेवाले, चौदह सहस्र दुर्द्धर्ष कालकेय दानवों को महारण में बाहुबल से मारनेवाले, दुर्योधन को छुड़ाने के निमित्त बली गन्धर्वराज को अस्त्रबल से जीतनेवाले, किरीटमाली, बलवान, श्रीकृष्ण को अपना सारथी बनानेवाले, मेरे परम प्रिय अर्जुन जीवित हैं, यह बड़े ही सौभाग्य की बात है॥४६।४८॥पुत्र के मारे जाने के शोक से पीड़ित होकर महावीर अर्जुन ने दुष्कर कर्म करने की अभिलाषा से जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है। उनकी वह प्रतिज्ञा क्या सफल होगी? क्या वे युद्ध में जयद्रथ को मार सकेंगे! श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित अर्जुन सूर्य के अस्त होने से पहले ही जयद्रथ को मारकर, प्रतिज्ञा पूर्णकर, क्या मुझसे

समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन्क्षितौ ।
शस्त्राणि न्यपतन्दोर्भ्यः केषांचिच्चाऽसवोऽद्रवन् ॥ १७ ॥
वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥
प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत ।
गृध्रकङ्कबलैश्चाऽऽसीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥ १९ ॥
तस्मिन्सुतुमुले राजन्कर्णभीमसमागमे ।
ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥
विव्याध चाऽस्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः ।
प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद्रणे ॥ २१ ॥
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः ।
तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
असम्प्राप्तांश्च तान्भीमः सायकैर्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥
तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ।
सञ्छाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः ।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥

अपने तीव्र बाणों से उनके बाणों को व्यर्थ, और उन्हें पीड़ित, करने की चेष्टा करने लगे। वहाँ रथों और घोड़ों पर सवार जितने वीर योद्धा कर्ण और भीमसेन का युद्ध देख रहे थे वे उनकी तलध्वनि और सिंहनाद सुनकर काँपने लगे। भीमसेन का भयानक सिंहनाद सुनकर क्षत्रियों को प्रतीत हुआ कि आकाश और पृथ्वीमण्डल उस सिंहनाद से परिपूर्ण हो रहा है ॥१२।१६॥ अब महापराक्रमी भीमसेन ने ऐसा घोर सिंहनाद किया कि सब योद्धाओं के हाथों से धनुष और शस्त्र गिर पड़े। कोई-कोई मर गये। भय के मारे बहुतों का मल-मूत्र निकल पड़ा। सब वाहन व्याकुल हो गये। उस समय बहुत से घोर असगुन और उत्पात दिखाई पड़ने लगे। अन्तरिक्ष में गिद्धों और कङ्क पक्षियों के झुण्ड मँडराने लगे॥१६।२०॥तब महाबली कर्ण ने बीस बाण भीमसेन को और पाँच बाण उनके सारथी को मारे। यह देखकर हँसते हुए भीमसेन ने कर्ण को चौंसठ बाण मारे।महावीर कर्ण ने फिर चार बाण मारे। महाप्रतापी भीमसेन ने ऐसी स्फूर्त्ति दिखाई कि अपने सन्नतपर्व बाणों से उन बाणों को राह में ही काट डाला॥२१।२३॥तब महावीर कर्ण ने असंख्य बाण बरसाकर भीमसेन को अदृश्य कर दिया। महाबली भीमसेन ने कर्ण की बाण-वर्षा में बारम्बार अपने को छिपते देखकर अत्यन्त कुपित हो उनके धनुष को काट डाला और फिर तीव्र बाण मारे। वीर कर्ण दूसरा

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान्नतपर्वणः ।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥
तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २८ ॥
सुस्राव चाऽस्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः ।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥
किञ्चिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः ।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ ३२ ॥
हताश्वात्तु रथात्कर्णः समप्लुत्य विशाम्पते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥
निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवन्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥
तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥
समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाऽकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन्भृशम् ॥ ३६ ॥

धनुष लेकर, उस पर डोरी चढ़ाकर, फिर तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को पीड़ित करने लगे॥२५।२६॥कर्ण के बाणों की चोट से अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीमसेन ने उनकी छाती में बड़े विकट तीन बाण मारे। छाती में लगे हुए उन तीन बाणों से वीर कर्ण बड़े ही ऊँचे शिखरवाले त्रिशृङ्ग पर्वत के समान शोभायमान हुए। धातु की धाराएँ बहानेवाले पर्वत से जैसे गेरू बहती है वैसे ही कर्ण के हृदय से रक्त बह चला। महापराक्रमी कर्ण ने इस प्रकार भीमसेन के भयानक प्रहार से अत्यन्त पीड़ित और कुछ विचलित होकर, धनुष पर बाण चढ़ाकर, उन पर निरन्तर सहस्रों बाण बरसाये॥२७।३०॥कर्ण के बाणों से पीड़ित भीमसेन ने, क्रोध और गर्व के साथ, क्षुर बाण से कर्ण के धनुष की डोरी काटकर उनके सारथी को भल्ल बाण से मारा और रथ के घोड़े को भी मार गिराया। बिना घोड़ों के रथ से कर्ण शीघ्र उतरकर वृषसेन के रथ पर चले गये॥३१।३३॥हे महाराज! पराक्रमी भीमसेन इस प्रकार से वीर कर्ण को हराकर मेघगर्जन के समान दारुण सिंहनाद करने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर वह सिंहनाद सुनकर, कर्ण को पराप्त समझ, बहुत ही प्रसन्न हुए। पाण्डवों की सेना में चारों ओर शङ्ख बजने लगे॥३४।३६॥कौरव-दल के वीर भी शत्रुपक्ष का शङ्खनाद और कोलाहल

दृष्ट्वा चाऽन्यान्महायोधान्पातितान्धरणीतले ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ५४ ॥
कच्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति ।
शेषस्य रक्षणार्थं च सन्धास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥
एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा ।
कृपयाऽभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षे अष्टात्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

आकर मिलेंगे ? दुर्योधन का हितैषी राजा जयद्रथ अर्जुन के हाथों से मरकर अपने शत्रु पाण्डवों को क्या प्रसन्न करेगा ? अर्जुन के बाणों से जयद्रथ को मरते देखकर राजा दुर्योधन क्या हम लोगों से सन्धि कर लेंगे ?॥४९।५३॥भीमसेन के हाथों अपने भाइयों को मरते देखकर मन्दमति दुर्योधन क्या हम लोगों से सन्धि करेंगे ? अन्य बड़े-बड़े वीर योद्धाओं को मरकर पृथ्वी पर गिरते देख क्या मन्दमति दुर्योधन को पश्चात्ताप होगा ? क्या केवल भीष्म पितामह की मृत्यु से हम लोगों का वैर शान्त हो जायगा ? क्या बचे हुए वीरों की रक्षा करने के निमित्त दुर्योधन हमसे सन्धि कर लेंगे ? हे महाराज ! दयालु राजा युधिष्ठिर इधर इस प्रकार की अनेक बातें सोच ही रहे थे और उधर कौरव और पाण्डव घोर संग्राम कर रहे थे॥५३।५६॥

द्रोणपर्व का एक सौ अट्ठाईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२८ ॥

अथ एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १ ॥
न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कञ्चन ।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥ २ ॥
गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह सञ्जय ।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेग्रतः पुमान् ॥ ३ ॥
रथं रथेन यो हन्यात्कुञ्जरं कुञ्जरेण च ।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ४ ॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्राञ्जिघांसतः ।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५ ॥
भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान् ।
प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः ॥ ६ ॥

एक सौ उनतीस अध्याय ॥ १२९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महावीर भीमसेन जब इस प्रकार मेघ-गर्जन के समान घोर सिंहनाद करने लगे तब किन-किन शूरों ने उन्हें रोकने की चेष्टा की ? काल की भाँति युद्ध करने के निमित्त गदा उठाकर खड़े हुए कुपित भीमसेन के आगे युद्ध-भूमि में खड़ा होनेवाला मुझे तो त्रिभुवन में कोई नहीं

काल्यमानांस्तु पुत्रान्मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे ।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥
न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक्कृष्णान्नापि च सात्वतात् ।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम ॥ ८ ॥
भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान्दिधक्षतः ।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच—तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्बली ॥ १० ॥
व्याक्षिपन्सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः ।
कर्णः सुयुद्धमाकांक्षन्दर्शयिष्यन्बलं मृधे ॥ ११ ॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः ।
भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम् ॥ १२ ॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपाऽस्य शिलाशितान् ।
तान्प्रत्यगृह्णात्कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान् ॥ १३ ॥
ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा ।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे ॥ १४ ॥
रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम् ।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे ॥ १५ ॥
खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः ।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

देख पड़ता॥१।३॥जो बाहुबलशाली भीमसेन रथ से रथ को और हाथी से हाथी को मार डालते हैं उनके आगे कौन ठहरेगा? साक्षात् इन्द्र भी तो उनके आगे ठहरने का साहस नहीं कर सकते॥४।६॥वतलाओ, साक्षात् काल के समान महावीर भीमसेन कुपित होकर जब, वन को जलाते हुए दावानल के समान, मेरे पुत्रों का संहार करने लगे तब दुर्योधन के हितचिन्तक किस-किस वीर ने सम्मुख जाकर उन्हें रोकने का यत्न किया? हे सञ्जय! महावीर भीमसेन के बाहुबल से मैं जितना भयभीत होताहूँ उतना अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि से नहीं भयभीत होता। हे सञ्जय! मेरे पुत्रों को भस्म करने के निमित्त जलती हुई अग्नि के समान क्रोध से प्रचण्ड भीमसेन को किन-किन योद्धाओं ने रोका? यह विस्तारपूर्वक मुझसे कहो॥७।९॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महाबली भीमसेन को सिंहनाद करते देखकर महारथी कर्ण घोर सिंहनाद करते हुए उनके सम्मुख आये। उनसे युद्ध करने और रण में अपना बल विक्रम दिखलाने की अभिलाषा से कुपित होकर, बहुत बड़ा धनुष खींचकर, कर्ण ने भीमसेन की राह रोक ली। जैसे कोई बड़ा पेड़ वायु को रोकना चाहे वैसे ही कर्ण भी भीमसेन को रोकने की चेष्टा करने लगे॥१०।१२॥पराक्रमी भीमसेन वेग से आकर सम्मुख कर्ण को देख बहुत कुपित हुए और उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महावीर कर्ण भी

स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद्राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥ ३७ ॥
गाण्डीवं व्याक्षिपत्पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत्।
तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः ।
अश्रूयत तदा राजन्सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥
ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक्पृथगजिह्मगैः ।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

सुनकर, उसके उत्तर में,सिंहनाद करने लगे। प्रबल-प्रतापी वीर अर्जुन भी गाण्डीव धनुष की डोरी बजाने लगे और वासुदेव पाञ्चजन्य शङ्ख के शब्द से शत्रुओं के हृदय दहलाने लगे। किन्तु महावीर भीमसेन का भीषण सिंहनाद उन सब शब्दों को दबाकर योद्धाओं के कानों में प्रवेश करने लगा। इस समय कर्ण कुछ शिथिलता से और भीमसेन दृढता से एक दूसरे पर फिर बाण बरसाने लगे॥३७।३९॥

द्रोणपर्व का एक सौ उनतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२९ ॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

सञ्जय उवाच—तस्मिन्विलुलिते सैन्ये सैन्धवायाऽर्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् ।
स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परयाऽयुतः ॥ २ ॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥ ३ ॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ।
अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥ ४ ॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥

एक सौ तीस अध्याय ॥ १३० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस प्रकार सब सेना के भागने पर जयद्रथ की ओर अर्जुन को और उनके पीछे सात्यकि तथा भीमसेन को जाते देखकर आपके पुत्र दुर्योधन कर्त्तव्य के बारे में बहुत कुछ सोचते विचारते हुए द्रोणाचार्य के समीप गये। दुर्योधन का रथ बड़ी शीघ्रता के साथ आचार्य के समीप पहुँचा ॥१।२॥ दुर्योधन ने क्रोध पूर्ण स्वर में व्याकुलता के साथ कहा—हे गुरुवर! अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन हमारी सब सेना को मथकर और महारथियों को जीतकर सिन्धुराज जयद्रथ के समीप पहुँच गये हैं। उन्हें कोई नहीं रोक सका। वे अपराजित होकर युद्ध कर रहे हैं और हमारी सेना का संहार किये डालते हैं। मान लीजिए कि महारथी अर्जुन आपके आगे से निकल गये और आप उन्हें रोक नहीं सके। किन्तु सात्यकि और

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्वे एवाऽपराजिताः ।
यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ।
आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः ।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥
नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥
एवङ्गते तु कृत्येऽस्मिन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥
यत्कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम् ।
तत्संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥
द्रोण उवाच—चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्छृणुष्व मे ।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥
यावत्तेषां भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् ।
तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ १४ ॥
सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः ।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याऽभिरक्षणम् ॥ १५ ॥

भीमसेन किस प्रकार आपको लाँघकर व्यूह के भीतर चले गये॥३।७॥समुद्र के सूख जाने के समान इस असम्भव को सम्भव होते देख सब लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है।अर्जुन,सात्यकि और भीमसेनसे आपके हारने का दृश्य देखकर लोग आपकी निन्दा कर रहे हैं। सबका कहना है कि धनुर्वेद के पूर्ण पण्डित द्रोणाचार्य को युद्ध में इन लोगों ने कैसे परास्त कर दिया ? इनसे आचार्य के पराजित होने की वास्तविकता में सबको सन्देह है। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूँ। ये तीनों महारथी जब आप जैसे वीर को लाँघकर व्यूह के भीतर चले गये हैं तब अवश्य ही इस संग्राम में मेरा विनाश होगा। जो होना था सो तो हो ही गया। अब सोचिए, आगे के लिए क्या प्रबन्ध होना चाहिए। इस समय भली भाँति सोचकर सिन्धुराज की रक्षा का कोई उपाय कीजिए॥८।१२॥ द्रोणाचार्य ने कहा—हे दुर्योधन! सोचने को तो बहुत कुछ सोचा जा सकता है, किन्तु इस समय जो करना चाहिए सो सुनो। पाण्डवपक्ष के तीन महारथी हमारी सेना को लाँघकर आगे निकल गये हैं। पीछे उनका जैसा भय है, वैसे ही आगे भी भय है। किन्तु जहाँ पर अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं वहीं अधिकतर भय की आशङ्का है। कौरवों की सेना को इस समय आगे से भी और पीछे से भी शत्रुओं ने घेर लिया है। मेरी सम्मति में इस समय सब प्रकार से जयद्रथ की रक्षा करना सबसे आवश्यक है। हे तात! क्रुद्ध अर्जुन से

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात् ।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥
सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावुभौ जयपराजयौ ।
यान्स्म तान्ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान्स मन्यमानः प्राक्शरास्ते हि दुरासदाः ।
यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान्विशाम्पते ।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥
सैन्धवे तु महद्द्यूतं समासक्तं परैः सह ।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत्कर्तुमर्हथ ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥
यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् ।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः ॥ २३ ॥
इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चाऽपरान् ।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान्सहितान्पाण्डुसृञ्जयैः ॥ २४ ॥
ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णमाचार्यशासनात् ।
उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५ ॥

ही हमें इस प्रकार जयद्रथ की रक्षा करनी चाहिए। कठिनता तो यह है कि सात्यकि और भीमसेनभी अर्जुन की सहायता करने को जयद्रथ की ओर गये हैं॥१३। १६॥हे राजेन्द्र ! पहले शकुनि की सम्मति मानकर तुमने सभा में जो द्यूतक्रीडा की थी उसी का यह परिणाम अब प्राप्त हुआ है । उस समय सभा में हार-जीत कुछ नहीं हुई थी । इस समय हम लोग प्राणों का दाव लगाकर जो जुआ खेल रहे हैं, इसी में असली हार-जीत होगी। पहले कुरु सभा में शकुनी ने जिन पाँसों से लेकर खेल खेला था उन्हें वह पाँसे समझता था, किन्तु वास्तव में वे पाँसे नहीं, दुर्द्धर्ष तीव्र बाण थे, जो इस समय बड़े बड़े वीरों का नाश कर रहे हैं। हे महाराज! उस समय जुआ नहीं हुआ था, असली जुआ इसी समय हो रहा है । कौरवों और पाण्डवों में दाव लगा हुआ है। सेना को गोटें, बाणों को पाँसे और जयद्रथ के जीवन को बाजी अर्थात् दाँव समझो। आज ही जुए की हार जीत का परिणाम निकलेगा। आज जयद्रथ के जीवन की बाजी लगाकर शत्रुओं के साथ जो जुआ खेला जा रहा है इसी पर तुम्हारी जीत या हार निर्भर है॥१७।२१॥हे महाराज! हम लोग अपने जीवन का मोह छोड़कर रणभूमि में विधिपूर्वक जयद्रथ की रक्षा करेंगे। उनकी रक्षा में हमारी जय है और उनकी मृत्यु में हमारी हार। जहाँ पर महारथी लोग यत्नपूर्वक जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं वहाँ तुम

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् ॥ २६ ॥
यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा ।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २७ ॥
पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम् ।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥ २८ ॥
ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत्संख्यमुत्तमम् ।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥ २९ ॥
तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ ३० ॥
तमविध्यद्युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
विंशत्या सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३१ ॥
दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाऽच्छिनत् ।
एकेन कार्मुकं चाऽस्य चकर्त तनयस्तव ॥ ३२ ॥
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३३ ॥
युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे ।
व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे ॥ ३४ ॥
तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः ।
अविध्यत्सारथिं चाऽस्य प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३५ ॥

भी शीघ्र जाओ और जयद्रथ की रक्षा करनेवालों की रक्षा करो। मैं इसी स्थान रहकर पाञ्चाल, पाण्डव, सृञ्जय आदि की सेना को रोकूँगा और तुम लोगों की सहायता के लिए कुमक भेजूँगा॥२१।२४॥हे महाराज! द्रोणाचार्य की आज्ञा से राजा दुर्योधन उग्र कर्म करने के निमित्त उद्यत होकर, अपने अनुचरों के साथ, जयद्रथ के समीप जाने के निमित्त शीघ्र आगे बढ़े। उसी समय अर्जुन के चक्ररक्षक पाञ्चाल-राजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा, सेना के बाहरी भाग को भेदकर, अर्जुन के समीप जाने को बढ़े। अर्जुन जब आपकी सेना के भीतर प्रवेश हुए थे तब वीर कृतवर्मा ने इन चक्ररक्षकों को भीतर जाने नहीं दिया था। युधामन्यु और उत्तमौजा ने जब उधर जाने की राह न पाई तब मध्य से जाने का अभिप्राय छोड़कर, सेना के पार्श्वभाग को छिन्न-भिन्न करके, वे आपकी सेना के भीतर गये। दुर्योधन ने उन्हें पार्श्वभाग से अर्जुन के समीप जाने के निमित्त प्रस्तुत देखकर रोका। बली दुर्योधन और उनके भाई शीघ्रता के साथ उन दोनों वीरों से घोर युद्ध करने लगे॥२५।२९॥महारथी क्षत्रियश्रेष्ठ युधामन्यु और उत्तमौजा ने भी धनुष तानकर दुर्योधन आदि का सामना किया। युधामन्यु ने कङ्कपत्रशोभित तीस बाण दुर्योधन को मारे। साथ ही बीस बाण उनके सारथी को और चार बाण घोड़ों को मारे। वीर दुर्योधन ने कुपित होकर एक बाण से युधामन्यु की ध्वजा काट

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः ।
जघान चतुरोऽस्याऽश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३६ ॥
उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे ।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥ ३७ ॥
स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः ।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि ॥ ३८ ॥
हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा ।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥ ३९ ॥
हताश्वसूतात्स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४० ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्याद्युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥
ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥
भंक्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥ ४३ ॥
पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

डाली, एक बाण से धनुष काट डाला, एक भल्ल बाण से सारथी को मार गिराया और चार तीक्ष्ण बाण मारकर उनके रथ के चारों घोड़ों को विह्वल कर दिया॥३०।३३॥तब महावीर युधामन्यु ने क्रुद्ध होकर स्फूर्त्ति के साथ दुर्योधन की छाती में तीस बाण मारे। उत्तमौजा ने भी क्रोध करके सुवर्णभूषित बाणों से दुर्योधन के सारथी को मारकर गिरा दिया। वीर दुर्योधन ने कुपित होकर उत्तमौजा के दोनों पार्श्वरक्षकों, सारथी और चारों घोड़ों को मार डाला॥३४।३६॥इस प्रकार सारथी और घोड़ों के मरने पर महावीर उत्तमौजा ने स्फूर्त्ति के साथ अपने भाई युधामन्यु के रथ पर चले गये और बाणों की वर्षा करके दुर्योधन के घोड़ों को भगाने लगे। वे घोड़े उत्तमौजा के बाणों से पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और मर गये। उस समय युधामन्यु ने तीक्ष्ण बाण से दुर्योधन के तरकस और धनुष को काट डाला ॥३७।३९॥तब पराक्रमी राजा दुर्योधन सारथी और घोड़ों से रहित रथ छोड़कर, गदा हाथ में लेकर, पाञ्चाल देश के दोनों वीरों पर झपटे। वे शत्रुविजयी क्रुद्ध दुर्योधन को गदा मारने के निमित्त आते देखकर शीघ्र रथ से उतर पड़े। दुर्योधन ने गदा के प्रहार से उनके सुवर्ण-मण्डित रथ के घोड़े, सारथी, ध्वजा आदि सहित चूर्ण कर डाला अब दुर्योधन मद्रराज शल्य के रथ पर चले गये। पाञ्चालदेश के दोनों राजकुमार भी अन्य रथों पर बैठकर अर्जुन के समीप जाने के लिए आगे बढ़े॥४०।४४॥

द्रोणपर्व का एक सौ तीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३० ॥

अथ एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय. ॥ १३१ ॥

सञ्जय उवाच—वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥
राधेयो भीममानर्च्छंद्युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—यौ तौ कर्णश्च भीमश्च संप्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥ ३ ॥
पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥
भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नाऽन्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥
भयाद्यस्य महाबाहो न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन्नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताऽऽहवे ॥ ७ ॥
ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥ ८ ॥
यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥

एक सौ इकतीस अध्याय ॥ १३१ ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! इस प्रकार लोमहर्षण समाग छिड़जाने पर सब सेना को व्याकुल देख कर महारथी कर्ण ने भीमसेन का सामना किया। जैसे वन में मस्त हाथी मस्त हाथी से भिड़ना है वैसे ही महावीर कर्ण भीमसेन से युद्ध करने के निमित्त उनकी और झपटे॥१।२॥राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अर्जुन के रथ के समीपवर्ती स्थान में महाबली भीमसेन और कर्ण से कैसा संग्राम हुआ? वीर कर्ण पहले भीमसेन से परास्त होकर भी फिर कैसे उनसे युद्ध करने गये? और भीमसेन को ही पृथ्वी में प्रसिद्ध महारथी कर्ण से युद्ध करने के निमित्त कैसे साहस हुआ?॥३।५॥ भीष्म और द्रोण के अतिरिक्त यदि धर्मराज युधिष्ठिर को किसी से भय है, तो महारथी कर्ण से ही। वे नित्य महारथी कर्ण के पराक्रम का खयाल करके उनके भय से बरसों नींद भर सोये तक नहीं। उन्हीं ब्रह्मण्य, पराक्रमी, समर से विमुख न होनेवाले श्रेष्ठ योद्धा कर्ण से भीमसेन ने निर्भय होकर कैसे युद्ध किया?॥७। ८॥महाबली कर्ण और भीमसेन ने परस्पर भिड़कर किस प्रकार कैसा युद्ध किया? पहले कुन्ति से कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को नहीं मारूँगा और कर्ण को यह भी प्रतीत हो गया था कि पाण्डव उनके भाई हैं। फिर दयालु

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ १० ॥
भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन्वैरं पुराकृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥
आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्पाण्डवानिति ॥ १२ ॥
जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥
यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥
अनेकान्विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥
योऽजयत्पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥
यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥
यथा तयोर्युद्धमभूद्यश्चाऽऽसीद्विजयी तयोः ।
तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच—भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्राऽऽस्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १९ ॥
तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

कर्ण ने भीमसेन से कैसे युद्ध किया ? शूर भीमसेन ने ही कर्ण से होनेवाले अपने पहले के वैर का स्मरण करके किस प्रकार उनसे युद्ध करने का साहस किया? ॥९।११॥हे सञ्जय ! मेरा पुत्र दुर्योधन सदा आशा किया करता था कि कर्ण अकेले ही सब पाण्डवों को संग्राम में परास्त कर देगा। मेरे मन्दमति पुत्र की जय की आशा कर्ण पर निर्भर है; मेरे पुत्रों ने कर्ण का ही विश्वास करके महारथी पाण्डव से वैर किया था; उसी कर्ण से भीमसेन ने कैसा युद्ध किया? कर्ण के कारण होनेवाले अपने अनेक उपकारों का स्मरण करके भीमसेन ने उससे कैसा युद्ध किया?॥१२।१५॥जिस पराक्रमी ने एक ही रथ से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया था और जिसने कवच और कुण्डल पहने हुए ही जन्म लिया था उसी कर्ण से भीमसेन ने किस प्रकार युद्ध किया ? हे सञ्जय ! उन दोनों ने किस प्रकार युद्ध किया और उनमें कौन विजयी हुआ, यह वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझसे कहो॥१६।१८॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! भीमसेन कर्ण को छोड़कर अर्जुन और श्री-

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन्बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥

कर्ण उवाच—भीमाऽहितैस्तव रणः स्वप्नेऽपि न विभावितः ।
तद्दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥ २२ ॥
कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २३ ॥
भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद्युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥
अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥
विधित्सुः कलहस्याऽन्तं जिघांसुः कर्णमाक्षिणोत् ।
हत्वा तस्याऽनुगास्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥
तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परन्तपः ।
अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २७ ॥
तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत्परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥
स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्बली ॥ २९ ॥
युध्यमानं तु संरम्भाद्भीमसेनं हसन्निव ।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन्वृकोदरम् ॥ ३० ॥

कृष्ण के समीप जाने के निमित्त प्रस्तुत हुए। यह देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर वीर कर्ण ने उसका पीछा किया॥ मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसाते हैं वैसे ही वीर कर्ण भीमसेन के ऊपर कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥१९।२०॥कर्ण ने जोर से हँसकर, युद्ध करने के निमित्त ललकारकर,भीमसेन से कहा—हे भीम! स्वप्न में भी सोचा नहीं जा सकता कि तुम शत्रुओं को पीठ दिखाओगे। फिर तुम अर्जुन को देखने की अभिलाषा से मेरे सम्मुख से क्यों भागे जाते हो? हे वीर! यह कार्य कुन्ति के पुत्र के योग्य कदापि नहीं है। इसलिए मेरे सम्मुख डटकर मुझपर बाण चलाओ॥२१। २३॥कर्ण की इस ललकार को महावीर भीमसेन न सह सके। वे अर्धमण्डल गति से घूमकर कर्ण से युद्ध करने लगे। महायशस्वी भीमसेन सब शस्त्रों के चलाने में निपुण,कवचधारी, द्वन्द्वयुद्ध करने को प्रस्तुत कर्ण के ऊपर सीधे जानेवाले बाणों की वर्षा करने लगे। कलह को अन्त करने की अभिलाषा से कर्ण को पहले मारकर औरों को भी मारने के निमित्त महाबली भीमसेन कर्ण के ऊपर उग्र बाण बरसाने लगे॥२४।२७॥ श्रेष्ठ अस्त्रज्ञ कर्ण ने मस्त हाथी के समान चलनेवाले भीमसेन की उस बाण-वर्षा को अपने अस्त्रों से रोक दिया। महाबाहु, अस्त्रविद्या में निपुण, आचार्य के समान धनुर्दर कर्ण बली भीमसेन से घोर युद्ध करने लगे। हे राजेन्द्र! अनादर की हँसी हँसकर कर्ण ने

तन्नाऽमृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥
पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥
कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः सञ्छन्नान्वातरंहसः ।
हयान्विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४ ॥
ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन्निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥
सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥
तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत्कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाऽप्यहनत्पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥
ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसंभ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥
स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥
ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१ ॥

क्रोध से विह्वल होकर युद्ध करते हुए भीमसेन का तिरस्कार किया॥२८।३०॥उस उपहास को भीमसेन न सह सके। उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर सब वीरों के सम्मुख ही, महागजराजके ऊपर अंकुश-प्रहार की तरह,कर्ण की छाती में पहले कई वत्सदन्त बाण मार-कर फिर अत्यन्त तीक्ष्ण इक्कीस बाण मारे॥३१।३३॥ तब महावीर कर्ण ने भीमसेन के स्वर्णजाल भूषित, वायु के समान वेगगामी घोड़ों को पाँच-पाँच बाणों से घायल करके असंख्य बाणों से क्षण भर में भीमसेन के सारथी, रथ और ध्वजा को अदृश्य सा कर दिया ॥३४।३६॥फिर चौंसठ बाणों से भीमसेन का सुदृढ़ कवच तोड़कर उनको मर्मभेदी बाण मारे। महाबाहु भीमसेन कर्ण के धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों के प्रहार का कुछ खयाल न करके, निर्भय होकर, कर्ण के बिलकुल समीप पहुँच गये। उनके सर्प-तुल्य उग्र बाण भीमसेन को तनिक भी व्यथा नहीं पहुँचा सके। अन्त को उन्होंने तीक्ष्ण बत्तीस भल्ल बाण कर्ण के मर्मस्थलों में मारे॥३७।४०॥कर्ण ने भी क्रीड़ा करते-

मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥
तं भीमसेनो नाऽमृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३ ॥
ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४ ॥
हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥ ४५ ॥
कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन्व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥
तस्य तानशनिप्रख्यानिषून्समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान्वृकोदरः ॥ ४७ ॥
पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिन्दमः ॥ ४८ ॥
तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥
हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान्कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिमान् ॥ ५० ॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
सम्पृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥

करते जयद्रथ वध में सहायता पहुँचानेवाले भीमसेन को बाणजाल से छिपा दिया। कर्ण तो भीमसेन पर कोमल प्रहार करते थे, किन्तु भीमसेन पहले का वैर स्मरण करके कर्ण पर कसकर प्रहार करते थे। कर्ण ने लापर्वाही दिखाकर भीमसेन का जो अपमान किया उसे वे नहीं सह सके। वे स्फूर्ति के साथ कर्ण के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा सी करने लगे। भीमसेन के छोड़े हुए वे बाण बोलनेवाले पक्षियों के समान चारों ओर से वीर कर्ण के उपर गिरने लगे॥४१।४४॥ पतङ्ग जैसे अग्नि के ऊपर छा जाते हैं वैसे ही भीमसेन के धनुष से निकले हुए उन सुवर्णपुङ्खयुक्त महावेग-शाली बाणों ने चारों ओर से कर्ण को छा लिया। तब महारथी कर्ण ने भी उन बाणों को नष्ट करने के निमित्त असंख्य बाण बरसाये। महावीर भीमसेन ने अनेक प्रकार के भल्ल बाणों के द्वारा कर्ण के तीक्ष्ण बाणों को मार्ग में ही काट डाला। कर्ण ने फिर असंख्य बाणों से भीमसेन को आच्छादित कर दिया॥४५।४८॥उन बाणों से सब शरीर छिद जाने के कारण महावीर भीमसेन रणभूमि में काँटेदार स्याही (एक पशु) के समान जान पड़ने लगे। सूर्यदेव जैसे सहज में अपनी किरणों को धारण करते हैं वैसे ही भीमसेन को भी कर्ण के तीक्ष्ण बाण धारण करने में कुछ क्लेश प्राप्त नहीं हुआ। कर्ण के धनुष से छूटे हुए, सुवर्णपुङ्खयुक्त, सिल्ली पर रगड़कर तीक्ष्ण बनाये गये,

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे ।
नाऽमृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥
स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥
पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४ ॥
पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥
जघान चतुरश्चाऽश्वान्सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥
ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥
स वैक्लव्यं महत्प्राप्य च्छिन्नधन्वा शराहतः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

बाण लगने से भीमसेन का शरीर रक्त से लथपथ हो गया और वे फूले हुए अशोक वृक्ष के समान शोभा को प्राप्त हुए। कर्ण का इस प्रकार समर में विचरना भीमसेन से नहीं सहा गया॥४९।५२॥ने क्रोध से लाल नेत्र करके गरजने लगे। उन्होंने कर्ण को ताककर पच्चीस बाण मारे। शरीर में भीमसेन के बाण लगने से महावीर कर्ण तीव्र विषवाले नागों से घिरे हुए श्वेत पर्वत के समान शोभा को प्राप्त हुए। अब महावीर भीम ने कर्ण के मर्मस्थल में और चौदह बाण मारे। फिर उनका धनुष काटकर सारथी और घोड़ों को भी मार डाला। उन्होंने सूर्य के समान प्रभासम्पन्न तीक्ष्ण बाण कर्ण के वक्ष:स्थल में भी मारे॥५३।५६॥सूर्य की किरणें जैसे मेघों को फाड़कर पृथ्वी पर गिरती हैं वैसे ही भीमसेन के चलाये हुए बाण कर्ण के शरीर को भेदकर गिर पड़े। हे राजेन्द्र! वीरता की डींग मारनेवाले महावीर कर्ण इस प्रकार भीमसेन के बाणों से घायल तथा धनुष और रथ से हीन हो जाने पर स्फूर्ति के साथ, दूसरे रथकी खोज में, उनके आगे से हट गये॥५७।५८॥

द्रोणपर्व का एक सौ इकतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३१ ॥

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान्कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १ ॥
तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥ २ ॥

एक सौ बत्तीस अध्याय ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! साक्षात् शङ्कर के शिष्य परशुराम हैं; उनका शिष्य कर्ण अस्त्रविद्या में उनके तुल्य या उनसे श्रेष्ठ होने पर भी सहज ही में भीमसेन से हार गया। जिसके बल पर मेरे पुत्रों

यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं भीमाद्विमुखं दृष्ट्वा किन्नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत्ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥
क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६ ॥
चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७ ॥
पुनरेव तयो राजन्घोर आसीत्समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥
संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षाञ्चक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥ १० ॥
व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥
ततो भीमः स्मरन्क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिन्दमः ॥ १२ ॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवाऽऽत्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान्सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १३ ॥

को जय की आशा थी उसी कर्ण को भीमसेन के आगे रण से भागते देखकर दुर्योधन ने क्या कहा? महाबली भीमसेन ने इसके उपरान्त किस प्रकार युद्ध किया? और रणभूमि में भीमसेन को प्रज्वलित अग्नि के समान प्रचण्ड होते देखकर कर्ण ने ही क्या किया?॥१-४॥ सञ्जय बोले—हे महाराज! महारथी कर्ण फिर विधिपूर्वक सुसज्जित अन्य रथ पर बैठकर, प्रचण्ड आँधी से उमड़े हुए महासागर की भाँति, वेग से भीमसेन की ओर चले। उस समय कर्ण को कुपित देखकर आपके पुत्रों ने समझा कि भीमसेन अब अग्नि में गिरे मनुष्य की भाँति जीवित नहीं बच सकते। पराक्रमी कर्ण ने धनुष की डोरी बजाकर ताल ठोंके। अब वे भीमसेन के रथ की ओर चले। कर्ण और भीमसेन का घोर संग्राम होने लगा॥५-८॥ एक दूसरे को मार डालने की इच्छा रखनेवाले दोनों वीर क्रोध से लाल नेत्र करके परस्पर देख रहे थे। दोनों ही कुपित विषैले

दग्धुमैच्छच्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।
परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥ १५ ॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १६ ॥
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥
यच्चापि तान्प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान्कर्णः सभायां सन्निधौ तव ॥ १८ ॥
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान्समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥
बाल्यात्प्रभृति चाऽरिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन्
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥
ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥
स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् ॥ २२ ॥

सर्प की भाँति श्वास ले रहे थे। परस्पर प्रहार करने से दोनों के शरीर छिन्न भिन्न हो गये। वे दो कुपित व्याघ्रों की भाँति, दो झपट रहे बाजों की भाँति और दो क्रोधान्ध शरभों की भाँति संग्राम करने लगे॥९।११॥हे राजेन्द्र! पहले द्यूतक्रीड़ा के समय, वनवास में, विराट नगर में रहते समय, और बहुरत्नपूर्ण राज्य हर लेने के कारण, पाण्डवों को क्लेश भोगने पड़े हैं, आपने अपने पुत्रों की सम्मति से पुत्रों सहित तपस्विनी कुन्ती को लाक्षाभवन में जलाने का उद्योग किया था;आपने पाण्डवों को अनेक प्रकार के दुःख दिये हैं; आपके दुर्मति पुत्रों ने सभा में द्रौपदी को लाकर क्लेश दिए थे; दुःशासन ने भरी सभा में केश पकड़कर द्रौपदी का अपमान किया था;आपके सम्मुख ही आपके पुत्रों ने द्रौपदी से यह कहकर कि "हे द्रौपदी! तुम अपना और पति चुन लो समझ लो कि तुम्हारे पति हैं ही नहीं; खोखले तिल के तुल्य निकम्मे तुम्हारे पति पाण्डव नरकगामी (दुर्दशाग्रस्त) हो गये हैं।" उनका अपमान किया था; आपके पुत्रों ने द्रौपदी को दासीभाव से भोग करने की भी अभिलाषा की थी;मृगछाला धारण करके वन को जाते हुए पाण्डवों से भरी सभा में, आपके सम्मुख ही, कर्ण ने असह्य दुर्वचन कहे थे;और आपके पुत्र दुर्योधन ने स्वयं अच्छी स्थिति में रहकर, हीन दशा को प्राप्त पाण्डवों को तृणतुल्य समझकर, क्रोध के वश होकर उछल-कूद की थी; सो ये सब बातें उस समय भीमसेन को स्मरण हो आईं। बालक से अब तक मिले हुए दुःखों और क्लेशों का खयाल करके शत्रुदमन-धर्मात्मा भीमसेन मानों अपने जीवन से ऊब गये। वे सुवर्णपृष्ठ-शोभित भारी धनुष

ततः प्रहस्याऽऽधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।
व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥
महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाऽऽधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥
स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥
तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥
ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥
तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥
अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २९ ॥
ऋक्षवर्णान्हयान्कर्कैर्मिश्रान्मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तत्र पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ॥ ३० ॥
ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥
संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
सन्त्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥

चढ़ाकर, जान पर खेलकर, कर्ण के सम्मुख पहुँचे ॥१२।२१॥ कर्ण के रथ पर सुतीक्ष्ण असंख्य बाण बरसाकर भीमसेन प्राणपण से युद्ध करने लगे। उनकी बाण-वर्षा से सूर्य का प्रकाश छिप गया, अँधेरा सा छा गया। महारथी, महाबाहु, महाबली कर्ण ने हँसकर स्फूर्ति के साथ अपने तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन के सब बाण काट डाले और फिर भीमसेन को नव उग्र बाणों से घायल किया॥२२।२४॥ अंकुश से लौटाये आते गजराज की भाँति कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर भी भीमसेन न तो लौटे और न व्याकुल हुए ही। उन्होंने दुगने वेग से कर्ण पर आक्रमण किया। मस्त हाथी जैसे महाबाहु कर्ण ने समर के निमित्त अत्यन्त उत्सुक और मस्त हाथी के समान पराक्रमी भीमसेन को वेग से आते देखकर, उत्साह के साथ उनकी ओर बढ़कर, सैकड़ों नगाड़ों के समान गम्भीर शब्द उत्पन्न करनेवाला अपना श्रेष्ठ शङ्ख जोर से बजाया। उस शब्द को सुनकर सेना प्रसन्नता प्रकट करने लगी। महावीर भीमसेन ने असंख्य हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों से परिपूर्ण सेना में हलचल होते देखकर कर्ण को असंख्य बाणों से छा दिया॥२५।२८॥ महावीर कर्ण ने भी भीमसेन को अपने बाणों से पीड़ित करके उनके श्वेत घोड़ों से अपने काले घोड़े मिला दिये। इस प्रकार कर्ण के रथ को भीमसेन के रथ के समीप देखकर आपके पुत्र हाहाकार करने लगे। उन दोनों वीरों के,

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३ ॥
समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नाऽलक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥
तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सपुत्रस्य विशांपते ॥ ३५ ॥
छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः ।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥
तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ३७ ॥
सुवर्णविकृतान्बाणान्विमुञ्चन्तावरिन्दमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥
ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे ।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाऽम्बरे ॥ ३९ ॥
संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिन्दमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ४० ॥
तत्राऽऽधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥
पतद्भिः पतितैश्चाऽन्यैर्गतासुभिरनेकशः ।
कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥

वायु के समान वेग से चलनेवाले, श्वेत और काले घोड़े परस्पर मिलकर आकाशमण्डल में स्थित श्वेत और काले मेघों के समान शोभायमान हुए॥२९।३१॥हे महाराज ! तब कौरवदल के महारथी लोग भीमसेन और कर्ण को अत्यन्त कुपित देखकर मारे भय के काँपने लगे । यमपुरी के समान भयानक रणभूमि की ओर देखा नहीं जाता था । देखनेवाले महारथी योद्धा उन दोनों वीरों में से किसी की जय या पराजय का निश्चय नहीं कर सकते थे; वे लोग मेले की भाँति टकटकी लगाकर यही देख रहे थे कि वे दोनों महायोद्धा परस्पर निकटवर्ती होकर किस प्रकार अस्त्रयुद्ध कर रहे हैं ॥३२।३५॥हे राजेन्द्र ! यह आपकी और आपके पुत्र की कुमन्त्रणा का परिणाम है । उस समय शत्रुदल-दलन वे दोनों वीर परस्पर वध की आकांक्षा से जल बरसानेवाले मेघों के समान एक दूसरे पर बाण बरसाकर उनसे आकाशमण्डल को परिपूर्ण कर रहे थे॥३५।३७॥ उनके सुवर्णपुङ्खयुक्त बाणों से यह जान पड़ता था कि आकाशमण्डल भयङ्कर उल्काओं से व्याप्त हो रहा है अथवा शरद्ऋतु में उड़नेवाले सारस गगनमण्डल की शोभा को बढ़ा रहे हैं॥३८।३९॥महाबली भीमसेन को इस प्रकार महारथी कर्ण से युद्ध करते देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन सोचने लगे कि भीमसेन पर यह भारी विपत्ति आ पड़ी है । कर्ण और भीमसेन के छोड़े हुए बाणों के दृढ़ प्रहार से मरे हुए घोड़े, हाथी और मनुष्य

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन भूमिः सञ्जज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

दूर-दूर पर जाकर गिर रहे थे। हे महाराज ! गिरे हुए, गिरते हुए और मर रहे असंख्य मनुष्यों के नष्ट होने से आपकी सेना बहुत कम हो गई। हे भरत-कुल-तिलक ! क्षण भर में मरे हुए मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों की लाशों के ढेर से रणभूमि पट गई॥४०।४३॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ बत्तीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत्कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥
त्रिदशानपि वा युक्तान्सर्वशस्त्रधरान्युधि ।
वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुपान् ॥ २ ॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नाऽतरत्संयुगे पार्थं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥
कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाऽजय एव च ॥ ४ ॥
कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सगोविन्दान्ससात्वतान् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥
विनष्टान्कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
नहि कर्णो महेष्वासान्पार्थाञ्जेष्यति सञ्जय ॥ ७ ॥
कृतवान्यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥

एक सौ तेंतीस अध्याय ॥ १३३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! स्फूर्तिशाली महायोद्धा कर्ण से भीमसेन इस प्रकार युद्ध कर सके, यह सुनकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है। जो सम्पूर्ण शस्त्र धारण किये यक्ष, असुर, मनुष्यगण सहित देवताओं को भी समर में परास्त कर सकता है, अकेले ही उनका सामना कर सकता है, वही कर्ण भीमसेन को नहीं हरा सका ! हे सञ्जय ! इसका क्या कारण है ? अस्तु, अब तुम यह बताओ कि इन दोनों वीरों ने परस्पर प्राण संशय उपस्थित करनेवाला घोर युद्ध कैसे किया ॥१।३॥ मैं समझता हूँ कि इसी युद्ध के ऊपर दोनों पक्षों की हार-जीत निर्भर है। हे सञ्जय ! मेरा पुत्र दुर्योधन केवल कर्ण की सहायता के आश्रय पर ही श्रीकृष्ण और सात्यकि सहित सब पाण्डवों को जीतने का साहस रखता है। किन्तु इस समय बारम्बार कर्ण

अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि स वासवैः ।
न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥
धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाऽबुद्धिः प्रपातं नाऽवबुध्यते ॥ १० ॥
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥
पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाऽप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः ॥ १२ ॥
शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३ ॥
तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥
तस्मान्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्यथा वृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥
राजन्वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥
महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
अहनद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥

को समर में भीमसेन से हारते सुनकर मैं निराशा से व्याकुल हो रहा हूँ। दुर्योधन के अन्याय से ही मेरे पक्ष का नाश होगा, यह स्पष्ट जान पड़ रहा है। हे सञ्जय! वीर पाण्डवों को कर्ण कभी नहीं जीत सकेगा। कर्ण ने पाण्डवों से जब युद्ध किया है तभी उसने नीचा देखा है॥४।८॥इन्द्र सहित सब देवता भी पाण्डवों से नहीं जय प्राप्त कर सकते; किन्तु मेरा मन्दमति पुत्र दुर्योधन यह बात नहीं समझता! शहद उतारनेवाला मूर्ख जैसे ऊपर चढ़कर अपने नीचे गिरने की सम्भावना पर ध्यान नहीं देता, वैसे ही कुबेर-सदृश धर्मराज के धन(राज्य) को हर कर उससे होनेवाले अपने विनाश को दुर्योधन नहीं देख पाता। कपटनिपुण दुर्योधन कपट के द्वारा पाण्डवों का राज्य हरकर यह समझता है कि वह विजयी है। यही समझकर वह पाण्डवों का अपमान करता है। स्थिर बुद्धि न रहने से मैंने भी, पुत्रस्नेह के वश होकर, धर्म पर चलनेवाले पाण्डवों से छल किया॥९।१२॥दूरदर्शी युधिष्ठिर ने कुलक्षय के भय से ही पहले सन्धि कर लेना चाहा था; किन्तु मेरे पुत्रों ने उन्हें युद्ध करने में अशक्त समझकर उनकी बात नहीं मानी। पहले के अन्यायों और दुःखों को स्मरण करके भीमसेन ने कर्ण से घोर युद्ध किया होगा इसलिए हे सञ्जय! तुम मुझसे कहो कि परस्पर वध करने के निमित्त उद्यत, श्रेष्ठ योद्धा, महाबली कर्ण और भीमसेन ने किस प्रकार कठिन संग्राम किया॥१३।

तस्याऽस्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनाऽपातयत्क्षितौ ॥ १९ ॥
स कांक्षन्भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥
प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवाऽपराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः सन्धाय च महाबलः ॥ २१ ॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ।
शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरन्दर इवाऽशनिम् ॥ २२ ॥
ननाद सुमहानादं बलवान्सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥ २३ ॥
तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥
छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
मार्गमाण इव प्राणान्सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥
प्राहिणोत्कृतसंरम्भः शरान्बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाधौतान्यमदण्डोपमान्मृधे ॥ २६ ॥
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत्सायकांस्तदा ॥ २७ ॥
तान्पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ॥ २८ ॥

१५॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! वन में भिड़नेवाले दो मस्त हाथियों की भाँति परस्पर वध के निमित्त उद्यत महारथी कर्ण और महाबली भीमसेन ने जिस प्रकार युद्ध किया, सो सुनिए । महापराक्रमी कर्ण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, पराक्रम प्रकट करके,क्रोधान्ध भीमसेन को तीन बाण मारे। भीमसेन ने भी पैने बाणों से कर्ण का धनुष काटकर एक भल्ल बाण से उनके सारथी को मार डाला । सारथी मरकर रथ से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१६।१९॥तब क्रोधान्ध होकर कर्ण ने कनक-वैदूर्यसमलङ्कृत, सुवर्णदण्ड से शोभित, कालदण्ड के समान प्राणों को हर लेनेवाली महाशक्ति हाथ में ली । उन्होंने वज्र के समान भयानक वह शक्ति तान-कर भीमसेन को मारी और घोर सिंहनाद किया । वह सिंहनाद सुनकर दुर्योधन आदि आपके सब पुत्र बहुत प्रसन्न हुए । तब महावीर भीमसेन ने प्राणों की खोज सी कर रही,अग्नि और सूर्य के समान प्रभा-पूर्ण, बिना केंचुल के भुजङ्ग के समान भीषण,वह कर्ण की छोड़ी हुई शक्ति आते देखकर उसे आकाश में ही सात बाणों से काट डाला । वे कुपित होकर कर्ण के ऊपर मयूर पत्र-शोभित, स्वर्णपुङ्खयुक्त, सिल्ली पर रगड़कर तीक्ष्ण किये गये यमदण्ड तुल्य असंख्य बाण बरसाने लगे॥२४।२६॥कर्ण भी सुवर्णपृष्ठयुक्त दूसरा धनुष लेकर, उस पर डोरी चढ़ाकर, भीमसेन को बाण वर्षा से पीड़ित करने लगे । उन्होंने नव तीक्ष्ण

छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवाऽनदत् ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥
शार्दूलाविव चाऽन्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम् ।
अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्याऽन्तरैषिणौ ॥ ३० ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ।
महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ ।
प्रहसन्तौ तथाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ।
तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च तथाऽप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥
ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥
वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाऽथ दुर्जयम् ।
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥

बाणों से कर्ण के सब बाण काटकर घोर सिंहनाद किया॥२७।२९॥हे महाराज! इसी प्रकार वे दोनों वीर कभी गाय के निमित्त युद्ध करनेवाले दो साँड़ों की भाँति चिल्लाते थे और कभी मांस के निमित्त झगड़नेवाले दो सिंहों की तरह तर्जन-गर्जन करते थे। कभी एक दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होता था, कभी एक दूसरे पर वार करने का अवसर ढूँढ़ता था और कभी गोशाला में स्थित बड़े दो साँड़ों की भाँति एक दूसरे की ओर ताकता था। दो मत्त हाथी जैसे भिड़कर एक दूसरे पर दाँत का प्रहार करते हैं वैसे ही हाड-तोड़ तान किये हुए वे दोनों योद्धा एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे। हे राजेन्द्र! इसी प्रकार उन दोनों का घोर संग्राम होने लगा। वे दोनों वीर कभी हँसते, कभी झिड़कते और कभी शङ्ख बजाते थे॥२९।३४॥ इसी मध्य में महावीर भीमसेन ने कर्ण के धनुष की मूठ काट डाली। फिर उनके घोड़ों को भी नष्ट करके उनके सारथी को मारकर गिरा दिया। इस प्रकार भीमसेन के बाणों से धनुष कटने और सारथी तथा घोड़ों के मरने से महावीर कर्ण चिन्ता-सागर में मग्न हो गये। उनसे युद्ध करते-धरते न बन पड़ा॥३४।३७॥हे महाराज! राजा दुर्योधन ने कर्ण को अत्यन्त सङ्कट में पड़े हुए देखकर, क्रोधान्ध होकर, दुर्जय से कहा—हे भाई! देखते क्या हो? वीर कर्ण भीमसेन की बाण-वर्षा से अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं। इसलिए

जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवाऽऽत्मजः ॥ ३९ ॥
अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।
स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् ।
स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥
समाचिनोद्बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शंकुभिः ।
तथाऽप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥ ४४ ॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

तुम कर्ण की सहायता करने को तुरन्त जाओ और इस बिना दाढ़ी-मूँछ के भीमसेन को मारो। हे नरनाथ! तब आपके पुत्र दुर्जय,बड़े भाई की आज्ञा मानकर, बाण बरसाते हुए वेग से भीमसेन की ओर चले। दुर्जय ने भीमसेन को नव, घोड़ों को आठ और सारथी को छः बाण मारे। इस प्रकार भीमसेन को पीड़ित करके उनके रथ की ध्वजा में तीन बाण मारकर फिर तीक्ष्ण सात बाणों से भीमसेन को पीड़ित किया॥३७।४१॥ इससे वे अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने पहले दुर्जय के सारथी, घोड़े और फिर दुर्जय को भी यमपुर भेज दिया। दुर्जय की मृत्यु से महावीर कर्ण बहुत दुःखित हुए। उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वे दिव्य आभूषणों से शोभित और पृथ्वी पर गिरकर सर्प की भाँति तड़प रहे दुर्जय के चारों ओर घूमने और शोक प्रकट करने लगे। अपने घोर वैरी कर्ण को रथ-हीन करके मुसकराते हुए महाबली भीमसेन तीक्ष्ण बाण,शतघ्नी और शङ्कु आदि से बेतरह घायल करने लगे। शत्रु-दमन महावीर कर्ण इस प्रकार कुपित भीमसेन के बाणों से पीड़ित होने पर भी युद्ध से नहीं हटे॥४२।४५॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ तेंतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

सञ्जय उवाच—सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय युनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥
महागजाविवाऽऽसाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

एक सौ चौंतीस अध्याय ॥ १३४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! भीमसेन के बाणों से रथ-हीन और परास्त होने पर महावीर कर्ण तुरन्त ही दूसरे रथ पर बैठकर भीमसेन के सम्मुख आये और उन्हें बाणों से पीड़ित करने लगे। दो मस्त हाथी

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥
तं भीमो दशभिर्वाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥
कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजंस्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥
सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत ।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सृक्किणी लेलिहन्वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः ॥ ७ ॥
ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाऽशनिम् ॥ ८ ॥
स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन्भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥
ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन् ।
तया जघानाऽऽधिरथेः सदश्वान्साधुवाहिनः ॥ ११ ॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाऽसुरान् ।
ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥

जैसे भिड़कर एक दूसरे पर दाँतों का प्रहार करें वैसे ही ये दोनों वीर कानों तक तान-तानकर एक दूसरे को बाण मारने लगे। कर्ण ने भीमसेन के ऊपर बाण बरसाकर घोर सिंहनाद किया और फिर उनकी छाती में बाण मारे॥१।३॥भीमसेन ने भी कर्ण को पहले दस और फिर सत्तर तीक्ष्ण बाण मारे । महाप्रतापी कर्ण ने भीमसेन की छाती में नव बाण मारे और ध्वजा में एक बाण मारा। जैसे कोई हाथी को अङ्कुश या घोड़े को चाबुक मारे वैसे ही भीमसेन ने कर्ण को तिरसठ बाण मारे॥४।६॥इस प्रकार भीमसेन के बाणों की गहरी चोट खाने से कर्ण के नेत्र लाल हो आये। क्रोध के मारे होंठ चाटते हुए कर्ण ने भीमसेन को मार डालने के निमित्त इन्द्र के छोड़े हुए वज्र के समान शरीर को विदीर्ण करनेवाला एक भयानक बाण मारा। वह विचित्र पुङ्खयुक्त बाण कर्ण के धनुष से छूटकर भीमसेन के शरीर को भेदकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया ॥७।९॥तब महापराक्रमी भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, कुछ भी विचलित हुए बिना, एक वज्रतुल्य, चार हाथ की, छः पहलवाली, लोहे की, सुवर्णशोभित भारी गदा लेकर कर्ण के ऊपर चलाई। इन्द्र ने जैसे वज्र से असुरों को मारा था वैसे ही कुपित भीमसेन ने उस गदा से कर्ण के बहुमूल्य घोड़ों को मार डाला ॥१०।१२॥फिर महाबाहु भीमसेन ने दो क्षुर बाणों से कर्ण की ध्वजा काटकर बाणों से उसके सारथी

ध्वजमाधिरथेश्छित्वा सूतमभ्यहनच्छरैः ।
हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम् ॥ १३ ॥
विस्फारयन्धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम् ।
विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥ १६ ॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम् ।
ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥
त्वरमाणोऽभ्ययात्कर्णं भीमं चाऽवारयच्छरैः ।
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत्सृक्किणी परिसंलिहन् ।
ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः ।
तस्मिन्क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततस्तमेवाऽऽधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥
आस्थितः प्रबभौ राजन्दीप्यमान इवांऽशुमान् ।
शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥

को भी मार गिराया। कुछ व्याकुल होकर घोड़े-सारथी-ध्वजा से हीन रथ छोड़कर, पैदल ही खड़े होकर, धनुष चढ़ाने और बाण छोड़ने लगे। उस समय हमने कर्ण का अद्भुत पराक्रम देखा। उन्होंने रथहीन होकर भी रथ पर से युद्ध करनेवाले शत्रु का सामना किया ॥१२।१५॥ उस समय कुरुराज दुर्योधन ने कर्ण को रथहीन देखकर दुर्मुख से कहा—हे भाई देखो, भीमसेन ने कर्ण का रथ नष्ट कर दिया है। इसलिए तुम शीघ्र जाकर कर्ण की सहायता करो, जिसमें वे अवसर पाकर अन्य रथ पर बैठ सकें। दुर्योधन की आज्ञा पाकर दुर्मुख शीघ्र कर्ण के समीप पहुँचकर भीमसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे॥ १५।१८॥ महाबली भीम ने दुर्मुख को कर्ण की सहायता करते देखकर प्रसन्नता प्रकट की। क्रोध के मारे होंठ चाटते हुए भीमसेन ने शिलीमुख बाणों से कर्ण को पीड़ित करके स्फूर्ति के साथ दुर्मुख के समीप अपना रथ बढ़ाया। उन्होंने देखते ही देखते तीक्ष्ण नव बाणों से दुर्मुख को मार डाला ॥१८।२१॥ दुर्मुख के मरने पर कर्ण उन्हीं के रथ पर बैठकर प्रकाशमान सूर्य के समान शोभा को प्राप्त हुए। रक्त से भींगे, पृथ्वी पर मरे पड़े दुर्मुख की दशा देखकर कर्ण को बड़ा दुःख हुआ और क्षण भर तक नेत्रों में आँसू भरकर वे शोक करते रहे। मृत दुर्मुख की प्रदक्षिणा करके आगे बढ़े हुए कर्ण लम्बे गर्म श्वास लेने लगे। उस समय उनसे कुछ करते-धरते

दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाऽभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥
दीर्घमुष्णं श्वसन्वीरो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ।
तस्मिंस्तु विवरे राजन्नाराचान्गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥ २५ ॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त, दिशो दश ।
अपिवन्सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।
प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा विलानीव महोरगाः ।
तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।
ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥
प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।
ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुन्धराम् ॥ ३० ॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांऽशवः ।
स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।
स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ।
स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥

नहीं बन पड़ा॥२१।२४॥उसी अवसर में भीमसेन ने गृध्रपक्षयुक्त चौदह तीक्ष्ण नाराच बाण कर्ण को मारे। वे सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण कर्ण के सुवर्ण शोभित कवच को तोड़कर उनके शरीर में प्रवेश हो गये। वे बाण कर्ण का रक्त पीकर, कालप्रेरित क्रुद्ध सर्पों की भाँति, पृथ्वी में प्रवेश हो गये और बिल के भीतर आधे प्रवेश हुए हुए सर्पों के समान शोभा को प्राप्त हुए॥२४।२८॥ कर्ण ने भी क्रुद्ध होकर, कुछ विचार न करके, भीमसेन को चौदह सुवर्णभूषित तीक्ष्ण नाराच मारे। भीमसेन के बाँयें हाथ को घायल करके वे भयानक बाण, क्रौञ्च पर्वत के छेद में पक्षियों की भाँति, पृथ्वी में प्रवेश हो गये। वे अत्यन्त उग्र बाण पृथ्वी में प्रवेश होते समय अस्त हो रहे सूर्य की प्रकाशमान किरणों के समान शोभा को प्राप्त हुए॥२८।३१॥मर्मभेदी नाराचों से अत्यन्त घायल भीमसेन के शरीर से, पर्वत से झरने की भाँति, बहुत सा रक्त बहा। तब भीमसेन ने क्रोधान्ध होकर, गरुड़ के समान वेगशाली, तीन उग्र बाण कर्ण को मारे और सात बाणों से उनके

प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।
भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
आहवेऽतिरथोतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

सारथी को घायल कर दिया। भीमसेन के बाणों की चोट से अत्यन्त विह्वल और भयभीत होकर महायशस्वी कर्ण शीघ्रता के साथ घोड़ों को हँकाकर रणभूमि से भाग गये। सुवर्णशोभित धनुष चढ़ाकर भीमसेन प्रज्वलित अग्नि के समान रणभूमि में विचरने लगे। कोई भी महारथी उनका सामना नहीं कर सका॥३१।३५॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।
यत्राऽऽधिरथिरायत्तो नाऽतरत्पाण्डवं रणे ॥ १ ॥
कर्णः पार्थान्सगोविन्दाञ्जेतुमुत्सहते रणे ।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥ २ ॥
इति दुर्योधनस्याऽहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ।
वसुषेणसहायं मां नाऽलं देवाऽपि संयुगे ॥ ४ ॥
किं नु पाण्डुसुता राजन्गतसत्वा विचेतसः ।
तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥
युद्धात्कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥ ६ ॥
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ।
अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ॥ ७ ॥

एक सौ पैंतीस अध्याय ॥ १३५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! उस पौरुष को धिक्कार है जो किसी काम में नहीं आता। मुझे तो दैव (भाग्य) ही सबसे प्रबल जान पड़ता है, क्योंकि कर्ण जैसा महारथी योद्धा अकेले ही भीमसेन को नहीं परास्त कर सका। दुर्योधन के मुख से बारम्बार मैंने सुना है कि कर्ण अकेले ही श्रीकृष्ण सहित सब पाण्डवों को हरा सकता है, कर्ण के समान दूसरा योद्धा पृथ्वी भर में मुझे कोई नहीं देख पड़ता। मन्दमति दुर्योधन पहले मुझे कहा करता था कि कर्ण बलवान्, शूर, दृढ धनुर्द्धर और युद्ध में कभी न थकनेवाला महारथी योद्धा है। वही कर्ण मेरा सहायक है।' जिस समय कर्ण मेरा सहायक हो उस समय सब देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकते, दीन पाण्डवों की तो कुछ बात ही नहीं॥१।५॥अब उसी कर्ण को भीमसेन से हारकर विषहीन सर्प के समान युद्धभूमि से भागते हुए देख दुर्योधन ने क्या कहा? अहो, दुर्योधन ऐसा

न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ।
तेऽपि चाऽस्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥ ८ ॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९ ॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ।
कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितम् ॥ १० ॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ।
योऽजयत्समरे कर्णं पुरन्दर इवाऽसुरम् ॥ ११ ॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ।
द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥ १२ ॥
भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः ।
को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेताऽपि मानवः ॥ १४ ॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन ।
पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥ १५ ॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन्विमोहिताः ।
यत्तत्सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥
उक्तं संरम्भिणोऽग्रेण कुरूणां श्रृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥

मोहित हो गया कि उसने युद्धविद्या में कच्चे दुर्मुख को अकेले ही, अग्नि के मुख में पतङ्ग की भाँति, भीमसेन के आगे युद्ध करने को भेज दिया। अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य और कर्ण, ये सब मिलकर भी पराक्रमी कुपित भीमसेन का सामना नहीं कर सकते। वे भी भीमसेन के दस सहस्र हाथियों के बल, महाघोर प्रकृति और उग्र निश्चय को जानने के कारण उनका सामना न करेंगे। क्रूरकर्मा और अन्तक के तुल्य भीमसेन के क्रोध और बल वीर्य को जाननेवाले अश्वत्थामा आदि वीरगण क्यों भीमसेन के क्रोध की अग्नि भड़कावेंगे? एक महाबाहु कर्ण को ही अपने बल-वीर्य का ऐसा अभिमान था कि उसने भीमसेन को तुच्छ समझा और उनसे युद्ध किया॥५।१०॥इन्द्र जैसे असुरों को जीतते हैं वैसे ही सेना सहित कर्ण को जिन भीमसेन ने बारम्बार परास्त कर दिया, उन्हें युद्ध में कोई नहीं जीत सकता। जो भीमसेन अर्जुन के समीप जाने के निमित्त, द्रोणाचार्य ऐसे महारथी योद्धा को विमुख करके, मेरी सेना के व्यूह में प्रवेश हो गये उनका सामना करके कौन जीता बच सकता है? या जीवन की आशा रखनेवाला कौन व्यक्ति उनका सामना कर सकता है? ॥१०।१३॥वज्रपाणि इन्द्र के सम्मुख दानवों के समान कौन शस्त्रधारी भीमसेन के आगे स्थित हो सकता है? यमपुर में जाकर चाहे कोई मनुष्य लौट भी आवे, परन्तु कुपित भीमसेन के आगे जाकर कोई जीता नहीं लौट

दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्भीमादुपारमत् ।
यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरब्रवीत्समितौ मुहुः ॥ १८ ॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ।
स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः ।
दृष्ट्वा भ्रातॄन्हतान्संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।
को हि जीवितमन्विच्छन्प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भीमं भीमयुधं क्रुद्धं साक्षात्कालमिव स्थितम् ।
वडवामुखमध्यस्थो मुच्येताऽपि हि मानवः ॥ २२ ॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।
न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥
सञ्जय उवाच—यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

सकता। जो मनुष्य विमोहित होकर क्रुद्ध भीमसेन के ऊपर आक्रमण करने को गये वे, पतङ्गे जैसे अग्नि में मरने के निमित्त कूदते हैं वैसे ही, मृत्यु के मुख में चले गये॥१३।१६॥उग्रप्रकृति भीमसेन ने कौरव-सभा में कुपित होकर मेरे सौ पुत्रों को मारने की जो प्रतिज्ञा की थी उसी का स्मरण करके, और कर्ण को परास्त देखकर, भय के मारे दुःशासन और दुर्योधन ने उस समय भीमसेन का सामना नहीं किया। हे सञ्जय! दुर्बुद्धि दुर्योधन ने कौरवसभा में गर्व के साथ बारम्बार कहा था कि मैं, कर्ण और दुःशासन, हम तीनों युद्ध में पाण्डवों को जीत लेंगे। किन्तु इस समय कर्ण को रथ-हीन और भीमसेन को परास्त देखकर, सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हुए श्रीकृष्ण को लौटा देने का ख़याल करके, उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा होगा। अपने ही अपराध से युद्ध में भीमसेन के हाथों कवच-धारी भाइयों की मृत्यु देखकर मेरा पुत्र मूढ़ दुर्योधन अवश्य पश्चात्ताप कर रहा होगा॥१६।२०॥जीवन की आशा रखनेवाला कौन पुरुष भीमशस्त्रधारी, साक्षात् काल के समान युद्धभूमि में खड़े हुए, क्रुद्ध भीमसेन के साथ भिड़ने जायगा! मेरे विचार में तो यह आता है कि बाड़वानल के भीतर से चाहे कोई जीता निकल आवे, परन्तु भीमसेन के हाथ में पड़कर किसी प्रकार नहीं जीता बच सकता। पाण्डवगण, पाञ्चालगण, कृष्ण-चन्द्र और सात्यकि, ये लोग कुपित होकर जब युद्ध-भूमि में उपस्थित होते हैं तब प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करते हैं। अहो, सञ्जय! इस समय मेरे पुत्रों के लिए जीवनसङ्कट उपस्थित है॥२०।२४॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! अब महाभय और लोकक्षय उपस्थित होने पर आप इस प्रकार वृथा शोक कर रहे हैं, किन्तु वास्तव में इस घोर अनर्थ की जड़ आप ही हैं। आपने

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७ ॥
यत्तु कुत्सयसे योधान्युध्यमानान्महाबलान् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९ ॥
दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसन्नाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥
ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१ ॥
आगच्छतस्तान्सहसा कुमारान्देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥
तव दृष्ट्वा तु तनयान्भीमसेनपुरोगमान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥
विसृजन्विशिखांस्तीक्ष्णान्स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्
तं तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥
कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन्भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
तान्बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान्राजन्नरर्षभान् ।
ससूतान्भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥

ही पुत्रों का कहा मानकर यह युद्ध की प्रचण्ड अग्नि सुलगाई है। जैसे मरनेवाला मनुष्य हितकर औषध को ग्रहण नहीं करता वैसे ही उस समय आपके हित-चिन्तकोंने जो उचित उपदेश दिये, उन्हें आपने स्वीकार नहीं किया। हे नरोत्तम! न पचनेवाला कालकूट विष पहले आपने ही पिया है, अब उसका परिणाम भोगिए ॥२५।२७॥ महाबली योद्धा लोग प्राणपण से युद्ध कर रहे हैं, और आप उनकी व्यर्थ निन्दा कर रहे हैं। अब ध्यान देकर युद्ध का वृत्तान्त सुनिए, मैं विस्तार-पूर्वक वर्णन करता हूँ। हे महाराज! कर्ण को परास्त देखकर दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर और जय, ये पाँचों आपके पुत्र अत्यन्त कुपित हो उठे। पाँचों भाइयों ने वेग से जाकर चारों ओर से भीमसेन को घेर लिया। वे भीमसेन पर टीड़ीदल के समान असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥२८।३१॥ उन देवतुल्य सुन्दर सुकुमार राजकुमारों के बाणों की चोट को हँसते हँसते भीमसेन ने सह लिया। दुर्मर्षण आदि आपके पुत्रों को महाबली भीमसेन के सम्मुख उपस्थित देखकर कर्ण फिर भीमसेन के सम्मुख आये और उनके ऊपर सुवर्ण पुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। हे महाराज! आपके पाँचों पुत्र भीमसेन को रोक रहे थे तथापि वे उनकी कुछ परवा न करके अपने प्रतिद्वन्द्वी कर्ण की ओर चले ॥३२।३४॥ तब आपके सब पुत्र कर्ण की रक्षा करने के निमित्त उन्हें चारों ओर से घेरकर भीमसेन के ऊपर

प्रापतन्स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याऽऽधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवाऽऽत्मजान् ॥ ३८ ॥
स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥
तं भीमसेनः संरम्भात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३५ ॥

सन्नतपर्वयुक्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। यह देखकर भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने पच्चीस तीक्ष्ण बाणों से आपके पाँचों पुत्रों को घोड़े और सारथी सहित मारकर गिराया। सारथीयों सहित पाँचों राजकुमार आँधी से टूटे हुए विचित्र पुष्पयुक्त वृक्षों की भाँति रथों पर से गिर पड़े॥३५।३७॥उस समय हम लोगों ने भीमसेन का अद्भुत पराक्रम देखा। उन्होंने बाणों से कर्ण को भी रोका और आपके पुत्रों को भी मार डाला। भीमसेन के तीक्ष्ण बाणों से विह्वल कर्ण ने अत्यन्त क्रोध की दृष्टि से उनको देखा। भीमसेन भी क्रोध से लाल नेत्र करके, धनुष चढ़ाकर, बारम्बार कर्ण की ओर देखने लगे॥३८।४०॥

द्रोणपर्व का एक सौ पैंतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३५ ॥

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३६ ॥

सञ्जय उवाच—तवाऽऽत्मजांस्तु पतितान्दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत्स जीवितात् ॥ १ ॥
आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं मेने चाऽऽधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥
भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान ससम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥
अचिन्तयित्वाऽथ तान्बाणान्कर्णेनाऽस्तान्वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनाऽऽनतपर्वणाम् ॥ ५ ॥

एक सौ छत्तीस अध्याय ॥ १३६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! भीमसेन के बाणों से आपके पुत्रों को मारे जाते देखकर महारथी कर्ण बहुत ही कुपित हो उठे। उन्हें अपना जीवन भारी सा प्रतीत होने लगा। अपने ही सम्मुख आपके पुत्रों का नाश होते देखकर उसके निमित्त वे अपने को ही अपराधी सा मानने लगे॥१।२॥उस समय महावीर भीमसेन पुरातन वैर को स्मरण करके, क्रोधान्ध होकर, कर्ण के ऊपर पूर्ण बल से तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे।

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परन्तपः ॥ ७ ॥
तस्य भीमो हयान्हत्वा विनिहत्य च सारथिम् ।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥
इषुभिः कार्मुकं चाऽस्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत्पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥
अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद्रुषा ॥ १० ॥
तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११ ॥
ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकांक्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥
तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पाटयामास सायकैः ॥ १३ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥

कर्ण ने पहले पाँच बाण और फिर हँसते-हँसते सुवर्ण-पुङ्खशोभित तीक्ष्ण सत्तर बाण मारकर भीमसेन को पीड़ित किया। भीमसेन ने कर्ण के उन बाणों का कुछ भी ख़्याल न करके उनको आनतपर्वयुक्त तीक्ष्ण सौ बाण मारे। फिर बहुत ही उग्र पाँच बाणों से कर्ण के मर्मस्थल में आघात करके एक भल्ल बाण से उनका धनुष काट डाला। इससे कर्ण बहुत ही व्याकुल हो गये॥३।६॥वे अन्य धनुष लेकर असंख्य बाणों से भीमसेन को पीड़ित करने लगे। कर्ण के बाणों में भीमसेन छिप से गये। अब उन्होंने क्रुद्ध होकर कर्ण के सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर हँसते-हँसते बाणों से उनके सुवर्णमण्डित उस धनुष को भी काट डाला॥७।९॥महारथी कर्ण क्रोध से अधीर होकर रथ से उतर पड़े। उन्होंने भीमसेन के ऊपर एक गदा फेंकी। कर्ण की उस गदा को आते देखकर महाबली भीमसेन ने सब सैनिकों के सम्मुख ही अविचलित भाव से बाण मारकर उस प्रहार को व्यर्थ कर दिया। फिर वे कर्ण को मारने के लिए उन पर निरन्तर सहस्रों बाण छोड़ने लगे॥१०। १२॥महापराक्रमी कर्ण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन के सब बाणों को निष्फल कर दिया और फिर अपने उग्र बाणों से उनका सुवर्णशोभित सुदृढ़ कवच काट डाला। फिर सब योद्धाओं के सम्मुख ही उनको पचीस बाण मारे। कर्ण की यह स्फूर्ति और धैर्य देख-

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥
स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाऽभवत्कर्णो भीमसेनात्पराङ्मुखः ॥ १७ ॥
तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्श्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।
चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ २० ॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।
तानापतत एवाऽऽशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥
एकैकेन शरेणाऽऽजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान्पुत्रांस्तव राजन्महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ २३ ॥
रथं चाऽन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥
तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः ॥ २५ ॥

कर सबको बड़ाही आश्चर्य हुआ॥१३।१४॥अब महावीर भीमसेन ने क्रोध से विह्वल होकर कर्ण को बहुत ही उग्र नव बाण मारे। वे बाण कर्ण के कवच को तोड़कर, दाहनी भुजा को भेदकर, वैसे ही पृथ्वी में प्रवेश हो गये जैसे कुपित सर्प बिल में प्रवेश हो जाते हैं। इस प्रकार भीमसेन के बाणों से पीड़ित होकर महारथी कर्ण फिर समर से हट गये॥१५।१७॥यह देखकर राजा दुर्योधन ने अपने भाइयों से कहा—हे वीरो! तुम लोग शीघ्र यत्नपूर्वक कर्ण के रथ के समीप जाकर उनकी सहायता करो। हे महाराज! तब आपके पुत्र चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, चित्रायुध और चित्रवर्मा, वे बड़े भाई की आज्ञा से, बाण बरसाते हुए भीमसेन की ओर दौड़े॥१८।२१॥महावीर भीमसेन ने उनके पहुँचने के पहले ही एक-एक बाण से उन सबको मार डाला। वे लोग उसी समय, आँधी से टूटे हुए पेड़ों की भाँति पृथ्वी पर मरकर गिर पड़े। आपके महारथी पुत्रों का विनाश होते देखकर महावीर कर्ण नेत्रों में आँसू भरकर विदुर के वचनों का स्मरण करने लगे। इसके पश्चात् विधिपूर्वक सुसज्जित अन्य रथ पर बैठकर वे तुरन्त ही युद्ध करने को भीमसेन के सम्मुख आये॥२२।२४॥उस समय वे दोनों महावीर सुवर्णपुङ्ख, सुशोणित, उग्र बाणों से एक दूसरे को पीड़ित करने लगे। दोनों ही सूर्य की किरणों से युक्त दो मेघों के समान शोभा को प्राप्त हुए। इसके

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत्कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥
सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभम् ॥ २७ ॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥
तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरधारास्रजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥ ३० ॥
वारणाविव चाऽन्योन्यं विषाणाभ्यामरिन्दमौ ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥ ३१ ॥
नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथिपूत्तमौ ॥ ३२ ॥
वृषाविवाऽथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥ ३४ ॥
ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन्धनुः ।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥

पश्चात् महाबली भीमसेन ने क्रोधित होकर महातीक्ष्ण छत्तीस भल्ल बाणों से कर्ण का कवच काट डाला। महारथी कर्ण ने भी उनको अत्यन्त तीव्र पचास बाण मारे॥२५।२७॥तब वे रक्तचन्दन-चर्चित दोनों वीर बाणों के घावों से बहुत ही शोभित हुए। उस समय वे उदय को प्राप्त चन्द्रमा और सूर्य के समान जान पड़ने लगे। उस समय उनके कवच छिन्न-भिन्न और शरीर रक्त से लिप्त होने के कारण वे केंचुल छोड़े हुए दो महानागों के समान ज्ञात पड़ने लगे। अब वे दोनों वीर दाँतों से काटने के लिए उद्यत दो व्याघ्रों की भाँति और जलधारा बरसानेवाले दो मेघों की भाँति परस्पर बाणवर्षा करने लगे॥२८।३०॥जिस प्रकार दो गजराज भिड़कर एक दूसरे के शरीर को दाँतों से चीर फाड़ डालते है, वैसे ही वे बाणों के प्रहार से एक दूसरे के शरीर को छिन्न भिन्न करने लगे। वे कभी सिंहनाद, कभी बाणों की वर्षा, कभी क्रीड़ा-पूर्वक युद्ध, कभी क्रोधपूर्ण दृष्टिपात और कभी मण्डलाकार गति से रथ घुमाते हुए घूम रहे थे। सिंह सदृश पराक्रमी वे दोनों महावीर गाय के लिए उत्सुक दो साँड़ों की भाँति जोर से गरजते तथा इन्द्र और राजा बलि की भाँति घोरतर संग्राम करते थे॥३१।३४ महावीर भीमसेन भयानक धनुष खींचकर बिजली से शोभित मेघ के समान समरभूमि में शोभा को प्राप्त हुए। उन्होंने जलधारा के समान सुवर्णपुङ्खयुक्त बाणों

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः ।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ॥
ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत्कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥
तत्राऽपश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत्कर्णं छादयञ्शरैः ॥ ३८ ॥
स नन्दयन्रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥
विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

की निरन्तर वर्षा से पर्वत-सदृश कर्ण को ढक दिया ॥३५।३६॥ उनके धनुष का शब्द वज्र की कड़क के समान सुनाई पड़ने लगा । हे राजेन्द्र ! उस समय आपके पुत्रगण आश्चर्य के साथ भीमसेन के अद्भुत बलवीर्य को देखने लगे । महावीर भीमसेन अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि और चक्ररक्षक युधामन्यु तथा उत्तमौजा को आनन्दित करते हुए कर्ण के साथ भयानक युद्ध करने लगे । हे राजेन्द्र ! भीमसेन के असाधारण पराक्रम, बाहुबल और धैर्य को देखकर आपके पुत्र बहुत ही व्याकुल हो गये॥३७।४०॥

द्रोणपर्व का एक सौ छत्तीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

सञ्जय उवाच—भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ।
नाऽमृष्यत यथा मत्तो गजःप्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥
सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाऽथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥
तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥
स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन्रश्मीनिव दिवाकरः ॥ ४ ॥

एक सौ सैंतीस अध्याय ॥ १३७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! मदोन्मत्त हाथी जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराज के गर्जन को सह नहीं सकता वैसे ही कर्ण भी भीमसेन की प्रत्यञ्चा के शब्द को सह नहीं सके । वे क्षण भर भीमसेन के समीप से हटकर, उनके बाणों से मरे हुए आपके पुत्रों को देखकर, अत्यन्त खिन्न हो गये । इसके पश्चात् वे फिर भीमसेन से भयानक संग्राम करने लगे । उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये । वे फुफकार मारनेवाले विषैले नाग की भाँति गरम श्वास लेने और बाणों की वर्षा करने लगे॥१।३॥ उस समय उनकी शोभा किरणें फैला

किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥
ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाऽण्डजा द्रुमम् ॥ ६ ॥
कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥
चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद्युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥
खं पूरयन्महावेगात्खगमान्गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोचाऽऽधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥
तमन्तकमिवाऽऽयस्तमापतन्तं वृकोदरम् ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥
तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान्व्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥
ततो विधम्याऽऽधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥
यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

रहे सूर्य के समान हुई । महावीर भीमसेन भी सूर्य की किरणों के समान बाण बरसाकर कर्ण को इस प्रकार व्याप्त करने लगे जिस प्रकार पर्वत को सूर्य किरणों से ढक लेते हैं । पक्षी जैसे वृक्ष के कोटर में प्रवेश करते हैं वैसे ही मयूरपुच्छशोभित कर्ण के छोड़े हुए बाण भीमसेन के अङ्गों में धँसने लगे। उस समय कर्ण के धनुष से छूटे हुए सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण निरन्तर चारों ओर से गिरकर कतार बाँधे हुए हंसों के समान दिखाई पड़ने लगे॥४।७॥ ऐसा जान पड़ने लगा कि कर्ण के बाण केवल धनुष से ही नहीं, बल्कि उनके ध्वज,छत्र,ईषामुख और रथ के अन्यान्य सामानों से निरन्तर निकल रहे हैं। इस प्रकार महावीर कर्ण ने, जीवन का मोह छोड़कर,वेगशाली सुवर्णमय बाण बरसाकर आकाशमण्डल को व्याप्त कर दिया ॥८।९॥तब महाबली भीमसेन ने अपने बाणों से कर्ण के चलाये हुए बाणों को छिन्न भिन्न कर दिया और कर्ण को तीक्ष्ण बीस बाण मारे॥१०।१२॥कर्णने पहले भीमसेन को जैसे बाणों से ढक दिया था वैसे ही भीमसेन ने कर्ण को बाणों से छिपा दिया। [हे राजेन्द्र] तब आपके पक्ष के वीर और चारणगण भीमसेन का पराक्रम देखकर, परम सन्तुष्ट हो, उन्हें धन्यवाद देने लगे । उस समय कौरवपक्ष के भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ और पाण्डवपक्ष के युधामन्यु, उत्तमौजा, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन, ये

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन्महारथाः ।
साधुसाध्विति वेगेन सिंहनादमथाऽनदन् ॥ १६ ॥
तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन्दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञः स राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥
पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः ।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥
दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥
ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥
ते पीडयन्भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥
ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् ।
मुष्टिना पाण्डवो राजन्दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त सन्धाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान्प्रभुः ॥ २४ ॥
निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥

दस महारथी भीमसेन को धन्य-धन्य कहकर सिंह-नाद करने लगे। समरभूमि में चारों ओर लोमहर्षण कोलाहल सुनाई पड़ने लगा॥१३।१६॥हे कुरुराज ! तब आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने स्फूर्त्ति के साथ अपने भाइयों से कहा—हे भाइयो ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम तुरत ही कर्ण की सहायता करने का यत्न करो। उनके समीप जाओ और कुपित भीमसेन से उनकी रक्षा करो। तुम सहायता नहीं करोगे तो अवश्य ही भीमसेन के तीव्र बाणों से कर्ण का प्राणान्त हो जायगा ॥१७।१९॥हे महाराज ! तब आपके सात पुत्र, बड़े भाई दुर्योधन की आज्ञा से, कुपित होकर, भीमसेन की ओर वेग से चले और बाणवर्षा से उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। वर्षा ऋतु में मेघ जैसे जलधाराओं से पर्वत को ढक लेते हैं वैसे ही उन्होंने बाणवर्षा से भीम-सेन को अदृश्य सा कर दिया। प्रलयकाल में सात ग्रह जैसे चन्द्रमा को पीड़ित करते हैं वैसे ही वे सातों महारथी भाई वीर भीमसेन को पीड़ित करने लगे॥२०।२२॥महावीर भीमसेन को पिछले वैर का स्मरण हो

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥
शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः ।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥
ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन्क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥
शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥
पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः ।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥ ३१ ॥
प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे ।
विकर्ण तेनाऽसि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥
त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन् ।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥
विशेषतो हि नृपतेस्तथाऽस्माकं हिते रतः ।
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः ।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥

आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर दृढमुष्टि से शोभित धनुष को खींचा और सूर्यकिरण-सदृश सात उग्र बाण छोड़े। जिस समय भीमसेन ने धनुष पर बाणों को चढ़ाकर खींचा उस समय ऐसा जान पड़ा मानों वे आपके पुत्रों के प्राणों को खींच रहे हैं॥२३।२५॥ भीमसेन के छोड़े हुए वे सुवर्णपुङ्खयुक्त पैने बाण सातों भाइयों के शरीरों को चीरकर, उन्हें प्राणहीन करके; रक्त-पान करके आकाश में गरुड़ पक्षियों के समान शोभायमान हुए। रक्त से भीगे हुए पङ्खवाले उन बाणों के प्रहार से हृदय फट जाने के कारण मरकर आपके सातों पुत्र पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते समय ऐसा जान पड़ा मानों पर्वत के शिखर पर उत्पन्न बड़े-बड़े वृक्षों को किसी हाथी ने तोड़कर गिरा दिया हो॥२६।२९॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ, चित्रसेन और विकर्ण, ये आपके सातों पुत्र मारे गये। उनमें से विकर्ण पाण्डवों को बहुत प्रिय थे। विकर्ण के शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर भीमसेन कहने लगे—हे भाई विकर्ण! मैंने युद्ध में तुम सौ भाइयों को मारने की प्रतिज्ञा की थी। उसी प्रतिज्ञा की रक्षा करने के निमित्त आज, अप्रिय होने पर भी, मुझे तुम्हारा वध करना ही पड़ा। तुम क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध करने आये और इसी कारण मारे गये। हा! युद्ध का धर्म बड़ा ही निष्ठुर है। हम पाण्डवों के, विशेष कर राजा-

सञ्जय उवाच—तान्निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरमसृजत्पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥
स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत ।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चाऽऽत्मनो महत् ॥ ३७ ॥
तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥
ततो हृष्टमना राजन्वादित्राणां महास्वनैः ।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे ।
अभ्ययात्समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४० ॥
एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् ।
हतान्दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ ४१ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः ।
इति सञ्चिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥
यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥ ४३ ॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर के, तुम हितचिन्तक थे। न्याय से हो या अन्याय से, चाहे जिस प्रकार, तुम्हारा वध मुझे करना ही पड़ा। बृहस्पति के तुल्य अगाध बुद्धिवाले परम पूज्य पितामह भीष्म भी मारे जाकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। इसी से कहना पड़ता है कि युद्ध बड़ा ही निष्ठुर कर्म है॥३०।३५॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! कर्ण के सम्मुख ही इस प्रकार आपके सात पुत्रों को मारकर भीमसेन घोर सिंहनाद करने लगे। उनका सिंहनाद सुनने से धर्मराज युधिष्ठिर को पता लग गया कि हमारी विजय हो रही है। इससे उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ। पाण्डवपक्ष में बाजे बजाकर भीमसेन के सिंहनाद का उत्तर दिया गया। धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार महावीर भीमसेन का अभिप्राय जानकर प्रसन्नतापूर्वक शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य की ओर आक्रमण करने के निमित्त चले॥३६।४०॥इधर राजा दुर्योधन अपने इकतीस भाइयों की मृत्यु देखकर, शोकाकुल होकर, सोचने लगे कि महामति विदुर ने सत्य ही कहा था। इस प्रकार सोच-विचार में पड़कर राजा दुर्योधन किङ्कर्तव्यविमूढ़ से हो गये॥४१।४२॥हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्मति दुर्योधन और दुरात्मा कर्ण ने द्यूतक्रीड़ा के समय भरी सभा में द्रौपदी को लाकर, उनको सम्बोधन करके आपके, सब पाण्डवों के और कौरवों के सम्मुख कहा था कि "हे द्रौपदी! पाण्डवों को तुम मरा हुआ ही समझो; वे सदा के

पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ।
यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवाऽऽत्मजैः ।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः॥ ४६ ॥
तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥
विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नाऽलभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुंक्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥
त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥
तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवाऽपनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥
हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चाऽऽत्मजानां ते सुताश्चाऽन्ये महारथाः ॥ ५१ ॥
यानन्यान्ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ५२ ॥
त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

लिये नरकगामी हो गये हैं। इसलिए अब तुम किसी और को अपना पति पसन्द कर लो।" हे महाराज! अब उन कठोर वचनों के प्रणाम को भोगने का यही उचित समय उपस्थित हुआ है॥४३।४६॥आपके पुत्रों ने वीर पाण्डवों को खोखले तिल, निःसार आदि कटु वचन कहकर उनके हृदय में जो क्रोध की अग्नि भड़काई थी, उस क्रोधाग्नि को तेरह वर्ष के पश्चात् प्रचण्ड करके भीमसेन आपके पुत्रों के प्राण ले रहे हैं। महामति विदुर बहुत कुछ समझा-बुझाकर, विलाप करके भी, आपको शान्ति के पक्ष में नहीं ला सके। इस समय आप अपने पुत्रों के साथ विदुर की बात न मानने का परिणाम भोगिए॥४६।४८॥आपने स्वयं वृद्ध, धीर, विचक्षण और तत्त्वदर्शी होकर भी दैव-विडम्बना-वश अपने हितचिन्तकों के हितवचन नहीं सुने। अब शोक करना वृथा है। मुझे जान पड़ता है कि अपनी दुर्नीति के कारण आप अपने पुत्रों के विनाश का कारण बने हैं। हे कुरुनायक! महावीर विकर्ण और चित्रसेन आदि आपके जो महाबली पुत्र भीमसेन के आगे पड़े वे यमपुर को चले गये। आपके ही कारण मुझे, भीमसेन और कर्ण के बाणों से, सहस्रों वीर सैनिकों का संहार देखना ही पड़ा॥४९।५३॥

द्रोणपर्व का एक सौ सैंतीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३७ ॥

॥ अथ अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—महानपनयः सूत ममैवाऽत्र विशेषतः ।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये सञ्जय शोचतः ॥ १ ॥

यद्गतं तद्गतमिति ममाऽऽसीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि सञ्जय ॥ २ ॥
यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममाऽपनयसम्भवः ।
वीराणां तन्ममाऽऽचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच— कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ४ ॥
भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्य च्छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥
तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥
तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥
भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिन्दम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥
वारणैः पतितै राजन्वाजिभिश्च नरैः सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥
ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाऽब्रुवन् ॥ १० ॥
ततो व्युदस्तं तत्सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् ।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥

एक सौ अड़तीस अध्याय ॥ १३८ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय! मुझे जान पड़ता है कि इस बारे में मेरा ही बड़ा भारी दोष है और उसी का यह शोचनीय फल उपस्थित है।पहले मैं यह सोचकर व्यतीत हुई बात की उपेक्षा किया करता था कि जो हो गया सो हो गया, उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं, किन्तु इस समय व्यतीत हुई बात के प्रतिविधान के लिए मैं अत्यन्त ही व्यग्र हो रहा हूँ। अस्तु, मैं धैर्य धारण करके सब सुनूँगा। तुम मेरी दुर्नीति के कारण होनेवाले जनसंहार का वर्णन करो ॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् महारथी कर्ण और भीमसेन दोनों, जलधारा बरसाने वाले मेघों के समान, बाण बरसाने लगे। भीमसेन के नाम से अङ्कित सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाण कर्ण के जीवन को चोट पहुँचाते हुए उसके शरीर में प्रवेश कर रहे थे। कर्ण के मयूरपुच्छ चिह्नित असंख्य बाणों से भीमसेन भी ढक गये॥४।६॥चारों ओर उन दोनों महावीरों के बाण गिरने से कौरवों की सेना क्षोभ को प्राप्त समुद्र के समान तितर बितर होने लगी। भीमसेन धनुष से छिपेले सर्प-सदृश भयानक बाण छोड़कर कौरव सेना का नाश करने लगे। आँधी से टूटे हुए वृक्षों की भाँति तीक्ष्ण बाणों से गिराये गये असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों की लाशों

ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः ।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन्दिशः ॥ १२ ॥
नूनं पार्थार्थमेवाऽस्मान्मोहयन्ति दिवौकसः ।
यत्कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो वलं शरैः ॥ १३ ॥
एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥
ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे ।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥
वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥
सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः ।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूवरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसङ्घातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥
सुवर्णविकृतैश्चाऽपि गदामुसलपट्टिशैः ।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी ।
कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥

से समरभूमि पट गई॥७।९॥भीमसेन के बाणों की गहरी चोट खाकर कौरवपक्ष के सहस्रों सैनिक "अरे यह क्या हुआ !" कहते हुए भागने लगे । महाबाहु कर्ण भी उस समय विमोहित से होकर कौरवपक्ष के ही असंख्य सैनिकों का संहार करने लगे । सिन्दु-सौवीर देश की और कौरवों की सेना के जो योद्धा मरने से बच गये थे वे महावीर कर्ण और भीमसेन के बाणों से पीडित और हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों से हीन होकर, उन्हें छोड़कर, चारों ओर से भागने और यह कहने लगे—"जान पड़ता है कि पाण्डवों की ओर से देवता लोग हम पर आक्रमण कर रहे हैं । ऐसा नहीं है तो कर्ण और भीमसेन के बाणों से हमारी सेना का नाश क्यों हो रहा है?" ॥१०।१३॥हे राजेन्द्र ! आपकी वह भय पीडित सेना यों कहती हुई, उन दोनों वीरों के बाणों के गिरने की सीमा को पार करके, दूर जाकर संग्राम का दृश्य देखने लगी । उस समय असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के रक्त से, रणभूमि में शूरों के उत्साह और आनन्द को बढ़ानेवाली और डरपोक मनुष्यों के लिए भयावनी, एक नदी बह चली॥१४।१६॥मारे गये असंख्य मनुष्य, हाथी, घोड़े, उनके अलङ्कार ढेर के ढेर—अनुकर्ष, पताका, रथभूषण पहिये, अक्ष और कूबर से हीन—रथ, गम्भीर शब्द करनेवाले सुवर्णचित्रित धनुष, सुवर्ण-पुङ्खयुक्त बाण

वलयैरपविद्धैश्च तत्रैवाऽङ्गुलिवेष्टकैः ।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष ॥ २२ ॥
तनुत्रैःसतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत ।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः ।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुन्धरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः ।
अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्माऽतिमानुषम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत ।
अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाऽहवे ॥ २६ ॥
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।
निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।
मेघजालनिभं सैन्यमासीत्तत्र नराधिप ॥ २८ ॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे । २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३८ ॥

बिना केंचुल के सर्प सदृश प्रास, तोमर, खड्ग, परशु, सुवर्णमय गदा, मुशल, पट्टिश, अनेक आकार के ध्वज, शक्ति, परिघ और विचित्र शतघ्नी आदि अनेक शस्त्रों से रणभूमि परिपूर्ण हो गई॥१७।२१॥बाणों से कटे हुए ढेरों अङ्गद, हार, कुण्डल, मुकुट, कङ्कण, अङ्गुलिवेष्टन, चूडामणि, पगड़ी, सुवर्ण के आभूषण, कवच, तलत्राण, ग्रैवेय, वस्त्र, छत्र, चमर, असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के शरीर तथा रक्त से सने हुए बाण इधर उधर पड़े होने से रणभूमि ग्रहतारागण से पूर्ण गगनमण्डल की भाँति शोभा को प्राप्त हुई॥२१।२५॥युद्ध देखने की अभिलाषा से आये हुए सिद्ध और चारणगण उन दोनों महावीरों के अचिन्तनीय अमानुष कार्य देखकर बहुत ही विस्मित हो रहे थे। जैसे वायु सहित अग्नि सूखी घास के ढेर में घूम फिरकर उसे सहज ही भस्म कर देती है वैसे ही महावीर भीमसेन कर्ण के साथ सेना के मध्य में विचरते हुए उसका संहार करने लगे। दो हाथी जैसे लड़ते भिड़ते हैं और नरकुल के वन को रौंदते हैं वैसे ही महावीर कर्ण और भीमसेन परस्पर युद्ध करके असंख्य ध्वजाओं से भूषित रथों, हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को छिन्न भिन्न तथा नष्ट करने लगे। हे महाराज! महावीर भीम और कर्ण इसी प्रकार असंख्य सेना का नाश करने लगे॥२५।२९॥

द्रोणपर्व का एक सौ अड़तीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३९ ॥

सञ्जय उवाच—ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥
वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ २ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतने निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥
स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्याऽपातयद्भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ४ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥
पुनरस्य त्वरन्भीमो नाराचान्दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ ६ ॥
ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥
ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन्वै यथा पुरा ॥ ८ ॥
सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परन्तपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत्परम् ॥ १० ॥
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥
तस्मै कर्णः शतं राजन्निपूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान्क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

एक सौ उन्तालीस अध्याय ॥ १३९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! कर्ण ने भीमसेन को तीन बाण मारकर निरन्तर असंख्य बाण छोड़े महावीर भीमसेन कर्ण के बाणों से बहुत घायल होने पर भी, जोड़े जा रहे पर्वत के समान तनिक भी विचलित नहीं हुए॥१।२॥उन्होंने तेल से स्वच्छ किये गये तीक्ष्ण कर्णी बाण से कर्ण के कान को फाड़ दिया। आकाश से गिरी हुई सूर्यकिरणों की भाँति कर्ण का मनोहर कुण्डल पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर उनकी छाती में भीमसेन ने एक भल्ल बाण और मस्तक में सर्प-सदृश दस नाराच बाण मारे॥३।६॥हे महाराज ! सर्प जैसे बिल में प्रवेश होते हैं,वैसे ही भीमसेन के नाराच बाण कर्ण के मस्तक में विंध गये। कर्ण पहले मस्तक पर नील कमलों की माला धारण करने से जैसे शोभित होते थे, वैसे ही उस समय उन बाणों से उनकी शोभा हुई। वे इस प्रकार भीमसेन के बाणों की गहरी चोट खाकर रक्त से तर हो गये। वे रथ-कूबर का आश्रय लेकर, नेत्रों को मूँदकर, क्षणभर के लिए अचेत से हो गये हैं। सावधान होने पर वे कुपित होकर बड़े वेग से भीमसेन के रथ की ओर दौड़े और उनके ऊपर, गिद्धों के पक्षों से शोभित,

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १३ ॥
कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परन्तप ॥ १४ ॥
तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ ।
जीमूताविव चाऽन्योन्यं प्रववर्षतुराहवे ॥ १५ ॥
तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम् ।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे ॥ १६ ॥
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत ॥ १७ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा ।
तद्पास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥ १८ ॥
अन्यत्कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम् ।
तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदाऽस्य वृकोदरः ॥ १९ ॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि ।
सप्तमं चाऽष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥ २० ॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथाऽपि च ।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडषं च वृकोदरः ॥ २१ ॥
तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथाऽपि वा ।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि ॥ २२ ॥
निमेषार्धात्ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ।
दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम् ॥ २३ ॥

सैकड़ों-सहस्रों बाण बरसाने लगे॥१०।१२॥महावीर भीमसेन, कर्ण के बल-वीर्य का कुछ भी खयाल न करके,अनादरपूर्वक उनके ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाने लगे। कर्ण ने भी क्रोध में आकर भीमसेन के वक्ष-स्थल में नव बाण मारे। इसी प्रकार वे दोनों पराक्रमी वीर परस्पर स्पर्धा करके जलधारा बरसानेवाले दो मेघों के समान विविध बाण बरसाते और तल-ध्वनिपूर्वक सिंहनाद करते हुए एक दूसरे को शङ्कित करने लगे। महाबाहु भीमसेन ने क्षुरप्र बाण से कर्ण का धनुष काटकर घोर सिंहनाद किया॥१३।१८॥ वीर कर्ण ने बड़ी स्फूर्ति के साथ वह कटा हुआ धनुष फेंककर और दूसरा सुदृढ धनुष हाथ में लिया। इसे भी भीमसेन ने देखते ही देखते काट गिराया। अब यह दशा हुई कि कर्ण ज्योंहि नवीन धनुष हाथमें लेते थे त्यों-ही भीमसेन उसे काट डालते थे॥१८।२२॥इस प्रकार बहुत से धनुष कट जाने पर स्फूर्ति से धनुष हाथ में लेकर कर्ण ने देखा कि कौरव और सिन्धु-सौवीर देश की सेना नष्ट हो रही है; ढेर के ढेर कवचों, ध्वजाओं

सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम् ।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून्प्रेक्ष्य सर्वशः ॥ २४ ॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद्दीप्तं वपुरजायत ।
स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ २५ ॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा ।
ततः क्रुद्धः शरानस्यन्सूतपुत्रो व्यरोचत ॥ २६ ॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ।
मरीचिविकचस्येव राजन्भानुमतो वपुः ॥ २७ ॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम् ।
कराभ्यामाददानस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ॥ २८ ॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान्नाऽन्तरं ददृशे रणे ।
अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्याऽऽसीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः ।
स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।
ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१ ॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।
बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन्क्रौञ्चा इवाऽम्बरे ।
गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान्प्रदीप्ताग्रान्मुमोचाऽधिरथिः शरान् ।
ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥

और शवों से रणभूमि परिपूर्ण हो रही है, और चारों ओर हाथियों, घोड़ों और रथों के सवार घायल हो-होकर मरकर गिर रहे हैं। यह देखकर कर्ण क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। वे धनुष चढ़ाकर, क्रोधपूर्ण दृष्टि से भीमसेन की ओर देखकर, असंख्य बाण बरसाने लगे॥२३।२६॥उस समय वे शरद्-ऋतु के दोपहर के सूर्य के समान प्रचण्ड हो उठे। उनकी ओर नेत्र भरकर देखना असम्भव सा हो गया। उनका रौद्र रूप और भयानक शरीर भीमसेन के बाणों से बिंधा हुआ होने के कारण,किरणमण्डित सूर्यबिम्ब के समान जान पड़ने लगा। वे कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं, कब धनुष की डोरी खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं, यह कुछ भी नहीं देख पड़ता था। वे दोनों हाथों से बाण बरसाने लगे। उनके मण्डलाकार घूमते हुए धनुष से अग्निचक्र की चिनगारियों के समान भयानक बाण निरन्तर निकलने लगे॥२७।३०॥उनके धनुष से छूटे हुए असंख्य बाण आकाश में विस्तृत हो गये। उनसे सब दिशा-विदिशाएँ व्याप्त हो गईं, सूर्य

अजस्रमपतन्वाणा भीमसेनरथं प्रति ।
ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥ ३५ ॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।
चापाद्धिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवाऽत्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत्क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।
तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ।
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ॥ ३८ ॥
तां समुद्रमिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥
रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्याऽऽसीद्विशाम्पते ।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवाऽपरम् ॥ ४० ॥
तस्माच्छराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाऽम्बरम् ॥ ४१ ॥
सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥
ततो व्योम्नि विपक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥
कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥

का प्रकाश छिप गया। उनके बाण क्रौञ्च पक्षी की भाँति कतार बाँधकर आकाश में जाते दिखाई पड़ने लगे। कर्ण फिर सुवर्णमण्डित,सिल्ली पर तीक्ष्ण किये गये, गिद्ध के पङ्खों से युक्त, वेगशाली बाण भीमसेन पर बरसाने लगे॥३१।३४॥ वे सुवर्ण-शोभित बाण भीमसेन के रथ पर निरन्तर गिरने लगे। आकाश-मार्ग में बाण टीड़ीदल से प्रतीत होते थे। कर्ण इतनी स्फूर्ति के साथ बाण बरसाने लगे कि उन बाणों का सिलसिला बहुत बड़े लम्बे बाण के समान जान पड़ता था। मेघ जैसे जल बरसाकर पर्वत को ढक देता है, वैसे ही वीर कर्ण ने क्रोधपूर्वक बाण बरसाकर भीमसेन को ढक दिया॥३५।३८॥ हे राजेन्द्र! उस समय आपके पुत्र और सारी सेना, सब लोग युद्ध छोड़कर भीमसेन के बाहुबल, पराक्रम और अद्भुत कार्य देखने लगे। पराक्रमी भीमसेन,क्षोभ को प्राप्त हो रहे समुद्रके समान, भयानक बाणों की परवा न करके क्रुद्ध होकर कर्ण के रथ की ओर वेग से बढ़े।उनके सुवर्णपृष्ठ,मण्डलाकार, इन्द्रचाप-तुल्य धनुष से सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण निकलकर आकाश-मण्डल को व्याप्त करने लगे, जिससे जान पड़ता था कि आकाश में सुवर्ण की माला लटक रही है॥३९।४२॥इसी समय महावीर कर्ण ने क्रोध करके विष के बुझे तीक्ष्ण बाण भीमसेन को मारना प्रारम्भ कर दिया। वे आकाशचारी बाण भीमसेन के बाणों से कटकर नीचे गिरने लगे। भीमसेन और कर्ण के

तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत्संवृता व्रजैः ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः॥ ४५ ॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किञ्चन ।
स भीमं छादयन्बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।
तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।
अन्योन्यशरसंस्पर्शात्तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।
तथा कर्णः शितान्बाणान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४९ ॥
सुवर्णविकृतान्क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकांक्षया ।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥
विशेषयन्सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥ ५१ ॥
अमर्षी बलवान्क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघाताद्भूत्तयोः ॥ ५२ ॥
तलशब्दश्च सुमहान्सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥ ५३ ॥
योधा व्युपारमन्युद्धाद्दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।
कर्णपाण्डवयो राजन्परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥

सुवर्णपुङ्खयुक्त, सीधे जानेवाले, अग्नि की चिनगारियों के समान बाणों से आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। उस समय सूर्य का प्रकाश छिप गया, वायु की गति रुक गई और बाणों के मारे अँधेरा हो जाने से कोई भी वस्तु भली भाँति नहीं दिखाई देती थी॥४३।४६॥ सूतपुत्र कर्ण भीमसेन के बल-वीर्य की परवा न करके उन्हें अधिकतर बाणों से ढककर और भी अधिक बाहुबल दिखाने लगे। भीमसेन भी उन पर सहस्रों बाण छोड़ने लगे। उन दोनों वीरों के बाण वायु के वेग से जाकर परस्पर टकराने लगे। उन बाणों की रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो गई। पराक्रमी कर्ण अत्यन्त ही कुपित होकर, भीमसेन के वध के निमित्त, सान पर रक्खे हुए तीक्ष्ण बाण बरसा रहे थे। महाबाहु भीम ने भी अधिक बल-विक्रम प्रकट करके स्पर्द्धा के साथ बाणों के द्वारा, अन्तरिक्ष में, कर्ण के चलाये हुए एक-एक बाण के तीन तीन टुकड़े कर डाले; और "ठहर जा, ठहर जा!" कहकर वे ललकारने लगे॥४७।५०॥ इसके पश्चात् उन्होंने फिर, जलाने के निमित्त उद्यत अग्नि की भाँति, क्रोध से लाल होकर तीक्ष्ण बाण बरसाना प्रारम्भ किया। उन दोनों वीरों के, गोह के कड़े चमड़े के बने, अङ्गुलित्राणों के आघात से चट-चट शब्द होने लगा। भीषण तलशब्द, सिंहनाद, रथों की घर्घराहट और प्रत्यञ्चा का शब्द समरभूमि में व्याप्त हो उठा॥५१।५३॥अन्यान्य योद्धाओं ने परस्पर

देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥ ५५ ॥
ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥
कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून्महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान्रणे ॥ ५७ ॥
तावद्भिरथ तान्भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान्सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ५८ ॥
ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाऽऽधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवाऽपरम् ॥ ५९ ॥
तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन्पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥
पुनश्चाऽसृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥ ६१ ॥
युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
रश्मीन्योक्त्राणि चाऽश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे
तस्याऽश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥
सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४ ॥

मारने को उद्यत कर्ण और भीमसेन का बाहुबल और पराक्रम देखने के निमित्त युद्ध करना बन्द कर दिया। देवता, ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वगण दोनों वीरों को धन्य-धन्य कहने लगे। विद्याधरगण उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। पराक्रमी भीमसेन क्रोध से विह्वल होकर अपने अस्त्रों से कर्ण के अस्त्रों को व्यर्थ करके उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥५४।५६॥महावीर कर्ण ने भीमसेन के बाणों को रोककर उन पर विषैले सर्प से विकट नव नाराच बाण छोड़े। भीम ने नव ही बाणों से राह में उन बाणों को काट डाला। अब ठहर, ठहर कहकर भीम ने ताककर एक यमदण्ड-तुल्य बाण कर्ण को मारा॥५७।५९॥पराक्रमी कर्ण ने हँसते हँसते भीमसेन के उस बाण को मध्य में ही तीन बाणों से काट डाला। तब महावीर भीमसेन फिर अत्यन्त भयानक बाण बरसाने लगे। कर्ण भी अपना अस्त्रबल प्रकट करते हुए निर्भय होकर उन बाणों को रोकने लगे॥६०।६१॥इसके पश्चात् अत्यन्त कुपित होकर कर्ण ने नतपर्व तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन के तरकस, धनुष की डोरी और घोड़ों की लगाम, जोत के सहित, काट डाली। फिर उनके घोड़ों को मार डाला और सारथी को भी पाँच बाण मारे। उन बाणों की चोट से भीमसेन का सारथी विह्वल हो उठा और भागकर महावीर सात्यकि के रथ पर चला गया। तब कालानल-तुल्य महाप्रतापी कर्ण ने क्रोध

ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत् ।
स विधन्वा महाबाहू रथशक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।
तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।
साऽपतद्दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।
स चर्माऽऽदत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥
खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।
तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।
स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन्कर्णरथं प्रति ।
स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्वा महानसिः ॥ ७१ ॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाऽम्बरात् ।
ततः प्रहस्याऽऽधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत्स शरान्कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया ॥ ७३ ॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ।
स वध्यमानो बलवान्कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ ॥
वैहायसं प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।
स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥

से अत्यन्त अधीर होकर, निरादर की हँसी हँसकर, भीमसेन की ध्वजा और पताका काट डाली॥६२। ६५॥यह देखकर भीमसेन ने क्रोध के मारे आपेसे बाहर हो गये । उन्होंने सुवर्णमण्डित लोहे की उग्र शक्ति घुमाकर कर्ण के रथ पर चलाई। मित्र के लिए प्राण-पण से युद्ध करते हुए कर्ण ने बड़ी भारी उल्का के समान प्रज्वलित उस शक्ति को आते देखकर तत्काल दस बाणों से टुकड़े टुकड़े कर दिया॥६५।६८॥तब भीमसेन ने मृत्यु या जय में से एक को प्राप्त करने के निमित्त उत्सुक होकर सुवर्ण से मढ़ी हुई ढाल और तलवार हाथ में ली । महावीर कर्ण ने हँसते-हँसते उसी क्षण बहुत से बाणों से उस ढाल को काट डाला । भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र कर्ण के रथ पर तलवार का वार किया । उस वार से कर्ण का धनुष, डोरी समेत, कट गया । इस प्रकार धनुष को काटकर वह तलवार, आकाश से गिरे हुए कुपित सर्प की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ी॥६८।७२॥अब भीमसेन को मारने के निमित्त कर्ण ने एक सुदृढ़ प्रत्यञ्चायुक्त धनुष लेकर

लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।
तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।
तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥ ७७ ॥
यदियेष रथात्कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।
स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ७८ ॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।
तद्विहत्याऽस्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥
संरम्भात्पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।
तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।
तयोरासीत्सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।
क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वाऽर्जुनहतान्नागान्पतितान्पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥
हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकांक्षी राधेयं नाऽभ्यहारयत् ॥ ८४ ॥

तीक्ष्ण सुवर्णपुङ्खशोभित सहस्रों बाण बरसाना आरम्भ किया। महाबाहु भीमसेन इस प्रकार कर्ण के बाणों से अत्यन्त ही पीड़ित हो उठे। वे क्रोध से कर्ण को व्यथित करते हुए आकाश में उछले॥७२।७५॥जय प्राप्त करने के निमित्त अधिकतर उद्योग कर रहे भीमसेन के असाधारण कार्य को देखकर महावीर कर्ण रथ में छिप गये और भीमसेन के अद्भुत आक्रमण से बचने की चेष्टा करने लगे। कर्ण को रथ में छिपे और व्याकुल देखकर, उनकी ध्वजा पकड़कर, भीमसेन पृथ्वी पर आ गये। पक्षियों के राजा गरुड़ जैसे किसी महासर्प को मारने की चेष्टा करें वैसे ही भीमसेन को कर्ण-वध के निमित्त यत्न करते देखकर कौरव और चारणगण उनके साहस और बल की बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगे। महावीर भीमसेन इस प्रकार अपना रथ छोड़कर, क्षत्रिय-धर्मानुसार युद्ध करने को, कर्ण के समीप जा पहुँचे॥७५।७९॥कर्ण भी अत्यन्त क्रोध के आवेश से अधीर होकर युद्ध के निमित्त आये हुए भीमसेन के समीप पहुँचे। अब वे दोनों महावीर सम्मिलित होकर, परस्पर स्पर्धा प्रकट करते हुए, वर्षाऋतु के दो मेघों के समान भयानक शब्द से गरजने लगे। देवासुर-युद्ध की भाँति उनका युद्ध भयङ्कर हो गया॥७९।८२॥महावली कर्ण ने अस्त्रबल के प्रभाव से भीमसेन को निहत्था करके उनका पीछा किया। यह देखकर भीमसेन बहुत भयभीत हुए। अर्जुन के बाणों से विनष्ट गज-सेना के भीतर वे शीघ्र प्रवेश हो गये। वहाँ पर वे पर्वत ऐसे हाथियों की लाशों की ओट में जा पहुँचे। उन्होंने सोचा कि कर्ण का रथ इसके भीतर नहीं आ सकेगा। वहाँ से रथदुर्ग में प्रवेश करके, अपनी रक्षा के निमित्त उन्होंने कर्ण पर प्रहार नहीं किया॥८२।८४॥हनुमान् ने जैसे महौषधि युक्त

व्यवस्थानमथाऽऽकांक्षन्धनञ्जयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥ ८५ ॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।
तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत्कुञ्जरं पुनः ॥ ८६ ॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चाऽन्यद्यद्यत्पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥
तत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥ ८८ ॥
भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत्सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥
शक्तोऽपि नाऽवधीत्कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥ ९० ॥
तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः ।
मूर्च्छयाऽभिपरीताङ्गमकरोत्सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥
व्यायुधं नाऽवधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ९२ ॥
धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत् ॥ ९३ ॥
ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः ।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९४ ॥

गन्धमादन पर्वत उठा लिया था वैसे ही, अर्जुन के बाणों से, मरा हुआ एक हाथी उठाकर उसकी आड़ में भीमसेन आत्मरक्षा करने लगे । वीर कर्ण ने बाणों से वह हाथी की लाश भी काट डाली। यह देखकर महाबली भीमसेन अतीव क्रुद्ध हो उस हाथी के कटे हुए अङ्ग उठा-उठाकर कर्ण के ऊपर फेंकने लगे।पहिये, मरे हुए घोड़े आदि जिस पदार्थ को सम्मुख पाया, वही उठा-उठाकर वे कर्ण के ऊपर फेंकने लगे॥८५। ८८॥महारथी कर्ण ने असंख्य बाणों से भीमसेन की फेंकी हुई उन सब वस्तुओं को स्फूर्ति के साथ काट डाला । तब कर्ण को मारने के निमित्त पराक्रमी भीमसेन वज्रतुल्य दारुण घूँसा तानकर दौड़े । किन्तु उन्हें मार डालने के निमित्त समर्थ होकर भी, अर्जुन की प्रतिज्ञा सफल करने के विचार से, भीमसेन ने उन्हें मारा नहीं॥८८।९०॥ महापराक्रमी कर्ण भी उग्र बाण मारकर भीमसेन को अत्यन्त व्याकुल और बारम्बार मूर्च्छित करने लगे । वे चाहते तो निहत्थे भीमसेन को सहज ही मार डालते;किन्तु कुन्ती से जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को नहीं मारूँगा, उसी के अनुसार उन्होंने भीमसेन का वध नहीं किया। कर्ण ने दौड़कर धनुष के सिरे से भीमसेन के शरीर को छू दिया । क्रुद्ध सर्प की भाँति श्वास ले रहे भीमसेन ने वह धनुष छीनकर कर्ण के माथे में मारा। कर्ण के नेत्र क्रोध से लाल हो आये।

पुनः पुनस्तूवरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥
यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥
मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥
क युद्धं क मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥
सूदान्भृत्यजनान्दासांस्त्वं गृहे त्वरयन्भृशम् ।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥
मुनिर्भूत्वाऽथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ १०० ॥
फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथाऽतिथिपूजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥ १०१ ॥
कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते ।
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम् ॥ १०२ ॥
अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥ १०३ ॥
योद्धव्यं मारिषाऽन्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चाऽन्यच्च विद्यते ॥ १०४ ॥

उन्होंने अनादर की हँसी हँसकर बारम्बार यों कहा—॥९१।९४॥ अरे तूबरक (बिना मूँछों के नपुंसक) अरे मूढ़ ! अरे पेटू ! अरे डरपोक ! अरे नादान ! अरे अस्त्रविद्या को न जाननेवाले ! अरे दुर्मति ! युद्ध मत करो । युद्धभूमि तुम्हारे योग्य स्थान नहीं है । जहाँ बहुत से भक्ष्य भोज्य आदि अनेक प्रकार के खाने-पीने के पदार्थ हों, वही स्थान तुम्हारे योग्य है । हे भीम! तुम युद्ध करने में निपुण नहीं हो, इसलिए फल-फूल कन्द-मूल का आहार करके वन में रहना और व्रत-नियम करना ही तुम्हारे योग्य है॥९५।९७॥ हे वृकोदर! कहाँ तो युद्ध और कहाँ मुनिव्रत! तुम वन में चले जाओ॥ हे तात! तुम युद्ध करने में समर्थ नहीं हो । हे भीमसेन! तुम तो घर में रसोइये, भृत्य, दास आदि को शीघ्र भोजन तैयार करने के निमित्त क्रोध से डाँटने और मारने-पीटने की योग्यता रखते हो । अथवा हे दुर्मति भीम ! मुनिव्रत धारण करके वन में फल-मूल लाओ और खाओ । हे वृकोदर! मैं तुमको शस्त्र धारण करके युद्ध करने के योग्य नहीं समझता । तुम तो वन में रहकर फल-मूल-भोजन और अतिथि-पूजन ही कर सकते हो॥९८।१०१॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! कर्ण ने यों कहकर उपहास करके, भीमसेन के बचपन के अप्रिय कामों का उल्लेख करते हुए, उनको अनेक मर्मभेदी बातें सुनाईं । फिर समर करते-करते थककर संकुचित हो जाने को छिपा रहे भीम-

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥१०५॥
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम् ।
उवाच कर्णं प्रहसन्सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥१०६॥
जितस्त्वमसकृद्दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना ।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥१०७॥
मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव ।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥१०८॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु ।
भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥१०९॥
विरराम रणात्तस्मात्पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन्व्यकत्थयत् ॥११०॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततो राजञ्शिलाधौताञ्शराञ्शाखामृगध्वजः ॥१११॥
प्राहिणोत्सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।
ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥११२॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाऽऽविशन् ।
स भुजङ्गैरिवाऽऽविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥११३॥

सेन को धनुष के सिरे से टहोका देकर कर्ण ने हँसकर कहा—हे वृकोदर ! और लोगों से तुम भले ही युद्ध करो, किन्तु मुझ सरीखे योद्धाओं से अब कभी न भिड़ना । मुझ सरीखे योद्धाओं से युद्ध करनेवालों की ऐसी ही, दशा होती है । जहाँ कृष्ण और अर्जुन हैं वहाँ जाओ; वे तुम्हारी रक्षा करेंगे । अथवा घर लौट जाओ । तुम बालक हो, तुमको युद्ध की क्या पड़ी है ?॥१०१।१०५॥कर्ण के ये दारुण वचन सुनकर महावीर भीमसेन,क्रोध की हँसी हँसकर,सबके सम्मुख कहने लगे—अरे दुष्ट कर्ण!मैंने तुमको कई बार हराया और भगा दिया है । फिर तुम क्यों वृथा आत्मश्लाघा करते हुए ऐसी वृथा बातें कह रहे हो ? प्राचीन लोगों ने इन्द्र को भी जीतते और हारते देखा है । हे नीच कुल में उत्पन्न कर्ण ! यदि तुमको कुछ गर्व है तो आओ, मुझसे मल्लयुद्ध करो । जैसे मैंने राजा विराट के यहाँ महाबली महाभोगी कीचक को मारा था वैसे ही सब राजाओं के सम्मुख तुमको भी मार डालूँगा ॥१०६।१०९॥हे राजेन्द्र ! भीमसेन को मल्लयुद्ध के लिए उद्यत देखकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कर्ण सब धनुर्धर वीरों के सम्मुख ही युद्ध से हट गये । हे महाराज! इस प्रकार भीमसेन को रथहीन तथा शस्त्रहीन करके श्रीकृष्ण और अर्जुन के आगे ही कर्ण उनको दुर्वचन सुनाने और आत्मश्लाघा करने लगे । [भीमसेन ने अत्यन्त कुपित होकर भी कर्ण के प्राण नहीं लिये । क्योंकि अर्जुन के महाबल का खयाल करके और उनकी कर्ण के मारने की प्रतिज्ञा स्मरण करके उन्होंने सोचा कि कर्ण तो मेरे के ही समान है । इसी समय भीमसेन को कर्ण के पराक्रमसे पीड़ित देखकर]॥१०९। १११॥कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! देखो,कर्ण ने भीमसेन को पीड़ित कर रक्खा है, तुम उनकी रक्षा

भीमसेनादपासेधत्सूतपुत्रं धनञ्जयः ।
स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ॥ ११४ ॥
कर्णो भीमादपायासीद्रथेन महता द्रुतम् ।
भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥ ११५ ॥
अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।
ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ११६ ॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवाऽन्तकः ।
स गरुत्मानिवाऽऽकाशे प्रार्थयन्भुजगोत्तमम् ॥ ११७ ॥
नाराचोऽभ्यपतत्कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।
तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥ ११८ ॥
धनञ्जयभयात्कर्णमुज्जिहीर्षन्महारथः ।
ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ॥ ११९ ॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥ १२० ॥
तूर्णमभ्याविशद्द्रौणिर्धनञ्जयशरार्दितः ।
ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥ १२१ ॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली ।
धनञ्जयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥ १२२ ॥

करो। हे महाराज! केशव के वचन सुनकर क्रोध के मारे अर्जुन के नेत्र लाल हो गये। उन्होंने श्रीकृष्ण के कहने से कर्ण के ऊपर तीक्ष्ण दारुण बाण छोड़े। अर्जुन के चलाये हुए, सुवर्णभूषित, गाण्डीव धनुष से छूटे हुए ये बाण, क्रौञ्च पर्वत में हंसों की भाँति, कर्ण के शरीर में प्रवेश करने लगे। सर्पसदृश उन बाण लगने से कर्ण व्याकुल हो उठे। उनका धनुष पहले ही भीमसेन ने काट डाला था। इस समय अर्जुन के असह्य बाणों की गहरी चोट से विह्वल होकर, रथ पर बैठकर, वे भीमसेन को छोड़कर शीघ्रता के साथ भाग खड़े हुए। पराक्रमी भीमसेन भी शीघ्र सात्यकि के रथ पर बैठकर अपने भाई अर्जुन के साथ हो गये॥११३।११६॥इसी समय अर्जुन ने क्रोध के मारे लाल लाल नेत्रों से कर्ण की ओर भयानक दृष्टि डाली और शीघ्रता के साथ मृत्युतुल्य एक भयङ्कर नाराच बाण उनके ऊपर छोड़ा। सर्प को पकड़ने के निमित्त उद्यत गरुड़ की भाँति, वह गाण्डीव धनुष से छूटा हुआ विकट बाण, आकाशमार्ग में होकर, शीघ्रता के साथ कर्ण की ओर चला। अर्जुन से कर्ण को बचाने के निमित्त उस समय महारथी अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ, आकाश में ही अपने बाण से उस भयानक नाराच बाण को काट डाला। तब अर्जुन ने अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामा को चौंसठ शिलीमुख बाण मारे। अर्जुन कहने लगे—"ठहरो, ठहरो, जाओ नहीं"। अर्जुन के बाणों से पीड़ित अश्वत्थामा ने अर्जुन की बात पर ध्यान नहीं दिया। वे तुरन्त ही मतवाले हाथियों से पूर्ण रथ-सेना के भीतर जा छिपे ॥११९।१२१॥महावीर अर्जुन गाण्डीव धनुष के गम्भीर शब्द से अन्यान्य वीरों के सुवर्णमण्डित धनुषों के शब्द को दबाकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़े। वे अपने बाणों से शत्रुसेना

नाऽतिदीर्घमिवाऽध्वानं शरैः सन्त्रासयन्बलम् ।
विदार्य देहान्नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥१२३॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥१२४॥
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥१२५॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

को भयभीत करते हुए, थोड़ी ही दूर पर पहुँचे हुए, अश्वत्थामा का पीछा करने लगे। नाराच बाणों से मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों को चीरते हुए अर्जुन ने कङ्क, मोर आदि पक्षियों के पङ्खों से शोभित बाणों के द्वारा शत्रुसेना का नाश करना प्रारम्भ किया। उन्होंने क्षण भर में कौरव पक्ष की बहुत सी सेना को नष्ट कर दिया ॥१२१।१२५॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ उन्तालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३९ ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ १ ॥
धनञ्जयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥ ३ ॥
तदा प्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाऽऽशयन् ।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान्ससैन्धवान् ॥ ४ ॥
अप्रियं सुमहत्कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः ।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः ।
युद्धं तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ६ ॥

एक सौ चालीस अध्याय ॥ १४० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! प्रतिदिन मेरा उज्ज्वल यश मन्द होता जा रहा है और मेरे बहुत से योद्धा मारे जा रहे हैं। अतएव ऐसा जान पड़ता है कि दैव ही हम लोगों के बिलकुल प्रतिकूल है। अश्वत्थामा और कर्ण के द्वारा सुरक्षित और देवगण के निमित्त भी अगम्य कौरवसेना के भीतर अर्जुन पहुँच गये हैं। महाबलशाली तेजस्वी श्रीकृष्ण, भीमसेन और यादव-श्रेष्ठ सात्यकि के साथ होने से उनका बल और पराक्रम बहुत बढ़ गया है॥१।३॥ हे सञ्जय ! यह वृत्तान्त मैंने जब से सुना है तब से शोक की अग्नि मेरे हृदय को उसी प्रकार जला रही है जिस प्रकार अग्नि सूखी घास को जलाती है। मुझे जयद्रथ आदि सब राजा काल के गाल में गये से जान पड़ते हैं। हे सूत ! जयद्रथ पहले अर्जुन का महाअनिष्ट कार्य कर चुके

यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चाऽसकृत् ।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ ७ ॥
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।
धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच—तथा तु वैकर्तनपीडितं तं भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् ।
समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥ ९ ॥
नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन्यथा जलदान्ते च सूर्यः ।
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १० ॥
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैरायोधने वीरतरं नदन्तम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ ११ ॥
अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्यमवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥ १२ ॥
तयोरभूद्भारत सम्प्रहारो यथाविधो नैव बभूव कश्चित् ।
प्रेक्षन्त एवाऽऽहवशोभिनौ तौ योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥
आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥

है। इस समय उन्हीं अर्जुन के सम्मुख पड़कर वे किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकेंगे? मुझे तो जान पड़ता है कि जयद्रथ का जीवन नष्ट हो चुका है॥४।६॥ अच्छा, अब तुम युद्ध के वृत्तान्त का वर्णन करो। जिन महावीर ने अर्जुन की सहायता करने के निमित्त, नलिनवन को रौंदनेवाले मस्त हाथी की भाँति, बारम्बार कौरवसेना को मथकर क्रुद्ध होकर उसके भीतर प्रवेश किया उन वृष्णिवंशी सात्यकि ने किस प्रकार कैसा युद्ध किया?॥६।८॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महावीर सात्यकि कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीड़ित पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन को जाते देखकर रथ पर चढ़कर उनके पीछे चलने लगे और वर्षाकाल के मेघ के समान गम्भीर गर्जन के साथ शत्रुदल का संहार करने लगे। क्रोध के मारे शरदृतु के प्रचण्ड सूर्य के समान वे प्रज्वलित हो उठे। उनका यह रौद्र रूप देखकर कौरव पक्ष के सैनिकों के हृदय काँप उठे। वे जिस समय श्वेत घोड़ों को हाँककर आगे बढ़ने लगे उस समय कौरवपक्ष का कोई भी वीर उन्हें रोकने का साहस नहीं कर सका॥९।११॥ तब क्रोधी, युद्ध से कभी न हटने वाले, धनुष और सुवर्णकवच धारण किये वीर अलम्बुष ने यादवश्रेष्ठ सात्यकि के सम्मुख जाकर उन्हें आगे बढ़ने से रोका। उस समय उन दोनों वीरों का अभूतपूर्व दारुण संग्राम होने लगा। हे महाराज! युद्धभूमि में उपस्थित दोनों पक्ष के योद्धा युद्ध छोड़कर उन दोनों वीरों का संग्राम देखने लगे। अलम्बुष ने सात्यकि का लक्ष्य करके दस बाण मारे। सात्यकि ने अपने बाणों से राह में ही अलम्बुष के बाणों को काट डाला॥१२।१४॥ तब अलम्बुष ने धनुष चढ़ाकर अग्निसदृश तीन बाण सात्यकि को मारे। वे बाण सात्यकि के कवच को तोड़कर उनके शरीर में प्रवेश हो गये।

तैः कायमस्याऽग्न्यनिलप्रभावैर्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥
तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥
अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन कालानलसन्निभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥
निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥
अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य तथाऽरिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि पुनः पुनर्वायुमिवाऽभ्रपूगान् ॥ २० ॥
ततोऽवहन्सैन्धवाः साधुदान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥
अथाऽऽत्मजास्ते सहिताऽभिपेतुरन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः ।
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥
ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान्प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥
निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याऽभिजघान वाहानुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥
ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

इस प्रकार वीर अलम्बुष ने अग्नि और वायु के सदृश प्रभावशाली अत्यन्त प्रकाशपूर्ण बाणों से सात्यकि के शरीर को छिन्न भिन्न करके शीघ्र उनके चारों घोड़ों को चार बाणों से व्याकुल कर दिया। अब विष्णु के समान प्रभावशाली सात्यकि ने वेगगामी चार बाणों से अलम्बुष के घोड़ों को मार डाला। और फिर कालानलतुल्य एक भल्ल बाण से उनके सारथी का सिर काट डाला। उन्होंने सारथी को मारकर अलम्बुष का, कुण्डलों से अलङ्कृत पूर्णचन्द्र सदृश सिर भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया॥१५।१८॥ हे राजेन्द्र ! यदुकुलतिलक सात्यकि इस प्रकार अलम्बुष को मारकर कौरवों की सेना को पीड़ित करते हुए अर्जुन के समीप जाने लगे। दुग्ध, कुन्द, चन्द्र और बर्फ के समान श्वेत, सिन्धु देश के, सुवर्णजालमण्डित, उनके घोड़े उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें समरभूमि में लेकर परिभ्रमण करने लगे॥१९।२१॥ इसी समय आपके पुत्रगण और सब सेना, दुःशासन को आगे करके, सात्यकि की ओर चली। कौरवों की सेना और सब योद्धा लोग सात्यकि को घेरकर उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महावीर सात्यकि भी अग्निसदृश बाणों से उनको रोकने लगे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ दुःशासन के घोड़ों को मार डाला। उस समय महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण, सात्यकि को देखकर, अत्यन्त ही प्रसन्न हुए ॥२२।२५॥

द्रोणपर्व का एक सौ चालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४० ॥

अथ एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच—तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥
अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥
अजयद्राजपुत्रांस्तान्भ्राजमानान्महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून्सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥
सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६ ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाऽऽचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥
तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥
तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाऽङ्कुशैः ॥ ९ ॥

एक सौ इकतालीस अध्याय ॥ १४१ ॥

सञ्जय कहते है—हे महाराज ! तब सुनहरी ध्वजाओं से शोभित त्रिगर्त देश के वीर योद्धाओं ने शिनिवंशी महाबाहु सात्यकि को स्फूर्ति के साथ, अर्जुन की विजय की आकांक्षा से,दुःशासन की समुद्रसदृश सेना के भीतर प्रवेश करते देखकर, कुपित होकर असंख्य रथों से घेर लिया। वे लोग-चारों ओर से सात्यकि के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे। तब सत्यपराक्रमी सात्यकि ने अकेले ही उस खड्ग-शक्ति-गदा आदि शस्त्रों से परिपूर्ण और तलनाद से शब्दायमान, अपार, प्लव (नाव-जहाज आदि) रहित सागर के समान सेना के भीतर जा करके त्रिगर्त देश के पचास राजकुमारों को परास्त कर दिया ॥१।४॥ उस समय हमने महावीर सात्यकि की ऐसी स्फूर्ति देखी कि सब चकित रह गये। वे अभी पश्चिम ओर देख पड़े तो तुरन्त ही पूर्व ओर उनका रथ देख पड़ा। इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर आदि सभी दिशाओं और विदिशाओं में एक साथ उनका रथ देख पड़ता था। वे अकेले ही अनेक प्रतीत होते थे और सम्पूर्ण समरभूमि में नृत्य सा कर रहे थे। त्रिगर्त देश के सैनिक सिंह के समान पराक्रमी सात्यकि की स्फूर्ति,शीघ्रगति और रणकौशल देखकर उनके सम्मुख से हटकर अपने दल में जा मिले॥५।८॥ हे महाराज ! तब शूरसेन देश के प्रधान प्रधान शूर योद्धा सात्यकि को रोकने के निमित्त आगे आये। मस्त हाथी के

तैर्व्यवाहरदायांस्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यवलविक्रमः ॥ १० ॥
तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महावाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥ ११ ॥
तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥
एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥
एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥
एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥
धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाऽभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥
कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महावलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन्पाण्डवाऽभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥
वहूनेकरथेनाऽऽजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान्पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥ १९ ॥

ऊपर अङ्कुश प्रहार के समान वे लोग सात्यकि के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। वीरश्रेष्ठ सात्यकि उनसे लड़ते-भिड़ते हुए, उन्हें छिन्न भिन्न करके क्षण भर में आगे बढ़ गये। आगे कलिंग देश की सेना मिली। अचिन्त्य बल-विक्रमवाले सात्यकि क्षण भर में कलिङ्ग देश की दुर्लंघ्य सेना को भी लाँघ गये और महावीर अर्जुन के समीप जा पहुँचे। जैसे कोई पुरुष तैरते-तैरते थक गया हो और वह स्थलभूमि को पाकर आनन्दित हो वैसे ही पुरुषसिंह सात्यकि, अर्जुन को देखकर, आनन्दित और आश्वस्त हुए॥९-१२॥हे महाराज! सात्यकि को आते देखकर महात्मा कृष्णचन्द्र अर्जुन से बोले—हे वीर! यह देखो, तुम्हारे अनुगामी सात्यकि आ रहे हैं। ये तुम्हारे शिष्य और सखा हैं। इन्होंने कौरवदल के सब योद्धाओं को तृण-तुल्य जानकर परास्त कर दिया है॥१३।१५॥ये महापराक्रमी अपने बाणों के प्रभाव से द्रोणाचार्य और कृतवर्मा को परास्त कर आये हैं। ये अस्त्रविद्या की अच्छी शिक्षा पा चुके हैं और सदा धर्मराज का हित करने में तत्पर हैं। इन्होंने शत्रुसेना में प्रवेश होकर बहुत से योद्धाओं को मारा और अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है। बाहु-बल के आश्रय इन्होंने अकेले ही शत्रुसेना को छिन्न भिन्न करके द्रोणाचार्य आदि बहुत से महारथी वीरों से युद्ध किया है। तुम्हें प्राणों से प्रिय सात्यकि, धर्मराज के भेजने से, तुम्हें देखने को आ

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थेपोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥
यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथञ्चन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥
कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थेपोऽभ्येति सात्यकिः॥ २२ ॥
एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसन्निभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २३ ॥
एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे ।
निहत्य जलसन्धं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥
रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवद्व्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः ॥ २५ ॥
ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत् ।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ॥ २६ ॥
नहि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा॥ २७ ॥
एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः ।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥
राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चाऽनिपातितः ।
प्रत्युयाति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥

रहे हैं॥१६।२०॥गायों के झुण्ड से सिंह की भाँति सहज ही कौरव-सेना के भीतर से निकलकर और बहुत सी सेनाओं को मारकर ये युद्धदुर्मद सात्यकि शीघ्रता से आ रहे हैं। इन्होंने राजाओं के कमलसदृश मुखों को बाणों से काटकर उनसे रणभूमि को परिपूर्ण कर दिया है॥२१।२३॥भाइयों सहित दुर्योधन को जीतने के पश्चात् जलसन्ध को मारकर, रक्त की नदी बहाकर और मांस की कीच मचाकर तथा घास-फूस के समान कौरवों को छिन्न भिन्न करके ये सात्यकि आ रहे हैं॥२४।२५॥हे महाराज ! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर महावीर अर्जुन कहने लगे—हे महाबाहो ! सात्यकि के आने से मेरा चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। ये धर्मराज को छोड़कर चले आये हैं। मालूम नहीं, धर्मराज अब जीवित हैं या नहीं। सात्यकि को धर्मराज की रक्षा करनी चाहिए थी। [यह कार्य मैं उन्हें सौंप आया था।] फिर वे धर्मराज को छोड़कर मेरे पीछे क्यों चले आये॥२६।२८॥उधर द्रोणाचार्य के आगे धर्मराज अकेले पड़ गये हैं, इधर मैं भी जयद्रथ को नहीं मार सका हूँ। हे केशव ! और भी देखो, वीर भूरिश्रवा सात्यकि से युद्ध करने जा रहे हैं। जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा के कारण इस समय मेरे ऊपर बहुत बड़ा बोझ आ पड़ा है।मुझे धर्मराज का समाचार जानना है, सात्यकि की रक्षा करनी है और जयद्रथ को भी मारना है। सूर्य के अस्त होने में अब अधिक विलम्ब

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः ।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ॥ ३० ॥
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः ।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम् ॥ ३१ ॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हयन्ता च माधव ।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥
अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन्समागमे ।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ३३ ॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः ।
अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान्सात्यकिर्भवेत् ।
व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥
आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रेषयत सात्यकिम् ।
ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवाऽऽमिषम् ॥ ३६ ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित्स्यात्कुशली नृपः ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

नहीं है । हे वासुदेव ! महाबाहु सात्यकि युद्ध करते-करते थक गये हैं, अब इनमें थोड़ा ही दम रह गया है । [इनके पास बाण भी कम रह गये हैं ।] इनका सारथी और रथ के घोड़े भी थक गये हैं। उधर भूरिश्रवा थके नहीं हैं और सहाय-सम्पन्न भी हैं॥२९।३२॥इस युद्ध-समागम में सात्यकि की कुशल हो । सत्यपराक्रमी सात्यकि भी समुद्र के पार होकर कहीं गाय के पाँव के गढ़े में न गोता खा जाँय । कौरवश्रेष्ठ, अस्त्रविद्या में निपुण, महात्मा भूरिश्रवा से संग्राम करने में सात्यकि को विजय प्राप्त हो,उनका कल्याण हो । हे केशव ! मैं तो इसे धर्मराज की मोटी भूल समझता हूँ कि उन्होंने द्रोणाचार्य के भय का खयाल न करके सात्यकि को मेरे समीप भेज दिया । श्येन पक्षी जैसे मांस की इच्छा रखता है वैसे ही द्रोणाचार्य हर घड़ी धर्मराज को पकड़ने की धुन में लगे रहते हैं । राजा शायद ही कुशल से हों॥३३।३७॥

द्रोणपर्व का एक सौ इकतालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

सञ्जय उवाच—तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद्भूरिश्रवा राजन्सहसा समुपाद्रवत् ॥ १ ॥
तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् ।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥

एक सौ बयालीस अध्याय ॥ १४२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! उधर महावीर भूरिश्रवा ने रणदुर्मद सात्यकि को आते देखकर क्रोध

चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे ।
नहि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥
अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् ।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥
अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥
अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया ।
सव्रीडो भविता सद्यो येनाऽसीह निवेशितः ॥ ६ ॥
अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥
चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥
अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥
अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे ।
यथा रामानुजेनाऽऽजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ १० ॥
अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥
अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः ।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥ १२ ॥

पूर्वक उनके सम्मुख जाकर कहा—हे सात्यकि ! बड़े भाग्य की बात है कि आज तुम रण में मेरे सम्मुख आ गये। इसमें सन्देह नहीं कि मैं आज समर में अपने बहुत दिनों के मनोरथ को पूर्ण करूँगा। यदि तुम संग्राम से विमुख न हुए तो मेरे जीते रहते तुम कभी मेरे हाथ से छुटकारा नहीं पा सकते। तुम सदा अपनी शूरता का अभिमान करते रहते हो। आज मैं तुम्हें मार करके कुरुराज दुर्योधन को आनन्दित करूँगा॥१।४॥आज महावीर कृष्ण और अर्जुन देखेंगे कि तुम मेरे बाणों से मरकर पृथ्वी पर पड़े हुए हो। जिनके कहने से तुम कौरव-सेना के भीतर प्रवेश हुए हो वे धर्मराज तुम्हें मेरे प्रहार से मरा हुआ सुनकर अवश्य लज्जित और दुःखित होंगे। आज तुम रक्त से नहा-कर मरकर जब रणभूमि में लेटोगे तब महावीर अर्जुन मेरे पराक्रम का परिचय पावेंगे। हे सात्यकि ! मेरे मन में तुमसे युद्ध करने की इच्छा बहुत दिनों से थी। पहले देवासुर युद्ध में राजा बली से इन्द्र का जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम आज मैं तुमसे करूँगा॥५।८॥आज तुम मेरे वीर्य, बल और पौरुष को भली भाँति जान सकोगे। रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण ने जैसे रावण के पुत्र इन्द्रजित् को मारा था वैसे ही आज मैं तुमको मारूँगा और तुम मेरे प्रहार से मरकर यम-राज की संयमनी पुरी को जाओगे। आज कृष्ण, अर्जुन और धर्मराज तुम्हारे मरने पर उत्साहहीन होकर

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥
युयुधानस्तु तं राजन्प्रत्युवाच हसन्निव ।
कौरवेय न सन्त्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥
नाऽहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम् ।
स मां निहन्यात्संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम् ॥ १५ ॥
समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे ।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत्समाचर ॥ १६ ॥
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते ।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्याऽस्तु कौरव ।
त्वरिते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकांक्षिणी ॥ १८ ॥
नाऽहत्वाऽहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम ।
अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे ।
समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २० ॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ ।
भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिन्दमौ ॥ २१ ॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् ।
सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥

निःसन्देह युद्ध बन्द कर देंगे। आज मैं तुम्हें तीक्ष्ण बाणों से मारकर उन स्त्रियों को आनन्दित करूँगा जिनके वीर पतियों को तुमने मार डाला। हे माधव! तुम सिंह के सम्मुख पड़े हुए क्षुद्र मृग की भाँति इस समय मेरे आगे आ गये हो। अब किसी प्रकार जीते नहीं बच सकते॥९।१३॥ हे राजेन्द्र! भूरिश्रवा के ये वचन सुनकर सात्यकि ने हँसकर कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! संग्राम से मैं किञ्चित्मात्र भी नहीं भयभीत होता। केवल बड़ी-बड़ी बातें करके कोई मुझे नहीं भयभीत करा सकता। हे कौरव! जो रण में मुझे शस्त्रहीन कर सके वही मुझे मार सकता है। जो मुझे मार सकता है वह सर्वत्र सब समय विजयी हो सकता है। अस्तु, बहुत बात कहने की क्या आवश्यकता है, जो कहते हो वह कर तो दिखाओ॥१४।१६॥ शरद्ऋतु के मेघ के गरजने के समान तुम्हारा यह सब बकना व्यर्थ है। तुम्हारा यह तर्जन-गर्जन सुनकर मुझे हँसी आ रही है। अब हम दोनों के चिरकाङ्क्षित संग्राम का आरम्भ होना चाहिए। तुमसे युद्ध करने के निमित्त मेरा मन बहुत शीघ्र कर रहा है। हे नराधम! तुमको मारे बिना मैं संग्राम से न हटूँगा॥१७।१९॥ हे महाराज! वे दोनों तेजस्वी परस्पर स्पर्धा रखनेवाले वीर इस प्रकार कटुवचन कहकर, हथिनी के लिए क्रुद्ध होकर भिड़नेवाले दो मस्त हाथियों की भाँति, कुपित होकर एक दूसरे को मारने की अभिलाषा से प्रहार करने लगे। दो मेघ

जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः ।
दशभिः सात्यकिं विध्वा सौमदत्तिरथाऽपरान् ॥ २३ ॥
मुमोच निशितान्बाणाञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।
तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४ ॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत्सात्यकिः प्रभो ।
तौ पृथक्शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यऽकृन्तताम् ।
निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥ २७ ॥
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ।
एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८ ॥
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ।
तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं सञ्जगर्जतुः ।
सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
हृष्टवद्धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् ।
सम्प्रेक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधां पती ॥ ३१ ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ ।
अन्योन्यस्य हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥

जैसे जलधारा बरसाते हैं वैसे ही वे एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे॥१९।२२॥महावीर भूरिश्रवा ने सात्यकि को मार डालने के निमित्त, बाणों की वर्षा से अदृश्य सा करके उनको अत्यन्त तीक्ष्ण दस बाण मारे। इस प्रकार प्रहार करके वे फिर सात्यकि पर बाणों की वर्षा करने लगे। महावीर सात्यकि ने भी स्फूर्ति के साथ उन बाणों को अपने बाणों से राह में ही काट डाला। इस प्रकार वे दोनों वीर बाणों की वर्षा करने लगे॥२२।२६॥जिस प्रकार दो सिंह नखों से, अथवा दो हाथी दाँतों से, परस्पर प्रहार करें वैसे ही वे भी रथशक्ति और बाणों के द्वारा परस्पर प्रहार करने लगे। कुरु और वृष्णिवंश के यश को बढ़ानेवाले उन दोनों वीरों के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और रक्त की धाराएँ बहने लगीं। इस प्रकार प्राणों का दाव लगाकर युद्ध करनेवाले दोनों योद्धा, दल के स्वामी दो गजराजों की भाँति, उत्तम कर्म करते हुए युद्ध करने और एक दूसरे को रोकने लगे॥२७।२९॥युद्ध में मरकर श्रेष्ठ गति प्राप्त करने की अभिलाषा रखनेवाले दोनों वीर तर्जन गर्जन करते हुए युद्ध करने लगे। हे महाराज! आपके पुत्रों के सम्मुख ही सात्यकि और भूरिश्रवा उत्साहपूर्वक एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे। सब लोग उन दोनों वीरों के युद्ध को आश्चर्य के साथ देखने लगे। हथिनी के निमित्त भिड़नेवाले दो गजराजों के समान वे दोनों भयानक संग्राम कर रहे थे॥२९।

विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।
आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।
चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ॥ ३४ ॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिन्दमौ ।
उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥
मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥
तयो राजन्भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥

३२॥सात्यकि और भूरिश्रवा ने एक दूसरे के घोड़े मार डाले और धनुष काट डाले। अब रथ न रहने पर वे खड्गयुद्ध करने को उद्यत हुए। दोनों वीर गैंडे की बड़ी बड़ी विचित्र ढालें लेकर और म्यान से तलवारें निकालकर पैंतरे के साथ आमने सामने विचरने लगे ॥३२।३५॥विचित्र कवच और निष्क, अङ्गद आदि आभूषण पहने हुए दोनों कुपित वीर विविध मार्ग और मण्डलाकार गति से घूम घूमकर एक दूसरे पर खड्ग-प्रहार करने लगे। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध,आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखा दिखाकर वे दोनों यशस्वी वीर परस्पर प्रहार करने लगे।दोनों ही वार करने का अवसर ढूँढते थे, दोनों ही विचित्र शब्द करके गरजते थे। दोनों ही अपनी शिक्षा, स्फूर्त्ति और प्रहार करने की निपुणता दिखा रहे थे। दोनों ही श्रेष्ठ योद्धा एक दूसरे को परास्त करने की चेष्टा कर रहे थे। दोनों वीर इस प्रकार सबके सम्मुख युद्ध करते और क्षण भर श्वास लेने लगते थे॥३५। ३९॥हे राजेन्द्र ! खड्ग-प्रहार से जब दोनों की शत चन्द्रशोभित विशाल ढालें कट गईं तब वे बाहुयुद्ध करने लगे। चौड़ी छातीवाले,लोहे के बेलन सरीखी बड़ी बड़ी बाहुओंवाले, कुश्ती लड़ने में निपुण दोनों वीर परस्पर भिड़ गये। वे अपनी शिक्षा और बल के अनुसार ताल ठोकने, हाथ में हाथ डालकर और गर्दन में हाथ डालकर ज़ोर करने लगे।उनका युद्ध देखकर सब योद्धा

तयोर्नृवरयो राजन्समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥
द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्राववन्धैश्च शिरोभ्यां चाऽवघातनैः ॥ ४४ ॥
पादावकर्षसन्धानैस्तोमरांकुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥
द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥ ४७ ॥
क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४८ ॥
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४९ ॥
परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकांक्षी समायान्तं नैतत्सममिवाऽर्जुन ॥ ५० ॥
ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याऽभ्याहनद्राजन्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥
रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन्समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२ ॥

बहुत प्रसन्न हुए॥४०।४२॥परस्पर अङ्गों में अङ्गों के लगने से पर्वत पर वज्र गिरने का सा भयानक शब्द होने लगा। दो हाथी जैसे दाँतों से अथवा दो साँड जैसे सींगों से युद्ध करें वैसे ही वे दोनों वीर कभी बाहुओं से बाँधकर, कभी सिरों की टक्कर लगाकर कभी पाँवों से खींचकर, कभी पाँव लपेटकर, कभी अति-स्फोटन-अवलुम्बन आदि करके, कभी पाँव और पेट के बन्धन से, कभी पैंतरे काटकर, कभी गत प्रत्यागत और आक्षेप से, कभी गिराकर, कभी उठकर और कभी उछलकर भयानक संग्राम करने लगे।इस प्रकार भूरि-श्रवा और सात्यकि बत्तीस प्रकार के कौशल दिखाकर युद्ध करने लगे॥४३।४७॥शस्त्र न रहने पर बाहुयुद्ध करनेवाले सात्यकि को देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! देखो,धनुर्धरों में श्रेष्ठ सात्यकि रथ और शस्त्र न रहने से बाहुयुद्ध कर रहे हैं। हे पार्थ! ये महावीर सात्यकि तुम्हारे पीछे कौरव-सेना को छिन्न भिन्न करके महापराक्रमी योद्धाओं से युद्ध करते हुए यहाँ आये हैं। इन्होंने मुख्य-मुख्य महारथियों को मारा है। हे अर्जुन! याज्ञिक भूरिश्रवा युद्ध की आकांक्षा से उस समय सात्यकि से भिड़े हैं जिस समय वे थक चुके हैं। इसलिए यह सम-युद्ध नहीं है॥४८।५०॥हे महाराज! उसी समय कुपित होकर युद्धदुर्मद भूरिश्रवा ने सात्यकि को उठाकर पृथ्वी पर ऐसे पटक दिया, जैसे कोई मस्त हाथी मस्त हाथी को दे मारे। क्रुद्ध दोनों महारथी

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशङ्गतम् ॥ ५३ ॥
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवाऽन्तेवासिनं वीरं पालयाऽर्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥
न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥
अथाऽब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।
सञ्जय उवाच—इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये ॥ ५७ ॥
हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥ ५८ ॥
स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन्भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठ सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥
अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्द्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ६० ॥
ततोऽस्य च्छेत्तुमारब्धः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात्सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥
यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत ।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ पर बैठे हुए यह महायुद्ध देख रहे थे। सात्यकि की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! देखो, वृष्णि और अन्धक वंश के सिंह सात्यकि को भूरिश्रवा ने अपने वश में कर लिया है। दुष्कर कर्म करके थक जाने के कारण सात्यकि की इस समय यह दशा हुई है। हे अर्जुन ! तुम शीघ्र अपने शिष्य सात्यकि की रक्षा करो॥५१।५४॥ये इस समय तुम्हारे ही निमित्त यहाँ आकर इस दशा को पहुँचे हैं। इसलिये तुम तुरन्त ऐसा करो जिसमें भूरिश्रवा के वश में आकर सात्यकि अपने प्राण न खो बैठें। भूरिश्रवा के पराक्रम को देखकर मन ही मन प्रसन्न होकर। अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! देखो, वन में जैसे कोई सिंह मस्त हाथी से क्रीड़ा करे वैसे ही ये कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा वीर सात्यकि के साथ क्रीड़ा सी कर रहे हैं॥५५।५७॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महावीर अर्जुन इस प्रकार कह ही रहे थे कि भूरिश्रवा ने सात्यकि को पृथ्वी पर पटक दिया। यह देखकर सैनिक लोग महा हाहाकार करने लगे। सिंह जैसे गजराज को खींचे वैसे ही सात्यकि को, केश पकड़कर, घसीटते हुए भूरिश्रवा ने म्यान से तलवार निकाली। फिर सात्यकि के वक्षःस्थल में लात मारकर वे उनका कुण्डलों से शोभित सिर काटने को उद्यत हुए॥५७। ६१॥उस समय कुँमार के डण्डे से घूमते हुए चक्र की भाँति सात्यकि अपने सिर को चारों ओर घुमाने

तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
वासुदेवस्ततो राजन्भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशंगतम् ।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥
असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे ।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥
एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः ।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥
विकर्षन्सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाऽऽहवे ।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६७ ॥
प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम् ।
महाद्विपमिवाऽरण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥
एवं तु मनसा राजन्पार्थः सम्पूज्य कौरवम् ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥
सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् ।
एतत्त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७० ॥
इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन्वासुदेवस्य पाण्डवः ।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥
पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता ।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

और भूरिश्रवा के प्रहार से अपने आप को बचाने लगे। सात्यकि की यह दशा देखकर महामति श्रीकृष्ण फिर अर्जुन से बोले—हे महाबाहो ! देखो, अन्धकश्रेष्ठ सात्यकि भूरिश्रवा के वश में हो गये हुए हैं। ये वीर तुम्हारे ही शिष्य हैं और धनुर्विद्या में तुमसे कम नहीं हैं। सत्य तो यह है कि पराक्रम अनित्य है। यदि ऐसा न होता तो सात्यकि कैसे भूरिश्रवा के वश में होकर इस शोचनीय अवस्था को पहुँचते। भूरिश्रवा वीरश्रेष्ठ सात्यकि से विशेष बल दिखाकर उनके सत्यविक्रमी नाम को व्यर्थ किये देते हैं॥६१।६५॥ श्रीकृष्ण के वचन सुनकर महारथी अर्जुन मन ही मन भूरिश्रवा की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि कुरुकुल की कीर्ति बढ़ाने-वाले वीर भूरिश्रवा वृष्णिवंशी सात्यकि के प्राण न लेकर, वन में सिंह जैसे किसी गजराज को खींचे वैसे ही, उनको खींचते हुए खेल से रहे हैं। उनके इस अद्भुत पराक्रम को देखकर वास्तव में मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। अब उन्होंने कहा—हे श्रीकृष्ण ! निरन्तर जयद्रथ की ओर लक्ष्य रखने के कारण मैं सात्यकि की ओर ध्यान नहीं दे सका। अब मैं इनकी रक्षा के निमित्त दुष्कर कार्य करता हूँ; [क्योंकि ये मेरे प्रिय शिष्य हैं और मेरे ही निमित्त मेरे शत्रुओं से युद्ध कर रहे हैं।दावानल से सिंह के बच्चे की भाँति मैं अभी सात्यकि को शत्रु

के हाथ से छुड़ाता हूँ ।]॥६९।७०॥हे महाराज! यों कहकर सात्यकि का प्रिय करनेके निमित्त अर्जुन ने एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया। आकाश से गिरी हुई बड़ी उल्का के समान अर्जुन के छोड़े हुए उस बाण ने भूरिश्रवा के खड्ग सहित दाहने हाथ को काट डाला॥७१।७२॥

द्रोणपर्व का एक सौ बयालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

सञ्जय उवाच—स बाहुर्न्यपतद्भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः ।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः ॥ १ ॥
प्रहरिष्यन्हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना ।
वेगेन न्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥ २ ॥
स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः ।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पाण्डवम् ॥ ३ ॥
भूरिश्रवा उवाच—नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि ।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥
किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥ ५ ॥
इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना ।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाऽथ कृपेण वा ॥ ६ ॥
ननु नामाऽस्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः ।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७ ॥
न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते ।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥

एक सौ तैंतालीस अध्याय ॥ १४३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! महावीर भूरिश्रवा का यह अङ्गद-शोभित खड्ग सहित दाहना हाथ, अदृश्य अर्जुन के बाण से, कटकर सब लोगों के मन में दुःसह दुःख उत्पन्न करता हुआ पाँच मुखवाले सर्प की भाँति बड़े वेग से पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब भूरिश्रवा ने अपने को किसी काम का न समझकर सात्यकि को छोड़ दिया। वे अत्यन्त क्रोध से अर्जुन का तिरस्कार करते हुए कहने लगे—॥१।३॥हे अर्जुन! मैं एकाग्र होकर दूसरे से युद्ध कर रहा था, ऐसी दशा में तुमने मेरा हाथ काटकर बहुत ही निन्दित कर्म किया है। धर्मराज युधिष्ठिर जब तुमसे मेरी मृत्यु का वृत्तान्त पूछेंगे तब तुम क्या उनसे यह कहोगे कि मैंने भूरिश्रवा को सात्यकि-वध करते देखकर अनुचित रीति से मारा है! [सत्य है, मनुष्य जिसकी सङ्गति करता है उसी का सा स्वभाव उसका शीघ्र ही हो जाता है। हे पार्थ! इस प्रकार अस्त्र का प्रयोग करना तुम्हें इन्द्र ने बताया है या भगवान् शङ्कर ने! अथवा द्रोणाचार्य या कृपाचार्य से तुमको ऐसी शिक्षा प्राप्त हुई है! लोग कहते हैं कि तुम अन्य योद्धाओं की अपेक्षा अस्त्रप्रयोग के धर्म को अधिक जानते हो। फिर तुमने मुझ पर इस प्रकार कैसे प्रहार किया?॥४।७॥असावधान, भयभीत हुए-हुए, रथहीन, शरणागत और सङ्कट में पड़े हुए शत्रु

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् ।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥
आर्येण सुकरं ह्याहुरार्यकर्म धनञ्जय ।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि ॥ १० ॥
येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते ।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥
कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः ।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥
इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया ।
वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ १३ ॥
को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युद्ध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखा भवेत् ॥ १४ ॥
व्रात्याः संश्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥
एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच—व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥ १६ ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो ।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥ १७ ॥
संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
न चाऽधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥

पर सज्जन पुरुष प्रहार नहीं करते। फिर तुम इस, नीच पुरुषों के योग्य और सज्जनों केलिए अतीव दुष्कर, पाप कार्य में कैसे प्रवृत्त हुए? आर्य पुरुष सत्कार्य को सहज ही कर सकते हैं, किन्तु असत् कार्य करना उनके लिए अत्यन्त कठिन होता है। हे महात्मा! इस बात के तुम प्रत्यक्ष उदाहरण हो कि मनुष्य जैसी सङ्गति में रहता है शीघ्र ही वैसा हो जाता है॥८।११॥ देखो, तुम राजघराने में, विशेषकर कुरुवंश में उत्पन्न, अत्यन्त सुशील और सत्यव्रतपरायण हो। किन्तु इस समय क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध आचरण करते हुए तुमने जो सात्यकि के प्राणों की रक्षा करने को यह अनुचित कार्य किया है, सो कृष्ण की इच्छा या कहने से किया है। ऐसा विचार स्वयं तुम्हारे अन्तःकरण में नहीं आ सकता। हे धनञ्जय! जो कृष्ण का सखा नहीं है वह कभी दूसरे के साथ युद्ध कर रहे असावधान पुरुष को इस प्रकार विपत्ति में नहीं डाल सकता। हे पार्थ! वृष्णि और अन्धक वंश के यादव व्रात्य (पतित) क्षत्रिय हैं। वे स्वभाव से ही निन्दनीय होते हैं। उनके मत के अनुसार कार्य करने में भला तुम कैसे प्रवृत्त हुए हो?॥१२।१५॥हे राजेन्द्र! भूरिश्रवा के वचन सुनकर महावीर अर्जुन कहने लगे—हे प्रभो! जान पड़ता है कि वृद्धावस्था आने पर मनुष्य की बुद्धि भी जीर्ण हो जाती है। अभी आपने जो बातें मुझसे कही हैं वे निरर्थक हैं। आप मुझे और श्रीकृष्ण को

युद्धयन्ति क्षत्रियाः शत्रूस्वैः स्वैः परिवृता नराः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥ १९ ॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः ।
स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च ॥ २० ॥
अस्मदर्थे च युद्धयन्तं त्यक्त्वा प्राणान्सुदुस्त्यजान्।
मम बाहुं रणे राजन्दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥
न चाऽऽत्मा रक्षितव्यो वै राजन्रणगतेन हि ।
यो यस्य युजतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥ २२ ॥
तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।
रक्षितश्च मया यस्मात्तस्मात्कुध्यसि किं मयि ॥ २४ ॥
यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥
कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चाऽऽरोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युद्धयतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः संभविष्यति ॥ २८ ॥

भली भाँति जानकर भी उनकी निन्दा करते हैं, यह उचित नहीं है। मैं युद्ध-धर्म का ज्ञाता और सब शास्त्रों का जानकार होकर भी कैसे अधर्म का आचरण कर सकता हूँ? [अपने पक्ष की रक्षा करने से जय और यश प्राप्त होता है। और श्रीकृष्ण का साथ करने से आप जो मेरी निन्दा कर रहे हैं, यह आपकी बुद्धि का भ्रम है। भला श्रीकृष्ण से मैत्री कौन न चाहेगा?] पिता, भाई, पुत्र, सम्बन्धी और अन्यान्य भाई बन्धुओं के साथ मिलकर उनके बाहुबल के आश्रय ही क्षत्रिय गण संग्राम करते हैं॥१६।२०॥हे राजेन्द्र! समरभूमि में केवल आत्मरक्षा करना ही राजा या मुख्य योद्धा का कर्त्तव्य नहीं होता। जो लोग उसके कार्यसाधन में नियुक्त हैं, पहले उनकी रक्षा करना ही उसका प्रधान कर्त्तव्य है। उन लोगों के सुरक्षित रहने से ही राजा सुरक्षित होता है और उसे विजय प्राप्त होती है। महावीर सात्यकि हम लोगों के निमित्त ही अपने जीवन का मोह छोड़कर अत्यन्त भयानक युद्ध कर रहे हैं। सात्यकि मेरे शिष्य, प्रिय सम्बन्धी और दक्षिण बाहु स्वरूप सहायक हैं। आप उन्हें मार डालने को तैयार थे। यदि मैं उनकी अपेक्षा करता तो मुझे अवश्य नरक-भागी होना पड़ता और सात्यकि का वियोग होता। इसी कारण मैंने सात्यकि की रक्षा की है। फिर आप क्यों मुझ पर वृथा क्रोध कर रहे हैं?॥२१।२४॥हे महाराज! आप दूसरे के साथ संग्राम कर रहे थे, ऐसी दशा में

बहुभिः सह सङ्गम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥ २९ ॥
ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥
यदिच्छसि शिरश्चाऽस्य असिना हन्तुमाहवे ।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥
त्वं वै विगर्हयाऽऽत्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥
शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाऽऽजुहोत् ॥ ३४ ॥
सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥
ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥
निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम् ।
ततः प्रशस्यमानश्च नाऽहृष्यद्यूपकेतनः ॥ ३७ ॥

मैंने आपका हाथ काट डाला है, इसी लिए आप मेरी निन्दा कर रहे हैं। किन्तु विचारकर देखने से मैं कभी निन्दनीय नहीं ठहराया जा सकता। हाथी घोड़े-रथ-पैदल आदिसे परिपूर्ण सिंहनादसमाकुल, अत्यन्त गम्भीर सैन्यसागर में प्रवेश होकर मैं कभी कवच कम्पन कर रहा था; कभी रथ पर सवार हो रहा था; कभी धनुष की डोरी खींचता और कभी शत्रुओं के साथ तुमुल संग्राम कर रहा था। ऐसे भयङ्कर समर-सागर में अकेले सात्यकि के साथ किसी एक व्यक्ति का युद्ध कैसे सम्भव है॥२५।२८॥फिर हे महाबाहो! सात्यकि बहुत लोगों से लड़कर अनेक महारथियों को जीतकर थक गये थे और बेदम हो रहे थे। उनके घोड़े भी थक चुके थे। इस अवस्था में वे आपके वश में आ गये थे। आप अपने को उनसे अधिक बली और पराक्रमी समझकर शस्त्र से उनका सिर काटने को उद्यत थे। अपने आत्मीय प्रिय शिष्य को प्राणसङ्कट में पड़ा देखकर कौन उसकी रक्षा नहीं करेगा? आपका कोई आश्रित यदि इस प्रकार विपत्ति में पड़ा होता तो आप कैसा व्यवहार करते! आप आत्मरक्षा पर ध्यान न देकर दूसरे को मारने के लिए उद्यत थे, इसलिए आपको अपनी ही निन्दा करनी चाहिए॥२९।३२॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महायशस्वी याज्ञिक भूरिश्रवा ने अर्जुन के ये वचन सुनकर सात्यकि को छोड़ दिया और प्राण त्यागने का विचार किया। उन्होंने ब्रह्मलोक जाने की अभिलाषा से बाँये हाथ से बाणों की शय्या बिछाई और सब इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं में इन्द्रियों को अर्पित कर दिया। प्राणों को प्राणवायु में स्थापित किया। सूर्य में दृष्टि को और चन्द्र में प्रसन्न शुद्ध मन को स्थापित करके वे महती उपनिषद् का जाप करने लगे। इस प्रकार मौन भाव से वे योगयुक्त

तांस्तथावादिनो राजन्पुत्रांस्तव धनञ्जयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥
असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥
मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे ॥ ४० ॥
यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१ ॥
आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥
न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥
एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥
एतत्पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥
अर्जुन उवाच—या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ४६ ॥

हो गये॥३३।३५॥उस समय सभी सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुन को उचित-अनुचित कहने लगे। चारों ओर भूरिश्रवा की प्रशंसा होने लगी। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपनी निन्दा सुनकर भी कुछ अप्रिय वचन नहीं कहे और अपनी प्रशंसा सुनकर भूरिश्रवा कुछ प्रसन्न नहीं हुए॥३६।३७॥हे राजेन्द्र! उस समय आपके पुत्रों के मुख से अपनी निन्दा सुनकर अर्जुन सह नहीं सके। वे अपने क्रोध को रोककर आक्षेप करते हुए कहने लगे—सब राजा लोग मेरे इस महाव्रत को जानते हैं कि जहाँ तक मेरे बाण की गति है उस सीमा के भीतर जो कोई मेरे पक्ष का मनुष्य होगा उसको कोई शत्रु नहीं मार सकेगा॥३८।४०॥ मेरी इस प्रतिज्ञा का खयाल करके मेरी निन्दा करना उचित नहीं। धर्म के वास्तव रूप को जाने बिना दूसरे की निन्दा न करनी चाहिए। सात्यकि निहत्थे थे, उनको खड्ग से मार डालने के लिए उद्यत महाराज भूरिश्रवा का हाथ जो मैंने काट डाला उसकी [यदि वह धर्मविरुद्ध हो तो भी] तुम लोग निन्दा नहीं कर सकते; क्योंकि तुम बहुतों ने मिलकर रथ, शस्त्र और कवच से हीन अकेले बालक अभिमन्यु को मार डाला है। वह कार्य क्या किसी धर्मात्मा के योग्य था॥४१।४३॥हे महाबाहो! अर्जुन के यों कह चुकने पर महात्मा भूरिश्रवा ने पृथ्वी में सिर लगाकर बायें हाथ से अपना कटा हुआ दाहना हाथ अर्जुन के समीप फेंक दिया। वे शान्तरूप प्राणत्याग करने को उद्यत हुए। [पूर्वोक्त कार्य द्वारा उन्होंने यह प्रकट किया कि अर्जुन ने धर्मानुसार ही उनके हाथ को काटा है॥४४।४५॥हे राजेन्द्र! भूरिश्रवा को देहत्याग के लिए प्रायोपवेशन(मरने के लिए अन्न-जल को छोड़कर बैठ जाना)करते देखकर करुणापूर्ण होकर]

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृतांल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥

वासुदेव०--ये लोका मम विमलाः सकृद्विभाता ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः
तान्क्षिप्रं व्रज सततामिहोत्रयाजिन्मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच--उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥
निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५० ॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत्तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥
प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनाऽपाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥
नाऽभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥

अर्जुन कहने लगे --हे महात्मन् ! हे शल के बड़े भाई ! मुझे धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव जैसे प्रिय हैं वैसे ही आप भी प्रिय हैं । महात्मा वासुदेव और मैं दोनों आज्ञा देते हैं कि उशीनर के पुत्र शिवि की भाँति आप उन लोकों में जाइए, जिनमें पुण्यात्मा लोग जाते हैं॥४६।४७॥अर्जुन के पश्चात् कृष्णचन्द्र ने कहा---हे महात्मन् ! हे सदा अग्निहोत्र यज्ञ करनेवाले ! ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण जिन विमल प्रकाशपूर्ण तेजोमय लोकों की इच्छा करते हैं उन्हीं लोकों को शीघ्र जाओ । मेरे ही समान रूप पाओ और गरुड़गामी बनो॥४८॥सञ्जय कहते हैं--हे महाराज ! उधर भूरिश्रवा के बाहुपाश से छुटकारा पाकर महाव्रती सात्यकि खड़े हो गये । अर्जुन के बाण से जिनका हाथ कट गया था, और जिनकी सूँड़ कट गई हो उस हाथी के समान जो बैठे हुए थे, उन निष्पाप भूरिश्रवा को मारने के निमित्त सात्यकि ने हाथ में खड्ग लिया॥४९।५१॥वे जब भूरिश्रवा का सिर काटने के निमित्त आगे को बढ़े तब सब योद्धा लोग चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें मना करने लगे । महामति श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, उत्तमौजा, युधामन्यु, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथ आदि अपने और पराये पक्ष के सब लोगों ने अनेक प्रकार से रोकने की चेष्टा की परन्तु सात्यकि ने किसी की भी बात पर ध्यान नहीं दिया । उन्होंने तलवार से, प्रायोपवेशन किये हुए छिन्नबाहु व्रतधारी, भूरिश्रवा का सिर काट ही डाला॥५१।५३॥अर्जुन पहले ही भूरिश्रवा को एक प्रकार से मार चुके थे । सात्यकि ने किसी का कहा न मानकर जो उनका सिर काट डाला इससे कोई भी प्रसन्न नहीं हुआ । सब सैनिक सात्यकि की निन्दा करने लगे । देवता सिद्ध चारण मनुष्य आदि

सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।
पक्षवादांश्च सुबहून्प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥ ५७ ॥
न वार्ष्णेयस्याऽपराधो भवितव्यं हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम्॥ ५८ ॥
हन्तव्यश्चैव वीरेण नाऽत्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥
सात्यकिरुवाच—न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकंचुकमास्थिताः ॥ ६० ॥
यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाकृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥
मया त्वेतत्प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन्हन्यात्पदा रुषा ॥ ६२ ॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ।
चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥
मान्यध्वं मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥ ६४ ॥
यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षिता ।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवाऽस्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥

सब लोग प्रायोपवेशन में मारे गये इन्द्र-तुल्य भूरिश्रवा के कर्म से विस्मित होकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥५४।५७॥हे महाराज ! उस समय आपकी सेना के लोग अनेक प्रकार की बातें कहने लगे । कुछ तो सात्यकि की निन्दा करने लगे और कुछ कहने लगे कि "इस बारे में वीर सात्यकि का कुछ दोष नहीं, होनी ही ऐसी थी । इस घटना के लिये हमें क्रोध नहीं प्रकट करना चाहिए । क्रोध ही मनुष्यों के दुःख का प्रधान कारण है । विधाता ने ही युद्धभूमि में इस प्रकार सात्यकि के हाथ से भूरिश्रवा की मृत्यु लिख दी थी ।" ॥५७।५९॥अब महापराक्रमी सात्यकि ने कुपित होकर कौरवों को सम्बोधन करके कहा—अरे धर्म-कञ्चुक-धारी अधर्मी मन्दमति कौरवो !'न मारना, न मारना' कहकर क्या चिल्ला रहे हो ? दूसरे के समय धर्म की दोहाई देते हो, पर अपने समय धर्म को ताक पर रख देते हो ! जब अकेले वीर बालक अभिमन्यु को तुम नीचों ने मिलकर निहत्था कर दिया और मार डाला था तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? मेरी तो यह प्रतिज्ञा ही है कि "अकारण कटुवचन कहकर निन्दा करनेवाला और संग्राम में जीते जी मुझे पटककर मेरी छाती में क्रोध से लात मारनेवाला कोई भी हो—चाहे मुनि-व्रतधारी ही क्यों न हो—वह शत्रु मेरा वध्य है; मैं उसे नहीं छोड़ सकता । मैं शत्रु के वश होकर भी उस पर वार करने की चेष्टा कर रहा था,

भवितव्यं हि यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च ।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन्किमत्राऽधर्मचेष्टितम् ॥ ६६ ॥
अपि चाऽयं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः ।
न स्म किञ्चिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥
मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च ।
मुनेरिवाऽरण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥ ७० ॥
सुनीलकेशं वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् ।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवाऽन्तरेण ॥ ७१ ॥
स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो महाहवे देहवरं विसृज्य ।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

मेरे हाथ सही सलामत थे॥५९।६३॥तुम लोग आँखें रहते भी,ऐसी अवस्था में, मुझे मृत समझते थे सो यह तुम्हारी बुद्धि की कमी थी। हे कुरुवंशियो! मैंने अवसर पाकर शत्रु को मार डाला,सो बिलकुल उचित है। मुझे खेद यह रह गया कि अर्जुन ने मुझे विपत्तिग्रस्त देखकर, अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने को, भूरिश्रवा का खड्ग सहित हाथ पहले ही काट डाला। जो होना है वही होता है,दैव उसी के अनुसार सब चेष्टा करा लेता है। उसी दैव की प्रेरणा से इस युद्ध में भूरिश्रवा मारे गये। इसमें मैंने अधर्म ही क्या किया? महर्षि वाल्मीकि पहले कह गये हैं कि जिससे शत्रु को कष्ट हो वह कार्य मनुष्य को सदा करना चाहिए। सो मैंने वही किया है। फिर तुम लोग मूढ़ की भाँति क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो?॥६३।६८॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! सात्यकि के यों कहने पर सब कौरव शान्त हो रहे और सात्यकि के कथन को युक्ति सङ्गत मानकर मन में उनकी प्रशंसा करने लगे। महायज्ञों में मन्त्राभिषेक से पवित्र, भारी दक्षिणाएँ देनेवाले यशस्वी भूरिश्रवा उस समय वानप्रस्थ मुनि के तुल्य थे। उनके वध से शत्रु मित्र कोई भी प्रसन्न नहीं हुआ। भूरिश्रवा का नीले केशों से अलङ्कृत,कबूतर की सी लाल आँखों से शोभित सिर वहाँ पर,यज्ञशालामें अश्वमेध(बलिदान) के घोड़े के कटे सिर की भाँति. शोभा को प्राप्त हुआ। महारथी भूरिश्रवा, शरीर त्यागकर, शस्त्र वध की उत्तम मृत्यु से मरने के कारण पवित्र तेज से सम्पन्न होकर विमान पर बैठकर दिव्य शरीर से ऊपर के लोकों को गये। सब कामना पूर्ण करनेवाले और वरदान के योग्य भूरिश्रवा की प्रशंसा तथा पुण्य-धर्म से पृथ्वी और गगनमण्डल व्याप्त हो गया॥६९।७२॥

—•—

द्रोणपर्व का एक सौ तैंतालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः ।

तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः ।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा ।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥
अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः ।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत्पुरूरवाः ॥ ४ ॥
पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः ।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥
ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत्सुतः ।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसंमतः ।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥
धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि ।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः ।
दुहितुः स्वयंवरे राजन्सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥
तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै ।
निर्जित्य पार्थिवान्सर्वान्रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥

एक सौ चौवालीस अध्याय ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! धर्मराज से अर्जुन के समीप जाने की प्रतिज्ञा करके जो महावीर सहज ही सागर सदृश कौरवसेना के पार चले गये और जिन्हें महारथी द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण, कृतवर्मा जैसे वीर योद्धा नहीं हरा सके, उन्हीं सात्यकि को अकेले ही भूरिश्रवा ने कैसे परास्त कर दिया? भूरिश्रवा ने उनको कैसे बलपूर्वक पृथ्वी पर पटक दिया?॥१।२॥सञ्जय ने कहा-हे राजेन्द्र ! मैं इस समय सात्यकि और भूरिश्रवा के जन्म का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहता हूं,सुनिए। यह वृत्तान्त सुनने से आपका सब संशय दूर हो जायगा। महर्षि अत्रि के पुत्र सोमा थे, सोमा के पुत्र बुध थे, बुध के पुत्र देवराज सदृश राजर्षि पुरूरवा हुए। पुरूरवा के पुत्र आयु, आयु के पुत्र नहुष और नहुष के पुत्र राजर्षि ययाति हुए। देवयानी के गर्भ से ययाति के पुत्र यदु हुए। यदु उनके सबसे बड़े पुत्र थे। यदु के वंश में देवमीढ नाम के एक महानुभाव उत्पन्न हुए। देवमीढ के पुत्र जगत्प्रसिद्ध शूर हुए। शूर के पुत्र महायशस्वी वासुदेव हुए॥३।७॥महाबली शूर धनुर्विद्या-विशारद और युद्ध करने में कार्त्तवीर्य अर्जुन के तुल्य थे। उसी कुल में, वैसे ही पराक्रमी, शिनि नाम के और एक वीर उत्पन्न हुए। हे राजेन्द्र ! इसी मध्य में राजा देवक की कन्या देवकी का स्वयंवर रचा गया। उस स्वयंवर-सभा में सब क्षत्रिय राजा आकर एकत्र हुए थे। शिनि ने सब राजाओं को जीतकर, वासुदेव

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ ।
नाऽमृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥
तयोर्युद्धमभूद्राजन्दिनार्धं चित्रमद्भुतम् ।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥
शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥
मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः ।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥
तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष ।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥
तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः ।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥
पुत्रमिच्छामि भगवन्यो निपात्य शिनेः सुतम् ।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव ।
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥
स तेन वरदानेन लब्धवान्भूरिदक्षिणम् ।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत् ।
एतत्ते कथितं राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥

के लिए, देवकी को रथ पर बिठा लिया। वहाँ सोमदत्त भी उपस्थित थे॥८।१०॥शिनि के रथ पर देवकी को देखकर वीर सोमदत्त सहन नहीं कर सके। देवकी के निमित्त महावीर शिनि और सोमदत्त का युद्ध छिड़ गया। मध्याह्नकाल तक बहुत विचित्र बाहुयुद्ध हुआ। इसी मध्य में शिनि ने बलपूर्वक सोमदत्त को पृथ्वी पर पटक दिया। शिनि ने एक हाथ से उनके केश पकड़कर, दूसरे हाथ से तलवार तानकर, उनके वक्ष स्थल में लात मारी। वहाँ सहस्रों राजा खड़े देख रहे थे। उनके सम्मुख ही शिनिने इस प्रकार सोमदत्त को परास्त करके फिर कृपापूर्वक उनको जीता छोड़ दिया ॥११।१४॥ हे राजेन्द्र ! शूर शिनि के किये हुए अपने घोर अपमान से महावीर सोमदत्त बहुत ही क्रुद्ध हुए। वे महादेव को प्रसन्न करने के निमित्त घोर तपस्या करने लगे। वरदानी महादेव प्रसन्न होकर उनके आगे प्रकट हुए और बोले—"वरदान माँगो।" सोमदत्त ने शङ्कर से यही वर माँगा कि मुझे ऐसा बली पुत्र दीजिए,जो युद्ध में सहस्रों राजाओं के सम्मुख शिनि के पुत्र को पटककर लात मारे॥१५।१७॥सोमदत्त के ये वचन सुनकर, "तथास्तु" कहकर,शङ्कर अन्तर्द्धान हो गये। उसी वरदान के अनुसार सोमदत्त के भूरिश्रवा उत्पन्न हुए और उन्होंने, सब सैनिकों के आगे, सात्यकि को पछाड़कर उनके वक्ष स्थल में लात मारी। हे राजेन्द्र! आपने जो मुझसे पूछा था,सो मैंने कह दिया॥१८।२१॥

नहि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः ।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः ॥ २१ ॥
देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः ।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २२ ॥
न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥ २३ ॥
न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः ।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ २४ ॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे ।
ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः ॥ २५ ॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्याश्चिदापदि ।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २६ ॥
समर्थान्नाऽवमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च ।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाऽविकत्थनाः ॥ २७ ॥
तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते ।
अपि मेरुं वहेत्कश्चित्तरेद्वा मकरालयम् ॥ २८ ॥
न तु वृष्णीप्रवीराणां समेत्याऽन्तं व्रजेन्नृप ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो ।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान् ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

हे महाराज! महाप्रतापी सात्यकि को रण में कोई भी श्रेष्ठ योद्धा नहीं जीत सकता। ये यादव लोग विचित्र युद्ध में निपुण होते और अचूक निशाना मारते हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, आदि को भी उन्होंने जीता है। ऐसे काम उनके निमित्त कुछ नवीन नहीं हैं। वे लोग अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त करते हैं; और किसी के आश्रय युद्ध नहीं करते। हे प्रभो! पृथ्वी पर वृष्णिवंशी यादवों की बराबरी करनेवाला बली न हुआ है, न है और न होगा। वे अपने जातिवालों और नातेदारों का अनादर नहीं करते; वे सदा बड़े-बूढ़ों की आज्ञा का पालन करते हैं। देवता, गन्धर्व, असुर, नाग, राक्षस आदि भी वृष्णिवंशियों को परास्त नहीं कर सकते; मनुष्यों की तो बात ही क्या है। वे ब्राह्मण के धन, गुरु के धन और जातिवालों के धन को नहीं हरते। ब्राह्मण, गुरु जातिभाई और आपत्ति में पड़े हुए अन्य लोगों की रक्षा करना वे अपना परमकर्त्तव्य समझते हैं। वे धनी, अहङ्कार-हीन, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी हैं॥ २१।२६॥ वे समर्थ पुरुषों का अनादर नहीं करते और दीन दुर्बलों का उद्धार और सहायता करते हैं। वे नित्य देवभक्त, जितेन्द्रिय, विनयी और रक्षक हैं। वे अपने मुख अपनी प्रशंसा नहीं करते। इसी कारण वृष्णिवंशी के वीरों का सर्वत्र बोलबाला है। चाहे कोई सुमेरु पर्वत को उखाड़कर लादकर ले जाय, चाहे कोई सागर को तैर जाय; किन्तु वृष्णि-वीरों से युद्ध ठानकर विजय नहीं पा सकता।

हे कुरुराज! यह मैंने सब वृत्तान्त सुना दिया। इससे आपका संशय दूर हो गया होगा। हे प्रभो! आपके महान् अन्याय के कारण ही ये सब दुर्घटनाएँ हो रही हैं ॥२७।२९॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौंतालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तदवस्थे हते तस्मिन्भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥
चोदयाऽश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥
एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥
यथा नाऽभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद्वचः ।
चोदयाऽश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥
ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान्हयान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥
तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाऽऽशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥ ८ ॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥

एक सौ पैंतालीस अध्याय ॥ १४५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! इस प्रकार प्रायोपवेशन की अवस्था में शस्त्र-हीन पराक्रमी भूरिश्रवा के मारे जाने पर फिर जिस प्रकार युद्ध हुआ, सो वर्णन करो॥१॥सञ्जय ने कहा कि हे महाराज! वीर भूरिश्रवा के मारे जाने पर अर्जुन ने कहा—हे कृष्णचन्द्र! तुम शीघ्र ही मेरे रथ के घोड़ों को हाँककर जयद्रथ के समीप ले चलो और मेरी प्रतिज्ञा को सफल करो। हे निष्पाप! सूर्य शीघ्रता के साथ अस्ताचल को जा रहे हैं। मुझे शीघ्र ही जयद्रथ वध रूप महत् कार्य करना होगा। कौरवपक्ष के महारथी, जीवन का मोह छोड़कर, जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं। इसलिये तुम उस रीति से मेरा रथ हाँको जिससे मैं सूर्य अस्त होने के पहले ही जयद्रथ को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दूँ॥२।६॥हे महाराज!तब घोड़ों की जानकारी में निपुण श्रीकृष्ण ने उसी समय अर्जुन के श्वेत घोड़ों को जयद्रथ के रथ की ओर हाँकना आरम्भ किया।महावीर दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं राजा जयद्रथ, ये सब योद्धा अमोघ अस्त्र-

समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥
अयं स वैकर्तन युद्धकालो विदर्शयस्वाऽऽत्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥
अल्पावशेषो दिवसो नृवीर विघातयस्वाऽद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १३ ॥
सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्याऽस्तमनं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥
अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन्वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥
विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।
वसुन्धरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १६ ॥
दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान्रणे ॥ १७ ॥
नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥
कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः ।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्यात्सैन्धवकं नृपम् ॥ १९ ॥

वाले महावीर अर्जुन को, बाण-से शीघ्रगामी घोड़ों को शीघ्रता से हँकवाकर, अपनी ओर आते देखकर स्फूर्ति के साथ उनकी ओर बढ़े। सम्मुख सिन्धुराज जयद्रथ को पाकर क्रोध से लाल हो रही आँखों से अर्जुन इस प्रकार देखने लगे मानों दृष्टि से ही उन्हें भस्म कर डालेंगे॥७।१०॥हे राजेन्द्र! अर्जुन को जयद्रथ के रथ के सम्मुख जाते देखकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे राधेय! अब यह युद्ध का समय उपस्थित है, तुम अपना बाहुबल दिखाओ और ऐसा करो कि अर्जुन जयद्रथ को न मार सकें। दिन थोड़ा सा ही रह गया है। तुम बाण-वर्षा करके शत्रु के उद्योग को व्यर्थ कर दो।।हे कर्ण! दिन अस्त होते ही हमारी जय निश्चित है। सूर्य के अस्त होने तक जयद्रथ की रक्षा कर सकने पर अर्जुन की प्रतिज्ञा निष्फल होगी और वे अग्नि में जल मरेंगे॥११।१४॥अर्जुन के यों प्राण दे देने पर उनके भाई और अनुगत लोग भी मर जायँगे। इस प्रकार सुगमता से पाण्डवों के मर जाने पर हम समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। आज भावी के वश होकर अर्जुन की बुद्धि विपरीत हो गई है और वे कर्तव्याकर्तव्य का विचार न करके, आत्मविनाश के निमित्त एक दिन भर में ही जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा कर बैठे हैं॥१५।१८॥ भला तुम जैसे दुर्द्धर्ष मित्र के रहते अर्जुन की क्या ताब है कि दिन अस्त होने से पहले ही जयद्रथ को

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना ।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः ॥ २० ॥
द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च ।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २१ ॥
युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः ।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २२ ॥
स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चाऽन्यैर्महारथैः ।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥ २३ ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ।
एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम् ।
दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना ॥ २५ ॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः ।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ॥ २६ ॥
नाऽङ्गमिङ्गति किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य महेषुभिः ।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥ २७ ॥
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम् ।
नहि मे युद्ध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान् ॥ २८ ॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनञ्जयः ।
यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकांक्षिणा ॥ २९ ॥
तत्करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥ ३० ॥

मार लें। मैं, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और दुःशासन, हम सब मिलकर वीर जयद्रथ की रक्षा करेंगे, तो अकेले ही अर्जुन कैसे उनका वध कर सकेंगे?॥१९।२१॥एक तो असंख्य वीर एकत्र होकर संग्राम कर रहे हैं, दूसरे उधर सूर्यदेव भी अस्ताचल के शिखिर तक पहुँच गये हैं।इससे जान पड़ता है कि अर्जुन किसी प्रकार दिन रहते जयद्रथ को नहीं मार सकेंगे। हे कर्ण ! इस समय तुम अश्वत्थामा,शल्य, कृपाचार्य और अन्य सब वीरों को साथ लेकर, यत्न के साथ, अर्जुन को रोको और युद्ध करो॥२२।२४॥हे महाराज! पराक्रमी कर्ण ने दुर्योधन की ये बातें सुनकर कहा—हे भरतनाथ ! महावीर भीमसेन ने असंख्य तीक्ष्ण बाणों से मेरे अङ्ग छिन्न भिन्न करके सारा शरीर जर्जर कर दिया है। समरभूमि से भाग जाना उचित न समझ कर ही मैं स्थित हुआ-हुआ हूँ, नहीं तो कभी का चला गया होता। भीमसेन के बाण से मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त व्यथित हो रहे हैं, किन्तु यह जीवन तुम्हारे ही लिए है। अतएव यथाशक्ति अर्जुन से युद्ध करके

त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ॥ ३१ ॥
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम् ।
कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ॥ ३३ ॥
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम् ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥
भुजान्परिघसङ्काशान्हस्तिहस्तोपमान्रणे ।
शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवान्रथाक्षांश्च समन्ततः ।
शोणिताक्तान्हयारोहान्गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।
हयान्वारणमुख्यांश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।
कक्षमग्निरिवोद्भूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८ ॥
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥

मैं ऐसी चेष्टा करूँगा जिसमें अर्जुन जयद्रथ को न मार सकें। मैं जब कुपित होकर रणभूमि में तीक्ष्ण बाण बरसाऊँगा तब अर्जुन कदापि जयद्रथ को नहीं पा सकेंगे॥२५।२९॥ हे राजेन्द्र! हितकार्य करनेवाले और अनुगत लोग जैसा कार्य करते हैं, वैसा ही कार्य मैं करूँगा; किन्तु जय या पराजय दैव के अधीन है। आज मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करने और जयद्रथ को बचाने के निमित्त कोई कमी न रक्खूगा। आज सेना के क्षत्रिय लोग मेरा और अर्जुन का अत्यन्त दारुण संग्राम देखेंगे॥२९।३३॥ हे कुरुकुल श्रेष्ठ! इधर दुर्योधन और कर्ण इस प्रकार बातें कर ही रहे थे और उधर महावीर अर्जुन घोर रूप से आपकी सेना का नाश करने में लगे हुए थे। वे सुतीक्ष्ण बाणों से समर से न हटनेवाले वीरों के, परिघ और हाथी की सूँड़ के समान, हाथ और मस्तक काट काटकर रणभूमि को पाटने लगे। घोड़ों की गर्दनों, हाथियों की सूँड़ों, रथों के पहिये धुरे-जुए आदि अङ्ग प्रत्यङ्गों का कट कटकर ढेर होने लगा। वे क्षुरप्र बाणों से रक्त से नहाये हुए प्रास-तोमरधारी घुड़सवारों के दो-दो तीन तीन टुकड़े करने लगे॥३३।३७॥ असंख्य घोड़े और हाथी उनके बाणों से मरकर, छिन्न-भिन्न होकर, रणभूमि में गिरने लगे। ध्वजा, छत्र, धनुष, चामर और वीरों के सिर कट कटकर चारों ओर बिछ गये। जैसे अग्नि प्रकट होकर घास फूस के ढेरों को भस्म कर देती है वैसे

प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।
तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
सन्नद्धाः सैन्धवस्याऽर्थे समावृण्वन्किरीटिनम् ॥ ४३ ॥
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥ ४५ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।
ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।
ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥
द्विधा त्रिधाऽष्टधैकैकं छित्त्वा विव्याध तान्रथान् ।
सिंहलांगूलकेतुस्तु दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ४८ ॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।
स विध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ॥ ४९ ॥

ही महावीर अर्जुन अपने बाणों की अग्नि से कौरव सेना को नष्ट करने लगे। शीघ्र ही वहाँ रक्त की कीच हो गई। हे महाराज! प्रतापी सत्यविक्रमी अर्जुन इस प्रकार आपके दल के असंख्य वीरों को युद्ध में नष्ट करके जयद्रथ के समीप पहुँच गये। भीमसेन और सात्यकि उनकी सहायता और रक्षा कर रहे थे। वे उस समय प्रचण्ड और प्रज्वलित अग्नि के समान जान पड़ने लगे॥३७।४१॥अर्जुन को इस प्रकार अपना बल और विक्रम प्रकट करते देखकर कौरव पक्ष के वीर बहुत क्रुद्ध हुए। उनके लिये अर्जुन का अद्भुत पराक्रम असह्य हो उठा॥उस समय राजा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य अत्यन्त कुपित होकर अर्जुन को घेरने और जयद्रथ की रक्षा करने लगे। रणनिपुण और मुख फैलाये हुए काल के समान महाभयङ्कर अर्जुन धनुष की टङ्कार और तलध्वनि के साथ युद्ध करते हुए समरभूमि में चारों ओर नाचते-से थे। कौरव पक्ष के सब वीर निर्भय भाव से उन को घेरकर, जयद्रथ को अपने पीछे करके, घोर युद्ध करने लगे। वे सब श्रीकृष्ण सहित अर्जुन को मारने का घोर प्रयत्न करने लगे॥४१।४४॥हे महाराज! इसी अवसर में सूर्यमण्डल का लाल रङ्ग हो गया; वे अस्त हो चले। यह देखकर कौरव पक्ष के वीर बहुत ही आनन्दित हो उठे। वे सूर्य के शीघ्र अस्त हो जाने की आशा करके, सर्प के फन के समान मोटी, बलिष्ठ भुजाओं से धनुष झुका-झुकाकर अर्जुन के ऊपर चारों ओर से सूर्यकिरण सदृश चमकीले और तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। रणदुर्मद अर्जुन भी उनके प्रत्येक बाण के मार्ग में ही दो-चार और आठ तक टुकड़े करके अपने बाणों के प्रहार से उन्हें विह्वल करने लगे॥४५। ४८॥तब सिंहपुच्छ से चिह्नित ध्वजावाले रथ पर बैठे

अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।
अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते ।
ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत् ।
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः ।
त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥ ५५ ॥
विधुन्वन्तश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः ।
त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाऽम्बुभिः ।
ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन्व्यदर्शयन् ॥ ५८ ॥
धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९ ॥

हुए अश्वत्थामा, अपनी शक्ति और पराक्रम दिखाने के निमित्त, अर्जुन का सामना करने को आये। उन्होंने दस बाण अर्जुन को और सात बाण श्रीकृष्ण को मारे। अब वे जयद्रथ की रक्षा करने के निमित्त अर्जुन के रथ की राह रोककर खड़े हो गये। कौरवपक्ष के अन्यान्य महावीर भी, दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, चारों ओर से रथमण्डल के द्वारा अर्जुन को घेरकर जयद्रथ की रक्षा करने का प्रयत्न करते हुए धनुष चढ़ा चढ़ाकर अर्जुन के ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे। उस समय सब लोग महावीर अर्जुन का बाहुबल, शिक्षा और अभ्यास देखकर चकित रह गये। गण्डीव धनुष की शक्ति और अक्षय बाणों को देखकर सबके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। अर्जुन ने अस्त्र प्रयोग के द्वारा अश्वत्थामा और कृपाचार्य के अमोघ अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया॥४८।५३॥ जयद्रथ की रक्षा के निमित्त उद्योग करनेवाले प्रत्येक कौरवपक्ष के वीर को अर्जुन ने दस दस बाण मारे। उस समय अश्वत्थामा ने पचीस, वृषसेन ने सात, दुर्योधन ने बीस तथा कर्ण और शल्य ने तीन तीन बाण अर्जुन को मारे। वे लोग इस प्रकार एक साथ अर्जुन पर प्रहार करके तर्जन गर्जन पूर्वक युद्ध करने लगे। उक्त वीर चारों ओर से अर्जुन का रथ घेरकर बारम्बार उन्हें असंख्य तीक्ष्ण बाण मारने लगे॥५३।५७॥ ये सब महावीर रथ से रथ सटाकर सूर्य के शीघ्र अस्त होने की इच्छा से धनुष चढ़ाने, सिंहनाद करने और

आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
तं कर्णः संयुगे राजन्प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ।
तं पार्थो दशभिर्वाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
सात्वतश्च त्रिभिर्वाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥ ६२ ॥
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ।
तान्कर्णः प्रतिविव्याध षष्ठ्या षष्ठ्या महारथः ॥ ६३ ॥
तद्युद्धमभवद्राजन्कर्णस्य बहुभिः सह ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४ ॥
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन्रथान्पर्यवारयत् ।
फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ ६५ ॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६७ ॥
ततः पार्थो धनुश्छित्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ६८ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥ ६९ ॥

जैसे मेघ पर्वतके ऊपर जलधारा बरसाते हैं वैसेही अर्जुन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण असह्य बाण बरसाने लगे। किन्तु महावीर अर्जुन कौरव पक्ष के असंख्य वीरों का नाश करके जयद्रथ के समीप पहुँच ही गये ॥५७।६०॥ यह देखकर, भीमसेन और सात्यकि के सम्मुख ही, महावीर कर्ण बाण बरसाकर महापराक्रमी अर्जुन को रोकने लगे। अर्जुन ने भी सब सैनिकों के सम्मुख ही उनके बाणों को व्यर्थ करके दस बाणों से कर्ण को गहरी चोट पहुँचाई। साथ ही सात्यकि ने तीन, भीमसेन ने तीन और अर्जुन ने भी और सात बाण कर्ण को मारे। कर्ण ने उनमें से प्रत्येक को साठ-साठ बाण मारे। इस प्रकार अकेले ही कर्ण कई वीरों के साथ दारुण संग्राम करने लगे॥६०।६४॥ उस समय सब लोग कर्ण के अद्भुत पराक्रम को देखकर बहुत ही विस्मित हुए वे कुपित होकर अकेले ही इन तीन महारथियों को रोकने लगे। तब पराक्रमी अर्जुन ने कर्ण के मर्मस्थलों में सौ तीक्ष्ण बाण मारे। कर्ण रक्त से नहा गये, तथापि विचलित न होकर उन्होंने अर्जुन को पचास बाण मारे। कर्ण की स्फूर्ति देखकर अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनका धनुष काट डाला और उनके वक्षःस्थल में तीक्ष्ण नव बाण मारे॥६४।६८॥ अब कर्ण ने दूसरा धनुष लेकर अर्जुन को आठ सहस्र बाण मारे। इस बाण-वर्षा को अर्जुन ने इस प्रकार काट दिया जिस प्रकार आंधी टिड्डियों को हटा देती है

तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत्सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥
छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे ।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ ७१ ॥
वधार्थं चाऽस्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनञ्जयः ॥ ७२ ॥
तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद्भुवि ॥ ७३ ॥
कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम् ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४ ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥
अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तामितरेतरम् ।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥ ७६ ॥
इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा ।
युध्यतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥
प्रेक्षणीयौ चाऽभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।
ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥ ७९ ॥

॥६९।७१॥ फिर कर्ण को मार डालने के निमित्त अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ सूर्यसदृश तेजोमय एक उग्र बाण छोड़ा। महावीर अश्वत्थामा ने अर्जुन के छोड़े हुए उस अमोघ बाण को वेग से आते देखकर एक तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण से मार्ग में ही काट डाला। अब वीर कर्ण भी उनके कार्य का उत्तर देने के निमित्त सहस्रों बाणों से अर्जुन को आच्छादित करने लगे॥७२।७४॥ वे दोनों महावीर इसी प्रकार युद्ध करते और साँड़ों की तरह गरजते थे। उन्होंने सीधे जानेवाले बाणों से आकाश मण्डल को भर दिया और स्वयं भी उस बाणवर्षा में अदृश्य हो गये। वे दोनों वीर अपने नामों का उल्लेख करके गरजते और तीक्ष्ण बाणों से परस्पर प्रहार करते थे। कर्ण कहते थे—अर्जुन, खड़े रहो, मैं कर्ण हूँ। अर्जुन कहते थे—कर्ण, खड़े रहो, मैं अर्जुन हूँ। इसी प्रकार कठोर वचनों से तर्जन गर्जन कर रहे दोनों वीर चतुराई और स्फूर्ति के साथ विचित्र युद्ध कर रहे थे। सब योद्धाओं के सम्मुख दोनों वीरों का रूप दर्शनीय हो रहा था। सिद्ध, चारण, नाग आदि दोनों वीरों की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार परस्पर वध की आकांक्षा से दोनों वीर घोर संग्राम करने लगे॥७५।७९॥-हे महाराज! उस समय राजा दुर्योधन ने कौरवपक्ष के सब वीर योद्धाओं से कहा—हे वीरो! तुम सब लोग यत्नपूर्वक कर्ण की रक्षा करो। महाप्रतापी कर्ण आज अर्जुन

यत्नाद्रक्षत राधेयं नाऽहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान्नृपः ॥ ८० ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥
अनयत्प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाऽभ्यपद्यत ।
तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।
मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः ॥ ८५ ॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनञ्जयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥
चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक्पृथङ् महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८७ ॥
तथैव तान्प्रत्यविध्यत्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८ ॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विध्वा पार्थो ननाद ह ॥ ८९ ॥

को बिना मारे या बिना जीते नहीं लौटेंगे॥७९।८०॥ हे राजेन्द्र ! दुर्योधन सब वीरों से यों कह ही रहे थे कि इसी समय अर्जुन ने कर्ण के बड़े विक्रम को देखकर अत्यन्त कुपित हो कानों तक खींचकर चार बाण छोड़े, जिनसे कर्ण के रथ के चारों घोड़े मर गये। फिर अर्जुन ने एक भल्ल बाण से कर्ण के सारथी को भी मार डाला। इसके पश्चात् वे आपके पुत्र राजा दुर्योधन के सम्मुख ही वीर कर्ण को असह्य तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। इस प्रकार अर्जुन के बाणों से सारथी और घोड़े मर जाने पर बाण वर्षा से पीड़ित महारथी कर्ण क्षण भर के लिए मोहित और किंकर्तव्यविमूढ से हो गये॥८१।८४॥ तब महावीर अश्वत्थामा ने विरथ कर्ण को अपने रथ पर चढ़ा लिया। अब वीर अश्वत्थामा अर्जुन से घोर युद्ध करने लगे। उस समय शल्य ने अर्जुन को तीस तीक्ष्ण बाण मारे। कृपाचार्य ने भी श्रीकृष्ण को बीस बाण मारकर अर्जुन के ऊपर बारह बाण छोड़े। साथ ही सिन्धुराज जयद्रथ ने चार और वृषसेन ने सात बाण अर्जुन को मारे। इस प्रकार वे सब एक साथ श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर प्रहार करने लगे। तब महावीर अर्जुन ने अश्वत्थामा को चौंसठ बाण, शल्य को एक सौ बाण, जयद्रथ को दस भल्ल बाण, वृषसेन को तीन बाण और कृपाचार्य को बीस बाण मारकर सिंहनाद किया। हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त आपके पक्ष के

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥ ९० ॥
अथाऽर्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं प्रादुश्चक्रे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥
ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते सुदारुणे भारत मोहनीये ।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान्॥ ९२ ॥
राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां स्मरन्क्लेशान्द्वादशवर्षवृत्तान्।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥
प्रदीप्तोल्कमभवच्चाऽन्तरिक्षं मृतेषु देहेष्वपतन्वयांसि ।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥
ततः किरीटी महता महायशाः शरासनेनाऽस्य शराननीकजित्
हयप्रवेकोत्तमनागघूर्णितान्कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥
गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मयानसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः प्रगृह्य पार्थं सहसाऽभिदुद्रुवुः॥९६ ॥
ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं महन्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम्
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन्भृशं ययौ दहंस्त्वदीयान्यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७ ॥
स तानुदीर्णान्सरथान्सवारणान्पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान्रणे चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ९८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

वीर योद्धा लोग अर्जुन की प्रतिज्ञा को निष्फल करने के निमित्त बड़ा यत्न करने लगे। वे क्रोध से विह्वल होकर बाणवर्षा करते हुए अर्जुन की ओर बढ़ने लगे॥८४।९०॥ तब अर्जुन ने कौरवों को भय-विह्वल करके दिव्य वारुण अस्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र चारों ओर प्रकट होकर आपके पुत्रों के मन में त्रास उत्पन्न करने लगा। उधर कौरवगण भी बड़े बड़े रथों पर बैठकर बाणवर्षा करते हुए वीर अर्जुन पर आक्रमण करने को चले। उस समय मोहित करनेवाला घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु वीर अर्जुन उससे विचलित न होकर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। वे कौरवों के दिये हुए अपने बारह वर्ष के वनवास के दुःखों को स्मरण करके, राज्य और विजय प्राप्त के निमित्त उत्सुक होकर, गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों की वर्षा से चारों दिशाओं को व्याप्त करने लगे। उस समय आकाशमण्डल दिन में ही असंख्य उल्काओं से प्रज्वलित हो उठा। मनुष्यों की लाशों पर बेशुमार कौए मँडलाते हुए गिरने लगे। रुद्रदेव ने जैसे कुपित होकर, पिङ्गलवर्ण प्रत्यञ्चा से शोभित, पिनाक धनुष के द्वारा शत्रुओं का संहार किया था वैसे ही अर्जुन भी गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों के द्वारा हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों पर सवार कौरवों के बाणों को व्यर्थ करके उन्हें मारकर गिराने लगे॥९१।९५॥ तब योद्धा राजा लोग भारी गदा, लोहमय बेलन, खड्ग, शक्ति और अन्य प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर गरजते हुए वेग से अर्जुन की ओर दौड़े। यह देखकर महावीर अर्जुन हँसे

और प्रलयकाल के मेघ के समान गम्भीर शब्द से युक्त सुदृढ़ गाण्डीव धनुष को चढ़ाकर उग्र बाणों की अग्नि से कौरवसेना को भस्म करने लगे। हे राजेन्द्र! महावीर अर्जुन उन धनुर्द्धर योद्धाओं को शस्त्र-हीन करके और रथ, हाथी, घोड़े पैदल आदि सहित सबको मारकर यमराज का राज्य बढ़ाने लगे॥९६।९८॥

द्रोणपर्व का एक सौ पैंतालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

सञ्जय उवाच—श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य विस्पष्टमुत्क्रुष्टमिवाऽन्तकस्य
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं विकृष्यमाणस्य धनञ्जयेन ॥ १ ॥
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाऽभवत् ।
स रणे व्यचरत्पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ॥ ३ ॥
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।
आददानं महाराज सन्दधानं च पाण्डवम् ॥ ४ ॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात् ।
ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन्सर्वभारतान् ।
ततः शराः प्रादुरासन्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत्तद्दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।
ततः शस्त्रान्धकारं तत्कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाऽप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव ।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥

एक सौ छयालीस अध्याय ॥ १४६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! उस समय अर्जुन के खींचे हुए गाण्डीव धनुष का शब्द काल के गर्जन अथवा वज्राघात के समान भयङ्कर हो रहा था। उसे सुनकर आपकी सेना भय के मारे व्याकुल हो गई। उस समय आपकी सेना की दशा प्रलयकाल की आँधी से क्षोभ को प्राप्त, ऊँची तरङ्गों से पूर्ण उस महासमुद्र के जल की सी हुई, जिसमें मछली मगर आदि जल-जन्तु छिप जाते हैं। महाबली अर्जुन एक साथ दसों दिशाओं में दृष्टिपात और सभी अस्त्रों का प्रयोग करते हुए चारों ओर विचर रहे थे॥१।४॥हे महाराज! उस समय [अद्भुत स्फूर्ति के कारण] हम लोगों को देख ही नहीं पड़ता था कि अर्जुन कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं, कब धनुष खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं। तब अर्जुन ने अत्यन्त ही कुपित होकर सब कौरवों को भयभीत कराते हुए दुर्द्धर्ष इन्द्रास्त्र का प्रयोग किया। उस दिव्य अस्त्र के प्रभाव से अगणित अग्निमुख प्रज्वलित बाण प्रकट होने लगे। कान तक खींचकर छोड़े गये, अग्नि और सूर्य की किरणों के समान, बाणों से आकाशमण्डल उल्का-परिपूर्ण सा जान पड़ने लगा और दुर्निरीक्ष्य हो उठा। हे राजेन्द्र!

नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः ।
ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥
आक्षिपत्पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।
ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन्द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांऽशवः ।
अथाऽपरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।
य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।
एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।
सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान्विपुलान्भुजान् ॥ १५ ॥
सकुण्डलयुगान्कर्णान्केषांचिदहरच्छरैः ।
सतोमरान्गजस्थानां सप्रासान्हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
सचर्मणः पदातीनां रथिनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान्नियन्तॄणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥
प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान्बभौ तत्र धनञ्जयः ।
स विस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥
तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥

कौरव दल के वीरों ने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके आकाश में जो अँधेरा कर दिया था, उसे अन्य कोई योद्धा नष्ट करने का खयाल भी नहीं कर सकता था॥४। ८॥ किन्तु वीर अर्जुन ने तनिक भी विचलित न होकर, सूर्यदेव जैसे प्रातःकाल रात्रि के अँधेरे को नष्ट कर देते हैं वैसे ही, पराक्रमपूर्वक स्फूर्ति के साथ दिव्य अस्त्र से अभिमन्त्रित बाणों के द्वारा उस अन्धकार को नष्ट कर दिया। ग्रीष्म ऋतु के सूर्य जैसे अपनी उग्र किरणों द्वारा जलाशय के जल को सोख लेते हैं, वैसे ही अर्जुन अपने बाणों से आपकी सेना का नाश करने लगे। दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले अर्जुन के चलाये हुए बाण, संसार में सूर्य की किरणों के समान, शत्रु-सेना में सर्वत्र फैलने लगे॥९।१२॥ अर्जुन के छोड़े हुए असंख्य तीक्ष्ण विकट बाण, प्रिय मित्र की भाँति, शत्रुदल के वीरों के हृदयों में शीघ्रता के साथ प्रवेश करने लगे। अपने को शूर समझनेवाले जो आपके योद्धा अर्जुन से युद्ध करने गये वे, जलती हुई अग्नि में गिरनेवाले पतङ्गों की भाँति, नष्ट हो गये। हे महाराज! इस प्रकार वीर अर्जुन शरीरधारी मृत्यु के समान चारों ओर विचरकर शत्रुओं के यश और जीवन को नष्ट करने लगे॥१३।१५॥ वे किसी के किरीट मुकुट वस्त्र सहित सिर, किसी के अङ्गदादि

निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ॥ २१ ॥
दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह ।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाऽम्बुदो महान् ॥ २२ ॥
महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते ।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥
उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः ।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः ।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथाऽन्यैः कृत्तसन्धिभिः ।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत् ।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २७ ॥
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराऽभ्यर्दयतः पशून् ।
गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥ २८ ॥
क्वचिद्बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।
विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसङ्कीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥ ३० ॥

अङ्गदयुक्त विशाल बाहु और किसी के कुण्डलयुक्त कान बाणों से काट-काटकर गिराने लगे। उन्होंने हाथियों के सवारों के तोमर सहित हाथों का, घुड़सवारों के प्रास-युक्त हाथों का, पैदलों के ढाल-तलवार सहित हाथों का, रथ-स्थित योद्धाओं के धनुष सहित हाथों का और सारथियों के चाबुक तथा घोड़ों की रास से युक्त हाथों का, काट-काटकर, ढेर लगा दिया। उस समय वीर अर्जुन चिनगारियों और ज्वालाओं से युक्त अग्नि के समान शोभायमान हो रहे थे॥१५।१८॥ प्रज्वलित उग्र बाण किरण से जान पड़ते थे। सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, दर्शनीय-रूप, पुरुषश्रेष्ठ, रथ पर स्थित अर्जुन एक साथ ही सब ओर घूमकर अस्त्र-शस्त्र बरसा रहे थे। धनुष की डोरी और तल का शब्द करते हुए वे चारों ओर नृत्य सा कर रहे थे। मध्याह्न के सूर्य के समान प्रचण्डरूप अर्जुन ऐसे दुर्निरीक्ष्य हो रहे थे कि सब राजा लोग लाख यत्न करके भी उनकी ओर नेत्र उठाकर नहीं देख सकते थे। प्रदीप्त उग्र बाण बरसाते हुए वीर अर्जुन उस समय वर्षा ऋतु में इन्द्र-धनुष से शोभित होकर जल बरसा रहे महामेघ के समान दिखाई पड़ रहे थे॥१९।२२॥ इस प्रकार अर्जुन की की हुई अस्त्र-वर्षा में और दुस्तर महाघोर युद्धसागर में बड़े-बड़े योद्धा बहने और डूबने लगे। जिनके सिर कट गये हैं ऐसे धड़, बिना भुजाओं के शरीर, जिनकी हथेलियाँ कट गई हैं ऐसे हाथ, जिनकी उँगलियाँ कट गई हैं ऐसी हथेलियाँ, जिनकी सूँड़ और दाँत कट गये हैं ऐसे

विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।
मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसङ्कटाम् ॥ ३२ ॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम् ।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसङ्घातरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
वलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।
तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥ ३८ ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरे ।
तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।
ततो रथवरान्राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥

सस्त हाथी, जिनकी गर्दन कट गई है ऐसे घोड़े, टुकड़े-टुकड़े हो गये रथ, जिनकी आँते, पाँव तथा अन्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट गये हैं और जो घायल तथा अधमरे होकर तड़प रहे हैं ऐसे सैंकड़ों सहस्रों मनुष्य उस रणभूमि में चारों ओर देख पड़ते थे। हे महाराज! हम लोगों ने देखा कि वह रणभूमि मृत्यु के दृश्यों से महाभयानक हो रही थी। कायर लोग उसे देखकर ही भयभीत होजाते थे। वह रणभूमि ऐसी जानपड़ती थी मानों पूर्व समय में पशु-विनाश में प्रवृत्त रुद्रदेव की क्रीड़ाभूमि हो। हाथियों की कटी हुई सूँड़ें सर्पों के समान चारों ओर दिखाई देती थीं॥२३।२८॥ विचित्र पगड़ी मुकुट कुण्डल आदि से अलङ्कृत वीरों के मुखकमल कहीं पर कटे पड़े थे, जिन्हें देखने से जान पड़ता था कि रणभूमि माला पहने हुए है। सुनहरे कवच, हाथियों और घोड़ों के अलङ्कार, मुकुट और सैंकड़ों किरीट-मुकुट आदि पड़े रहनेसे रणभूमि विचित्र नई दुलहिन के समान शोभायमान हो रही थी॥२९। ३१॥ हे महाराज! उस समय वीर अर्जुन ने मरे हुए शत्रुओं के रक्त से घोर वैतरणी नदी के समान महाभयङ्कर और भीरु जनों के लिए भयावनी एक नदी बहा दी। वह मज्जा-मेदा की कीच और रक्तप्रवाह की लहरों से पूर्ण थी। बड़ी-बड़ी हड्डियों के कारण दुर्गम उस नदी में केश ही सेवार के समान थे। कटे हुए सिर और हाथ किनारे की शिलाओं की जगह पर थे। रीढ़ आदि की बड़ी हड्डियाँ उसके दुर्गम स्थल थे। विचित्र ध्वजा-पताका, छत्र और धनुष लहरों के समान प्रतीत

मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाऽम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रति वीक्षितुम् ॥ ४१ ॥
प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपंक्तिमिवाऽम्बरे ॥ ४२ ॥
विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।
दर्शयन्रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥ ४३ ॥
स तान्रथवरान्राजन्नत्याक्रामत्तदाऽर्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ॥
विसृजन्दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥ ४४ ॥
सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥
अदृश्यन्ताऽन्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
आददानं महेष्वासं सन्दधानं च सायकम् ॥ ४६ ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नाऽनुपश्याम वै तदा ।
तथा सर्वा दिशो राजन्सर्वांश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥
कदर्थीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।
विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम् ।
न्यवर्तन्त रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४९ ॥
यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे ।
तस्य तस्याऽन्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन्प्रभो ॥ ५० ॥

होते थे। मरे हुए मनुष्यों और हाथियों के बड़े बड़े शरीर उसमें बह रहे थे। सैकड़ों रथ नाव और डोंगी की जगह पर थे। घोड़ों के शरीर तटभूमि से जान पड़ते थे। रथों के पहिये, जुआ, धुरे, ईषा, कूबर, आदि आर और प्रास, खड्ग, शक्ति, परशु, बाण आदि शस्त्र नाकों के समान उसे दुर्गम बनाये हुए थे। काक, कङ्क आदि पक्षी महानक्र से थे। [illegible] के झुण्ड टक्कर मारते से थे। [illegible] सिद्धियों का घोर शब्द उसे महाभयानक बना रहा था। उसके किनारे सहस्रों भूत, प्रेत, पिशाच नाच रहे थे। मरे हुए पैदलों के अनेकों शरीर उसमें बह रहे थे। महाराज! काल के समान अर्जुन के अद्भुत पराक्रम को देखकर रणभूमि में कौरवगण बहुत ही भयभीत हो गये॥३१।४०॥ अर्जुन सब महारथियों से बढ़कर घोर कर्म करके अपने घोर पराक्रम का परिचय देने लगे। उन्होंने अपने अमोघ अस्त्रों से सब वीरों के अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया। सब महारथियों को लाँघ करके आकाश में मध्याह्नकाल के सूर्य के समान तपते हुए अर्जुन की ओर कोई प्राणी नेत्र उठाकर नहीं देख सकता था। संग्राम में अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकल निकल कर बाणसमूह आकाश में हंसों की पंक्ति के समान दिख पड़ते थे॥४१।४२॥ वीरों के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काटकर उग्र कर्म करते हुए अर्जुन ने अपना घोर रूप सबको दिखाया।

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥ ५१ ॥
एवं तत्तत्र राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा ।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥
द्रौणिं पञ्चाशताऽविध्यद्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥ ५३ ॥
शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः ।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवाऽनदत् ॥ ५४ ॥
सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ५५ ॥
स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥
आकर्णपूर्णांश्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
त्रिभिस्तु विध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥ ५७ ॥
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा ।
स विक्षिप्याऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥ ५८ ॥
युगपत्तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥
स च्छिन्नयष्टिः सुमहान्धनञ्जयशराहतः ।
वराहः सिन्धुराजस्य पपाताऽग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥

जयद्रथ-वध करने के निमित्त नाराच बाणों के प्रहार से सबको मोहित सा कर रहे अर्जुन सब महारथियों से बढ़कर युद्ध कौशल दिखाने लगे। दर्शनीयरूप अर्जुन.सारथी श्रीकृष्ण की सहायता से, सब दिशाओं में बाण बरसाते हुए विचर रहे थे। वीर अर्जुन के सहस्रों बाण अन्तरिक्ष में सनसनाते जा रहे थे। उस समय हमें नहीं देख पड़ता था कि कब अर्जुन बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं॥४३।४७॥महावीर अर्जुन ने इस प्रकार दसों दिशाओं को बाणों से व्याप्त और वीरों को व्याकुल कर दिया॥ उन्होंने आगे बढ़कर जयद्रथ को चौंसठ बाण मारे। कौरव पक्ष के वीर, अर्जुन को जयद्रथ की ओर जाते देखकर,जयद्रथ के जीने की आशा और समर एक साथ छोड़ बैठे। हे राजेन्द्र! आपके पक्ष के जो-जो वीर अर्जुन के सम्मुख गये वे उनके बाणों से मरने लगे ॥४७।५१॥महावीर अर्जुन इस प्रकार अग्नितुल्य बाणों के प्रहार से आपकी चतुरङ्गिणी सेना को व्याकुल और रणभूमि को कबन्धों से पूर्ण करके जयद्रथ की ओर चले। उन्होंने अश्वत्थामा को पचास,वृषसेन को तीन, कर्ण को बत्तीस, कृपाचार्य को नव,शल्य को सोलह और जयद्रथ को चौंसठ बाण मारकर घोर सिंहनाद किया॥५२।५४॥ जयद्रथ,अर्जुन के बाण-प्रहार से, अङ्कुश-पीड़ित गजराज के समान अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। अर्जुन का वह पराक्रम उन्हें अत्यन्त असह्य हुआ। वे अर्जुन के रथ को ताककर शीघ्रता के साथ विषैले नाग के समान,सिकलीगरों के हाथसे स्वच्छ और तीक्ष्ण किये

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत्पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥
एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥
एताननिर्जित्य रणे षड्रथान्पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥
योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ।
अस्तङ्गत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४ ॥
हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथञ्चन ॥ ६५ ॥
तत्र च्छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयाऽस्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत ।
ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्याऽऽवरणं प्रति ॥ ६७ ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।
सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।
ते प्रहृष्टा रणे राजन्नाऽपश्यन्सैनिका रविम् ॥ ६९ ॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः ।
वीक्षमाणे ततस्तस्मिन्सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥

गये, गृध्रपत्र-शोभित तीक्ष्ण बाण कान तक खींच-खींचकर छोड़ने लगे। फिर जयद्रथ ने श्रीकृष्ण को तीन और अर्जुन को छः बाण मारकर उनके घोड़ों को आठ बाण मारे तथा ध्वजा में भी एक बाण मारा ॥५५।५८॥ महावीर अर्जुन ने जयद्रथ के बाणों को व्यर्थ कर दिया। फिर धनुष पर एक साथ दो बाण चढ़ाकर एक से जयद्रथ के सारथी का सिर काट डाला और दूसरे से सुसज्जित, अग्निशिखा सदृश, वराह चिह्नयुक्त ध्वजा काट गिराई। मुंह फैलाये हुए बाघ के समान अर्जुन जयद्रथ को सुरक्षित देखकर, उनके प्राण लेने का अवसर न पाकर, क्रोध से विह्वल हो उठे। उनके नेत्र लाल हो आये। वे क्रोध से दांत चाबते हुए सूर्य की ओर देखने लगे।॥५८।६०॥ इसी समय सूर्य को शीघ्रता के साथ अस्ताचल पर जाते देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे वीर! वह देखो, सूर्य अब शीघ्र ही अस्त होनेवाले हैं। उधर महाबली छः महारथी मिलकर, जयद्रथ को अपने मध्य में रखकर, उसकी रक्षा कर रहे हैं। अपनी जीवन रक्षा के निमित्त सिन्धुराज जयद्रथ बहुत ही भयभीत हो गया है। तुम इन छः महारथियों को परास्त किये बिना, प्राणपण से यत्न करके भी, जयद्रथ को न मार सकोगे॥६१।६३॥ बिना धोखा दिये जयद्रथ इतनी शीघ्रता से नहीं मारा जा सकता। इसलिए मैं सूर्य को छिपाने का प्रयत्न करता हूँ। जयद्रथ भी देख लेगा कि सूर्य अस्त हो गये हैं। जीवन की इच्छा रखनेवाला जयद्रथ उस समय हर्ष के मारे अपने को छिपा नहीं

पुनरेवाऽब्रवीत्कृष्णो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत्त्वत्तो भरतसत्तम ।
अयं कालो महाबाहो वधायाऽस्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥
छिन्धि मूर्धानमस्याऽऽशु कुरु साफल्यमात्मनः ।
इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥
न्यवधीत्तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसन्निभैः ।
कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥ ७४ ॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाऽष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥
तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान्पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विद्ध्वा शरैः राजञ्जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ७६ ॥
तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवाऽनलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥
ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः ।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिराहवे ॥ ७८ ॥
संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः ।
अक्रुध्यत्स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९ ॥
ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
व्यसृजत्पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥
ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन्रणे तव ।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाऽभ्यधावताम् ॥ ८१ ॥

सकेगा। प्रतिज्ञा मिथ्या होने के कारण तुम अपने प्राण न रखोगे, यह सोचकर प्रसन्नता के कारण दुर्मति जयद्रथ अवश्य उस समय छिपा न रहेगा। बस, उसी समय तुम उसको मार डालना। देखो मित्र, उस समय यह समझकर कि सूर्य अस्त हो गये हैं, तुम जयद्रथ-वध करने में हिचकना नहीं॥६४।६६॥हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! अब अर्जुन ने श्रीकृष्ण की यह बात स्वीकार कर ली। अब महात्मा श्रीकृष्ण ने योग के द्वारा अन्धकार उत्पन्न कर दिया और उसमें सूर्य छिप गये। योगेश्वर महायोगी श्रीकृष्ण के योगबल से छिपे हुए सूर्य को सचमुच ही अस्तगत जानकर कौरव पक्ष के सब योद्धा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा कि प्रतिज्ञा मिथ्या होने के कारण अब अर्जुन प्राण दे देंगे। सूर्य के न देख पड़ने से कौरव दल के सब सैनिक अत्यन्त आनन्द प्रकट करने लगे॥६७।६९॥उस समय जयद्रथ भी उत्सुकता के मारे गर्दन उठाकर सूर्य की ओर देखने लगे [कि सचमुच सूर्य अस्त हो गये हैं या नहीं]। तब श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! देखो-देखो, जयद्रथ निर्भय होकर सूर्य की ओर देख रहा है। यही उसको मारने का ठीक अवसर है। इसलिए शीघ्रता से इसका सिर काटकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो॥७०।७३॥श्रीकृष्ण के वचन सुनकर परा-

तत्राऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
तादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥ ८२ ॥
द्विपान्द्विपगतांश्चैव हयान्हयगतानपि ।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन्रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥
न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
गजो वाजी नरो वाऽपि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥
रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः ।
कश्मलं प्राविशन्घोरं नाऽन्वजानन्परस्परम् ॥ ८५ ॥
ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥
तस्मिन्महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये ।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
अशाम्यत्तद्रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥ ८८ ॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते ।
मत्ता वेगवता राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥

क्रमी अर्जुन, अग्नि और सूर्य की किरणों के समान, बाणों की वर्षा से कौरव-सेना को मारने और व्याकुल करने लगे। उन्होंने कृपाचार्य को बीस, कर्ण को पचास, शल्य को छः, दुर्योधन को छः, वृषसेन को आठ, जयद्रथ को साठ तथा कौरवपक्ष के अन्य सैनिकों को असंख्य बाण मारे। अब वे जयद्रथ की ओर वेग से चले॥७३।७६॥ जयद्रथ की रक्षा करनेवाले वीरगण, प्रज्वलित होकर जलाने को उद्यत अग्नि के समान, अर्जुन को निकटवर्ती देखकर बहुत ही व्याकुल हुए। उन्हें जयद्रथ के बचने के बारे में कुछ भी आशा न रही। हे महाराज! तब आपके सब योद्धा, जय की आकांक्षा से, अर्जुन के ऊपर निरन्तर असंख्य बाण छोड़ने लगे। अनेक बाणों से अपने को आच्छादित देखकर अपराजित महाबाहु अर्जुन बहुत ही कुपित हुए। अब वे आपकी सेना को नष्ट करने के निमित्त घोर बाण बरसाने लगे॥७७।८०॥ वीर अर्जुन के बाणों से मारे जा रहे आपके योद्धा लोग भय के मारे जयद्रथ को छोड़, जहाँ जिसको राह मिली, भाग खड़े हुए। उस समय हम लोगों ने महायशस्वी अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देखा। उस समय अर्जुन ने जैसा कर्म किया वैसा न कभी किसी ने किया है और न कभी कोई कर ही सकेगा। रुद्र ने जैसे पशुओं की हत्या की थी वैसे ही वीर अर्जुन भी सवारों सहित हाथियों, घोड़ों और रथों को नष्ट कर रहे थे॥८१।८३॥ हे महाराज! उस समय मुझे वहाँ ऐसा कोई हाथी, घोड़ा या मनुष्य नहीं देख पड़ा, जिसको अर्जुन के बाण न लगे हों। धूल और अँधेरे के मारे योद्धाओं को कुछ भी नहीं सूझता था। सभी व्याकुल हो गये थे। परस्पर अपने पक्ष के मनुष्यों को भी कोई नहीं पहचान सकता था। हे भारत! अर्जुन के बाणों से सब सैनिकों के मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो गये। कोई पानी माँगकर गिरता था, कोई लड़खड़ाकर गिरता था, कोई कराहता था और कोई

हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप ।
प्रदुद्रुवुर्भयाद्राजन्धनञ्जयशराहताः ॥ ९१ ॥
मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः ।
प्रापलायन्त सन्त्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥
ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित्तत्राऽभवन्भुवि ।
हतानां चाऽपरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥
एवं तव बलं राजन्द्रावयित्वा धनञ्जयः ।
न्यवधीत्सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥
द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम् ।
छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५ ॥
न गृह्णन्न क्षिपन्राजन्मुञ्चन्नापि च सन्दधत् ।
अदृश्यताऽर्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात्कथञ्चन ॥ ९६ ॥
धनुर्मण्डलमेवाऽस्य दृश्यते स्माऽस्यतः सदा ।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७ ॥
कर्णस्य तु धनुश्छित्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥
गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥

मरकर मलिन हो जाता था॥८४।८६॥उस प्रलयकाल के समान जनसंहारक महाभयङ्कर दुस्तर युद्ध के समय रक्त बहने और प्रचण्ड आँधी चलने से पृथ्वी की धूल बैठ गई। हे राजेन्द्र! इतना रक्त बहा कि आपके योद्धाओं के, वेग से चलते हुए,रथों के पहिये धरती में आधे आधे धँस गये। जिनके सवार मरकर गिर गये थे ऐसे छिन्न भिन्न और रक्त से नहाये हुए सहस्रों हाथी अपनी ही सेना को रौंदते और आर्तनाद करते हुए इधर उधर भागने लगे॥८७।९०॥बिना सवारों के घोड़े और पैदल सिपाही, अर्जुन के बाणों से पीड़ित और व्याकुल होकर, प्राण बचाने के निमित्त चारों ओर भाग रहे थे। लोगों के केश खुले हुए थे, कवच कटकर गिर पड़े थे, घावों से रक्त बह रहा था और वे भय के मारे युद्ध का मैदान छोड़कर भाग रहे थे। कुछ लोगों के पाँव ही मानों किसी ने पकड़ लिए और वे वहीं खड़े-खड़े मरकर गिरने लगे। कुछ लोग मरे हुए हाथियों की ओट में छिपकर अपनी जान बचाने लगे॥९१।९३॥हे महाराज! इस प्रकार आपकी सब सेना को भगाकर वीर अर्जुन ने जयद्रथ के रक्षक महारथियों को घोर बाणों से पीड़ित किया। अश्वत्थामा, कृपाचार्य,कर्ण,शल्य, वृषसेन और दुर्योधन को अर्जुन ने तीव्र बाणों से अदृश्य कर दिया। उस समय अर्जुन ऐसी स्फूर्ति दिखा रहे थे कि प्रतीत ही नहीं पड़ता था कि कब वे बाण लेते हैं, कब चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं। यही देख पड़ता था कि उनका धनुष मण्डलाकार घूम रहा है और उससे निरन्तर बाण निकलकर चारों ओर फैल रहे हैं॥९४।९७॥अर्जुन ने कर्ण और वृषसेन का धनुष काट डाला और एक भल्ल बाण से शल्य के सारथी को मारकर गिरा दिया। अब विजयी अर्जुन ने मामा-भानजे कृपाचार्य और अश्वत्थामा के मर्मस्थलों में तीव्र बाण मारे जिससे वे विह्वल हो गये। हे महाराज! इस प्रकार आपके सब महारथियों

एवं तान्व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम् ॥ १०० ॥
इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥ १०१ ॥
वज्रेणाऽस्त्रेण संयोज्य विधिवत्कुरुनन्दनः ।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥
तस्मिन्सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ १०३ ॥
अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥
अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥ १०५ ॥
वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान्सुतम् ॥ १०६ ॥
जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाऽशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥ १०७ ॥
तवाऽऽत्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ १०८ ॥
क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥ १०९ ॥
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चाऽलक्षितो भुवि ।
एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिन्दमः ॥ ११० ॥

को व्याकुल करके महावीर अर्जुन ने एक अग्नि-तुल्य इन्द्र के वज्र के समान दारुण, दिव्य अस्त्र से अभिमन्त्रित, बड़ी-बड़ी कड़ी वस्तुओं को तोड़ने में समर्थ, सदा चन्दन माला आदि से पूजा जानेवाला भयानक बाण निकाला। फिर उन्होंने विधिपूर्वक उसे वज्रास्त्र से संयुक्त करके स्फूर्ति के साथ गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया॥९८।१०२॥ अग्नि के समान तेजोमय उस बाण को जिस समय अर्जुन धनुष पर चढ़ाने लगे उस समय अन्तरिक्ष में स्थित सिद्ध चारण आदि में खलबली मच गई। तब महात्मा कृष्णचन्द्र ने स्फूर्ति के साथ कहा—हे अर्जुन! शीघ्र दुरात्मा जयद्रथ का मस्तक काट डालो, क्योंकि सूर्यास्त होने में थोड़ी सी देर है। इसके अतिरिक्त जयद्रथ के वध के बारे में एक गुप्त बात मैं बतलाता हूँ; उसे ध्यान देकर सुनो और उसी के अनुसार कार्य करो॥१०३।१०५॥ जगत्प्रसिद्ध राजा वृद्धक्षत्र जयद्रथ के पिता हैं। घोर तपस्या करने पर उनके यहाँ जयद्रथ का जन्म हुआ था। इसके जन्म के समय आकाशवाणी हुई थी कि हे राजा वृद्धक्षत्र! तुम्हारा यह पुत्र कुल, शील, दम आदि गुणों से सम्पन्न और सर्वथा माता और पिता के अथवा सूर्यवंश और चन्द्रवंश के उपयुक्त होगा। शूर लोग नित्य इस क्षत्रिय-श्रेष्ठ का सत्कार करेंगे। किन्तु युद्ध के अवसर पर कोई

ज्ञातीन्सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।
संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥ १११ ॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्याऽपि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११२ ॥
एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥ ११३ ॥
सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ ११४ ॥
तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनाऽस्त्रेण रिपुहन्घोरेणाऽद्भुतकर्मणा ॥ ११५ ॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वाऽस्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ ११६ ॥
अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११७ ॥
यथा चेदं न जानीयात्स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥ ११८ ॥
न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किञ्चन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥ ११९ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ १२० ॥
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जाऽर्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥ १२१ ॥

क्षत्रिय वीर शत्रु कुपित होकर अलक्षित भाव से इसका सिर काट डालेगा॥१०६।११०॥हे अर्जुन! शत्रुदमन सिन्धुराज वृद्धक्षत्र यह आकाशवाणी सुनकर पुत्रस्नेह से विह्वल हो देर तक सोचते रहे। इसके पश्चात् उन्होंने अपने जातिभाइयों से कहा कि जो कोई संग्राम के समय भारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर बहुत लोगों से युद्ध कर रहे मेरे इस पुत्र का सिर काटकर पृथ्वी पर गिरावेगा,उसके सिरकेभी उसी समय सौ टुकड़े होजायँगे ॥११०।११२॥हे पार्थ! राजा वृद्धक्षत्र इतना कहकर, यथासमय जयद्रथ को राजसिंहासन पर बिठाकर,वन को चले गये और वहीं अब तक उग्र तपस्या कर रहे हैं। वे तेजस्वी राजा यहीं कुरुक्षेत्र में, समन्तपञ्चक क्षेत्र के बाहर वन में, घोर तपस्या कर रहे हैं। इसलिए तुम अद्भुत कर्म करनेवाले दिव्य घोर अस्त्र से जयद्रथ का कुण्डलों से अलङ्कृत सिर काटकर वृद्धक्षत्र की ही गोद में गिरा दो॥११३।११६॥हे अर्जुन! यदि तुम जयद्रथ का सिर काटकर पृथ्वी पर गिराओगे तो उसी समय तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायँगे। हे कुरुश्रेष्ठ!तुम दिव्य अस्त्र के बल के प्रभाव से ऐसा करो कि वृद्धक्षत्र को तो प्रतीत न होने पावे और अलक्षित भाव से जयद्रथ का सिर उनकी गोद में जाकर गिर पड़े। हे अर्जुन! त्रिभुवन में ऐसा कोई काम नहीं है जिसे

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाऽऽशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥ १२२ ॥
तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥ १२३ ॥
शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥ १२४ ॥
ततः सुमहदाश्चर्यं तत्राऽपश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरो यद्व्यहरत्ततः ॥ १२५ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
सन्ध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥ १२६ ॥
उपासीनस्य तस्याऽथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥ १२७ ॥
तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिन्दम ॥ १२८ ॥
कृतजप्यस्य तस्याऽथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत्सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥ १२९ ॥
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्याऽपि शतधा मूर्धाऽगच्छदरिन्दम ॥ १३० ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥ १३१ ॥
ततो विनिहते राजन्सिन्धुराजे किरीटिना ।
समस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ १३२ ॥

सहन न कर सके॥११७।११९॥महातेजस्वी अर्जुन ने महात्मा श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर जयद्रथ के मारने के निमित्त धनुष पर चढ़ाया हुआ वह भयानक बाण वेग से छोड़ा। उस समय वे क्रोध से अधीर होकर होंठ चाट रहे थे। हे महाराज! बाज पक्षी जैसे वृक्ष के ऊपर से किसी चिड़िया को दबोच कर उड़ जाता है, वैसे ही गाडीव धनुष से छूटे हुए वज्रतुल्य उस सुदृढ बाण ने जयद्रथ का सिर काट लिया॥१२०।१२३॥ अब महावीर अर्जुन ने, शत्रुओं का शोक और मित्रों का हर्ष बढ़ाने के लिए, स्फूर्ति के साथ ऐसे अनेक बाण मारे, जिन्होंने उस सिर को नीचे न गिरने देकर समन्त पञ्चक तीर्थ के बाहर पहुँचा दिया। साथ ही वे छहों महारथियों का भी सामना करते रहे॥१२४।१२५॥ राजा वृद्धक्षत्र उस समय सन्ध्योपासन कर रहे थे। हे महाराज! अर्जुन ने [अस्त्रविद्या के प्रभाव से] वह जयद्रथ का सिर उनकी गोद में गिरा दिया। आपके सम्बन्धी वृद्धक्षत्र को इसकी सूचना ही नहीं हुई। सन्ध्या करके वृद्धक्षत्र ज्योंही आसन से उठे त्योंही वह काले केशों और कुण्डलों से अलङ्कृत जयद्रथ का सिर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस सिर के पृथ्वी पर गिरते ही वृद्धक्षत्र के सिर के भी सौ टुकड़े हो गये॥१२६।१३०॥ यह देखकर सब सैनिकों को बड़ा

पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ १३३ ॥
एवं स निहतो राजन्पार्थेनाऽमिततेजसा ।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥ १३४ ॥
हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाऽभवञ्जये ॥ १३५ ॥
ततो जयद्रथे राजन्हते पार्थेन केशवः ।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परन्तपः ॥ १३६ ॥
भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १३७ ॥
श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥ १३८ ॥
ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधान्पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ १३९ ॥
ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥ १४० ॥
ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ १४१ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥ १४२ ॥

आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण भी प्रसन्न होकर महारथी अर्जुन की प्रशसा करने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार अर्जुन जब जयद्रथ को मार चुके तब श्रीकृष्ण ने यह अँधेरा दूर कर दिया। हे नृपश्रेष्ठ ! पीछे से आपके पुत्रों और उनके अनुगामी राजाओं को विदित हुआ कि यह श्रीकृष्ण की माया थी, वास्तव में सूर्य अस्त नहीं हुए थे। हे राजेन्द्र ! महावीर अर्जुन ने आठ अक्षौहिणी सेना मारकर आपके दामाद सिन्धुराज जयद्रथ का वध किया॥१३१।१३४॥ उनकी मृत्यु देखकर, दु[illegible] और शोक के मारे, आपके पुत्रों के नेत्रों से आँसू बहने लगे। जय-प्राप्ति के बारे में वे निराश हो गये। इस प्रकार जयद्रथ के मारे जाने पर महात्मा कृष्णचन्द्र और शत्रुदमन अर्जुन जोर से अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे। भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजा ने भी अपने अपने शङ्ख बजाये॥१३५।१३७॥ उस महाशङ्ख नाद को सुनकर युधिष्ठिर समझ गये कि अर्जुन जयद्रथ को मार चुके। तब वे भी अनेक युद्ध के बाजे बजवाकर, अपने पक्ष के वीर योद्धाओं को प्रसन्न और उत्साहित करते हुए, युद्ध करने के निमित्त द्रोणाचार्य की ओर बढ़े। [illegible] महाराज ! उस सूर्यास्त के समय द्रोणचार्य के साथ सोमकगण दारुण युद्ध करने लगे। जयद्रथ के मारे जाने पर महारथी सोमकगण बड़े प्रयत्न से द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त घोर सग्राम करने लगे॥१३८।१४१॥ जय पाकर और जयद्रथ को मारकर उत्साहित और उन्मत्तप्राय पाण्डवगण, पूर्ण बल लगाकर, द्रोणाचार्य

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान्रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥१४३॥
स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली व्यधमत्समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ १४४ ॥
इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

से युद्ध करने लगे। हे राजेन्द्र! जैसे सूर्य उदय होकर अन्धकार को नष्ट करते हैं और इन्द्र ने जैसे अपने शत्रु दानवों का संहार किया था, वैसे ही अर्जुन ने अपने शत्रुओं का नाश किया। वीर अर्जुन इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके और आपके पक्ष के सैनिकों को चारों ओर भगाकर अन्त को प्रधान-प्रधान रथी योद्धाओं से युद्ध करने लगे ॥१४३।१४४॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ छियालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत ।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।
द्रौणिश्चाऽभ्यद्रवद्राजन्रथमास्थाय फाल्गुनम् ॥ ३ ॥
तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥
स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीडयमानः परामार्तिमगमद्रथिनां वरः ॥ ५ ॥
सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराऽऽचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥ ७ ॥

एक सौ सैंतालीस अध्याय ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! अर्जुन जब महावीर जयद्रथ का वध कर चुके तब मेरे पक्ष के वीरों ने क्या किया? यह सब वृत्तान्त तुम मुझे सुनाओ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ! शारद्वत कृपाचार्य, जयद्रथ की मृत्यु से अत्यन्त कुपित होकर, अर्जुन के ऊपर उग्र असंख्य बाण बरसाने लगे। तब अश्वत्थामा भी रथ पर बैठकर अर्जुन की ओर दौड़ पड़े। इस प्रकार महारथी कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनों, दोनों ओर से, अर्जुन के रथ पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे॥२।४॥उनके उग्र बाणों के प्रहार से रथी योद्धाओं में श्रेष्ठ अर्जुन बहुत ही पीड़ित और कातर हो उठे। गुरु और गुरुपुत्र को मार डालना तो अर्जुन चाहते न थे, इसलिए वे धीमे हाथ से इन दोनों पर प्रहार करने लगे। उन्होंने द्रोणाचार्य की भाँति पराक्रम प्रकट करके क्षण भर में कृपाचार्य और अश्वत्थामा के बाण-जाल को छिन्न-भिन्न कर डाला। अर्जुन के चलाये

ते चापि भृशमभ्यघ्नन्विशिखाः पार्थचोदिताः ।
बहुत्वात्तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ८ ॥
अथ शारद्वतो राजन्कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥
विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् ।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥
तस्मिन्भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाऽप्यपायासीत्पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् ।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत् ।
पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥ १४ ॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥ १६ ॥
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ।
ऋषिपुत्रो ममाऽऽचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥ १७ ॥

हुए बाण शरीरमें लगनेसे वृद्ध कृपाचार्य और अश्वत्थामा अत्यन्त पीड़ित हो गये। यद्यपि वे बाण मन्दगति थे तथापि, बहुत होने के कारण, उन्होंने दोनों वीरों को व्याकुल कर दिया। अर्जुन के बाणों से मूर्च्छित होकर कृपाचार्य शिथिल और निश्चेष्ट भाव से रथ पर गिर पड़े॥५।९॥बाणों से पीड़ित अपने स्वामी को, मरा हुआ समझकर, सारथी रणभूमि से हटा ले गया। इस प्रकार कृपाचार्य के विमुख होने पर अश्वत्थामा भी भय के मारे अर्जुन के आगे से हट गये और अन्य स्थान पर और योद्धाओं से युद्ध करनेलगे॥१०।११॥बाण-पीड़ित मूर्च्छित अपने गुरु कृपाचार्य की दशा देखकर अर्जुन खिन्न होकर रोने और दीन वचन कहकर इस प्रकार विलाप करने लगे—हा! मुझे धिक्कार है, धिक्कार है! महामति विदुर ने दिव्य दृष्टि से यह परिणाम पहले ही देख लिया था। इसी से उन्होंने कुल का नाश करनेवाले पापी कुलाङ्गार दुर्योधन के उत्पन्न होते ही महाराज धृतराष्ट्र से कहा था कि हे राजेन्द्र! आप इस कुलपांसन पुत्र को अभी मरवा डालिए। क्योंकि यह जीता रहा तो इसके द्वारा वंश का विनाश होगा और मुख्य-मुख्य कुरुवंशियों के लिए महाभय उपस्थित होगा॥१२।१५॥महात्मा सत्यवादी विदुर की वह बात अब सम्मुख आई है। दुरात्मा दुर्योधन के ही कारण मैं इस समय अपने पूज्य गुरु की यह दशा देख रहा हूँ। उसी दुष्ट के कारण आज कृपाचार्य मृतप्राय होकर बाणशय्या पर छटपटा रहे हैं। क्षत्रियधर्म को और मेरे बल-पौरुष को धिक्कार है! मुझ सरीखा और

एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः ।
अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥ १८ ॥
अवसीदन्रथोपस्थे प्राणान्पीडयतीव मे ।
पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै ।
शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥ २० ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम् ।
उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥ २१ ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान्देवत्वमुपयान्ति ते ।
ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ।
तदिदं नरकायाऽद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥ २३ ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ।
यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत्कृपः ॥ २४ ॥
न कथञ्चन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ।
तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥
नाऽनुष्ठितं तमेवाऽऽजौ विशिखैरभिवर्षता ।
नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायाऽपलायिने ॥ २६ ॥
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम् ।
तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥

कौन पुरुष ब्राह्मण और आचार्य के ऊपर प्रहार करेगा? ऋषिपुत्र, मेरे आचार्य और द्रोणाचार्य के परम मित्र ये कृपाचार्य मेरे बाण से पीड़ित होकर रथ पर पड़े हुए हैं। मैंने विवश होकर इन्हें बाण मारकर पीड़ित किया है। मैं नहीं चाहता कि इन्हें किसी प्रकार का क्लेश पहुँचे। इनकी दशा देखकर मेरा हृदय मानों फटा जा रहा है। पुत्रशोक से विह्वल और बाणों से पीड़ित होकर भी मैंने इनको बहुत से बाण मारे हैं। ये रथ पर मृतप्राय से होकर पड़े हुए हैं। इनकी यह दशा देखकर मुझे पुत्रवध से भी बढ़कर दु:ख हो रहा है॥१५।१९॥हे श्रीकृष्ण जी! इन्होंने कुपित होकर मुझे बहुत से बाण मारे थे, तथापि मुझे उपेक्षा ही करनी चाहिए थी; किन्तु मैंने वैसा नहीं किया॥१९।२१॥जो लोग गुरु से विद्या प्राप्त करके उन्हें, उनकी इच्छा के अनुसार, गुरु दक्षिणा देते हैं वे देवभाव को प्राप्त होते हैं। किन्तु जो नराधम मेरी तरह गुरुओं से विद्यालाभ करके उन्हीं पर प्रहार करते हैं, वे दुष्ट अवश्य ही नरकगामी होते हैं। सो इस समय अपने आचार्य को बाणों की मार से पीड़ित करके, मृतप्राय अवस्था में रथ पर गिराकर, अवश्य ही मैंने नरक जाने का कार्य किया है॥२१। २४॥कृपाचार्य ने अस्त्रशिक्षा देते समय पहले मुझसे कहा था कि हे कौरव! गुरु के ऊपर कभी प्रहार न करना। किन्तु आज उन्हीं महात्मा आचार्य के ऊपर बाण बरसाकर मैंने उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन किया है। हे यदुकुलावतंस! गुरु पर प्रहार करनेवाले मुझ पापी को धिक्कार है। रण से कदापि न विमुख

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् ।
तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन् ।
उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥
प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ।
एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे ।
यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाऽश्वाञ्जनार्दन ॥ ३१ ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत्सात्यकिं वृषः ।
एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः ।
अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥
किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः ।
न च तावत्क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥ ३४ ॥
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा ।
अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥ ३६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३७ ॥

होनेवाले अपने गुरुवर कृपाचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ॥२४।२७॥हे राजेन्द्र ! अर्जुन जब इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि महावीर कर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ की मृत्यु से अत्यन्त कुपित होकर, अर्जुन की ओर वेग से चले। कर्ण को अर्जुन की ओर जाते देखकर युधामन्यु, उत्तमौजा और सात्यकि कर्ण को रोकने के निमित्त उनके सम्मुख आये। यह देखकर महारथी कर्ण भी अर्जुन की ओर न जाकर सात्यकि पर आक्रमण करने को उद्यत हुए॥२७।२९॥तब अर्जुन ने हँसकर श्रीकृष्ण से कहा—हे वासुदेव ! यह देखो, कर्ण सात्यकि से युद्ध करने के लिये जा रहा है। यह महावीर किसी प्रकार भूरिश्रवा की मृत्यु को नहीं क्षमा करेगा, अवश्य सात्यकि से उसका बदला लेने की चेष्टा करेगा। इसलिए हे जनार्दन ! कर्ण के समीप ही मेरा रथ ले चलो, जिसमें वह किसी प्रकार सात्यकि की वही दशा न करे जो भूरिश्रवा की हुई है॥२९।३२॥यह सुनकर महाबाहु वासुदेव उनसे इस प्रकार समयानुकूल वाक्य कहने लगे—हे अर्जुन ! महावीर सात्यकि अकेले ही कर्ण से युद्ध कर सकते हैं। वे स्वयं कर्ण के समकक्ष योद्धा हैं। फिर इस समय तो युधामन्यु और उत्तमौजा भी उनके सहायक हैं। इसलिए तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरी समझ में इस समय तुम्हारा कर्ण से युद्ध करना उचित नहीं है। अभी कर्ण के समीप इन्द्र की दी हुई, प्रज्वलित उल्का के समान, अमोघ शक्ति उपस्थित है।

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान्रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ३८ ॥
सञ्जय उवाच—हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥
पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४० ॥
अतीतानागते राजन्स हि वेत्ति जनार्दनः ।
ततः सूतं समाहूय दारुकं सन्दिदेश ह ॥ ४१ ॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन्महाबलः ।
नहि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
मानवा वाऽपि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ।
पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत्तथा ।
सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाऽभ्युद्यतं रणे ॥ ४४ ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाऽथ माधवः ।
दारुकोऽवेत्य सन्देशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥
रथमन्वानयत्तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।
स केशवस्याऽनुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥

महावीर कर्ण तुमको मारने के निमित्त ही यह शक्ति अपने समीप रक्खे हुए हैं। इसलिए उसको इस समय सात्यकि से युद्ध करने दो। हे अर्जुन! तुम जिस समय इस दुरात्मा शत्रु को तीक्ष्ण बाणों से मारोगे उस समय को मैं भली भाँति जानता हूँ॥३२।३६॥ धृतराष्ट्र ने कहा-हे सञ्जय! महावीर भूरिश्रवा और जयद्रथ की मृत्यु हो चुकने पर वीर सात्यकि के साथ कर्ण का कैसा संग्राम हुआ? सात्यकि का रथ तो भूरिश्रवा ने नष्ट कर दिया था। इस समय किसके रथ पर बैठकर सात्यकि ने युद्ध किया? और अर्जुन के रथचक्रों के रक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा ने कैसा युद्ध किया? यह सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो॥३७।३८॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! आपकी ही दुर्नीति के कारण होनेवाले जन-संहारकारी घोर संग्राम का मैं वर्णन करता हूँ। आप भली भाँति मन लगाकर सुनिए। महात्मा श्रीकृष्ण भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों समय का सब हाल वर्तमान की तरह जानते हैं। उन्हें यह पहले से ही विदित था कि भूरिश्रवा वीर सात्यकि को परास्त करेंगे। इसी कारण उन्होंने अपने सारथी दारुक को रथ तैयार कर रखने की आज्ञा दे रक्खी थी॥३९।४२॥ हे कुरुराज! देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस और मनुष्य आदि में ऐसा प्रभावशाली योद्धा कोई नहीं है, जो महात्मा श्रीकृष्ण अथवा अर्जुन को हरा सकता हो। प्रजापति आदि देवता और सिद्धगण इन दोनों महात्माओं के अतुल प्रभाव को भली भाँति जानते हैं। अब जिस प्रकार संग्राम हुआ, सो सब मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ, ध्यान देकर सुनिए। महात्मा श्रीकृष्ण ने सात्यकि को रथहीन और कर्ण को समर के निमित्त उद्यत देखकर ऋषभ स्वर में ज़ोर से अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया॥४२।४५॥ यह शङ्खनाद सुनते ही श्रीकृष्ण के इशारे को समझकर दारुक सारथी स्फूर्ति के साथ, गरुड़युक्त ध्वजा से शोभित, रथ लेकर सात्यकि के समीप

आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम् ।
कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ॥ ४७ ॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन्सायकान्बहून् ।
चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४९ ॥
धनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।
राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥ ५० ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।
नैव दैवं न गान्धर्वं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥ ५१ ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।
उपारमत तत्सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥ ५२ ॥
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म संमूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥
तयोर्नृवरयो राजन्सारथ्यं दारुकस्य च ।
गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥
अतीवाऽवहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६ ॥

आ गया। तब महावीर सात्यकि श्रीकृष्ण की आज्ञा से उस वेगगामी, सुवर्ण के अलङ्कारों से शोभित शैब्य, सुग्रीव, बलाहक, मेघपुष्प नाम के चार दिव्य घोड़ों से युक्त, सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान, विमानतुल्य रथ पर सवार हुए और तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए कर्ण की ओर बढ़े॥४५।४९॥अब चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी, अर्जुन के रथ की रक्षा करना छोड़कर, कर्ण से युद्ध करने के निमित्त बड़े वेग से दौड़े। उस समय महावीर कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर बाणवर्षा करते हुए सात्यकि की ओर झपटे। हे महाराज! उस समय कर्ण और सात्यकि ने जैसा घमासान युद्ध किया वैसा युद्ध पृथ्वी या स्वर्ग में कभी देवता, गन्धर्व, असुर, नाग, राक्षस आदि किसी ने नहीं किया। उस समय दोनों पक्षों के वीर योद्धा लोग, युद्ध बन्द करके, उन दोनों वीरों का यह आश्चर्यजनक संग्राम देखने लगे। सब लोग दोनों वीरों के असाधारण युद्ध और रथ पर स्थित दारुक सारथी का गत, प्रत्यागत, आवर्तन, मण्डल, सन्निवर्तन आदि विविध गतियाँ दिखाकर रथ हाँकना देखकर बहुत ही विस्मित हुए॥४९।५४॥ देवता, दानव और गन्धर्वगण आकाश में स्थित होकर एकाग्र भाव से उन दोनों वीरों का अत्यन्त घोर संग्राम देखने लगे। तब अपने अपने मित्र के लिए युद्ध करनेवाले वे दोनों महाबली योद्धा निरन्तर एक दूसरे पर अमर्ष उग्र बाणों की वर्षा करने लगे

कर्णश्चाऽमरसङ्काशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ५७ ॥
प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥ ५८ ॥
कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम ।
तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुद्ध्यत ॥ ६० ॥
महता शरवर्षेण गजं प्रतिगजो यथा ।
तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१ ॥
अन्योन्यं सन्ततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।
ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिन्दम ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥
अश्वांश्च चतुरः श्वेतान्निजघान शितैः शरैः ।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।
ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥

॥५४।५७॥भूरिश्रवा और जलसन्ध की मृत्यु से क्रुद्ध होकर देवतुल्य महावीर कर्ण बाणवर्षा से सात्यकि को पीड़ित करने लगे। शोक के मारे महानाग की भाँति श्वास लेते हुए कुपित कर्ण इस प्रकार सात्यकि की ओर देख रहे थे कि मानों दृष्टि से ही भस्म कर देंगे॥५८।६०॥ वे बड़े वेग से बार-बार दौड़कर सात्यकि पर आक्रमण कर रहे थे। कर्ण को कुपित देखकर सात्यकि ने भी उन पर आक्रमण किया और महागज जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी गज के ऊपर दाँत से चोट करता है वैसे ही वे कर्ण के ऊपर निरन्तर बाण छोड़ने लगे। इस प्रकार वे दोनों पराक्रमी योद्धा परस्पर भिड़कर घोर प्रहारों से एक दूसरे को घायल कर रहे थे॥६०।६२॥महापराक्रमी सात्यकि ने बारम्बार तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को घायल करके एक भल्ल बाण से उनके सारथी को मार डाला। सारथी मरकर रथ से नीचे गिर गया। फिर सात्यकि ने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के चारों श्वेत घोड़े मार डाले और उनकी ध्वजा तथा रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस प्रकार वीर सात्यकि ने, आपके पुत्र के सम्मुख ही, कर्ण को रथ-हीन कर दिया॥६२।६५॥अब आपके पक्ष के मद्रराज शल्य, कर्ण के पुत्र वृषसेन और द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा इन तीनों महारथियों ने चारों ओर से सात्यकि को घेर लिया। तब ऐसा घोर युद्ध हुआ और अँधेरा छा गया कि सब सैनिक अत्यन्त व्याकुल हो उठे। किसी को कुछ भी नहीं दीख पड़ता था।

ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ॥ ६७ ॥
हाहाकारस्ततो राजन्सर्वसैन्येष्वभून्महान् ।
कर्णोऽपि विरथो राजन्सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन् ।
मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन् ।
तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥ ७० ॥
दुःशासनमुखान्वीरान्नाऽवधीत्सात्यकिर्वशी ।
रक्षन्प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुरा कृताम् ॥ ७१ ॥
विरथान्विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत् ।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥ ७२ ॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः ।
वधे त्वकुर्वन्यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥
नाऽशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः ।
द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवाऽन्ये महारथाः ॥ ७४ ॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः ।
कांक्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७५ ॥
कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः ।
जितवान्सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥

आपके पक्ष के सैनिकगण कर्ण को रथ-हीन देखकर हाहाकार करने लगे॥६५।६८॥हे महाराज ! इस प्रकार महावीर कर्ण राजा दुर्योधन के साथ अपनी बाल्कपन की मित्रता स्मरण करके, शत्रुविजयपूर्वक उन्हें निष्कण्टक राज्य दिलाने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के निमित्त घोर संग्राम कर रहे थे । वे सात्यकि के बाणों से छिन्न-से गये और अत्यन्त ही विह्वल हो उठे, अन्त को लम्बे श्वास लेते हुए वे दुर्योधन के रथ पर चले गये । हे राजेन्द्र ! महावीर सात्यकि कर्ण को रथ हीन करके दुःशासन आदि योद्धाओं को रथ रहित और विह्वल करने लगे । किन्तु भीमसेन की प्रतिज्ञा को स्मरण करके सात्यकि ने उनको मारा नहीं । महावीर अर्जुन ने, दुबारा द्यूतक्रीडा के अवसर पर कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की थी, इसीलिए सात्यकि ने समर्थ होकर भी कर्ण का वध नहीं किया॥६८।७३॥ कर्ण आदि महारथियों ने सात्यकि को मारने के निमित्त बारम्बार घोर प्रयत्न किया, किन्तु किसी प्रकार उस उद्योग में वे कृतकार्य नहीं हो सके । युधिष्ठिर का हित करने की अभिलाषा से महावीर सात्यकि ने, जीवन का मोह छोड़कर, केवल धनुष की सहायता से दारुण संग्राम किया और अकेले ही अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा अन्य महारथियों को परास्त कर दिया । इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन के सदृश पराक्रमी सात्यकि हँसते हँसते कौरव पक्ष के चुने-चुने वीर योद्धाओं को जीतने

कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः ।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः ।
विरथं कृतवान्कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः ।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम् ।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच—शृणु राजन्यथा वृत्तं रथमन्यं महामतिः ।
दारुकस्याऽनुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥
आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः सन्नद्धकूबरम् ।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ८२ ॥
अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसङ्काशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥
चित्रकाञ्चनसन्नाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८४ ॥
युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८५ ॥
तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥

हो। हे राजेन्द्र ! इस पृथ्वीमण्डल में महात्मा कृष्णचन्द्र, अर्जुन और सात्यकि यही तीन सर्व श्रेष्ठ योद्धा हैं। इनके समान चौथा कोई नहीं है॥७२।७७॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! बल-वीर्य गर्वित, श्रीकृष्ण सदृश वीर सात्यकि ने श्रीकृष्ण के अजेय रथ पर बैठकर, रथ हाँकने में निपुण दारुक सारथी को पाकर, वीर कर्ण को रथ-हीन कर दिया। मैं यह जानना चाहता हूँ कि इसके पश्चात् सात्यकि ने क्या अन्य किसी रथ पर बैठकर (अथवा उसी रथ पर बैठकर) युद्ध किया ? हे सञ्जय ! तुम सब वर्णन मेरे आगे कहो, क्योंकि तुम वर्णन करने में बहुत ही निपुण हो। सात्यकि का पराक्रम मुझे असह्य जान पड़ता है॥७८।८०॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपने जो कुछ पूछा, वह मैं कहता हूँ, सुनिये। क्षण भर के पश्चात् दारुक सारथी का छोटा भाई एक सुन्दर सुसज्जित रथ लेकर सात्यकि के समीप आ गया। वह रथ घण्टाजाल-ध्वनि-युक्त, शक्ति तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र और समर की सामग्री से परिपूर्ण, लोहमय और सुवर्णमय पट्टियों से विभूषित, विचित्र कूबरयुक्त, सहस्र ताराओं से अलङ्कृत और सिंहचिह्न-युक्त ध्वजा-पताकाओं से सम्पन्न था। उसमें पवन के समान वेग से जानेवाले सिन्धु देश के, श्वेत रङ्ग के, किसी प्रकार के भी शब्द से न भड़कनेवाले, परिश्रमी, दृढ़, सुवर्ण के कवच से सज्जित बहुमूल्य घोड़े जुते हुए थे। उसके चलने से मेघगर्जन के

कर्णस्यापि रथं राजञ्शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसन्नाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥
हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥
उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रिपून् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥
भूयश्चापि निबोधेमं तवाऽपनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।
शतशो निहताः शूराः सात्वतेनाऽर्जुनेन च ॥ ९१ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

समान गम्भीर शब्द होता था। महावीर सात्यकि उस रथ पर बैठकर कौरवसेना की ओर वेग से बढ़े। सारथी दारुक भी श्रीकृष्ण के रथ को लेकर निर्भय श्रीकृष्ण के समीप चला गया॥८१।८६॥उधर कर्ण के निमित्त भी एक सुन्दर भारी रथ लाया गया। यह रथ सुवर्ण-कक्षा, ध्वजा, यन्त्र, पताका, बहुत से शस्त्र और निपुण सारथी से सम्पन्न था। उसमें श्वेत रङ्ग के, विचित्र सुवर्णमय साज से शोभित, शीघ्रगामी, श्रेष्ठ घोड़े जुते हुए थे। कर्ण भी उस रथ पर बैठकर शत्रुओं पर आक्रमण करने दौड़े॥८७।८९॥हे राजेन्द्र! जो आपने मुझसे पूछा था सो मैंने कह दिया। अब आप अपनी दुर्नीति से होनेवाले महान् जनविनाश का वृत्तान्त भी सुनिए। इस संग्राम में वीर भीमसेन ने, चित्रयुद्ध में निपुण, दुर्मुख आदि आपके इकतीस पुत्रों को मार डाला। सात्यकि और अर्जुन ने भी भीष्म और भगदत्त आदि सैकड़ों शूर-वीरों का संहार किया। हे महाराज! आपकी अनीति के कारण ही इस प्रकार यह घोर नाश हुआ है॥८९।९२॥

द्रोणपर्व का एक सौ सैंतालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च सञ्जय ।
किं वै भीमस्तदाऽकार्षीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच - विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

एक सौ अड़तालीस अध्याय ॥ १४८ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! मेरे और पाण्डव पक्ष के महारथी जब इस प्रकार की दशा को प्राप्त हुए, तब पराक्रमी भीमसेन ने क्या किया॥१॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! कर्ण जब भीमसेन को रथ-हीन और शस्त्र-हीन करके कटु वचन सुनाने लगे तब कर्ण के वाक्यबाणों से पीड़ित और क्रोधान्ध होकर भीमसेन ने अर्जुन से कहा—हे भाई अर्जुन! कर्ण ने तुम्हारे सम्मुख ही बारम्बार यों कहकर मेरा अपमान किया

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत्कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय ।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥
एतद्व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥
तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत्सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्याऽमितविक्रमः ।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥
कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्राऽऽत्मसंस्तुत ।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥
द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ ।
तौ चाऽप्यनित्यौ राधेय वासवस्याऽपि युध्यतः ॥ ९ ॥
मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः ।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥ १० ॥
यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् ।
कथञ्चिद्विरथं कृत्वा यत्त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत् ।
नाऽरिं जित्वाऽतिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥

कि "हे भीम ! तुम बिना दाढ़ी मूँछ के, मूढ़, पेटू, अस्त्रविद्या न जाननेवाले, बालक और समर से जी चुराते हो। इसलिए युद्ध न करो; युद्ध छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाओ"॥२।४॥हे पार्थ ! तुम जानते ही हो, मेरी प्रतिज्ञा है कि इस प्रकार कटु वचन कहनेवाले को मैं अवश्य मार डालूँगा। सो इस समय कर्ण को मारना मेरा कर्तव्य है; किन्तु इससे पहले ही तुम कर्ण के मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हो। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त कर्ण को मारता हूँ, तो तुम्हारी प्रतिज्ञा कैसे पूर्ण होगी? इसलिए ऐसा करो जिससे मेरी और तुम्हारी दोनों की प्रतिज्ञा सत्य हो ॥५।६॥महाबाहु अर्जुन ने भीमसेन के वचन सुनकर, कुपित होकर, कर्ण के कुछ समीप जाकर कहा--हे कर्ण! तुम मूढ़, अधर्मबुद्धि, सूत-पुत्र और अपने मुख से अपनी प्रशंसा करनेवाले हो। इस समय जो मैं कहता हूँ, उसे तुम ध्यान देकर सुनो। रण में शूरों को या तो जय प्राप्त होती है या उनकी पराजय होती है। युद्ध के यही दो परिणाम हैं। किन्तु साक्षात् इन्द्र भी जो युद्ध करें तो वे सदा विजयी नहीं हो सकते। उनके लिए भी जय-पराजय अनिश्चित है॥७।९॥सात्यकि ने तुमको रथहीन, अचेत, मृतप्राय करके भी यही सोचकर जीवित छोड़ दिया कि मैं तुम्हें मारने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। महाबली भीमसेन को किसी प्रकार रथ-हीन करके जो तुमने कटु और रूखे वचन कहे हैं, वह

न च कश्चन निन्दति सन्तः शूरा नरर्षभाः ।
त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्वदसि सूतज ॥ १३ ॥
बह्ववद्यमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।
युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत्सत्यं वचस्तव ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।
न च त्वां परुषं किञ्चिदुक्तवान्पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥
यस्मात्तु बहुरूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥
तस्मादस्याऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥
तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः ।
कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत्ते भयमागतम् ॥ १९ ॥
हन्ताऽस्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।
ये चाऽन्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥ २० ॥
तांश्च सर्वान्हनिष्यामि सत्येनाऽऽयुधमालभे ।
त्वां च मूढाऽकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥

काम सर्वथा अधर्म और अनुचित है । अनार्य पुरुष ही ऐसा किया करते हैं । जो सज्जन शूर और पुरुषश्रेष्ठ हैं वे शत्रु को जीतकर बहुत बढ़-बढ़कर बातें नहीं करते । वे न तो दुर्वचन ही कहते हैं और न पराजित शत्रु की निन्दा ही करते हैं॥१०।१३॥हे सूतपुत्र ! तुम्हारी बुद्धि साधारण और चञ्चल है । इसी कारण तुमने ऐसी असङ्गत,अश्राव्य,अप्रिय बातें कही हैं । युद्ध कर रहे, पराक्रमी, शूर,आर्यव्रतत्पर (युद्ध से कदापि न विमुख होने-वाले)भीमसेन के प्रति जो तुमने अप्रिय वचनों का प्रयोग किया है,सो अनुचित है । तुम्हारी ये बातें, जिनका प्रयोग तुमने भीमसेन के प्रति किया है, सर्वथा मिथ्या हैं । सब सेना के, मेरे और श्रीकृष्ण के सम्मुख ही भीमसेन ने कई बार तुमको रथहीन किया और रण से भगा दिया था; फिर भी उन्होंने तुम्हारे प्रति एक भी कठोर वचन का प्रयोग नहीं किया॥१३।१६॥अभी तुमने मेरे आगे भीमसेन को बहुत से अप्रिय कटु वचन सुनाये हैं और मेरी अनुपस्थिति में तुम बहुतों ने मिलकर अकेले बालक अभिमन्यु को मार डाला है । ये काम करके भी तुम अहङ्कार प्रकट कर रहे हो । इसका परिणाम तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा । हे दुर्मति मूढ़ सूत-पुत्र ! तुमने अपने विनाश के निमित्त ही बालक अभिमन्यु का धनुष काट डाला था । इसलिए सेवकों, पुत्रों और बान्धवों सहित तुम मेरे हाथ से मारे जाने योग्य हो । तुम अपने सब आवश्यक कर्तव्य कर लो; क्योंकि तुम्हारे लिए भारी सङ्कट आया हुआ है॥१७।१९॥मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारे प्रिय पुत्र वृषसेन को मारूँगा । मूर्खतावश और जो राजा लोग मुझसे युद्ध करने आयेंगे उन सबको भी मैं न छोड़ूँगा । मैं शस्त्र छूकर सत्य की सौगन्ध खाता हूँ ।

दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्यति पातितम् ।
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥
महान्सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।
तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३ ॥
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।
ततो राजन्हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।
दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ।
धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनाऽपि भारत ॥ २६ ॥
सीदेत समरे जिष्णो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन्पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥
य इहते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् ।
महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥ २८ ॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाऽभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।
नेदृशं शक्नुयात्कश्चिद्रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।
एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥

हे मूर्ख ! हे अभिमानी ! मैं जब तुमको युद्ध में मार कर गिरा दूँगा तब मन्दमति दुर्योधन तुम्हारी दशा देखकर बहुत ही पश्चात्ताप करेगा॥२०।२२॥हे महाराज ! इस प्रकार जब अर्जुन ने कर्ण के पुत्र को मारने की प्रतिज्ञा की तब सब रथी योद्धाओं की मण्डली में महाकोलाहल होने लगा। इसी समय भगवान् भास्कर का प्रकाश धीमा पड़ गया; वे अस्ताचल की चोटी पर पहुँच गये॥२३।२४॥उस समय महाघोर संग्राम होने लगा। तब कृष्णचन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके प्रसन्न हो रहे अर्जुन को गले लगा कर कहा—हे जिष्णु ! हे अर्जुन ! यह बड़े भाग्य की बात है कि तुम जयद्रथ को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके। बड़ी बात जो राजा वृद्धक्षत्र और उनका पुत्र जयद्रथ दोनों मारे गये। हे धनञ्जय ! इसमें सन्देह नहीं कि इस दुर्योधन की सेना के आगे देवताओं की सेना भी आकर विजय नहीं प्राप्त कर सकती॥२५।२७॥मैं बहुत सोचने पर भी तुम्हारे अतिरिक्त और किसी योद्धा को नहीं देख पाता, जो इस कौरवसेना से युद्ध कर सकता हो। हे पार्थ ! दुर्योधन की सहायता करने के निमित्त जो राजा लोग इस दल में आकर एकत्र हुए थे वे बड़े प्रभावशाली थे। उनमें बहुत से तो तुम्हारे समान योद्धा थे और बहुत से तुमसे अधिक पराक्रमी थे। वे कवचधारी राजा क्रुद्ध होकर तुम्हारे सम्मुख आये किन्तु ठहर नहीं सके। तुम्हारा बल

वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ।
तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ॥ ३४ ॥
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ।
एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन्हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥
श्रीकृष्ण उवाच—प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३६ ॥
विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
सञ्छिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३७ ॥
ससत्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥
तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैःशिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्त्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४० ॥

और पराक्रम रुद्र,इन्द्र और काल के समान है। हे शत्रुतापन!तुमने अकेले ही युद्ध में जैसा पराक्रम प्रकट किया है वैसा और कोई नहीं कर सकता। इसी प्रकार अपने अनुगामियों सहित दुरात्मा कर्ण जब तुम्हारे हाथ से मारा जायगा तब तुम शत्रुविजयी निष्कण्टक का मैं अभिनन्दन करूँगा॥२८।३२॥श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन कहने लगे–हे हृषीकेश! आज मैं आपके अनुग्रह से ही देवताओं के लिए भी दुस्तर इस कठिन प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सका हूँ। हे श्रीकृष्ण! जिनके स्वामी आप हैं उनका विजय प्राप्त करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आपकी अनुग्रह से ही राजा युधिष्ठिर समग्र पृथ्वीमण्डल का राज्य पायेंगे। हे यादव-श्रेष्ठ! हमारे सब कार्यों की सिद्धि का भार आपके ही ऊपर है। हे प्रभो! यह जय भी आपकी ही हुई है। हे मधुसूदन! हमें उत्साहित और उत्तेजित करना आपका कर्तव्य कार्य ही है॥३२।३५॥अर्जुन के यों कह चुकने पर श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुसकराकर उन्हें वह भयानक रणभूमि दिखाते हुए धीरे-धीरे रथ के घोड़ों को हाँकने और कहने लगे—हे धनञ्जय! यह देखो, ये महावीर राजा लोग समर में विजय और यश प्राप्त करने के निमित्त तुमसे युद्ध करके,तुम्हारे बाणों से मरकर, पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वह देखो,उनके आभूषण और अस्त्र-शस्त्र चारों ओर बिखरे पड़े हैं। रथ चूर्ण हो गये हैं, हाथी और घोड़े मरे पड़े हैं। इनके कवच और मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो गये हैं। कुछ अधमरे हैं और कुछ मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं, तथापि मृत्यु को प्राप्त

कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाऽभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥
अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा ।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च ।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा ।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि ।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी ।
पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥
पृथिवीमुपगुह्याऽङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम् ।
इमांश्च गिरिकूटाभान्नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः ।
दरीमुखैरिव गिरीन्गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥ ५० ॥

हो जाने पर भी ये जीवित ही से जान पड़ते हैं॥३५।-३८॥ वह देखो, इन राजाओं के स्वर्णपुङ्खशोभित बाण, विविध तीक्ष्ण शस्त्र, वाहन और आयुध आदि सामग्री से युद्धभूमि भरी पड़ी है। हे भरतकुलश्रेष्ठ ! बिखरे पड़े हुए असंख्य कवच, ढाल-तलवार, हार, कुण्डल युक्त सिर, पगड़ी, मुकुट, माला, चूड़ामणि, वस्त्र, कण्ठ-सूत्र, अङ्गद, निष्क और अन्य अनेक प्रकार के आभूषणों से रणभूमि की विचित्र शोभा हो रही है॥३९।४१॥ ढेर के ढेर अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, ध्वजा, अलङ्कार, आसन, ईषादण्ड, पहिये, विचित्र जुए, धुरे, युग, जोत, लगाम, धनुष, बाण, विचित्र कम्बल, परिघ, अंकुश, शक्ति, भिन्दिपाल, शूल, परश्वध, तूणीर, प्रास, तोमर, कुन्त, यष्टि, ऋष्टि, शतघ्नी, भुशुण्डी, खड्ग, परशु, मुशल, मुद्गर, गदा, कुणप, सुवर्णशोभित कशा (कोड़े), हाथियों के घण्टे, हौदे और बहुमूल्य विविध वस्त्रों तथा आभूषणों के चारों ओर पड़े रहने से यह युद्धभूमि शरद् ऋतु में ग्रह-नक्षत्र-शोभित आकाशमण्डल के समान अपूर्व शोभा धारण कर रही है॥४२।४८॥ राजा लोग राज्य प्राप्त करने के निमित्त नष्ट होकर वैसे ही पृथ्वी को छाती से लगाये हुए युद्धभूमि में पड़े हैं जैसे सोये हुए पुरुष अपनी मनोहारिणी प्रियतमा को लिपटाते हैं। वह देखो, पर्वतों की कन्दराओं के मुख से जैसे गेरू की धारा बहती है वैसे ही, तुम्हारे बाणों से घायल होकर धरती पर लोट रहे ऐरावत सदृश हाथियों के,

तांश्च बाणहतान्वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ ।
हयांश्च पतितान्पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥
गन्धर्वनगराकारान्रथांश्च निहतेश्वरान् ।
छिन्नध्वजपताकाक्षान्विचक्रान्हतसारथीन् ॥ ५२ ॥
निकृत्तकूबरयुगान्भग्नेषान्बन्धुरान्प्रभो ।
पश्य पार्थ हयान्भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥
पत्तींश्च निहतान्वीर शतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान्रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥
महीमालिंग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान् ।
पश्य योधान्महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥
निपातितद्विपरथवाजिसंकुलमसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम् ।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं महीतलं नरवर पश्य दुर्दशम् ॥ ५६ ॥
इदं महत्त्वय्युपपद्यते प्रभो रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम् ।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥
सञ्जय उवाच—एवं सन्दर्शयन्कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।
स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥
स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वण्यष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

अङ्ग-प्रत्यङ्ग के शस्त्रकृत, घावों से रक्त की धाराएँ निकल रही हैं। सुवर्ण के अलङ्कारों से शोभित घोड़े कटे और मरे पड़े हैं॥४८।५१॥ रथी और सारथी से शून्य, गन्धर्व-नगर के समान, विमान-तुल्य रथ टूट-फूटे पड़े हैं; उनके ध्वजा, पताका, अक्ष, पहिये, कूबर, युग, ईषादण्ड आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। धनुष और कवच धारण किये सहस्रों पैदल योद्धा पृथ्वी से लिपटे पड़े हैं। उनके खुले हुए बाल धूल से भरे हैं और शरीर रक्त से तर है। यह देखो, तुम्हारे बाणों से योद्धाओं के सुदृढ़ शरीर कट-फट गये हैं॥५२।५५॥ गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और रथों से भरी हुई समरभूमि की ओर देखा नहीं जाता। रणभूमि में सर्वत्र रक्त, चर्बी और मांस की कीचड़ सी हो रही है। राक्षस, कुत्ते, भेड़िये, गीदड़, गिद्ध और पिशाच आदि मांसाहारी जीव प्रसन्नता-पूर्वक चारों ओर क्रीड़ा कर रहे हैं। हे अर्जुन! तुमने इस युद्धभूमि में जैसा यश बढ़ानेवाला अत्यन्त कठिन कार्य किया है वैसा कार्य दैत्यदानव-दलन इन्द्र के और कोई नहीं कर सकता॥५६।५७॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! महात्मा श्रीकृष्ण प्रसन्नता-पूर्वक इस प्रकार सात्यकि आदि के साथ अर्जुन को युद्धभूमि दिखलाते जा रहे थे। अब समरभूमि को लाँघकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख जोर से बजाया। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर के समीप पहुँच-कर सूचना दी कि जयद्रथ मारा गया॥५८।५९॥

द्रोणपर्व का एक सौ अड़तालीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

सञ्जय उवाच—ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १ ॥
दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥
स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरञ्जयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥
पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
नाऽन्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।
दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥
कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥
किं तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥ १० ॥
स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
त्वां चैवाऽस्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥

एक सौ उनपचास अध्याय ॥ १४९ ॥

सञ्जय कहते हैं–हे महाराज ! श्रीकृष्ण प्रसन्न-चित्त से अर्जुन को साथ लिए हुए धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के समीप पहुँचे। वहाँ युधिष्ठिर को प्रणाम करके उन्होंने कहा–हे महाराज ! आज आप निःसन्देह बड़े ही भाग्यवान् हैं। आज सौभाग्यवश आपका शत्रु मारा गया और महावीर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर आये हैं॥१।२॥श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त आनन्दित हुए। नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर उन्होंने, रथ से उतरकर, अर्जुन और श्रीकृष्ण को गले से लगा लिया। फिर आँसुओं के वेग को रोककर श्रीकृष्ण और अर्जुन से कहा–हे वीरो ! आज सौभाग्यवश पापी नराधम जयद्रथ मारा गया। बड़ी बात तो यह है कि जो तुम दोनों मित्र प्रतिज्ञा के बन्धन से छुटकारा पा गये। मैं इस समाचार से अत्यन्त आन-

सुरैरिवाऽसुरवधे शक्रं शक्रानुजाऽऽहवे ।
असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।
बाल्यात्प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।
तदैवाऽज्ञासिषं शत्रून्हतान्प्राप्तां च मेदिनीम् ॥ १४ ॥
त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणाऽरिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ॥ १५ ॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६ ॥
एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत्प्राप्तं नरोत्तम ॥ १७ ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥
पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९ ॥
अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥
परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत्परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥

न्दित हुआ हूँ और हमारे शत्रु शोकसागर में डूब गये हैं॥३।६॥हे श्रीकृष्ण! तुम तीनों लोकों के गुरु हो। तुम्हारे सहायक होने पर त्रिभुवन में कोई कार्य दुःसाध्य नहीं है॥६।११॥हे मधुसूदन! पहले इन्द्र ने तुम्हारी कृपा से जैसे दुष्ट दानवों का नाश किया था वैसे ही हम लोग,तुम्हारे ही प्रसाद से, शत्रुओं को परास्त करेंगे। हे श्रीकृष्ण! तुम इस प्रकार से हमारी भलाई करने के निमित्त तत्पर हो। तुम्हारे ही आश्रय हम लोगों ने यह युद्ध ठाना है। तुम्हारी चतुराई से ही अर्जुन ने जयद्रथ के वध जैसा कठिन कार्य किया है। हमने बाल्यकाल से ही तुम्हारे इन दिव्य अलौकिक कार्यों का वर्णन सुन रक्खा है; और इसी से हमें अपने शत्रुओं पर विजय पाकर राज्य प्राप्त करने का निश्चय हो गया था॥११।१४॥तुम्हारे प्रसाद से ही इन्द्र समर में दानवों को दलन करके त्रिलोक विजयी और देवताओं के स्वामी हुए हैं। तुम्हारे अनुग्रह से ही इस पृथ्वी के चराचर प्राणी अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए नित्य जप तप होम आदि पुण्यकार्यों में तत्पर हैं। पहले यह चराचर जगत् समुद्रमय और गहरे अँधेरे से ढका हुआ था। इसके पश्चात् तुम्हारे प्रसाद से फिर इस विश्व की अभिव्यक्ति हुई है॥१५।१७॥तुम सब लोकों की सृष्टि करनेवाले, परमात्मा, अव्यय, पुराणपुरुष, देवदेव, सनातन, परात्पर, परब्रह्म और परमपुरुष हो। तुम अनादि और अनन्त हो। एक बार भी जो तुम्हारा दर्शन पा जाते हैं

गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥
परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर ।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥
त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव ।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन्पृथुलोचन ॥ २४ ॥
धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः ।
धनञ्जयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥
मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवाऽनघ ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान्मुनिः ॥ २६ ॥
असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ।
त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः ॥ २७ ॥
त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाऽग्र्यं कारणं जगतस्तथा ।
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निशिते पुनः ।
अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥ २९ ॥
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ।
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ३० ॥
अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ।
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

वे कामी माया के मोह में नहीं फँसते । तुम भक्तजनों को विपत्ति से उबारते हो । जो व्यक्ति तुम्हारी शरण में आता है वह परम ऐश्वर्य प्राप्त करता है॥१८।२१॥ हे परमात्मा ! चारों वेदों में तुम्हारी महिमा गाई गई है । मैं तुम्हें पाकर अतुल ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा हूँ । हे पुरुषोत्तम ! तुम परमेश्वर हो, पशु पक्षि आदि तिर्यग् योनियों के भी ईश्वर हो । मैं तुमको प्रणाम करता हूँ । हे माधव ! 'इस विजय लाभ के निमित्त] मैं तुम्हारी संवर्द्धना करता हूँ हे सर्वक आत्मा ! हे विशाललोचन ! तुम सब लोकों के आदिकारण हो । हे वासुदेव ! तुम अर्जुन के सखा, हित करनेवाले और दुःख दूर करनेवाले रक्षक हो । तुम्हारी शरण में आनेवाला सदा सुख पाता और वृद्धि को प्राप्त होता है॥२२।२५॥ हे निष्पाप! तुम्हारे चरित को जाननेवाले पुरातन ऋषि मार्कण्डेय तुम्हारे अनुभाव और माहात्म्य का वर्णन कर चुके हैं । असित, देवल, नारद और मेरे पितामह व्यासजी ने तुम को उत्तम विधि कहा है; तुम तेज, परब्रह्म, सत्य और महत्तप हो; तुम श्रेय, यश, प्रधान और जगत् के कारण हो । तुम्हीं ने स्थावर-जङ्गम जगत् की रचना की है हे जगत्पते ! प्रलय के समय यह सब तुम्हीं में लीन हो जाता है । न तुम्हारा आदि है और न अन्त ॥२६।२७॥ वेदवेत्ता कहते हैं कि तुम चराचर के प्रभु, धारक,

ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् ।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२ ॥
एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च ।
अतीतभूतभव्यानां संख्याताऽत्र न विद्यते ॥ ३३ ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः ।
यस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ॥ ३४ ॥
इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः ।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३५ ॥
भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च ।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥
अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः ।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहञ्जिष्णुर्जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवाऽसम्भ्रमेऽपि च ।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नाऽस्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥
तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः ।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत् ॥ ३९ ॥
ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते ।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ४० ॥
अतीव सुमहत्कर्म कृतवानसि फाल्गुन ।
असह्यं चाऽविषह्यं च देवैरपि सवासवैः ॥ ४१ ॥

अजन्मा और अव्यक्त हो। तुम प्राणिमात्र के आत्मा हो, महात्मा हो। तुम अनन्त और विश्वतोमुख हो। तुम्हें देवता भी नहीं जानते। तुम गुप्त, आद्य, जगत्पति, नारायण, परमदेव, परमात्मा और ईश्वर हो। तुमसे ही ज्ञान उत्पन्न हुआ है। तुम हरि, विष्णु और मोक्ष की कामना रखनेवालों के स्थान हो। तुम पुराणों से भी परे पर पुरुष हो। ऐसे ऐसे तुम्हारे जो दिव्य और ऐहिक गुण-कर्म हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन्द्र जिस प्रकार देवताओं की रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुम सब प्रकार से हमारी रक्षा करो; क्योंकि सब गुणों से सम्पन्न तुम हमारे सुहृद् हो॥२९।३४॥ हे महाराज! धर्मराज युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण बहुत ही सन्तुष्ट और आनन्दित हुए। उन्होंने धर्मराज से कहा—हे राजेन्द्र! आपकी ही उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुत्व और नम्रता से पापी सिन्धुराज जयद्रथ मारा गया। आपकी कृपा से ही अर्जुन ने यह कार्य किया है और असंख्य कौरव सेना नष्ट हुई है। बाहु-बल, स्थिरता, स्फूर्ति और सफल विचार में तथा कार्य सफल कर लेने में अर्जुन की सानी का कोई नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! आपके भाई अर्जुन ने युद्ध में सेना का नाश करके जयद्रथ का सिर काट लिया है॥३५।३९॥ हे राजा धृतराष्ट्र! अब धर्मराज ने अर्जुन को गले लगाया, उनका मुख धोया, ढाढ़स बँधाया और कहा—हे अर्जुन! तुमने वह कार्य किया है जिसे इन्द्र सहित सब देवता भी

दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चासि शत्रुहन्
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥
एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः ।
परस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥ ४३ ॥
एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ४४ ॥
तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः ।
उत्तीर्णं चापि सुमहद्धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥
हन्यन्ते निहताश्चैव विनंक्ष्यन्ति च भारत ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥
त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः ।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥
तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४८ ॥
दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुघातिनाम् ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥
राज्यं प्राणाः प्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च
अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ ५० ॥
विनष्टान्कौरवान्मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरं नित्यं त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥ ५१ ॥
ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥

नहीं कर सकते। भाग्य से ही तुम इस प्रतिज्ञा से उत्तीर्ण हुए हो। फिर उन्होंने अर्जुन की पीठ पर अपना पवित्र हाथ फेरा॥४२।४३॥ इस पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज से कहा—आपके ही क्रोध से कौरवगण नष्ट हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे। हे वीर! दुर्मति दुर्योधन आपको कुपित करने के कारण ही भाई बन्धुओं सहित रणभूमि में मारा जायगा॥४४।४७॥ जिन्हें देवता लोग भी जिन्हें पराजित नहीं कर सके, वही कुरुपितामह भीष्म आज, आपके ही कोप के प्रभाव से, शरशय्या पर पड़े हुए हैं। जो आपके द्वेषी हैं उन्हें अवश्य ही मरना पड़ेगा। आप जिन पर क्रुद्ध हैं उनका राज्य, जीवन, प्रिय पुत्र और बहुविध सुखभोग आदि सब प्रकार का कल्याण शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। हे राजधर्म परायण महीपाल! आप जब कुपित हुए हैं तब अवश्य ही भाई-बन्धुओं सहित कौरवों का नाश होगा॥४८।५१॥ हे राजेन्द्र! महामति श्रीकृष्ण और अर्जुन युधिष्ठिर से यों वार्तालाप कर ही रहे थे कि इसी समय शत्रुओं के बाणों से आहत महाबाहु महावीर भीमसेन और

क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यपरिवारितौ ।
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ॥ ५३ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी ।
दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥ ५४ ॥
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।
दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ ५५ ॥
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ।
दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥
दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम् ।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥
दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात्पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥
मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥
समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ६० ॥
इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन्युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥
ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

महारथी सात्यकि वहाँ आ गये । दोनों ही परमगुरु युधिष्ठिर को प्रणाम करके, पाञ्चाल वीरों के साथ हाथ जोड़कर, आगे खड़े हो गये॥५२।५३॥धर्मराज युधिष्ठिर ने महावीर भीमसेन और सात्यकि को प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़े देख उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे वीरो ! बड़ी बात जो आज तुम द्रोणरूप ग्राह और कृतवर्मारूप मगर के कारण अगम्य कौरव-सेनारूप महासमुद्र के पार निकल आये। आज सौभाग्यवश पृथ्वी के सब राजा और द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा तुमसे परास्त हुए।तुम प्रशंसनीय और सौभाग्यशाली हो कि तुमने कर्णिक बाण के प्रहार से वीर कर्ण को जीत लिया और शल्य को विमुख कर दिया ॥५४।५७॥हे रणनिपुण दोनों महारथियो ! आज बड़े ही भाग्य की बात है कि मैं तुम दोनों को युद्धभूमि से सकुशल लौट आते देख सका। तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके सम्मान की रक्षा की है। तुम कभी समर से विमुख नहीं होते॥५८।६०॥हे महाराज ! भीमसेन और सात्यकि से इस प्रकार कहकर, नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर, धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें गले से लगा लिया। पाण्डवसेना भी उन्हें प्रसन्न देखकर बड़े आनन्द से उत्साहित होकर शत्रुसेना से युद्ध करने लगी॥६१।६२॥

द्रोणपर्व का एक सौ उनचास अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४९ ॥

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

सञ्जय उवाच—सैन्धवे निहते राजन्पुत्रस्तव सुयोधनः ।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥
दुर्मना निःश्वसन्दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात् ॥ २ ॥
दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत् ।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः ।
अमन्यताऽर्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥
न द्रोणो न च राधेयो नाऽश्वत्थामा कृपो न च ।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५ ॥
निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान् ।
अवधीत्सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥
सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद्बलम् ।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ७ ॥
यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम् ।
तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥
एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद्द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥

एक सौ पचास अध्याय ॥ १५० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इधर आपके पुत्र दुर्योधन जयद्रथ के मारे जाने से निरुत्साह होकर, नेत्रों में आँसू भरे, मलिन मुख किये, दाँत टूटने पर फुफकारें मार रहे नाग की भाँति बारम्बार श्वास लेने लगे । वे महावीर अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन के बाणों से अपनी सेना का नाश हुआ देखकर विवर्ण, कृश और अत्यन्त दीन भाव से सोचने लगे कि सचमुच इस पृथ्वी पर अर्जुन के समान दूसरा योद्धा नहीं है॥१।४॥द्रोणाचार्य, कृपाचार्य,अश्वत्थामा, कर्ण आदि कोई भी महारथी कुपित अर्जुन के आगे स्थित नहीं हो सकता । उन्होंने रण में मेरे महारथियों को जीतकर जयद्रथ को मारा और कोई भी अर्जुन को न रोक सका।यह कौरवों की विशाल सेना मरी हुई ही समझनी चाहिए । साक्षात् इन्द्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥५।७॥जिनके आश्रय मैंने यह महासंग्राम ठाना था उन कर्ण को अर्जुन ने जीत लिया और जयद्रथ को मार डाला । सन्धि कराने के निमित्त आये हुए कृष्ण को, तृणतुल्य तुच्छ समझकर जिनकेबाहुबल के आश्रय, मैंने सूखा उत्तर दे दिया था वही महारथी कर्ण आज युद्ध में हार गये हैं॥८।९॥हे राजेन्द्र ! इस प्रकार

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान्विजयतश्चाऽपि धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥ ११ ॥
दुर्योधन उवाच—पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत् ।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥ १२ ॥
तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते ॥ १३ ॥
अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १४ ॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १५ ॥
ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुवैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥
सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥
मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥
कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाऽशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥
योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाऽशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥

खिन्नचित्त राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य से मिलने के निमित्त उनके समीप गये। हे भरतश्रेष्ठ! अकारण युद्ध ठानकर जनसंहार कराने के कारण दुर्योधन सबके निकट अपराधी थे। उन्होंने आचार्य के समीप जाकर शत्रुओं के जीतने का सब वृत्तान्त कह सुनाया॥१०।११॥ दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य! मेरी ओर से युद्ध करनेवाले मूर्द्धाभिषिक्त राजाओं के इस महासंहार को देखिए। मेरे दल के राजा लोग हमारे पितामह शूर भीष्म को आगे करके युद्ध कर रहे थे। धूर्त शिखण्डी ने छल से उन भीष्म पितामह को मार गिराया और अब वह सफल मनोरथ होकर पाञ्चाल-सेना को साथ लिये पाण्डवसेना के अगले भाग में स्थित है और हमारी सेना पर आक्रमण कर रहा है। आपके अन्य शिष्य दुर्द्धर्ष राजा जयद्रथ को आज अर्जुन ने, सात अक्षौहिणी सेनाओं का नाश करके, मार डाला है। हमारी विजय के निमित्त युद्ध करनेवाले मेरे जो उपकारी सुहृद युद्ध में मारे गये हैं, उनके ऋण को मैं कैसे चुका सकूँगा?॥१३।१५॥ जो राजा लोग राज्य, भोग और ऐश्वर्य को छोड़कर मुझे राज्य दिलाने के निमित्त युद्ध कर रहे थे वे सब पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। मैं बड़ा नीच और पापी हूँ। मैंने ही अपने मित्रों का यह घोर नाश कराया है। सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने पर भी मैं इस पाप से छुटकारा नहीं पा सकता। मैं लोभी, पापी और धर्म का नाश करनेवाला हूँ। राजा लोग मेरे ही

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ २१ ॥
जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥
काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुषमेव च ।
अन्यान्बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २३ ॥
व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥ २४ ॥
तेषां गत्वाऽहमानृण्यमद्य शक्त्या परन्तप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥
निहत्य तान्रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २७ ॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥
नहीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते न तथाऽस्मान्महाभुज ॥ २९ ॥
स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥

निमित्त।विजय की आकाक्षा से युद्ध करके मारे गये हैं। मुझ से पापी,पतित, मित्रद्रोही को इस राजमण्डली के मध्य पृथ्वी भी फटकर स्थान नहीं देती॥१६।१९॥ मैं राजमण्डली के मध्य रक्त से नहाये, शरशय्या पर पड़े हुए, समर में मारे गये भीष्म की रक्षा नहीं कर सका। वे धर्म से परलोक को जीतनेवाले दुर्द्धर्ष पितामह, सामने उपस्थित होने पर, मुझ अनार्य मित्रद्रोही अधर्मी को क्या कहेंगे? देखिये, मेरे लिए प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करनेवाले महाधनुर्द्धर महारथी शूर जलसन्ध को सात्यकि ने मार डाला। काम्बोजराज सुदक्षिण, राजा अलम्बुष तथा अन्य बहुत से प्राणप्रिय मित्र मरे पड़े हैं। अब मैं ही किसलिए जीता रहूँ॥२०।२३॥मेरे विजयलाभ के निमित्त यथाशक्ति यत्न करके जो वीर योद्धा लोग युद्ध में मरे हैं उनका ऋण चुकाने के निमित्त आज मैं युद्ध में घोर पराक्रम दिखाऊँगा और यमुना-तट पर जाकर, जलाञ्जलि देकर उन्हें तृप्त करूँगा। हे सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ! मैं आपके आगे सत्य,इष्टापूर्त (कुआ बावली आदि खुदवाना, बाग लगाना),बल-वीर्य और अपने पुत्र आदि की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि या तो रण में सब पाञ्चालों और पाण्डवों को मारकर शान्ति प्राप्त करूँगा और या अर्जुन आदि शत्रुओं के बाणों से मर करके अपने कार्य को सिद्ध करने के निमित्त मरनेवाले मित्र राजाओं का साथ दूँगा॥२४।२७॥हे महाबाहो! मेरे

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥
यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥
तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः ।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥ ३३ ॥
हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥
सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥
नहि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

पक्ष के राजा लोग, भली भाँति रक्षित न होने के कारण, इस समय मेरी सहायता करने में उत्साह नहीं दिखाते। वे हमारे पक्ष में रहने की अपेक्षा पाण्डवों के आश्रय में जाना श्रेष्ठ समझते हैं। हे आचार्य! आपने, सत्य-प्रतिज्ञ होने के कारण, स्वयं हमारी मृत्यु की व्यवस्था कर दी है। अर्जुन आपके प्रिय शिष्य हैं, इसी लिए आप उनसे मन लगाकर युद्ध नहीं करते। यही कारण है कि हमारी जय के लिये यत्न करनेवाले वीर योद्धा मारे जा रहे हैं। इस समय मुझे एक कर्ण ही ऐसे देख पड़ते हैं, जो मेरी जय चाहते हैं और उसके निमित्त यथाशक्ति यत्न करते हैं॥२८।३१॥सत्य है, जो मन्द-मति पुरुष मित्र की यथार्थता को बिना जाने ही उसे मित्र के कार्य में लगाता है वह स्वयं सङ्कट में पड़ता है और उसका कार्य भी बिगड़ जाता है। वैसे ही मोहवश लोभ के अधीन हो रहे मुझ पापी कठोरहृदय धन के लोलुप कपटी के मित्रों ने भी मेरा कार्य किया और मेरे कारण उनके प्राण गये। छल-बल-कौशल आदि प्रयत्नों से सर्वथा युद्ध में मेरा साथ देनेवाले जय-द्रथ, पराक्रमी भूरिश्रवा और अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति आदि देशों के वीरों ने मेरे ही निमित्त अर्जुन से युद्ध किया और मारे गये। अब मैं भी युद्ध करके वहीं जाऊँगा जहाँ ये सब वीर पुरुष गये हैं। इन पुरुषश्रेष्ठ मित्रों के बिना मैं कदापि जीवित रहना नहीं चाहता। हे पाण्डवों के आचार्य! आप मुझे इसकी आज्ञा दीजिए॥३२।३६॥

—:०:—

द्रोणपर्व का एक सौ पचास अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५० ॥

अथ एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥ १ ॥
दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान्परं तस्मै तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—निष्टानको महानासीत्सैन्यानां तत्र भारत ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥
मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे ।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥
द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव तद्ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥
द्रोण उवाच—दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपिकृन्तसि ।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥
एतेनैवाऽर्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्डयवधीद्भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥
अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः ।
तदैवाऽज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥
यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्म हि ।
तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥
यान्स्म तान्ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥
त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः ।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥

एक सौ इक्यावन अध्याय ॥ १५१ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! महावीर अर्जुन के हाथ से जयद्रथ और भूरिश्रवा के मारे जाने पर तुम लोगों के मन की क्या दशा हुई ? दुर्योधन ने कौरव-मण्डली के मध्य द्रोणाचार्य से जब इस प्रकार कहा तब आचार्य ने क्या उत्तर दिया ?॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! वीर जयद्रथ और भूरिश्रवा के मारे जाने पर आपकी सेना में घोर कोलाहल सुनाई पड़ने लगा । आपके पुत्र की दुर्मति और कुमन्त्रणा के कारण ही सैकड़ों श्रेष्ठ क्षत्रियों की मृत्यु होते देखकर सब लोग उस कुमन्त्रणा के प्रति अनादर का भाव प्रकट करने लगे॥३।४॥उधर द्रोणाचार्य भी दुर्योधन के वचन सुनकर अत्यन्त खिन्न हुए और क्षण भर सोचकर अत्यन्त आर्तभाव से इसी प्रकार कहने लगे—हे दुर्योधन ! तुम मुझे क्यों इस प्रकार वाक्य-बाणों से पीड़ा पहुँचा रहे हो ? मैं सदा से तुमसे कहता आ-रहा हूँ कि युद्ध में अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता । हे कौरव ! अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी ने भीष्म पितामह को जब समरभूमि में गिरा दिया था तभी, उतने से ही, तुमको अर्जुन का असाधारण बल-वीर्य जान लेना चाहिए था । सम्पूर्ण देवता और दानव मिलकर भी जिन्हें समर में नहीं मार सकते थे उन महापराक्रमी भीष्म पितामह को जब मैंने समरभूमि में गिरे देखा था तभी जान लिया था कि यह विशाल कौरव-सेना अब नहीं बच सकती॥५।८॥तीनों लोकों में जो सर्वश्रेष्ठ शूर समझे जाते थे वे भीष्म ही जब रणभूमि में गिरा दिये गये तब हम और किसका आश्रय लें ? हे तात ! शकुनि ने कौरवों की सभा में जो पाँसे फेंके थे वे पाँसे नहीं, शत्रुओं को सन्ताप पहुँचाने वाले

यास्ता विलपतश्चाऽपि विदुरस्य महात्मनः ।
धीरस्य वाचो नाऽश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ।
तस्याऽवमानाद्वाक्यस्य दुर्योधनकृते तव ॥ १३ ॥
योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम् ।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो न चिरादिव ॥ १४ ॥
यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम् ।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥
तस्याऽधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ।
नो चेत्पापं परे लोके त्वमर्च्छेथास्ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥
यच्च तान्पाण्डवान्द्यूते विषमेण विजित्य ह ।
प्राव्राजयस्तदाऽरण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥
पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा ।
द्रुह्येत्को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥
पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह ।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥
दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः ।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाऽभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥

तीक्ष्ण बाण थे। हे दुर्योधन ! उन्हीं बाणों को चला-कर इस समय अर्जुन हमें मार रहे हैं॥९।११॥धीर-प्रकृति महामति विदुर ने,तुम्हारे ही कल्याण के निमित्त, अनेक प्रकार के उपदेश दिये थे, तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारी करतूत और कुमति के लिए बारम्बार विलाप किया था किन्तु तुमने उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। विदुर की बातें न मानने से और दु शासन के किये अत्याचार से ही इस समय यह घोर जन-विनाश हो रहा है। जो मूढ़ मनुष्य हितचिन्तक मित्रों की बातें न मानकर अपने मन का कार्य करता है वह बहुत ही शीघ्र शोचनीय दशा को प्राप्त होता है ॥१२।१४॥हे राजेन्द्र ! तुमने जो हम लोगों के सम्मुख, कौरवों की भारी सभा में,सत्कुल की पुत्री धर्मपरायणा और सर्वथा उस दशा के अयोग्य द्रौपदी को बुला कर उनपर अत्याचार किया था, उसी अधर्म का यह घोर परिणाम तुमको मिल रहा है।यदितुम यहीं इसप्रकार उस पाप का फल न भोग लेतेतो परलोक में अवश्य इससे भी भयानक क्लेश तुमको मिलता॥१५।१७॥हे दुर्योधन! तुमने पाण्डवोंको कपटद्यूत में हराकर,मृगछाला पहना-कर, वन को भेजा था इसलिए दोष तुम्हारा ही है। मेरे अतिरिक्त ऐसा कौन अधम ब्राह्मण होगा, जो सदा धर्म का पालन करनेवाले, पुत्र के तुल्य मुझे अपना बड़ा माननेवाले पाण्डवों का अनिष्ट करना चाहेगा? तुमने कौरव सभा में शकुनि की सहायता और महा राज धृतराष्ट्र की अनुमति से पाण्डवों पर अत्याचार करके उन्हें कुपित कर रक्खा है। तुमने पाण्डवों के जिस क्रोध की जड़ डाली थी, उसे दु शासन ने सींचा और कर्ण ने बढ़ाया है। तुम विदुर के वचनों का अनादर करके बारम्बार अपने प्रतिकूल व्यवहार से उस क्रोध को भड़काते रहे हो॥१८।२०॥देखो, तुम लोगों

यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम् ।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥
कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति ।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥
युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥
मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसत परित्राणमर्जुनात्स महीपतिः ॥ २४ ॥
ततस्तस्मिन्परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात् ।
न किंचिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ २५ ॥
मज्जन्तमिव चाऽऽत्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे ।
पश्याम्यहत्वा पञ्चालान्सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥
तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७ ॥
सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥
मध्ये महारथानां च यत्राऽहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥

ने बारम्बार परास्त होकर भी यत्नपूर्वक अर्जुन को चारों ओर से घेरकर रोकना चाहा था, फिर क्यों न रोक सके ? तुमने जयद्रथ को असंख्य सेना और छः महारथियों के मध्य में रक्खा था, फिर वे तुम लोगों के सम्मुख ही क्यों मारे गये ? कर्ण, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा के तथा तुम्हारे जीवित रहते ही जयद्रथ कैसे मारे गये ! सब तेजस्वी राजाओं ने मिलकर घोर युद्ध किया, जयद्रथ की रक्षा करने के निमित्त कुछ उठा नहीं रक्खा, फिर भी अर्जुन ने उनको मार ही डाला। हे दुर्योधन ! राजा जयद्रथ को तुमसे और विशेषकर मुझसे यह आशा थी कि हम अर्जुन से उनकी रक्षा कर सकेंगे। हमीं दोनों से उन्होंने अपनी रक्षा के निमित्त विशेष रूप से प्रार्थना की थी; किन्तु विशेष प्रयत्न करके भी मैं अर्जुन से जयद्रथ को नहीं बचा सका॥२१।२४॥ मुझे स्वयं अपने बचने की आशा नहीं देख पड़ती। धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने में मुझे अपनी मृत्यु स्पष्ट देख पड़ती है। धृष्टद्युम्न के पराक्रम-सागर में मैं अपने को डूबा हुआ सा समझता हूँ। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी सहित पाञ्चाल-सेना को जब तक मैं नहीं मार लेता तब तक, मुझे जान पड़ता है कि धृष्टद्युम्न के हाथ से मेरा छुटकारा नहीं है। हे राजेन्द्र ! जयद्रथ की रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण मुझे विषाद और पश्चात्ताप करते देखकर भी तुम क्यों मुझे वाक्यबाण मार रहे हो ? सत्यसन्ध और सहज ही अद्भुत कर्म करनेवाले महावीर भीष्म का सुवर्णमय ध्वजा का दण्ड युद्धभूमि में नहीं देख पड़ता। फिर तुम कैसे जय प्राप्त करने की आशा कर रहे हो॥२५।२८॥ महारथियों के मध्य में सुरक्षित जयद्रथ और भूरिश्रवा जब मारे गये हैं तब रह ही क्या गया है ! दुर्धर्ष कृपाचार्य अभी तक जीवित हैं और जयद्रथ की दशा को नहीं पहुँचे

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नाऽगात्सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥
यत्राऽपश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धराऽस्तीति तदाऽहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥
इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥ ३३ ॥
नाऽहत्वा सर्वपञ्चालान्कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३५ ॥
राजन्ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३४ ॥
यच्च पित्राऽनुशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चाऽऽर्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥
धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥
चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८ ॥
एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥ ३९ ॥

हैं, इसके लिए मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। हे राजेन्द्र ! जब मैंने तुम्हारे और तुम्हारे छोटे भाई दुःशासन के सम्मुख ही, दुष्कर कर्म करनेवाले और संग्राम में इन्द्र सहित देवताओं के भी मारे न मरनेवाले, पराक्रमी पितामह भीष्म को संग्राम में गिरते देखा था। तभी मुझे निश्चय हो गया था कि अब [कौरवपक्ष की कुशल नहीं है और] तुम्हारे हाथ से राज्य निकल गया॥२९।३२॥ हे भारत! यह देखो, पाण्डवों और सृञ्जयों की विशाल सेनाएँ मिलकर मुझ पर आक्रमण करने को आ रही हैं। हे धृतराष्ट्र के पुत्र ! आज मैं तुम्हारा हित करने के निमित्त यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सब पाञ्चालों का नाश किये बिना शरीर से कवच नहीं खोलूँगा।

हे दुर्योधन ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामा के समीप जाकर उससे कहो कि "तुम अपने जीवन की रक्षा का ख़याल न करना और सोमक लोगों को जीवित न छोड़ना। तुम्हारे पिता ने जो उपदेश दिया है उसका पालन करना और नीच नृशंस कार्य छोड़कर दया, इन्द्रिय-दमन, सत्य, सरलता आदि सत्प्रवृत्तियों से न डिगना। तुम धर्म-अर्थ काम के सम्पादन में निपुण हो, इसलिए धर्म और अर्थ की यथोचित मात्रा में सम्पन्न करते हुए निरन्तर धर्मप्रधान श्रेष्ठ कार्य करते रहना॥३३।३७॥ दृष्टि और मन से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखना और यथा-शक्ति उनकी पूजा करना। ब्राह्मणों का अनिष्ट और अप्रिय कभी न करना; क्योंकि वे अग्निशिखा के समान

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन्क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांऽशुमान् ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५१ ॥

तेजस्वी होते हैं।" हे राजेन्द्र ! तुम इस प्रकार मेरा यह उपदेश अश्वत्थामा से कहना। मैं अब तुम्हारे वाक्य बाणों से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण तुम्हारे शत्रुओं की सेना में जाता हूँ। आज मैं दारुण युद्ध करूँगा। हे दुर्योधन ! यदि तुममें शक्ति हो तो इस अपनी सेना की रक्षा करो। पाण्डव और पाञ्चालगण आज अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे हैं, इसलिए वे रात्रि को भी विश्राम न करके युद्ध करेंगे। सञ्जय कहते हैं—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! इतना कहकर महारथी द्रोणाचार्य युद्ध करने के निमित्त पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना में जा प्रवेश हुए। सूर्य जैसे नक्षत्रों को प्रकाशहीन कर देते हैं वैसे ही आचार्य का पराक्रम और तेज क्षत्रियों को निस्तेज करने लगा॥३८।४१॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ इक्यावन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५२ ॥

सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः ।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम् ।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः ।
पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥ ४ ॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ।
कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥

एक सौ बावन अध्याय ॥ १५२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के ये वचन सुनकर, क्रोध के वश हो, युद्ध करने का ही निश्चय कर लिया। उस समय दुर्योधन ने अपने अनन्य मित्र और सहायक कर्ण से कहा—हे कर्ण ! देखो, कृष्ण की सहायता से अर्जुन ने आचार्य के बनाये हुए व्यूह को, जिसे देवगण भी नहीं तोड़ सकते थे, तोड़ डाला। तुम और महात्मा द्रोणाचार्य उद्योग यत्न करते रहे परन्तु अर्जुन को नहीं रोक सके। अर्जुन ने मुख्य-मुख्य योद्धाओं के सम्मुख ही हमारी सेना में प्रवेश होकर प्रिय जयद्रथ को मार ही डाला। देखो, सिंह जैसे क्षुद्र मृगों को मार भगाते वैसे ही अकेले अर्जुन ने पृथ्वी के श्रेष्ठ वीरों

भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे ।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥ ७ ॥
पश्य राधेय पृथ्वीशान्पृथिव्यां पातितान्बहून् ।
पार्थेन निहतान्संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥
अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः ।
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः ॥ ९ ॥
दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान्द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥ १० ॥
अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परन्तपः ।
प्रादात्किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि ॥ ११ ॥
यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान्प्रति ।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाऽभविष्यज्जनक्षयः ॥ १२ ॥
जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान्प्रति ।
मयाऽनार्येण संरुद्धो द्रोणात्प्राप्याऽभयं सखे ॥ १३ ॥
अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥
कर्ण उवाच—आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्याऽसौ युद्ध्यते द्विजः
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥
यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नाऽत्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथञ्चन ॥ १६ ॥

को युद्ध में मार डाला॥१।४॥हे शत्रुनाशन कर्ण! समरभूमि में मेरे लाख यत्न करने पर भी अर्जुन ने मेरी अधिकांश सेना नष्ट कर डाली है, बहुत ही थोड़ी सेना बच रही है। महामति द्रोणाचार्य यदि मन लगाकर युद्ध करते तो भला अर्जुन, कोटि यत्न करके भी, उस दुर्भेद्य व्यूह को कैसे तोड़ सकते थे?॥४।७॥ हे कर्ण! देखो, अर्जुन ने जयद्रथ को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है। महेन्द्र के समान पराक्रमी बहुत से राजाओं को अर्जुन ने युद्ध में मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया है। यदि पराक्रमी द्रोणाचार्य अर्जुन को रोकने का यत्न करते, उनको व्यूह के भीतर न जाने देना चाहते, तो लाख यत्न करने पर भी अर्जुन व्यूह को तोड़कर भीतर नहीं जा सकते थे॥७।९॥हे वीर कर्ण! वास्तव में यह है कि महात्मा द्रोणाचार्य को अर्जुन बहुत ही प्रिय हैं, इसी से उन्होंने बिना युद्ध किये ही प्रिय शिष्य को भीतर जाने के लिये राह दे दी। द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को अभय दान करके भी, मुझे गुण-हीन देखकर, अर्जुन को भीतर प्रवेश हो जाने दिया। यदि द्रोणाचार्य पहले ही जयद्रथ को घर जाने की आज्ञा दे देते तो उनके प्राण बच जाते और इतने मनुष्यों की मृत्यु भी न होती॥१०।१२॥द्रोणाचार्य से अभयदान पाकर ही मुझ नीच और मूढ़ ने, जीवन की इच्छा से घर जा रहे, जयद्रथ को रोक लिया। हाय! आज हम दुरात्माओं के सम्मुख ही मेरे चित्रसेन

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥ १७ ॥
कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः ।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १८ ॥
प्रवर्षन्निशितान्बाणान्बाहुद्रविणदर्पितः ।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् ॥ १९ ॥
आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाऽक्षमः ।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥
तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्याऽनेन हेतुना ॥ २१ ॥
अजय्यान्पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनाऽस्त्रविदा मृधे ।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥
दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् ।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् ।
परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥
हत्वाऽस्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात्करोति नः ।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥

आदि प्रिय भाई भीमसेन के हाथ से मारे गये॥१३। १४॥कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम्हारा यह कहना उचित नहीं है।महात्मा द्रोणाचार्य बल-वीर्य और उत्साह के अनुसार जी-जान से युद्ध कर रहे हैं, इसलिए तुम उनकी निन्दा न करो। पराक्रमी अर्जुन जो द्रोणाचार्य को लाँघकर हमारी सेना के भीतर प्रवेश हो गये, इसमें मुझे द्रोणाचार्य का किञ्चित्मात्र भी दोष नहीं देख पड़ता। द्रोणाचार्य वृद्ध होने के कारण न तो शीघ्र चल ही सकते हैं और न उनमें उतनी फुर्ती ही है। उधर कृष्ण जिनके सारथी हैं वे महावीर अर्जुन कार्यकुशल, नौजवान, अस्त्रनिपुण, स्फूर्तिशाली और शीघ्रगामी हैं। वे दुर्भेद्य कवच पहने, बाहु-बल के दर्प से पूर्ण और दिव्य अस्त्रों के बल से सम्पन्न हैं। वे जो कृष्ण-से सारथी की सहायता पाकर, दिव्य वानर-ध्वज रथ पर बैठकर, अजेय सुदृढ़ गाण्डीव धनुष से पैने बाण बरसाते हुए स्फूर्ति के साथ द्रोणाचार्य को लाँघकर निकल गये, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। मैं तो यही कहूँगा कि इसमें द्रोणाचार्य का किञ्चित्मात्र भी अपराध नहीं है। हे राजेन्द्र ! अस्त्रविद्या के अद्वितीय ज्ञाता द्रोणाचार्य को लाँघकर अर्जुन हमारी सेना में प्रवेश हो गये, यह देखकर मेरी तो धारणा हो गई है कि पाण्डवों को कोई हरा नहीं सकता॥१५।२२॥मैं तो समझता हूँ कि दैव बड़ा ही प्रबल है। जो होनी है उसे कोई किसी प्रकार टाल नहीं सकता। हम लोग छल-बल-कौशल से सब प्रकार जय प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, पर सब वृथा हो रहा है। हे दुर्योधन ! हम लोग यथाशक्ति घोर युद्ध करके जयद्रथ को बचाने की चेष्टा करते रहे, मगर जयद्रथ को नहीं बचा सके। इसी से कहना पड़ता है कि होनी बड़ी प्रबल है। देखो न, हम तुम्हारे साथ मिलकर रणभूमि में शत्रुओं

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत्कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥ २६ ॥
यत्कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत्कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥
निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ २८ ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद्दैवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ ३० ॥
न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥
दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥
बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥
तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत्कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥

को मारने और विजय प्राप्त करने का अत्यन्त यत्न कर रहे हैं, किन्तु दैव के प्रतिकूल होने से उसका परिणाम विपरीत हो रहा है। दैव ही हमारे पौरुष और उद्योग को नष्ट करके हमें पीछे ढकेल रहा है॥२३।२५॥ दैव जिस पुरुष के प्रतिकूल है उसके सब कार्य बिगड़ जाते हैं। हे महाराज ! मैं तो यही समझता हूँ कि अध्यवसायी पुरुष जिस कार्य के करने का विचार करे, या जिसे कर्तव्य समझे, उसे निर्भय होकर बराबर करता रहे। हाँ, उसका सिद्ध होना दैव के हाथ में है॥२५।२७॥ हम लोगों ने पाण्डवों के साथ छल-कपट किया, उन्हें धोखा दिया, विष दिया, लाक्षाभवन में रखकर आग लगा दी और फिर द्यूत में हराकर, राजनीति के अनुसार, वन को भेजा। इस प्रकार स्वयं निष्कण्टक होने के निमित्त हमने जो-जो यत्न किये उन सबको प्रतिकूल दैव ने ही व्यर्थ कर दिया। हे राजेन्द्र ! अब तुम यत्नपूर्वक दैव को व्यर्थ करके प्राणपण से बराबर युद्ध करते रहो। इस प्रकार अपने-अपने जयलाभ के निमित्त यत्न करते हुए हम दोनों (पाण्डवों और कौरवों) में जिसका यत्न सुदृढ़ होगा, अध्यवसाय या तत्परता अखण्डित होगी, उसी के अनुकूल दैव हो जायगा। मैं तो पाण्डवों का कोई सुमतिकृत सुकृत या तुम्हारा दुर्बुद्धिकृत दुष्कृत नहीं देखता। तुम्हारी हार या पाण्डवों की जीत का कारण दैव है, सुकृत और दुष्कृत नहीं। दैव का और कोई कार्य ही नहीं है। वह मनुष्यों के सोते रहने पर भी जागा करता है॥२८।३२॥ हे महाराज ! पहले युद्ध के आरम्भ के समय तुम्हारे समीप बहुत सी सेना और बहुत से योद्धा थे। जितनी सेना और योद्धा तुम्हारे थे उतनी सेना और योद्धा पाण्डवों के नहीं थे; तथापि उन्होंने संख्या में कम होकर भी हमारे संख्या में बहुत और पराक्रमी वीरों को मारकर कम कर दिया है।

सञ्जय उवाच—एवं सम्भाषमाणानां बहु तत्तजनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारंभे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५२॥समाप्तं जयद्रथवधपर्व

यह सब उसी दैव की ही लीला है। दैव ही हमारे पौरुष को वृथा कर रहा है॥३३।३४॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज!दुर्योधन और कर्ण से इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रही थी कि युद्धभूमि में पाण्डवों की बहुत सी सेना आती हुई देख पड़ी। तब दोनों पक्ष के योद्धा,रथ, हाथी,और घोड़े परस्पर भिड़ गये और घमासान युद्ध होने लगा। हे राजेन्द्र! आपकी कुमन्त्रणा के कारण से ही यह घोर जननाशक संग्राम हुआ है॥३५।३६॥

द्रोणपर्व का एक सौ बावन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

सञ्जय उवाच—तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥
पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥
शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥
रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम् ।
प्रावर्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥
वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥ ५ ॥
हयारोहान्हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६ ॥

एक सौ तिरपन अध्याय ॥ १५३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! आपकी वह हाथियों की सेना पाण्डव-सेना के भीतर प्रवेश होकर चारों ओर घोर युद्ध करने लगी। पाञ्चालगण और कौरवगण जीवन का मोह छोड़कर, यमपुर जाने की दीक्षा सी लेकर, एक दूसरे से युद्ध करने लगे। वीर योद्धा लोग अपने प्रतिपक्षी वीरों पर झपटकर, उनसे भिड़कर, परस्पर बाण, तोमर,शक्ति आदि के प्रहार करने और मरने-मारने लगे। रथी लोग रथी लोगों से भिड़कर बाणों की वर्षा करने और एक दूसरे के शरीर से रक्त की धाराएँ बहाने लगे॥१।४॥मदमत्त हाथी परस्पर भिड़कर,और अत्यन्त ही कुपित होकर, अपने दाँतों के प्रहार से एक दूसरे के शरीर को चीरने-फाड़ने लगे। घोड़ों के सवार परस्पर भिड़कर, महान् यश प्राप्त करने की अभिलाषा से उत्तेजित होकर,प्रास शक्ति परश्वध आदि शस्त्रों से प्रहार करके एक दूसरे को घायल करने लगे। उस तुमुल संग्राम में सैकड़ों महारथ पैदल योद्धा परस्पर भिड़कर, पराक्रम प्रकट करके एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। उस समय धीरों के मुख से

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन्राजन्नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥
गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान्कुरुभिः सह ॥ ८ ॥
तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रैषयन्परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥
शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तं गतेऽपि च ॥ १० ॥
तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद्बलम् ॥ ११ ॥
सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥ १२ ॥
नादयन्रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥
स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥
यथा मध्यन्दिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तत्र सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥

उच्चारित अपने-अपने गोत्र, नाम और कुल को सुनकर ही हमें जान पड़ता था कि कौन कौरवपक्ष का है और कौन पाञ्चाल पक्ष का है। [नहीं तो उस अँधेरे में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था कि कौन किससे कहाँ युद्ध कर रहा है।] योद्धा लोग निर्भय भाव से बाण, शक्ति, परश्वध आदि शस्त्रों के प्रहार से एक दूसरे को मारते हुए इधर-उधर विचर रहे थे। उनके छोड़े हुए सहस्रों बाणों के फैलने की वही दशा हुई जो सूर्य के अस्त हो जाने से दसों दिशाओं में अँधेरा फैलने पर होती है और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता॥५।१०॥हे महाराज! पाण्डवों और कौरवों की सेना में इस प्रकार घोर संग्राम होने लगा। उस समय जयद्रथ की मृत्यु से अत्यन्त दुःखित होकर, जीवन की आशा त्यागकर, रथ के शब्द से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित और पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए महाराज दुर्योधन शत्रु-सेना में प्रवेश हो पड़े। उस समय दुर्योधन और पाण्डवों से घनघोर संग्राम होने लगा। जिसमें असंख्य सैनिकों का नाश हुआ। हे राजेन्द्र! आपके प्रतापी पराक्रम पुत्र अपने अग्नितुल्य बाणों से पाण्डवसेना का सन्ताप पहुँचाने और भस्म करने लगे। उस समय वे मध्याह्नकाल के प्रचण्ड सूर्य के समान जान पड़ने लगे। पाण्डवपक्ष के योद्धा दुर्योधन की ओर नेत्र उठाकर भली-भाँति देख भी नहीं सकते थे। दुर्योधन के बाणों से मारे जा रहे पाञ्चालगण,

पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन्पाण्डुसैनिकाः ।
न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥
यादृशं कृतवान्राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।
पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥ १९ ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपङ्कजा ।
क्षीणतोयाऽनिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।
पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।
स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ।
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥
कैकेयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।
सात्वतं पञ्चभिर्विध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २४ ॥
घटोत्कचं च समरे विध्वा सिंह इवाऽनदत् ।
शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥ २६ ॥

शत्रुओं के जीतने में निरुत्साह होकर, भागने लगे ॥११।१६॥ आपके धनुर्द्धर पुत्र ने सुवर्णपुङ्ख-शोभित तीक्ष्ण नोकवाले बाणों से पाण्डवपक्ष के सैनिकों को पीड़ित करना प्रारम्भ किया और वे मर-मरकर गिरने लगे। हे महाराज! उस समय आपके पुत्र ने अकेले ही जैसा अद्भुत संग्राम किया वैसा संग्राम आपके पक्ष के किसी योद्धा ने नहीं किया। जिस प्रकार मस्त हाथी सरोवर के भीतर प्रवेश होकर फूले हुए कमलवन को दलित करे, उसी प्रकार दुर्योधन ने चारों ओर से पाण्डव सेना को मथ डाला। सूर्य और वायु के प्रभाव से जल सूख जाने पर कमलिनी जैसे मुरझा जाती है वैसे ही पाण्डवों की सेना, आपके पुत्र के पराक्रम और तेज से, प्रभाहीन और नष्ट भ्रष्ट हो गई ॥१७।२०॥ हे राजेन्द्र! इसी समय भीमसेन सहित पाञ्चालगण अपने पक्ष की सेना को नष्ट भ्रष्ट और कम होते देखकर दुर्योधन पर आक्रमण करने के लिए दौड़े। तब दुर्योधन ने भीमसेन को दस नकुल और सहदेव को तीन-तीन, विराट और द्रुपद को छः, शिखण्डी को सौ, धृष्टद्युम्न को सत्तर, युधिष्ठिर को सात, सात्यकि को पाँच तथा द्रौपदी के पुत्रों को तीन-तीन बाण मारकर कैकेय और चेदि देश के वीरों को बहुत से तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित किया। इसके पश्चात् घटोत्कच को और बहुत से हाथियों पर सवार अन्य वीरों को, उनके वाहनों सहित, बाणों से घायल करके क्रुद्ध वीर दुर्योधन सिंह की भाँति गर्जने लगे।

तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।
तं तपन्तमिवाऽऽदित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥
नाऽशकन्वीक्षितुं राजन्पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत्कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।
तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिन्दमौ ॥ २९ ॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।
इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान्नृप ॥ ३१ ॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ।
धनुश्च पुनरन्येन चकर्ताऽस्य महारथः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।
तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३४ ॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः॥ ३५ ॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे सँल्लग्नाः क्षितिमाविशन् ।
ततः परिवृतो योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥

काल जैसे प्रजा का संहार करता है वैसे ही कुपित राजा दुर्योधन ने तीक्ष्ण बाणों से मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीर खण्ड-खण्ड कर डाले॥२१।२६॥हे महाराज! आपके पुत्र ने शिलीमुख बाणों से पाण्डव-सेना को इस प्रकार पीड़ित किया कि सब सैनिक उनके आगे से भाग खड़े हुए। उस समय प्रचण्ड सूर्य की भाँति तप रहे तेजस्वी कुरुराज की ओर पाण्डवपक्ष के सैनिक देख भी नहीं सकते थे। हे महाराज! तब धर्मराज युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर, मार डालने के अभि-प्राय से, दुर्योधन की ओर झपटे। राज्य के लिए पराक्रम प्रकट कर रहे राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों शत्रु दमन वीर आमने-सामने होकर घोर संग्राम करने लगे। महारथी राजा दुर्योधन ने अत्यन्त कुपित होकर दस तीक्ष्ण बाणों से राजा युधिष्ठिर को घायल करके एक बाण से उनके रथ की ध्वजा काट डाली और फिर महात्मा युधिष्ठिर के प्रिय सारथी इन्द्रसेन के मस्तक में तीन बाण मारे॥२६।३१॥साथ ही स्फूर्ति के साथ एक बाण से युधिष्ठिर का धनुष काटकर चार बाणों से उनके रथ के बहुमूल्य घोड़ों को भी घायल कर दिया। धर्म-राज युधिष्ठिर स्फूर्ति से दूसरा धनुष लेकर, क्रोध और वेग के साथ, दुर्योधन की ओर झपटे। उन्होंने दो भल्ल बाणों से शत्रुओं को मार रहे राजा दुर्योधन के सुवर्ण-भूषित धनुष के तीन टुकड़े कर डाले और फिर उनको दस बाण मारे। वे बाण दुर्योधन के शरीर को भेद

वृत्रहत्ये यथा देवाः परिवव्रुः पुरन्दरम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा तत्र पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७ ॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वाऽमुञ्चद्युधिष्ठिरः ।
स तेनाऽऽकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।
ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद्रवो महान् ॥ ३९ ॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४० ॥
अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चाऽपि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।
प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४२ ॥
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्निघ्नन्रश्मिमुचो यथा ॥ ४३ ॥
ततो राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

करके पृथ्वी में प्रवेश हो गये। तब पाण्डवपक्ष के सब योद्धा, सहायता करने के निमित्त, राजा युधिष्ठिर के चारों ओर आ गये, जैसे वृत्रासुर से युद्ध कर रहे इन्द्र के आसपास देवगण विराजमान थे॥ ३२।३७॥ अब महाराज युधिष्ठिर ने सूर्यकिरणतुल्य तीक्ष्ण और अनिवार्य एक उग्र बाण धनुष पर चढ़ाकर "हा, तुम मारे गये!" कहकर दुर्योधन के ऊपर छोड़ा। कानों तक खींचकर छोड़ गये युधिष्ठिर के उस बाण की गहरी चोट लगने से राजा दुर्योधन मूर्च्छित होकर रथ के ऊपर गिर पड़े। उस समय "दुर्योधन मारे गये!", यों कहकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे पाञ्चालसेना के योद्धा बड़ा कोलाहल करने लगे॥ ३७।४०॥ इसी समय द्रोणाचार्य स्फूर्त्ति के साथ वहाँ आते दिखाई पड़े। इधर दुर्योधन भी सावधान हो गये और 'ठहर जा, ठहर जा!' कहते हुए दूसरा दृढ धनुष लेकर महाराज युधिष्ठिर की ओर बड़े वेग से चले। उस समय, उस स्थान पर, बाणों का उग्र शब्द चारों ओर गूँज उठा। पाञ्चालगण भी जय की आकांक्षा से दुर्योधन को रोकने के निमित्त आगे बढ़े। हे राजेन्द्र! जैसे प्रचण्ड आँधी जल बरसानेवाले मेघों को रोकती और छिन्न भिन्न कर देती है वैसे ही द्रोणाचार्य भी आक्रमण करनेवाले पाञ्चालसेना के वीरों को मारकर दुर्योधन की रक्षा करने लगे। उस समय युद्ध के निमित्त भिड़ रहे कौरव और पाञ्चालगण सहित पाण्डवपक्ष के वीर दारुण युद्ध करके घोरजन-संहार करने लगे॥ ४१।४४॥

द्रोणपर्व का एक सौ तिरपन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५३ ॥

अथ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तदा प्राविशत्पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली ।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम् ।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे ।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥ ३ ॥
के चाऽस्य पृष्ठतोऽन्वासन्वीरा वीरस्य योधिनः ।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शत्रवः ॥ ४ ॥
मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम् ।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥
निर्दहन्सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच—सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च ।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥ ८ ॥
तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाऽभ्यधावताम् ॥ ९ ॥

एक सौ चौवन अध्याय ॥ १५४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महाबली आचार्य मेरे स्वेच्छाचारी पुत्र मन्दमति दुर्योधन का तिरस्कार करने के उपरान्त जब क्रुद्ध होकर पाण्डवसेना में प्रवेश हुए और रथ में बैठकर निर्भय शत्रु-संहार करते हुए विचरने लगे, तब उन शूर पुरुषसिंह का सामना किसने किया? पाण्डव पक्ष के वीरों ने किस प्रकार उन्हें रोका? उस महायुद्ध में किस-किस ने आचार्य के रथ के दाहने और बायें पहिये की रक्षा की? कौन वीर उनके पृष्ठ रक्षक हुए? शत्रुपक्ष के किन किन वीरों ने सम्मुख आकर उनसे युद्ध किया?॥१।४॥हे सञ्जय ! मुझे तो जान पड़ता है कि प्रधान धनुर्धर विजयी द्रोणाचार्य जब पाञ्चालसेना में प्रवेश हुए होंगे तब पाञ्चालगण भय से वैसे ही काँपने लगे होंगे जैसे कोई पुरुष असमय में जूड़ी आने से काँपने लगता है, अथवा शीतकाल में गाय आदि पशु जैसे काँपते हैं। सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महावीर द्रोणाचार्य क्रोध से धूमकेतु की तरह प्रज्वलित होकर समरभूमि में चारों ओर नाचसा करते हुए पाञ्चाल-सेना को भस्म करने लगे होंगे । हे सञ्जय ! प्रतापी द्रोणाचार्य शत्रुओं से युद्ध करते-करते किस प्रकार मारे गये? सब वृत्तान्त मुझसे कहो॥५।७॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! जयद्रथ को मारने के उपरान्त वीर अर्जुन सन्ध्या के समय धर्मराज युधिष्ठिर से मिलकर, फिर सात्यकि को साथ लिये हुए, युद्ध करने के निमित्त द्रोणाचार्य की ओर दौड़े । उस समय धर्मराज युधि

तत्रैव नकुलो धीमान्सहदेवश्च दुर्जयः ।
धृष्टद्युम्नः शतानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि ।
द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन्द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत ।
द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् ।
प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥
द्रोणमेवाऽन्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ।
तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५ ॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ।
योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।
तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।
उलूकाश्चाऽप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।
ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १९ ॥

फिर और महाबली भीमसेन भी अलग-अलग सेना साथ लेकर आचार्य से युद्ध करने चले। इसीप्रकार नकुल, दुर्जय सहदेव धृष्टद्युम्न, शतानीक, राजा विराट, कैकेय देश के पाँचों राजकुमार, मत्स्य और शाल्व देश की सेना सहित वीर योद्धा सब द्रोणाचार्य से ही युद्ध करने के निमित्त वेग से दौड़े॥८।११॥पाञ्चालसेना से सुरक्षित धृष्टद्युम्न के पिता राजा द्रुपद, द्रौपदी के पाचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच, ये भी अपनी-अपनी सेना साथ लिये द्रोणाचार्य के सम्मुख आ पहुँचे। पाञ्चालदेश के छ सहस्र युद्धनिपुण योद्धा और प्रभद्रकगण, शिखण्डी के साथ होकर, द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने को चले। इनके अतिरिक्त पाण्डवपक्ष के और भी अनेक महारथी क्षत्रिय द्रोणाचार्य की ही ओर दौड़े॥१२।१५॥हे महाराज! जिस समय ये सब वीर युद्ध के निमित्त आगे बढ़े उस समय डरपोक पुरुषों के मन में भय उत्पन्न करनेवाली भयावनी, वीरविनाशिनी, संहारकारिणी- घोर रात्रि हो गई थी।उस रात्रिमें असंख्य मनुष्यों,घोड़ों और हाथियों का नाश होने लगा। हे महाराज!उस रात्रि के समय अशुभरूपिणी गीदड़ियाँ केवल मुख फैलाकर घोर शब्द करने लगे, उनके मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकलने लगीं। उनका वह अमङ्गल शब्द लोगों के लिए महाभय की सूचना देने लगा।उल्लू पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड,विशेषकर कौरवों की सेना में,दारुण शब्द करते हुए भय और अनर्थ की सूचना देने लगे।उस समय

भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चाऽपि तुरङ्गाणां च हेषितैः ॥ २० ॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ।
तमसा चाऽऽवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ २२ ॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।
नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥
नाऽपश्याम रजो भौमं कश्मलेनाऽभिसंवृताः ।
रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४ ॥
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् ।
मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥
फेत्कारैर्हेषितैः शब्दैः सर्वमेवाऽऽकुलं बभौ ।
नैव स्वे न परे राजन्प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥ २६ ॥
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे ।
भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम् ॥ २७ ॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।
ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥
द्यौरिवाऽऽसीत्सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।
गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥ २९ ॥

सेनाओंमें महा कोलाहल सुनाई पड़ने लगा॥१५।१९॥ भेरी, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे, हाथी चिंग्घारने और घोड़े हिनहिनाने लगे। घोड़ों, हाथियों और मनुष्यों के दौड़ने से उनके पावों का अपरिमित शब्द चारों ओर विस्तृत हो गया। उस सन्ध्याकाल में पाञ्चाल-सेना के साथ द्रोणाचार्य का दारुण युद्ध होने लगा। ॥१९।२२॥ दिशाओं में रात्री का गहरा अँधेरा छाया हुआ था और पृथ्वी से उड़ी हुई धूल आकाश में छा गई थी, इससे कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। इससे हम लोग मोहित से हो गये। थोड़ी देर में मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से इतना रक्त बहा कि उससे वह धूल बैठ गई। रात्रि को पर्वत पर बाँसों के वन में अग्नि लगने से जैसे चट-चट शब्द होता है वैसा ही शब्द चारों ओर शस्त्रों और बाणों के गिरने से सुनाई पड़ने लगा॥२२।२५॥ मृदङ्ग, नगाड़े, डङ्के बल्लरी, पटह, शङ्ख आदि बाजों के शब्द और घोड़ों के हिनहिनाने से रणभूमि परिपूर्ण और आकुल हो उठी। अँधेरे के मारे अपना पराया कुछ नहीं जान पड़ता था। सब लोग उन्मत्त और मोहित-से हो उठे। इसके पश्चात् रक्तप्रवाह से पृथ्वी की धूल बैठ गई और सुनहरे कवचों तथा जड़ाऊ आभूषणों की प्रभा से रात्रि का अँधेरा कम हो गया। उस समय शक्ति ध्वजा आदि से अलङ्कृत तथा मणिमय सुवर्ण के अलङ्कारों से शोभित कौरवसेना, नक्षत्रों से जगमगाते हुए आकाशमण्डल

वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्कुष्टनादिता ।
तत्राऽभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३० ॥
समावृण्वन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः ।
सा निशीथे महाराज सेनाऽदृश्यत भारती ॥ ३१ ॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवाऽवभासिता ।
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।
ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाऽग्नयः ।
दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।
ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥

की भाँति, अपूर्व शोभा को प्राप्त हुई ॥२५।२९॥ गीदड़, कौए आदि जीव सर्वत्र शब्द कर रहे थे, हाथी घोर शब्द से लोगों के मन में त्रास उत्पन्न कर रहे थे तथा सैनिकगण सिंहनाद और प्रतिद्वन्द्वी को ललकारने के शब्द से अपना उत्साह प्रकट कर रहे थे। इन्द्र के वज्र के गिरने के समान रोमहर्षण कोलाहल चारों ओर गूँज उठा॥२९।३१॥ हे महाराज ! उस अँधेरे में कौरव-सेना अङ्गद, कुण्डल, किरीट, निष्क आदि आभूषणों और नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की आभा से प्रकाशमान होकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुई। उस सेना में सुवर्णभूषित हाथी और रथ बिजली सहित मेघों के समान दिखाई पड़ रहे थे। चारों ओर खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, गदा, बाण मुसल, प्रास और पट्टिश आदि शस्त्र-अस्त्र निरन्तर गिरने से ऐसा जान पड़ता था कि अग्नि बरस रही है॥३१।३४॥ हे महाराज ! उस सेना में द्रोणाचार्य और अर्जुन मेघ के समान बाण बरसा रहे थे। दुर्योधन वर्षा के समय आगे चलनेवाली वायु के समान थे। रथ और हाथी उड़नेवाली बगलों की कतार से जँचते थे। खड्ग, शक्ति, गदा आदि शस्त्रों का शब्द वज्रपात की समता कर रहा था। बाजों का शब्द मेघ-गर्जन सा सुनाई पड़ता था धनुष और ध्वजाएँ बिजली-सी चमक रही थीं। बाणों की वर्षा जल की वर्षा-सी जान पड़ती थी। अस्त्र पवन-से चल रहे थे। [शीत घाम की उमस की भाँति व्याकुल कर रहा था।] रह

तान्सर्वान्विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।
तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसङ्घानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

उग्र, घोर, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली, जीवन नष्ट करनेवाली, भयवर्द्धिनी सेना बिना नाव की नदी के समान दुस्तर थी। युद्ध करने के निमित्त उद्यत वीरगण उसी सेनासागर में प्रवेश हो पड़े॥३४।३७॥इस प्रकार रात्रि के समय महाशब्द से परिपूर्ण, कायरों के लिए भयङ्कर और शूरों के लिए आनन्दवर्द्धक दारुण संग्राम छिड़ने पर कुपित पाञ्चाल और पाण्डवगण मिलकर द्रोणाचार्य पर चारों ओर से आक्रमण करने लगे। किन्तु जो-जो महारथी योद्धा महात्मा द्रोणाचार्य के सम्मुख गये उन सबको उन्होंने हटा दिया और बहुतों को तो मार ही डाला। उस समय महावीर द्रोणाचार्य ने अकेले ही नाराच बाणों की मार से सहस्र हाथी, दस सहस्र रथ, प्रयुत सङ्ख्यक पैदल और एक अर्बुद घोड़े मार डाले ॥३८।४१॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौवन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ १ ॥
दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत्प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥
निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाऽभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥
के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चाऽस्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥

एक सौ पचपन अध्याय ॥ १५५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा के मारे जाने पर महातेजस्वी द्रोणाचार्य ने, दुर्योधन के तिरस्कार को न सह सकने के कारण, कुपित होकर जब पाञ्चालसेना में प्रवेश किया तब तुम लोगों के मन में किस भाव का उदय हुआ ! कहा न माननेवाले मेरे पुत्र दुर्योधन से पूर्वोक्त बातें कहकर शत्रुसेना में प्रवेश करते हुए द्रोणाचार्य को देखकर अर्जुन ने क्या सोचा और क्या किया ! दुर्द्धर्ष और शत्रुओं को पीड़ित करनेवाले आचार्य को शत्रुसेना में जाते देखकर दुर्मति दुर्योधन ने उस समय के उपयुक्त क्या कर्त्तव्य सोचा॥१।४॥द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य जब युद्ध करने के निमित्त चले तब कौन-कौन महारथी योद्धा उनके पीछे गये ? उन्हें रण में शत्रुओं का नाश करते देखकर पाण्डव पक्ष के कौन-कौन वीर संग्राम करने के निमित्त उनके सम्मुख आये ? मुझे जान पड़ता है कि सब पाण्डव और उनके पक्ष के

के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ।
मन्येऽहं पाण्डवान्सर्वान्भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो ।
प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥
सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु केवस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥
हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥
तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत्का मतिस्तदा ॥ १० ॥
प्रहृष्टांश्चाऽप्युदग्रांश्च सन्तुष्टांश्चैव पाण्डवान् ।
शंससीहाऽप्रहृष्टांश्च विप्रष्टांश्चैव मामकान् ॥ ११ ॥
कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥ १२ ॥
सञ्जय उवाच—रात्रियुद्धे तदा राजन्वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन्सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥ १३ ॥
ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चाऽऽत्मजान् ।
सम्प्रैषयत्प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४ ॥
तस्य प्रमुखतोराजन्येऽवर्तन्त महारथाः ।
तान्सर्वान्प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥ १५ ॥

योद्धा, द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित होकर, शीतकाल में गायों के समान भय के मारे काँपने लगे होंगे। शत्रु-नाशन महाधनुर्द्धर वीर द्रोणाचार्य पाञ्चालों की सेना में प्रवेश करके किस प्रकार मारे गये?॥५।७॥ हे सञ्जय! रात्रि के उस घोर युद्ध में जब सब महारथी योद्धा परस्पर भिड़कर युद्ध करने लगे और दोनों पक्षों की सेनाओं में हलचल-मच गई तब कौरव पक्ष के कौन कौन बुद्धिमान् धीर-वीर पुरुष युद्ध करने लगे? तुम कहते हो कि हमारे पक्ष के योद्धा मारे गये, हार गये, रथ हीन होकर किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये। पाण्डवों के प्रहार से पीड़ित, गहरे अँधेरे में निमग्न और शत्रुओं के द्वारा विमर्दित मेरे सैनिकों ने उस समय अपना क्या कर्त्तव्य निश्चित किया?॥८।१०॥ तुम पाण्डवों को विजय-लाभ से अत्यन्त सन्तुष्ट, प्रसन्न उत्साहित और कौरवों को खिन्न, उत्साह हीन और युद्ध से विमुख बतलाते हो। किन्तु उस रात्रि के घने अँधेरे में युद्ध से न भागने-वाले पाण्डवों और कौरवों का यह सब समाचार तुमने कैसे देखा?॥११।१२॥ सञ्जय ने कहा—हे महा-राज! उस रात्रि में घोर संग्राम छिड़ जाने पर पाण्डव और सोमकगण चारों ओर से द्रोणाचार्य पर ही आक्र-मण करने लगे। द्रोणाचार्य ने कुपित होकर शीघ्रगामी तीक्ष्ण बाणों से केकय देश के वीरों को और धृष्टद्युम्न

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान्भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिवी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारसवैः शितैः ॥ १७ ॥
तं शिविः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १८ ॥
तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महात्मनः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥
ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत् ।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥ २० ॥
कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे ।
पूर्वं पितृवधात्क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ २२ ॥
कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ॥ २३ ॥
तस्य मुष्टिहतस्याऽऽजौ पाण्डवेन बलीयसा ।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन्वै पृथक्पृथक् ॥ २४ ॥
तं कर्णो भ्रातरश्चाऽस्य नाऽमृष्यन्त परन्तप ।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥

के पुत्रों को मार डाला। उस समय जो महारथी द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँचे उन सबको उन्होंने मार गिराया। तब पराक्रमी राजा शिवि, महारथी द्रोण को पाञ्चाल सेना का संहार करते देखकर, क्रुद्ध हो उनके सम्मुख आ गये॥१३।१६॥ महावीर द्रोणाचार्य ने उनको युद्ध के निमित्त आते हुए देखकर, लोहे के तीक्ष्ण दस बाण मारे। शिवि ने भी उनको तीक्ष्ण तीस बाण मारे और हँसते हँसते एक भल्ल बाण से उनके सारथी को मार गिराया। यह देखकर द्रोणाचार्य बहुत ही कुपित हुए। उन्होंने राजा शिवि के सारथी और घोड़ों को मारकर शिरस्त्राण सहित उनका सिर धड़ से अलग कर दिया। दुर्योधन ने स्फूर्ति के साथ एक और सारथी द्रोणाचार्य के रथ पर भेज दिया। वह सारथी आकर द्रोणाचार्य के रथ के घोड़ों को हाँकने लगा। तब फिर आचार्य द्रोण शत्रुसेना को मारते हुए आगे बढ़े॥१७।२०॥ उधर कलिङ्गराज का पुत्र, कलिङ्ग देश की सेना साथ लेकर, भीमसेन की ओर चला। पहले उसके पिता को भीमसेन मार चुके थे, इसी से वह बहुत क्रुद्ध हो रहा था। उसने भीमसेन को पहले पाँच और फिर सात उग्र बाण मारकर उनके सारथी विशोक को तीन तीक्ष्ण बाण मारे और एक बाण भीमसेन की ध्वजा में मारा। कलिङ्ग देश के वीर को क्रुद्ध देखकर कुपित भीमसेन ने, अपने रथ से उसके रथ पर स्फूर्ति से जाकर, बड़े ज़ोर से एक घूँसा मारा।

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः ।
ध्रुवं चाऽस्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥
स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाऽभिहतोऽपतत् ।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवाऽनदत् ।
जयरातमथाऽऽक्षिप्य नदन्सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाऽग्रतः स्थितः ।
कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ २९ ॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन्पाण्डुनन्दनः ।
कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाऽऽजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना ।
एतत्कृत्वा महत्कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१ ॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् ।
तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ॥ ३२ ॥
न्यवारयन्महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥
दुर्मदस्यस्ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३४ ॥
दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्याऽवचक्रमे ।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥

भीमसेन के वज्रतुल्य मुष्टिप्रहार से कलिङ्ग राजकुमार की हड्डियाँ निकलकर गिर पड़ीं। तब कर्ण और कलिङ्ग-राजकुमार के भाई--ध्रुव और जयरात--अपने भाई के वध को न सह सके। वे कुपित होकर विषैले सर्पों के समान नाराच बाणों से भीमसेन को पीड़ित करने लगे॥२१।२५॥ तब महाबली भीमसेन शत्रु के साथ शत्रु के रथ को छोड़कर ध्रुव के रथ पर चढ़ गये। वहाँ जाकर निरन्तर मुक्के मारमारकर ध्रुव के सिर को उन्होंने मारकर पीस डाला। महाबली भीमसेन के मुष्टि-प्रहार से उसके प्राण निकल गये और वह मरकर गिर पड़ा। हे महाराज! इस प्रकार ध्रुव को मारकर भीमसेन जयरात के रथ पर पहुँचे और बारम्बार सिंह की भाँति गरजने लगे। कर्ण के सम्मुख ही महाबली भीमसेन ने जयरात को बाँयें हाथ से थप्पड़ मारकर पृथ्वी पर पटक दिया। इससे वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। अब महावीर कर्ण ने कुपित होकर भीमसेन के ऊपर हिरण्मयी शक्ति चलाई। तब भीमसेन ने हँसते-हँसते उस शक्ति को हाथ से पकड़ लिया और कर्ण के ऊपर ही वह शक्ति फेंक दी। महावीर शकुनि ने उस शक्ति को कर्ण के ऊपर गिरते देखकर एक तेल से धुले बाण से उसे काट डाला। हे महाराज! इस प्रकार यह अद्भुत कार्य करके पराक्रमी भीमसेन अपने रथ पर सवार हो फिर आपकी सेना की ओर दौड़े और २६।३२ ॥ कुपित काल के समान भयङ्कर

संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम् ।
यथाऽम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३६ ॥
ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥
ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च ।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् ।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिन्दमः ॥ ३९ ॥
ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥ ४० ॥
ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥
एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञा वाहयन्वाहान्न च द्वौ सह धावतः ॥ ४२ ॥
ततो बले भृशलुलिते निशामुखे सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः ।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ॥ ४३ ॥
ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया युधिष्ठिरश्चाऽपि परां मुदं ययुः ।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ४४ ॥
ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥

महाबाहु भीमसेन को अपनी सेना का सहार करते आते देख आपके महारथी पुत्र, उन्हें रोकने के निमित्त, उन पर असख्य बाणबरसाने लगे।तब भीमसेनने हँसते हँसते तीक्ष्ण बाणों से राजकुमार दुर्मद-के सारथी और घोड़ों को मार गिराया। दुर्मद अपने भाई दुष्कर्ण के रथ पर चले गये॥३२।३५॥शत्रुनाशन दोनों भाई एक ही रथ पर बैठकर भीमसेन की ओर वेग से चले। जैसे मित्र (सूर्य) और वरुण तारकासुर पर आक्रमण करने चले थे वैसे ही वे दोनों भाई भीमसेन पर आक्रमण करने के निमित्त झपटे। एक रथ पर बैठे हुए आपके पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण भीमसेन को बाणों से घायल करने लगे। अब कुपित भीमसेन ने कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक आदि योद्धाओं के सम्मुख ही इतने जोर से लात मारी कि उनका रथ पृथ्वी के भीतर प्रवेश हो गया। इसके पश्चात् क्रोध से विह्वल बली भीमसेन ने घूँसे से आपके दोनों शूर पुत्रों को गिराकर रौंद डाला। इस प्रकार दुर्मद और दुष्कर्ण को मारकर भीमसेन सिंह की भाँति गरजने लगे॥३६।४०॥यहदेखकर सब सैनिक हाहाकार करने लगे। भीमसेन का कर्म देखकर सब राजा कहने लगे कि अरे यह तो साक्षात् रुद्र ही, भीम का रूप रखकर, धृतराष्ट्र के पुत्रों के प्राण ले रहे हैं। हे भरत-श्रेष्ठ! इस प्रकार कहते हुए सब राजा भाग खड़े हुए। वे इतने भयभीत और व्याकुल हुए कि कोई किसी

ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवाऽऽवृते महाभये भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे वृकवलगृध्रमोदनं महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ॥ ४६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

की राह नहीं देखता था। सब के सब मोहित और मूर्च्छित-से होकर शीघ्रता से अपने वाहनों को हाँकते हुए भीमसेन के आगे से भागने लगे। पराक्रमी भीमसेन ने रात्रियुद्ध में इस प्रकार कौरव-सेना को मथकर छिन्न-भिन्न कर दिया। पाण्डव पक्ष के श्रेष्ठ क्षत्रिय और राजा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। भीमसेन ने युधिष्ठिर के समीप जाकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा की। धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, राजा विराट, द्रुपद और कैकेय देश के राजकुमार बहुत ही प्रसन्न हुए और बारम्बार भीमसेन की प्रशंसा करने लगे। जिस प्रकार अन्धकासुर के मारे जाने पर देवताओं ने शिव की प्रशंसा की थी उसी प्रकार सब लोग भीमसेन की प्रशंसा करने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! तब वरुण-पुत्रतुल्य देवसदृश आपके पुत्र बहुत ही कुपित हो उठे। वे महात्मा आचार्य के साथ आगे बढ़े। उन्होंने चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा भीमसेन को चारों ओर से घेर लिया। उस समय चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा फैल गया। उस महाभयङ्कर समय में महाभयानक युद्ध होने लगा। महात्मा वीरगण गीदड़, भेड़िये, कौए और गिद्ध आदि मांसाहारी जीवों के लिए आनन्द बढ़ानेवाला अत्यन्त अद्भुत संग्राम करने लगे॥४१।४६॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ पचपन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

सञ्जय उवाच—प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा ।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः ।
तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः ॥ २ ॥
पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके ।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३ ॥
द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत ॥ ४ ॥
कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे ।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५ ॥

एक सौ छप्पन अध्याय ॥ १५६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! प्रायोपवेशन की अवस्था में अपने पुत्र भूरिश्रवा को सात्यकि के हाथ से मारे जाते देखकर सोमदत्त बहुत ही कुपित हो उठे। उन्होंने कहा—हे सात्यकि! तुमने महात्मा देवताओं के द्वारा निश्चित श्रेष्ठ क्षत्रिय धर्म को छोड़कर दस्यु-धर्म का अनुसरण कैसे किया? रण से अलग, अस्त्र शस्त्र त्यागकर दीन भाव से मृत्यु की आकांक्षा करके बैठे हुए, भूरिश्रवा को मारकर तुमने बड़ा अधर्म किया। क्षत्रिय धर्म में निरत विज्ञ पुरुष ऐसे व्यक्ति पर कभी प्रहार नहीं करेगा॥१।३॥ वृष्णिवंश में तुम और वीर प्रद्युम्न यही दो महारथी और तेजस्वी योद्धा माने जाते हो। फिर तुमने उस प्रायोपविष्ट

कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे ।
अद्य छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥ ६ ॥
शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च ।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम् ॥ ७ ॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च ॥ ९ ॥
तत कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः ।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाऽब्रवीत् ॥ १० ॥
कौरवेय न मे त्रासः कथञ्चिदपि विद्यते ।
त्वया सार्धमथाऽन्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ॥ ११ ॥
यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि ।
तथापि न व्यथा काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव ॥ १२ ॥
युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च ।
नाऽहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया ॥ १३ ॥
यदि तेऽस्ति युयुत्साऽद्य मया सह नराधिप ।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते ॥ १४ ॥
हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः ।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा के ऊपर प्रहार करने का नृशंस कार्य क्यों किया जिसका हाथ अर्जुन के बाण से कट गया था? हे दुश्चरित्र ! उस निष्ठुर कर्म का फल तुमको शीघ्र ही प्राप्त होगा। मैं अभी बाण से तुम्हारा सिर काट-कर गिराये देता हूँ। हे यादव! मैं अपने दो पुत्रों की और याग-यज्ञ आदि तथा पुण्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि अर्जुन तुम्हारी रक्षा न करें तो इस रात्रि में, अपने को वीर समझनेवाले, तुमको और तुम्हारे भाइयों को अवश्य मार डालूँगा। हे वृष्णिकुलकलङ्क ! यदि मेरी यह प्रतिज्ञा मिथ्या हो तो मैं घोर नरक को जाऊँ। हे महाराज ! इस प्रकार कहकर कुपित महा-बली सोमदत्त ने ज़ोर से शङ्ख बजाकर सिंहनाद किया ॥५।९॥ तब कमल-नयन, सिंह की सी दाढ़ों से भया-नक, दुर्दर्ष सात्यकि ने क्रोधान्ध होकर अब महाराज सोमदत्त से कहा—हे कौरव ! तुमसे या अन्य लोगों से युद्ध करने में मुझे किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है ॥१०।१२॥ यदि तुम सारी सेना से सुरक्षित होकर भी मुझसे युद्ध करोगे तो भी मैं व्यथित नहीं होने का। मैं क्षत्रिय-धर्म पर चलता हूँ। तुम इस प्रकार असत् पुरुषों के से अनर्थक वाक्यों से युद्ध के समय मुझे डरा नहीं सकते। हे नराधिप ! यदि तुम मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो तो निर्दय होकर मुझ पर तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करो; मैं भी तुम पर वैसे ही प्रहार करूँगा। मैंने तुम्हारे महाबली पुत्र भूरिश्रवा को और

त्वां चाऽप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम् ।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः ॥ १६ ॥
यस्मिन्दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा ।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥ १७ ॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा ।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि ॥ १८ ॥
शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह ।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥
अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि ।
एवमाभाष्य चाऽन्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ ।
ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥ २१ ॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः ।
शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः ।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥
साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात्पर्यरक्षत ॥ २४ ॥
रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम् ।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥

भाई के मारे जाने से दुःखित शल्य को मारा है और अब तुमको भी अन्य पुत्रों और भाइयों सहित मारूँगा। तुम महारथी कौरव हो, इसलिए रण में स्थिर होकर युद्ध और मुझे मारने का यत्न करो॥१३।१६॥जिन महात्मा में आत्मत्याग, जितेन्द्रियता, पवित्रता, अहिंसा, लोकलज्जा, धैर्य, क्षमा आदि सब गुण सदा विद्यमान् रहते हैं उन मृदङ्गकेतु महाराज युधिष्ठिर के तेज अथवा कोप से पहले ही तुम मर चुके हो। इस समय कर्ण और शकुनि के साथ तुम अवश्य ही मरोगे। श्रीकृष्ण के चरणों की, दान-यज्ञ आदि की और कुआँ बावड़ी बाग आदि कि स्थापना के पुण्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं अवश्य ही कुपित होकर तुमको और तुम्हारे पुत्रों को मारूँगा। हाँ, यदि युद्ध छोड़कर भाग जाओगे तो तुम्हारे प्राण बच जायँगे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार परस्पर कटुवचन कहकर वे दोनों पुरुष-श्रेष्ठ वीर क्रोध से लाल नेत्र किये हुए बाणवर्षा करने के निमित्त प्रस्तुत हो गये॥१७।२१॥उस समय कुरु-राज दुर्योधन सहस्र रथ और दस सहस्र हाथी लेकर सोमदत्त को घेरकर उनकी रक्षा करने लगे। अत्यन्त कुपित, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, वज्रतुल्य दृढ़ अङ्गोंवाले, युवा, महाबाहु आपके साले शकुनि भी अपने पुत्र, पौत्रे, इन्द्र के समान पराक्रमी भाई और कुछ अधिक एक लाख घुड़सवार सेना साथ लेकर महाधनुर्धर सोमदत्त की रक्षा करने लगे॥२१।२४॥इसप्रकार बली योद्धाओं

धृष्टद्युम्नोऽभ्ययान्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ।
चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥
आसीद्राजन्बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत्कुरुपुङ्गवम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ।
तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥ २९ ॥
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् ।
तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥
अभ्यद्रवत्ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१ ॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् ।
ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांक्षया ।
ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् ।
सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा ।
सहदेवं तथाऽष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥

से सुरक्षित महावीर सोमदत्त सात्यकि के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। महाबली धृष्टद्युम्न सात्यकि को बाणवर्षा से पीड़ित देखकर, कुपित हो, बहुत सी सेना साथ लेकर उनकी सहायता करने के निमित्त बढ़े। उस समय परस्पर प्रहार करती हुई दोनों सेनाओं में वैसा ही कोलाहल होने लगा जैसा की प्रचण्ड तूफान आने पर समुद्र में होता है। सोमदत्त ने सात्यकि को नव बाण मारे तब सात्यकि ने भी उनको नव बाण मारे। दृढधन्वा सात्यकि के बाणों की गहरी चोट लगने से वीर सोमदत्त मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। मूर्च्छित देखकर उन्हें सारथी शीघ्रता से रणभूमि से हटा ले गया॥२५।३०॥सोमदत्त को सात्यकि के विकट प्रहार से मूर्च्छित देखकर पराक्रमी द्रोणाचार्य कुपित होकर सात्यकि को मार डालने के निमित्त, बड़े वेग से उनकी ओर चले। युधिष्ठिर आदि पाण्डव कुपित आचार्य को आते देखकर सात्यकि की रक्षा करने के निमित्त आगे बढ़े अब उन्होंने सात्यकि को अपने मध्य में कर लिया। हे महाराज! पहले त्रैलोक्य विजय की आकांक्षा रखनेवाले राजा बली से देवताओं ने जैसा घोर संग्राम किया था वैसा ही दारुण संग्राम आचार्य के साथ पाण्डवों के योद्धा करने लगे॥३०।३३॥महातेजस्वी द्रोणाचार्य बाण-वर्षा से पाण्डवसेना को छिन्न-भिन्न और युधिष्ठिर को पीड़ित करने लगे। उन्होंने सात्यकि को दस, धृष्टद्युम्न को बीस, भीमसेन को नव,

द्रौपदेयान्महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे ।
अन्यांश्च सैनिकान्विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन्वै भयाद्राजन्सार्तनादा दिशो दश ॥ ३८ ॥
काल्यमानं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किञ्चिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा द्रोणस्तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत्सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४० ॥
ततो युद्धमभूद्भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन्सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ ॥
व्यधमत्पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवाऽनलः ।
तं ज्वलन्तमिवाऽऽदित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ४३ ॥
दहन्तमहितान्सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।
यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥ ४४ ॥
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम् ।
एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥ ४५ ॥

नकुल को पाँच, सहदेव को आठ, शिखण्डी को सौ, मत्स्यराज विराट को आठ, द्रुपद को दस, द्रौपदी के पुत्रों को पाँच-पाँच, युधामन्यु को तीन, उत्तमौजा को छः और अन्यान्य सेनापति वीरों को असंख्य बाण मारे। इस प्रकार सबको पीड़ित करके वे युधिष्ठिर की ओर वेग से दौड़े॥३३।३७॥आचार्य के बाणों से घायल आर्तनाद करती हुई पाण्डव-सेना भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी। तब अपनी सेना को आचार्य के बाणों से छिन्न-भिन्न देखकर महापराक्रमी अर्जुन कुछ कुपित हो द्रोणाचार्य की ओर वेग से दौड़े। यह देखकर पाण्डव-सेना फिर उत्साह के साथ युद्ध करने के निमित्त लौट पड़ी। अब पाण्डवों की सेना के साथ आचार्य का फिर अत्यन्त घोर संग्राम होने लगा॥३८।४१॥अग्नि जैसे रूई के ढेर को भस्म कर देती है वैसे ही महावीर द्रोणाचार्य, आपके पुत्रों के साथ, चारों ओर विचरकर शत्रुसेना को नष्ट करने लगे। प्रचण्ड सूर्य और प्रज्वलित अग्नि के समान महावीर द्रोणाचार्य मण्डलाकार धनुष घुमाकर निरन्तर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से शत्रुसेना को पीड़ित कर रहे थे। उनका सामना करने की कौन कहे, कोई उनकी ओर नेत्र उठाकर देख भी नहीं सकता था। उस समय समर में निर्भय जा रहे अपराजित आचार्य के सम्मुख जो कोई आया, उसी का सिर कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥४२।४५॥हे महाराज! पाण्डवों की सेना इस प्रकार आचार्य के बाणों

प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।
सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥ ४६ ॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।
ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥
चोदयामास दाशार्हो हयान्द्रोणरथं प्रति ।
भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम् ॥ ४८ ॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मां वह ।
सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोको वाहयद्धयान् ॥ ४९ ॥
पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूपकोसलाः ।
अन्वगच्छन्महाराज केकयाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥
ततो राजन्नभूद्घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२ ॥
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद्राजन्सात्यकिश्च महाबलः ।
चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४ ॥
आसीद्राजन्बलौघानां तदाऽन्योन्यमभिघ्नताम् ।
सौमदत्तिवधात्क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥ ५५ ॥

से निहित, पीड़ित और अत्यन्त भय से आकुल होकर अपने रक्षक अर्जुन के सम्मुख ही फिर भागने लगी। यह देखकर महावीर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! अब तुम शीघ्र ही मेरा रथ द्रोणाचार्य के सम्मुख ले चलो। श्रीकृष्ण ने, अर्जुन के कहने से, श्वेत रङ्ग के घोड़ों को आचार्य के रथ के सम्मुख हाँक दिया॥४५। ४८॥भीमसेन ने अर्जुन को आचार्य के रथ की ओर जाते देखा तो अपने सारथी विशोक से कहा—हे सूत! तुम इस समय मुझे आचार्य की सेना के भीतर ले चलो। आज्ञा प्राप्त होते ही विशोक अर्जुन के रथ के पीछे ही भीमसेन के रथ को ले चला। तब पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, चेदि, करूष, कोशल और केकय देश के वीरगण भी उन दोनों भाइयों को आचार्य की सेना के सम्मुख वेग से जाते देखकर उनके पीछे चले ॥४८। ५१॥हे राजेन्द्र! अब अत्यन्त भयानक संग्राम होने लगा। महावीर अर्जुन दाहने भाग में और भीमसेन बायें भाग में स्थित होकर अपने अनुगामी रथी योद्धाओं के साथ आपकी सेना में प्रवेश हुए। यह देखकर महाबली धृष्टद्युम्न और सात्यकि भी संग्राम करने के निमित्त कौरव-सेना के अगले भाग पर आक्रमण करने चले। प्रचण्ड तूफानी वायु के आघात से महासागर के जल में जैसी उथल-पथल मचती है और अत्यन्त घोर शब्द होता है, वैसे ही महाकोलाहल परस्पर प्रहार करती हुई दोनों सेनाओं में होने लगा॥५२।५५॥उस

द्रोणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतनिश्चयः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।
कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम् ।
विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः ।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् ।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ।
तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥ ६४ ॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ६५ ॥

समय महाप्रतापी वीर अश्वत्थामा सात्यकि को सम्मुख देखकर, भूरिश्रवा के मारे जाने से उत्पन्न, क्रोध से अधीर होकर उनकी ओर वेग से चले। यह देखकर भीमसेन का पुत्र राक्षसराज घटोत्कच लोहे के बने हुए, रीछ के चमड़े से मढ़े हुए, तीस 'नल्व'(४०० हाथ) के लम्बे-चौड़े, यन्त्रसन्नाह आदि से युक्त, आठ पहियों से शोभित, मेघ के समान गम्भीर शब्द करने वाले, आँतों की मालाओं से भयङ्कर, रक्त से तर लाल ध्वजा से अलङ्कृत बहुत बड़े रथ पर बैठकर अश्वत्थामा से युद्ध करने के निमित्त चला। उसके साथ शूल, मुद्गर शिला, वृक्ष आदि हाथ में लिए रौद्ररूप राक्षसों की एक अक्षौहिणी सेना थी। उसके रथ में हाथी या घोड़े नहीं लगे हुए थे, बल्कि घोर पिशाच उसके रथ को खींच रहे थे। उसकी ध्वजा पर एक भारी गिद्ध बैठा हुआ था, जो नेत्र निकाले, पाँव और पर फैलाये भयानक शब्द कर रहा था॥५५।६२॥धनुष चढ़ाकर आ रहे, प्रलयकाल में दण्ड हाथ में लिये मृत्यु के समान दुर्द्धर्ष घटोत्कच को देखकर राजा लोग बहुत ही व्याकुल हो उठे। आपके पुत्र की सेना उस धनुर्द्धर, पर्वत-शिखर के समान, भीमरूप, दाढ़ों से कराल उग्र मुखवाले, नुकीले कानों और चौड़ी ठोढ़ीवाले, उठे हुए केशों से भयावने, विरूपनयन, प्रदीप्तमुख और गहरे पेटवाले, भारी गड्ढे के समान मुख विवरवाले, किरीटधारी, सब प्राणियों को भय-विह्वल बनानेवाले,

वीक्ष्य दीप्तमिवाऽऽयान्तं रिपुविक्षोभकारिणम् ।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥
ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः ।
सन्ध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥
आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः ।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्य पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥
तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥ ७१ ॥
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे ।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥
विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ७३ ॥
भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः ।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥

शत्रुसेना में हलचल डालनेवाले राक्षस घटोत्कच को मुख फैलाये हुए यमराज के समान आते हुए देखकर आतङ्क से काँप उठी। वायु के झोंकों से क्षोभ को प्राप्त हो रही महानदी गङ्गा के समान कौरव सेना, भय के मारे, इधर उधर भागने लगी। घटोत्कच के घोर सिंहनाद से, भय के मारे, हाथी मलमूत्र त्यागने लगे और मनुष्य व्याकुल हो उठे॥६२।६८॥इसके उपरान्त राक्षस लोग सन्ध्याकाल में अधिक बलशाली होकर पृथ्वी पर चारों ओर से घोर शिलाएँ पटकने लगे। लोहे के तीक्ष्ण चक्र, भुशुण्डी, शक्ति प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्र चारों ओर निरन्तर बरसने लगे। हे महाराज! उस भयानक अत्यन्त निष्ठुर सग्राम को देखकर सब राजा लोग, आपके पुत्रगण और कर्ण अत्यन्त व्याकुल और भयविह्वल होकर चारों ओर भागने लगे॥६९।७१॥उस समय केवल अस्त्र-शस्त्र के बल से निर्भय अश्वत्थामा को किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ। वे अपने रथ पर निर्भय बैठकर घटोत्कच से युद्ध करने लगे।उन्होंने अस्त्रों के प्रभाव से क्षण भर में राक्षस घटोत्कच की सब मायाओं को नष्ट कर दिया। यह देखकर राक्षसराज घटोत्कच अत्यन्त क्रुद्ध हो उनके ऊपर घोर बाणों की वर्षा करने लगा। क्रुद्ध सर्प जैसे फुफकारते हुए बिल में प्रवेश होते हैं वैसे ही वे बाण अश्वत्थामा के शरीर को छिन्न-भिन्न करके, रक्त से तर होकर, पृथ्वी

घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥ ७७ ॥
अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ।
वेगेन महताऽऽगच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ७९ ॥
द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
घटोत्कचसुतः श्रीमान्भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ।
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिमेरुरिवाऽऽवृतः ।
अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाऽञ्जनपर्वणः ।
द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चाऽस्य त्रिवेणुकम् ॥ ८३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमविन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत् ।
गदां हेमाङ्गदां राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ॥ ८५ ॥

में प्रवेश हो गये॥७२।७५॥तब महाप्रतापी स्फूर्तिशाली अश्वत्थामा ने कुपित होकर घटोत्कच को दस तीक्ष्ण बाण मारे। अश्वत्थामा के बाणों से मर्मस्थल में पीड़ित घटोत्कच ने उन्हें मार डालने के निमित्त मध्याह्नकाल के सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण, प्रज्वलित मणि हीरे आदि से अलङ्कृत एक लाख आरों से युक्त, छुरे की सी तीक्ष्ण धारावाला एक भयानक चक्र उन पर फेंका। वेग से अपनी ओर आते हुए उस भयङ्कर चक्र को अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाण मारकर गिरा दिया। अभागे पुरुष के अभिप्राय की तरह वह चक्र निष्फल होकर पृथ्वी पर गिर गया॥७६।७९॥अपने चक्र को व्यर्थ होकर गिरते देखकर, सूर्य को राहु जैसे छिपा लेता है वैसे ही, घटोत्कच ने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से वीर अश्वत्थामा के रथ को अदृश्य सा कर दिया। अब अञ्जनगिरि के समान काले घटोत्कच के पुत्र ने अश्वत्थामा को वैसे ही रोका जैसे वेग से आती हुई आँधी को कोई बड़ा पर्वत रोकता है। भीमसेन के पोते और घटोत्कच के पुत्र अञ्जनपर्वा के बाणों की वर्षा से अश्वत्थामा वैसे ही शोभायमान हुए, जैसे बरस रहे मेघ की धाराओं से आवृत सुमेरु पर्वत की शोभा होती है॥७९।८२॥रुद्र, उपेन्द्र और इन्द्र के समान पराक्रमी अश्वत्थामा यह देखकर अत्यन्त कुपित हो उठे। अब उन्होंने एक बाण से अञ्जनपर्वा के रथ की ध्वजा,

आम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाऽभ्याहताऽपतत्।
ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदत् ॥ ८६ ॥
ववर्षाऽञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्यइवांऽशुभिः ।
सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥
महीगत इवाऽत्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।
तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥ ८९ ॥
जघानाऽञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवाऽन्धकम् ।
अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रज्वलिताङ्गदः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।
घटोत्कच उवाच—तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ।
अश्वत्थामोवाच—गच्छ वत्स सहाऽन्यैस्त्वं युध्यस्वाऽमरविक्रम ॥ ९३ ॥
नहि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् ।
कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ।
सञ्जय उवाच—श्रुत्वैतत्क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥

तीन बाणों से रथ, एक बाण से धनुष काटकर चार बाणों से चारों घोड़ों और दो बाणों से दोनों सारथियों को मार डाला। महावीर अञ्जनपर्वा इस प्रकार रथ हीन होने पर सुवर्णबिंदुशोभित खड्ग लेकर अश्वत्थामा की ओर चले। तब अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाण से उसके हाथ में ही उस खड्ग के टुकड़े टुकड़े कर डाले॥८२।८६॥ अब घटोत्कच का पुत्र क्रोध से गदा घुमाता हुआ आगे बढ़ा। उसने वह गदा बड़े वेग से अश्वत्थामा के ऊपर फेंकी। महावीर अश्वत्थामा ने उस गदा को भी बाणों से काट डाला। तब अञ्जनपर्वा एकाएक आकाश में जाकर कालमेघ की भाँति गरजकर अश्वत्थामा के ऊपर बड़े-बड़े वृक्षों की वर्षा करने लगा। आचार्य के पुत्र ने अत्यन्त कुपित होकर सूर्य जैसे अपनी किरणों से मेघ को बेधते हैं वैसे ही, अपने तीक्ष्ण बाणों से मायावी अञ्जनपर्वा के शरीर को छिन्न भिन्न करना आरम्भ किया। तब वह राक्षस आकाश से पृथ्वी पर आकर, अपने सुवर्णमण्डित रथ पर बैठकर, बहुत ऊँचे अञ्जनपर्वत के समान अश्वत्थामा के सम्मुख आया। शिव ने जैसे दृप्त अन्धक दैत्य को मारा था वैसे ही अश्वत्थामा ने लोहकवचधारी अञ्जनपर्वा को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया॥८६।९०॥ हे महाराज! इस प्रकार अपने पुत्र का मारा जाना देखकर वीर घटोत्कच क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और वन को भस्म कर रहे दावाग्नि के समान पाण्डव सेना

अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।
किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाऽऽहवे ॥ ९६ ॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद्वचस्तव ।
भीमात्खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥
पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ९८ ॥
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १०० ॥
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ १०१ ॥
शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत् ॥ १०२ ॥
अथाऽस्त्रसंमर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदाबभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ १०३ ॥
निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जाऽन्तर्हितः पुनः ॥ १०४ ॥

का संहार करनेवाले महावीर अश्वत्थामा के समीप जाकर बोला—हे आचार्य के पुत्र ! तुम क्षण भर यहाँ मेरे सम्मुख ठहर भर जाओ । तुम किसी प्रकार मेरे हाथ से जाने नहीं पा सकते । कार्तिकेय ने जैसे क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण किया था वैसे ही मैं इस समय तुम्हारे शरीर का चीर करके तुम्हें जीता न छोड़ूँगा॥९०।९३॥ घटोत्कच के ये वचन सुनकर अश्वत्थामा कहने लगे—हे वत्स ! हे अपार विक्रम घटोत्कच ! जाओ, और लोगों से युद्ध करो, मुझसे न उलझो। भीमसेन का पुत्र होने के कारण तुम मेरे भी पुत्र हो । पुत्र को कदापि पिता से युद्ध करना या पिता के अन्तःकरण में क्रोध अथवा खेद उत्पन्न करना न चाहिए । हे हिडिम्बा के पुत्र ! तुम पर मैं कुपित नहीं हूँ, किन्तु क्रोध आने पर मनुष्य अपनी हत्या तक कर डालते हैं, पुत्र-वध की कौन कहे । [इसलिए यदि तुम जीना चाहते हो तो मुझे कुपित न करके और लोगों से जाकर युद्ध करो ।] ॥९३।९५॥सञ्जय कहते हैं—तब पुत्रशोक से पीड़ित घटोत्कच ने लाल लाल नेत्र करके अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा से कहा—हे द्रोण पुत्र ! मैं क्या नीच पुरुषों की भाँति समर से इतना भयभीत होता हूँ, जो तुम ऐसी बातें कहकर मुझे धमकी दे रहे हो । तुम्हारा यह कहना उचित नहीं है । मैं कौरवों के बहुविस्तृत वंश में भीमसेन के वीर्य से उत्पन्न हुआ हूँ । मैं युद्ध से कदापि न हटनेवाले पाण्डवों का पुत्र और बल में रावण के समान राक्षसों का राजा हूँ । हे द्रोण पुत्र ! क्षण भर ठहर जाओ, मेरे सम्मुख से तुम जीने नहीं जा सकते । मैं रणभूमि में तुम्हारी युद्ध की इच्छा को दूर कर दूँगा॥९७।१००॥क्रोध से जिसके नेत्र लाल हो रहे हैं ऐसा राक्षस घटोत्कच इतना कहकर, गजराज पर सिंह की भाँति अश्वत्थामा पर प्रहार करने

सोऽभवद्गिरिरित्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ १०५ ॥
तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसङ्घैर्न विव्यथे ॥ १०६ ॥
ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनाऽस्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥ १०७॥
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद्रणे ॥ १०८ ॥
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥ १०९ ॥
स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥ ११० ॥
स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनाऽऽयतकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १११ ॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ११२ ॥
विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हिडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११३ ॥

के निमित्त झपटा। मेघ जैसे जल की वर्षा करते हैं वैसे ही क्रोधान्ध घटोत्कच, रथ के डण्डे के समान, लम्बे बड़े बाण महारथी अश्वत्थामा के ऊपर बरसाने लगा ॥१००।१०१॥वीर अश्वत्थामा ने उन बाणों को अपने पास तक नहीं आने दिया,अपने बाणों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस समय जान पड़ने लगा कि आकाशमार्ग में बाणों का अलग ही संग्राम हो रहा है। अस्त्र शस्त्रों के परस्पर में टकराने और रगड़ खाने से चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिनसे जान पड़ा कि आकाश में असंख्य जुगनू चमक रहे हैं। इस प्रकार अश्वत्थामा ने घटोत्कच की अस्त्र माया को मिटा दिया। तब घटोत्कच ने अन्तर्द्धान होकर और माया उत्पन्न की॥१०२।१०४॥उसने बड़े बड़े वृक्षों से युक्त भारी पर्वत का रूप रख लिया और वह झरने की धाराओं के समान शूल, प्रास, खड्ग, मुशल आदि अस्त्र शस्त्र अश्वत्थामा के ऊपर बरसाने लगा। महाबाहु अश्वत्थामा उस अञ्जनराशिसदृश पर्वत और उससे निरन्तर गिरनेवाले अस्त्र शस्त्रों की वर्षा को देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुए।उन्होंने हँसकर वज्रास्त्र छोड़ा,जिससे वह भारी पर्वत चूर चूर होगया॥१०५।१०७॥ घटोत्कच इन्द्रधनुषसे शोभित काले मेघका रूप रखकर अश्वत्थामा के ऊपर शिलाओं की घोर वर्षा करने लगा। महावीर अश्वत्थामा ने वायव्य अस्त्र का प्रयोग करके उस मेघ को हटा दिया। वीर अश्वत्थामा ने लाखों बाणों से सब दिशाओं को व्याप्त करके एक लाख रथी योद्धा मार डाले॥१०८।११०॥अब राक्षसेन्द्र घटोत्कच सिंहशार्दूल और मस्त हाथियों के समान पराक्रमी, विकटमुख, विकृतमस्तक और टेढ़ी मेढ़ी गर्दनवाले, अनेक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित, कवचधारी भयानक आकारवाले, क्रोध से निकली हुई लाल लाल आँखों

नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥ ११४ ॥
उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥ ११५ ॥
तिष्ठ दुर्योधनाऽद्य त्वं न कार्यः संभ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११६ ॥
निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवाऽस्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥ ११७ ॥

दुर्योधन उवाच—न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच—अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौवलमब्रवीत् ।
वृतं रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥ ११९ ॥
षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् ।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥ १२० ॥
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः ।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥ १२१ ॥
पुरञ्जयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः ।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ॥ १२२ ॥
कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥ १२३ ॥

से भयङ्कर, इन्द्रसदृश महापराक्रमी, युद्धप्रिय, दुर्दर्प, रथ हाथी घोड़े आदि पर सवार राक्षसों की सेना साथ लेकर फिर अश्वत्थामा के सम्मुख आ गया। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्योधन ये देखकर बहुत ही शङ्कित हुए ॥११४।११५॥ तब महावीर अश्वत्थामा ने दुर्योधन को विषादग्रस्त व्याकुल देखकर कहा। हे महाराज! आप धैर्य धारण करके भाइयों और पराक्रमी इन्द्रतुल्य राजाओं सहित यहाँ ठहरिए। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि आपके शत्रुओं को मारूँगा, आप हार भी नहीं सकते। आप यत्न करके अपनी सेना को ढाढ़स बँधाइए ॥११६।११७॥ हे कुरुकुलश्रेष्ठ! तब राजा दुर्योधन ने अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर कहा—हे आचार्य नन्दन! तुम्हारा हृदय जो ऐसा उदार है और हम लोगों के प्रति तुमको ऐसी भक्ति और प्रेम है सो कुछ अद्भुत या आश्चर्यकी बात नहीं है॥११८॥ सञ्जय कहते हैं कि राजा दुर्योधन अब शकुनि से कहने लगे—हे मामा जी! महावीर अर्जुन रण में शोभित होनेवाले एक सहस्र घोड़ों से युक्त रथ साथ लिए हुए युद्ध कर रहे हैं। तुम साठ सहस्र रथी योद्धा साथ लेकर उनसे युद्ध करने जाओ। कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुण्डभेदी, पुरञ्जय, दृढरथ, पताकी, हेमकम्पन, शल्य, अरुणि, इन्द्रसेन, सञ्जय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा, सुदर्शन, पुरुमित्र के पुत्रगण, और साठ-

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥१२४॥
दारितान्द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥१२५॥
एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः ।
पिप्रीषुस्ते सुतान्राजन्दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥१२६॥
अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥१२७॥
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥१२८॥
स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥१२९॥
भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः॥१३०॥
ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान्वारिधारा इवाऽम्बुदः ॥१३१॥
ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खचरान्खचरं प्रति ॥१३२॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३३॥

गण और साठ सहस्र पैदल सेना तुम्हारे साथ सहायता करने के निमित्त जायगी॥११९।१२३॥हे मामाजी ! इन्द्र ने जैसे असुरों का सत्यानाश किया था वैसे ही तुम भीमसेन, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर को मारो। मेरी जय की आशा तुम्हीं पर निर्भर है। कार्त्तिकेय ने जैसे दानवों को मारा था वैसे ही तुम, अश्वत्थामा के बाणों से घायल और छिन्न-भिन्न, पाण्डवों को मार डालो। हे राजेन्द्र ! दुर्योधन के वचन सुनकर शकुनि आपके पुत्रों को प्रसन्न और पाण्डवों को नष्ट करने के अभिप्राय से, युद्ध करने के निमित्त शीघ्र ही चल दिये ॥१२४।१२६॥उस समय, इन्द्र और प्रह्लाद के युद्ध के समान अश्वत्थामा और घटोत्कच का दारुण संग्राम होने लगा। घटोत्कच ने क्रुद्ध होकर विष और अग्नि के समान उग्र दस बाण अश्वत्थामा के वक्षःस्थल में ताक कर मारे। घटोत्कच के प्रहार से अश्वत्थामा बहुत ही पीड़ित हुए और आँधी से काँपते हुए पेड़ की तरह विचलित होकर रथ पर ध्वजदण्ड के सहारे बैठ गये ॥१२७।१२९॥घटोत्कच ने फिर स्फूर्ति के साथ एक अञ्जलिक बाण से अश्वत्थामा के हाथ के सुवर्णमण्डित दृढ धनुष को काट डाला। अश्वत्थामा ने शीघ्र अन्य सुन्दर दृढ धनुष लेकर, मेघ जैसे जल बरसाता है वैसे ही, राक्षस-सेना के ऊपर सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण शत्रु-विनाशन बाण निरन्तर बरसाना आरम्भ कर दिया ॥१३०।१३२॥चौड़ी छाती और लम्बे डील-डौलवाले

विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ १३४ ॥
स दग्ध्वाऽक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १३५ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाऽहितान् ॥ १३६ ॥
ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥ १३७॥
घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याऽथ राक्षसाः ।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥ १३८ ॥
व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम् ।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३९ ॥
हन्तुमभ्यद्रवन्द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः ।
शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥ १४० ॥
खड्गान्गदाभिन्दिपालान्मुसलानि परश्वधान् ।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान्कम्पनाञ्छितान् ॥ १४१ ॥
स्थूलान्भुशुण्ड्यश्मगदास्थूणान्कार्ष्णायसांस्तथा।
मुद्गरांश्च महाघोरान्समरे शत्रुदारणान् ॥ १४२ ॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः ।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४३ ॥

राक्षस, अश्वत्थामा के बाणों से पीड़ित होकर, सिंह से सताये हुए हाथियों की सी दशा को प्राप्त हुए। जैसे प्रलयकाल में अग्निदेव जीवों को जलाते हैं वैसे ही महाबली अश्वत्थामा कुपित होकर सारथी और हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों सहित राक्षसों को बाणों से नष्ट करने लगे।पूर्व समय में भगवान् शूलपाणि आकाश-मार्ग में त्रिपुरासुर को भस्म करके जैसी शोभा को प्राप्त हुए थे वैसे ही महावीर अश्वत्थामा भी राक्षस-सेना का संहार करके अत्यन्त शोभायमान हुए॥१३३।१३६॥ अब राक्षसराज घटोत्कच ने क्रोधान्ध होकर अश्वत्थामा को मार डालने के निमित्त भयानक कर्म करनेवाले राक्षसों की सेना को आज्ञा दी। हे महाराज! दाँतों की चमक से जिनके मुखमण्डल जगमगा रहे थे ऐसे, लम्बी जीभें निकाले हुए, विकटमूर्ति भयङ्कर राक्षस-गण घटोत्कच की आज्ञा पाते ही क्रोध से लाल लाल नेत्र निकालकर, मुख फैलाकर, सिंहनाद करके पृथ्वी को कँपाते हुए अश्वत्थामा को मारने के निमित्त वेग से दौड़ पड़े॥१३७।१४०॥वे लोग अश्वत्थामा के सिर पर शक्ति, शतघ्नी, परिघ, वज्र, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल, मुसल, परश्वध, प्राम, तोमर, कणप, पैने कम्पन, स्थूल, भुशुण्डी, अश्मगदा, लोहमय स्थूणा, शत्रुओं को चूर्ण करनेवाले महाघोर मुद्गर आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करने लगे॥१४१।१४३॥हे महा-राज! आपके पक्ष के योद्धा लोग यह देखकर बहुत

तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
पतमानं समीक्ष्याऽथ योधास्ते व्यथिताऽभवन् ॥ १४४ ॥
द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रितम् ।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥ १४५ ॥
ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः ।
निजघ्ने राक्षसान्द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ १४६ ॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १४७ ॥
ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः ।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन्द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः ॥ १४८ ॥
तत्राऽद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १४९ ॥
यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित् ।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ १५० ॥
स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे ।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्त्तक इवाऽनलः ॥ १५१ ॥
तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥ १५२ ॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद्वीराद्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १५३ ॥
स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥ १५४ ॥

ही व्यथित और शङ्कित हो उठे, किन्तु महावीर अश्वत्थामा तनिक भी नहीं व्याकुल हुए । वे तीक्ष्ण वज्र तुल्य बाणों से उन अस्त्र शस्त्रों की वर्षा को व्यर्थ करके तुरन्त ही दिव्य मंत्र से अभिमन्त्रित सुवर्णपुङ्ख बाणों के प्रहार से राक्षस सेना को घायल और नष्ट करने लगे । विशाल वक्ष स्थलवाले राक्षस लोग उनके बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर, सिंह ने जिन पर आक्रमण किया हो उन हाथियों की भाँति, व्याकुल हो उठे और फिर कुपित होकर उन्हें मार डालने के निमित्त दौड़े ॥१४४।१४८॥ तब दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता अश्वत्थामा ने अत्यन्त दुष्कर विचित्र पराक्रम प्रकट करके अकेले ही क्षण भर में घटोत्कच के सम्मुख प्रज्वलित बाणों से उस राक्षस सेना को नष्ट कर दिया और सब प्राणियों का संहार कर चुके प्रलयकाल के संवर्तक अग्नि की भाँति वे प्रज्वलित हो उठे॥१४९,१५१॥ उस समय राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच को छोड़कर और कोई भी पाण्डव-पक्ष का राजा या योद्धा अश्वत्थामा को नज़र उठाकर देख तक भी नहीं सकता था । पराक्रमी घटोत्कच

स्वं सूतमब्रवीत्क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।
स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥१५५॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।
स विनद्य महानादं सिंहवद्भीमविक्रमः ॥१५६॥
चिक्षेपाऽऽविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥१५७॥
तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥१५८॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साऽशनिर्भृशदारुणा ॥१५९॥
द्रौणेस्तत्कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥१६०॥
धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान्पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥१६१॥
धृष्टद्युम्नस्त्वसंभ्रान्तो मुमोचाऽऽशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खान्विशिखान्द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥१६२॥
ततो मुमोच नाराचान्द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः ।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥१६३॥

क्रोध से लाल लाल नेत्र निकालकर, विषैले नागतुल्य बाणों से पाण्डव सेना को भस्म कर रहे, अश्वत्थामा की ओर देखने लगा। उसने हाथ पर हाथ पटककर, दाँतों से होठ चबाकर, अपने सारथी से कहा—हे सूत! तुम तुरन्त अश्वत्थामा के समीप मेरा रथ ले चलो॥१५२।१५४॥ सारथी ने आज्ञा पाते ही जयपताका युक्त प्रकाशमान घोररूप राक्षसेन्द्र का रथ हाँककर अश्वत्थामा के समीप पहुँचा दिया। अब राक्षस और अश्वत्थामा का घोर युद्ध होने लगा। पराक्रमी राक्षस ने घोर सिंहनाद करके अश्वत्थामा के ऊपर आठ घण्टों से शोभित देवनिर्मित महाघोर वज्र घुमाकर फेंका। अश्वत्थामा ने शीघ्र ही रथ पर धनुष रखकर, उछलकर, उस वज्र को हाथों से पकड़ लिया और उलटे घटोत्कच के ही ऊपर उसका प्रहार किया। राक्षस उसी समय रथसे कूदकर अलग होगया॥१५५।१५८॥ वह शङ्कर-निर्मित वज्र राक्षस के घोड़े, सारथी और ध्वजा सहित रथ को भस्म करके पृथ्वी में समा गया। यह देखकर सब लोग अश्वत्थामा की बहुत बहुत प्रशंसा करने लगे। तब पराक्रमी घटोत्कच धृष्टद्युम्न के रथ पर भाग गया। इन्द्रधनुष के समान दृढ धनुष लेकर वह फिर अश्वत्थामा के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा॥१५९।१६१॥ महावीर धृष्टद्युम्न भी निर्भय होकर अश्वत्थामा के वक्षःस्थल में विषैले सर्पसदृश सुवर्ण पुङ्खयुक्त बाण मारने लगे। महावीर अश्वत्थामा उन दोनों को असंख्य नाराच बाण मारने लगे। राक्षस और धृष्टद्युम्न ने अग्नितुल्य उग्र बाणों से अश्वत्थामा

अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ १६४ ॥
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥ १६५ ॥
ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥ १६६ ॥
तत्राऽद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १६७ ॥
निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ १६८ ॥
मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ १६९ ॥
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥ १७० ॥
निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ १७१ ॥
क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचंद्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥ १७२ ॥
प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ १७३ ॥

के सब नाराच बाण काट डाले। हे महाराज! इस प्रकार उन दोनों वीरों को अत्यन्त घोर, और अश्वत्थामा तथा अन्य वीरों के लिए उत्साह और आनन्द को बढ़ानेवाला, संग्राम होने लगा॥१६२।१६४॥तब महाबली भीमसेन सहस्र रथ, तीन सौ हाथी और छः सहस्र घोड़े लेकर उस स्थान में आये। महापराक्रमी अश्वत्थामा उस समय घटोत्कच और भाइयों सहित धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। उन्होंने वहाँ पर ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखलाया कि पृथ्वी पर और कोई योद्धा शायद वैसा पराक्रम न दिखला सकता॥१६५।१६७॥उन्होंने क्षण भर में महावीर भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन और केशव के सम्मुख ही उस असंख्य हाथियों, रथों, सारथियों और घोड़ों से परिपूर्ण राक्षसों की एक अक्षौहिणी सेना को मार डाला। अश्वत्थामा के भयङ्कर नाराच बाणों से घायल और विदीर्ण होकर बड़े बड़े हाथी, शिखर सहित पर्वतों की भाँति, पृथ्वी पर गिरने लगे। कटी हुई हाथियों की सूँड़ें चारों ओर रणभूमि में लोट रही थीं, जिन्हें देखने से जान पड़ता था कि भयानक सर्प घूम रहे हैं॥१६८।१७१॥सुनहरी दण्डों के श्वेत छत्र कट-कटकर गिरने से जान पड़ने लगा कि प्रलयकाल में आकाशमण्डल चन्द्रमा, सूर्य और ग्रह आदि से परिपूर्ण हो रहा है। उस समय अश्वत्थामा के बाणों की चोट खाकर असंख्य हाथी, घोड़े, मनुष्य मरने से समरभूमि में

कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥ १७४॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥ १७५॥
मज्जामांसमहापङ्कां कवन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥ १७६॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसंभवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१७७॥
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥ १७८॥
निहत्य राक्षसान्बाणैर्द्रौणिर्हैडिंबिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥ १७९ ॥
सनाराचगणैः पार्थान्द्रौणिर्विद्धो महावलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥ १८०॥
पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥ १८१॥
श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥ १८२॥
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चाऽसौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥ १८३॥

कायरों के मन में भय उत्पन्न करनेवाली रक्त की नदी बह चली। वहाँ बड़ी ध्वजाएँ मेंढक-सी, नगाड़े बड़े बड़े कछुए-से, श्वेत छत्र हंसपंक्ति-से, चँवर फेनपुञ्ज-से, कङ्क और गिद्ध पक्षी बड़े बड़े ग्राह-से, अनेकों शस्त्र मछली-से, बड़े-बड़े हाथी चट्टान-से, मरे हुए घोड़े मगर-से, रथ तटभूमि से, पताकाएँ रुचिर वृक्ष सी, बाण छोटी मछली-से, प्राम शक्ति ऋष्टि आदि शस्त्र डुण्डुभ पक्षी-से, कबन्ध डोंगी से, केश सेवार और घास-से और योद्धाओं का आर्तनाद उसका गर्जन सा प्रतीत होता था। उस महारौद्र नदी में मांस और मज्जा की भारी कीचड़ हो रही थी। *यह महाघोर नदी यमराज्यरूपी* महासागर से मिलने जा रही थी॥१७२।१७८॥हे राजेन्द्र! वीर अश्वत्थामा इस प्रकार राक्षस-सेना का नाश करके फिर तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से घटोत्कच को पीड़ित करने लगे। वे अत्यन्त कुपित होकर भीमसेन और धृष्टद्युम्न को भी पीड़ा पहुँचाने लगे। अश्वत्थामा ने पाण्डवों को नाराच बाणों से घायल करके द्रुपद के पुत्र सुरथ को मार डाला। इसके पश्चात् द्रुपद के पुत्र शत्रुञ्जय, बलानीक, जयाश्व, जयानीक और राजा श्रुताह्व को मार गिराया। फिर घोर सिंहनाद करके सुवर्ण-पुङ्खयुक्त अन्य तीन तीक्ष्ण बाणों से हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेन नाम के तीन वीरों को यमपुर भेज दिया। अब दस बाणों से राजा कुन्तिभोज के दस पुत्रों के प्राण हर लिये॥१७९।१८३॥महापराक्रमी अश्वत्थामा

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥ १८४॥
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम् ।
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥ १८५॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते ।
तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १८६॥
द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् ।
ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥ १८७॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥ १८८ ॥
अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताऽभूद्गिरिशिखरैरिव दुर्गमाऽतिरौद्रा ॥ १८९ ॥
तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसङ्घा नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १९० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५६ ॥

ने अत्यन्त कुपित होकर धनुष पर एक यमदण्डतुल्य उग्र और सीधा जानेवाला बाण चढ़ाकर कान तक धनुष की डोरी खींची और वह बाण घटोत्कच को ताककर मारा। वह बाण धनुष से छूटते ही घटोत्कच के हृदय को चीरता हुआ पुङ्ख सहित पृथ्वी में प्रवेश हो गया। महारथी धृष्टद्युम्न ने घटोत्कच को गिरते देखकर समझा कि वह मर गया। तब वे व्याकुल होकर अश्वत्थामा के आगे से अपना रथ हटाकर भाग खड़े हुए। यह देखकर पाण्डव सेना भी संग्राम छोड़कर भागने लगी॥१८४।१८७॥हे महाराज!इस प्रकार युधिष्ठिर के योद्धाओं को परास्त कर और शत्रुसेना को भगाकर महाबली अश्वत्थामा शेर की भाँति गरजने लगे। आपके पुत्र और अन्य सब युद्ध देखनेवाले लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। सैंकड़ों बाणों से जिनके शरीर कट फट गये हैं ऐसे मरे और अधमरे पड़े हुए राक्षसों के पर्वतशिखर से शरीरों से वह रणभूमि चारों ओर अत्यन्त दुर्गम और भयानक हो उठी। हे राजेन्द्र! उस समय सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, सुपर्ण, पितृगण, पक्षी, राक्षस, भूतगण, अप्सराएँ, देवता और आपके पुत्र तथा अन्य वीर लोग महारथी अश्वत्थामा की बार-बार प्रशंसा करने लगे॥१८७।१९०॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ छप्पन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५७ ॥

सञ्जय उवाच —द्रुपदस्याऽऽत्मजान्दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान्राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ३ ॥
ततः समभवद्युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकांक्षिणाम् ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥
सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ॥ ६ ॥
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥
शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।
सात्वतोऽप्यग्निसङ्काशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।
युगपत्पेततुर्वीर घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।
व्यामोहिते तु तनये वाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥ ११ ॥
विसृजच्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।
भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे वाह्लीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥

एक सौ सतावन अध्याय ॥ १५७ ॥

सञ्जय कहते हैं हे महाराज ! तब धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि ने अश्वत्थामा के प्रहार से द्रुपद के पुत्रों, कुन्तिभोज के पुत्रों और सहस्रों राक्षसों की मृत्यु देखकर यत्नपूर्वक युद्ध करने का ही निश्चय कर लिया । उस समय फिर विजय की आकांक्षा से युद्ध करनेवाले कौरवों और पाण्डवों में घोर संग्राम होने लगा । उधर महावीर सोमदत्त ने सात्यकि को फिर युद्ध करने के निमित्त उद्यत देख कर, कुपित होकर, उनके ऊपर असंख्य बाण बरसाना आरम्भ किया । उनके बाणों से सात्यकि और उनका रथ छिप सा गया । तब पराक्रमी भीमसेन सात्यकि की सहायता करने लगे॥१।४॥उन्होंने सोमदत्त को दस तीक्ष्ण बाण मारे । महारथी वीर सोमदत्त ने भी भीमसेन को सौ बाण मारे । तब कुपित सात्यकि ने पुत्रशोक से पीड़ित, बूढ़े, बूढ़ों के योग्य गुणों से युक्त, नहुष के पुत्र ययाति के समान प्रतापी सोमदत्त को दस तीक्ष्ण, वज्रतुल्य चोट पहुँचानेवाले, बाण मारे॥ ५। ७॥फिर एक शक्ति मारकर और सात बाण मारे । उधर भीमसेन ने भी सात्यकि की सहायता करने के निमित्त एक लोहे का भारी बेलन सोमदत्त के सिर पर मारा । सात्यकि ने एक अग्नितुल्य उग्र और तीक्ष्ण बाण सोमदत्त की छाती में फिर मारा । वह घोर बेलन और उग्र बाण

प्रपीडयन्महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।
प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरन्दर इवाऽशनिम् ।
स तथाऽभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥
प्राप्य चेतश्च बलवान्गदामस्मै ससर्ज ह ।
सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाऽद्रिराट् ।
तस्मिन्विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन्भीमं दश दाशरथेः समाः ।
नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि ।
तान्दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान् ॥ १८ ॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।
ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।
नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य तवाऽऽत्मजान् ॥ २० ॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।
ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्बली ।
ततः सप्त रथान्वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥

दोनों एक साथ ही सोमदत्त के शरीर में लगे और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥८।११॥अपने पुत्रकी यह दशा देखकर बाह्लीक अत्यन्त कुपित हो, प्रलयकाल के मेघ के समान, बाणवर्षा करते हुए सात्यकि की ओर वेग से चले। तब भीमसेन ने, सात्यकि की सहायता करने के निमित्त, वृद्ध बाह्लीक को नव विकट बाण मारे। उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीमसेन की छाती में, इन्द्र जैसे वज्रप्रहार करें वैसे ही, एक तीव्र शक्ति मारी ॥११।१४॥उस शक्ति की चोट से भीमसेन काँप उठे और मूर्च्छित हो गये। क्षण भर में सावधान होने पर भीमसेन ने बड़े वेग से एक भारी गदा बाह्लीक के सिर पर मारी। उस गदा ने बाह्लीक के सिर को चूर चूर कर दिया। वे मरकर, वज्र से फटे हुए पर्वत की भाँति, पृथ्वी पर गिर पड़े॥१४।१६॥हे महाराज! इस प्रकार वृद्ध वीर बाह्लीक के मरने पर रामचन्द्र के तुल्य पराक्रमी आपके दस पुत्र नागदत्त, दृढरथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ, सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी भीमसेन के सम्मुख आकर उन्हें प्रहारों से पीड़ित करने लगे। उन्हें देखकर भीमसेन अत्यन्त ही कुपित हो उठे। उन्होंने दस उग्र बाण लेकर, एक-एक बाण मर्मस्थल में मारकर, दसों को यमपुर भेज दिया। आँधी से टूटकर पर्वत पर से गिरनेवाले वृक्षों की भाँति वे दसों राजकुमार मरकर रथों से नीचे गिर पड़े॥१६।२०॥इस प्रकार दस नाराच बाणों से

निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।
अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥ २४ ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।
स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाऽचलः ॥ २५ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवाऽतिरथान्बली ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरान्विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २६ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवाऽनीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चाऽनघ ॥ २७ ॥
अम्बष्ठान्मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान्सशिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥
अभीषाहाञ्छूरसेनान्बाह्लीकान्सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥
यौधेयान्मालवान्राजन्मद्रकाणां गणान्युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान्बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
हताऽऽहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥
सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तत्र पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥

आपके पुत्रों को मारकर पराक्रमी भीमसेन कर्ण के प्रिय पुत्र वृषसेन को बाण वर्षा से व्याकुल करने लगे। तब कर्ण के भाई वृकरथ भीमसेन को नाराच बाण मारने लगे। बली भीमसेन उन पर भी घोर प्रहार करते हुए आगे बढ़े। इसके पश्चात् भीमसेन ने आपके सात महारथी सालों को मारकर पराक्रमी महारथी शतचन्द्र को नाराच बाणों के प्रहार से मार डाला ॥२०।२३॥ शतचन्द्र के वध को न सह सकने के कारण, अत्यन्त कुपित होकर, शकुनि के भाई पाँच महारथी—गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त—वेग से भीमसेन के सम्मुख आकर उन पर तीक्ष्ण नाराच बाण बरसाने लगे। जल की वर्षा से न डिगनेवाले पर्वत की भाँति उनके बाणप्रहार से व्यथित न होनेवाले पराक्रमी भीमसेन ने पाँच ही बाणों से उन पाँचों अतिरथी वीरों को मार डाला। उन पाँचों भाइयों को मरते देखकर अन्यान्य राजा लोग भय के मारे भागने लगे॥२३।२६॥ हे राजेन्द्र ! इसी समय धर्मराज युधिष्ठिर भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने द्रोणाचार्य तथा कौरवपक्ष के वीर योद्धाओं के सम्मुख ही आपके पक्ष के अम्बष्ठ, मालव, त्रिगर्त, शिबि, अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक, वसाति, यौधेय और मद्र देश के वीरों की सेना को असंख्य बाणों से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उनके रक्त और मांस से पृथ्वी में कीचड़ भी हो गई॥२७।३०॥ उस समय युधिष्ठिर के रथके सम्मुख केवल "मारो,

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥
तस्मिन्विनिहते चाऽस्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।
क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चाऽस्त्राणि धर्मजः॥ ३५ ॥
जघानाऽस्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥
पतिः कुरूणां गजसिंहगामी विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकाराऽस्त्रमहीनतेजा माहेन्द्रमन्यत्स जघान तेन ॥ ३८ ॥
विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥
ततो नाऽज्ञासिषं किञ्चिद्घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४० ॥
ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥
ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥

पकड़ लाओ, खींच लो, काट डालो, बाणों से बेध डालो" इत्यादि शब्द सुनाई पड़ रहे थे और घोर कोलाहल हो रहा था। युधिष्ठिर को कौरव-सेना का संहार करते और उसे भगाते देखकर महारथी द्रोणाचार्य, दुर्योधन के कहने से, आगे बढ़े और युधिष्ठिर को बाण वर्षा से पीड़ित करने लगे। फिर उन्होंने कुपित होकर महाराज युधिष्ठिर के ऊपर वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया। धर्मराज ने अपने अस्त्र से शीघ्र ही उस अस्त्र को व्यर्थ कर दिया॥३१।३३॥ हे महाराज! इस प्रकार वायव्य अस्त्र निष्फल होने पर द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने युधिष्ठिर को मारने की इच्छा से निरन्तर क्रमशः वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र अस्त्र का प्रयोग किया। किन्तु धर्मराज ने निर्भय भाव से अपने अस्त्रों से द्रोणाचार्य के सब अस्त्रों को निष्फल कर दिया॥३४।३६॥ तब दुर्योधन के हितैषी आचार्य ने धर्मराज को मारने और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त प्रजापति और इन्द्र के अमोघ भयङ्कर अस्त्र प्रकट किये। गज और सिंह के समान पराक्रमी, चौड़ी छातीवाले, विशाल लाल नेत्रोंवाले, महातेजस्वी युधिष्ठिर ने भी माहेन्द्र अस्त्र का प्रयोग करके द्रोणाचार्य के अस्त्रों को शान्त कर दिया। हे महाराज! इस प्रकार सब अस्त्रों के बारम्बार व्यर्थ होने पर महावीर द्रोणाचार्य क्रोध के मारे अधीर हो उठे। उन्होंने युधिष्ठिर के नाश के निमित्त ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया॥३६।३९॥ हे

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत्क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ४३ ॥
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥
केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥
ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८ ॥
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

राजेन्द्र ! उस ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से रणभूमि में घना अँधेरा छा गया। उस समय हम लोगों का कुछ भी नहीं सूझता था। योद्धा लोग भयभीत हो गये। तब युधिष्ठिर ने भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और उसके प्रभाव से द्रोणाचार्य के ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया। यह देखकर आपके प्रधान-प्रधान योद्धा लोग रणनिपुण, धनुर्द्धर वीरों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिर की बारम्बार प्रशंसा करने लगे॥४०।४२॥इसके पश्चात् युधिष्ठिर को छोड़कर द्रोणाचार्य क्रोध से लाल नेत्र किये हुए दूसरी ओर झुके और वायव्य अस्त्र से राजा द्रुपद की सेना को पीड़ित करने लगे। पाञ्चालसेना के योद्धा लोग द्रोणाचार्य के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर, महारथी अर्जुन और बली भीमसेन के सम्मुख ही, धैर्य छोड़कर भाग खड़े हुए। तब अर्जुन और भीम एकाएक आचार्य की ओर लौट पड़े और असंख्य रथ साथ में लेकर शत्रुदल के सम्मुख आ गये। अर्जुन दाहनी ओर से और भीमसेन बाईं ओर से शत्रुसेना पर आक्रमण करके बाण बरसाने और आचार्य को पीड़ित करने लगे॥४३।४६॥महातेजस्वी पराक्रमी कैकेय, मत्स्य, सृञ्जय, पाञ्चाल और यादवगण भी, अर्जुन और भीमसेन के साथ, शत्रुओं पर वेग से आक्रमण करने लगे। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उस अन्धकारपूर्ण दारुण रण में निद्रा से व्याकुल कौरवसेना के योद्धाओं को अर्जुन के बाण विदीर्ण और प्राणहीन करने लगे। महावीर द्रोणाचार्य और आपके पुत्र राजा दुर्योधन किसी प्रकार भी भीमसेन और अर्जुन को नहीं रोक सके॥४७।४९॥

— ० —

द्रोणपर्व का एक सौ सत्तावन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५७ ॥

अथ अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

सञ्जय उवाच— उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

अयं स काल सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान्योधान्महारथान् ॥ २ ॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान्समन्तात्संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥
एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥
कर्ण उवाच—परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरन्दरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान्पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥
जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥
सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्याऽमोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ८ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥
मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान्सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥
पञ्चालान्केकयांश्चैव वृष्णींश्चाऽपि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥

एक सौ अट्ठावन अध्याय ॥ १५८ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! दुर्योधन पाण्डव-सेना को बहुत जोर पकड़ते देखकर उसके पराक्रम को अत्यन्त असह्य समझ कर्ण से कहने लगे—हे वीर कर्ण ! हे मित्रवत्सल ! यही समय मित्र के कर्तव्य को कर दिखाने का है। इसलिए तुम हमारे पक्ष के योद्धाओं की रक्षा करो। फुफकार रहे कुपित सर्प के समान भयङ्कर महारथी पाञ्चाल, कैकेय, मत्स्य और पाण्डवों ने हमारी सेना को घेर लिया है। वे हमारी सेना को काट रहे हैं। यह देखो, इन्द्र के समान पराक्रमी विजयी पाञ्चालगण और पाण्डव प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद कर रहे हैं॥१।४॥महावीर कर्ण ने दुर्योधन के वचन सुन-कर कहा—हे महाराज ! तुम धैर्य धरो। आज यदि स्वयं इन्द्र आकर अर्जुन की रक्षा करें तो उन्हें भी परास्त करके मैं अर्जुन को मारूँगा। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज तुम्हारा प्रिय करने के निमित्त इन पाञ्चालों और पाण्डवों को मारूँगा और शङ्कर के पुत्र कार्तिकेय ने जैसे असुरविनाश करके इन्द्र को विजय-दान किया था, वैसे ही तुमको विजयी बनाऊँगा। हे भरतश्रेष्ठ ! कुन्ती के पुत्रों में अर्जुन ही सबसे अधिक बलवान् हैं, अतएव इन्द्र की दी हुई यह अमोघ शक्ति मैं अर्जुन के ऊपर ही चलाऊँगा; क्योंकि महाधनुर्धर अर्जुन के मारे जाने पर उनके सब भाई हार मानकर

सञ्जय उवाच—एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥
शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥
बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥
समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥
ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदाऽयुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥ १६ ॥
विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥
एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान्सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥
अब्रुवन्कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥
गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाऽजलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥

तुम्हारे अधीन हो जायँगे अथवा फिर पहले की भाँति वन को चले जायँगे । हे महाराज ! मेरे जीते जी तुम तनिक भी खेद न करो । मैं आज अवश्य ही पाण्डवों के साथ आये हुए पाञ्चाल, कैकेय और वृष्णिवंश के यादवों को हराकर, रणभूमि में बाणों से खण्ड-खण्ड करके, यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुमको दूँगा॥५।११॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! महायोद्धा कर्ण के यों कहने पर महात्मा कृपाचार्य ने मुसकराकर कर्ण से कहा—हे सूतपुत्र ! यदि तुम्हारे कहने से ही कार्य सिद्ध हो सकता हो तो फिर क्या कहना है ! तुम जैसे सहायक को पाकर राजा दुर्योधन सनाथ हैं । दुर्योधन के सम्मुख तो तुम खूब बढ़-बढ़कर बातें करते हो, परन्तु कार्य के समय उसके अनुसार फल या तुम्हारा कुछ पराक्रम नहीं देख पड़ता॥१२।१४॥हे कर्ण! रणभूमि में कई बार अर्जुन से तुम्हारा सामना हो चुका है, परन्तु कभी तुम विजयी नहीं हुए । पाण्डवों ने सर्वत्र तुमको जीता है । देखो,जब गन्धर्वगण दुर्योधन को वन में पकड़े लिये जा रहे थे तब सब कौरव-सेना तो युद्ध करती रही,एक तुम्हीं सबके आगे भाग खड़े हुए । विराट-नगर में जब संग्राम हुआ तब भी अकेले अर्जुन ने सारी कौरव-सेना को और भाइयों सहित तुमको हरा दिया । हे कर्ण ! जब अकेले असहाय अर्जुन के सम्मुख तुम नहीं स्थित हो सके तब श्रीकृष्ण सहित सब पाण्डवों को जीतने का उत्साह कैसे कर रहे हो ?॥१५।१८॥हे कर्ण!तुम इतनी आत्मश्लाघा क्यों करते हो ? शांति के साथ युद्ध करो । सत्पुरुषों का व्रत यही है कि वे मुख से कुछ न कहकर कार्य से अपना पराक्रम प्रकट करते हैं । हे सूतपुत्र ! तुम शरद् ऋतु के खाली मेघ की तरह वृथा गरज रहे हो, इसका परिणाम कुछ नहीं देख पड़ता ।

तावद्गर्जस्व राधेय यावत्पार्थं न पश्यसि ।
आरात्पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥
त्वमनासाद्य तान्बाणान्फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२ ॥
बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।
एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाऽब्रवीत् ।
शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥
फलं चाऽऽशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।
दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
तत्तद्विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।
यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र सहाय्यायोपपद्यते ।
व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान्सहसात्वतान् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २९ ॥
वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥

किन्तु राजा दुर्योधन की समझ में यह नहीं आता। हे कर्ण! मैं सत्य कहता हूँ, कि जब तक अर्जुन का सामना नहीं होता तब तक तुम गरज लो। अर्जुन जब तुम्हारे निकट देख पड़ेंगे तब यह गरजना दुर्लभ हो जायगा॥१९।२१॥ जब तक अर्जुन के वज्र से बाण तुम्हारे शरीर में नहीं लगते तब तक गरज लो। अर्जुन के बाण जब शरीर में प्रवेश होंगे तब यह तुम्हारा गर्जन दुर्लभ हो जायगा। क्षत्रिय लोग बाहुओं के शूर होते हैं और ब्राह्मण लोग बातों के शूर होते हैं। अर्जुन धनुष के द्वारा वीरता दिखाते हैं और तुम कर्ण, मनोरथों की कल्पना में ही सारी शूरता दिखा देते हो। जिन अर्जुन ने समर में साक्षात् शङ्कर को अपने बल-वीर्य से सन्तुष्ट कर दिया है उनका सामना करनेवाला, उनको मारनेवाला, कौन है?॥२२।२४॥ हे महाराज! कृपाचार्य ने ऐसे वचन कहकर कर्ण को अत्यन्त कुपित कर दिया। तब धनुर्द्धरश्रेष्ठ कर्ण ने कहा— हे कृपाचार्य! वर्षाकाल के मेघों की तरह शूर सदा गरजते हैं और उपजाऊ भूमि में बोये गये बीज की भाँति शीघ्र ही फल भी देते हैं। युद्ध में भारी भार उठानेवाले शूरों का अपने पराक्रम का वर्णन करना मेरी समझ में बुरा कार्य नहीं है। जो व्यक्ति मन में जिस कार्य को करने का निश्चय करता है, उस कार्य के करने में दैव उसकी सहायता करता ही है॥२५। २८॥ मैं जिस कार्य को करने की ठान लेता हूँ उसे पूर्ण

सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥
पश्य त्वं गर्जितस्याऽस्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान्ससात्वतान् ॥ ३२ ॥
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।
कृप उवाच— मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ३३ ॥
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥
देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३५ ॥
ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरश्चाऽस्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।
सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनो कीर्तिधर्मा ध्रुवोऽधरः ॥ ३९ ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः ।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥ ४० ॥

कर दिखाता हूँ। दैव निश्चय ही मेरा साथी है। मैं यदि कृष्ण सहित पाण्डवों को मारने का निश्चय करके गरजता हूँ तो हे ब्राह्मण! इससे तुम्हारी क्या हानि होती है? जल भरे मेघ की भाँति शूर पुरुष वृथा नहीं गरजते। बुद्धिमान् योद्धा लोग अपनी शक्ति को जानकर ही गरजते हैं॥२८।३०॥ सो आज मैं रण में विजय के निमित्त यत्न करनेवाले कृष्ण और अर्जुन को जीतने का उत्साह रखता हूँ, और इसी से ऐसी ही बात कह कर गरज रहा हूँ। हे विप्र! तुम मेरे इस गरजने का परिणाम देखो। मैं आज कृष्ण और यादवों सहित पाण्डवों को युद्ध में मारकर दुर्योधन को निष्कण्टक राज्य अर्पण करूँगा॥३१।३३॥ कृपाचार्य ने कहा— हे कर्ण! मैं तुम्हारे इन मनोरथ के प्रलापों को नहीं मानता। तुम सदा अर्जुन, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर को तुच्छ बताकर उनकी निन्दा किया करते हो। किन्तु स्मरण रक्खो, जहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि सब कवचधारी योद्धाओं से भी न जीते जा सकने वाले रणनिपुण अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं उस पक्ष की जय सर्वथा निश्चित है॥३३।३५॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर स्वयं ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरुजन देवता आदि की पूजा करनेवाले, नित्य धर्मनिष्ठ, विशेष रूप से अस्त्रविद्या में निपुण, धीर और कृतज्ञ हैं और उनके भाई भी बली, सब अस्त्रों में अभ्यास रखनेवाले, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, यशस्वी, गुरुजन के अनुगामी और

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः ।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य वै ।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम् ।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥
युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥
कथं तान्संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ।
महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥ ४७ ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह ।
सञ्जय उवाच— एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ।
सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्पाण्डवान्प्रति यद्वचः ॥ ४९ ॥

बहुत बड़े-बड़े काम करनेवाले हैं॥३६।३८॥उनके सम्बन्धी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,दुर्मुख के पुत्र जनमेजय, चन्द्रसेन,रुद्रसेन,कीर्तिधर्मा,ध्रुव,धर,वसुचन्द्र,दामचन्द्र, सिंहचन्द्र,सुतेजन, द्रुपद के पुत्र,अस्त्रों के ज्ञाता राजा द्रुपद,॥३८।४०॥मत्स्यराज विराट और उनके भाई शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय और समरथ आदि सब योद्धा इन्द्र के समान पराक्रमी, अनुरक्त और प्रहार करने में निपुण हैं। पाण्डवों की ओर से नकुल,सहदेव,द्रौपदी के पुत्र और राक्षसेन्द्र घटोत्कच आदि योद्धा युद्ध कर रहे हैं। इसलिए पाण्डवों की हार या विनाश असम्भव है। ये सब वीर और दल-बल सहित अन्य राजा लोग पाण्डवों के सहायक हैं ॥४१।४४॥सबसे बढ़कर पराक्रमी भीमसेन और अर्जुन हैं, जो अस्त्रों के प्रभाव से क्षण भर में यक्ष, राक्षस, भूत, नाग,हाथी आदि से परिपूर्ण जगत् को नष्ट कर सकते हैं। स्वयं युधिष्ठिर ही घोर क्रोध की दृष्टि से देखकर सारी पृथ्वी को भस्म कर सकते हैं। अपरिमित बलवाले अपराजित श्रीकृष्ण भी कवच धारण किये पाण्डवों की सहायता कर रहे हैं। हे कर्ण! तुम ऐसे अजेय शत्रुओं को जीतने की हिम्मत कैसे कर रहे हो? तुम यह बड़ा अन्याय करते हो। तुम्हारा यह मनोरथ सब प्रकार से अनुचित है, जो तुम श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों को समर में जीतना चाहते हो ॥४४।४८॥सञ्जय कहते हैं कि राधा के पुत्र कर्ण, गुरु कृपाचार्य के ये वचन सुनकर, उनसे हँसकर कहने लगे हे ब्रह्मन्! तुमने पाण्डवों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, सो सब उचित ही है। तुम्हारे कहे हुए तथा और भी बहुत से गुण पाण्डवों में हैं और इन्द्र सहित सब देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच,

एते चाऽन्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ।
अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥
स दैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ५१ ॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज ।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥
हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चाऽस्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥
तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात्कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥
सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नाऽत्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥
त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चाऽपि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥
यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाऽप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५७ ॥
यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ।
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज ।
दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥ ५९ ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च ।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ६० ॥

नाग, राक्षस आदि मिलकर भी रण में उनको नहीं जीत सकते, तथापि मैं इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति से पाण्डवों को जीत लूँगा। हे द्विज! इन्द्र ने मुझे यह अमोघ शक्ति दी है, इससे मैं युद्ध में अर्जुन को मारडालूँगा॥४८।५२॥ अर्जुन के मरने पर उनके भाई, बिना उनके, कभी राज्य नहीं कर सकेंगे। वे सब, अर्जुन के वियोग में, शोक से प्राण दे देंगे। उनके यों मर जाने पर यह सारी पृथ्वी सहज ही दुर्योधन के अधीन हो रहेगी। हे गौतम! इस संसार में सुनीति और यत्न से सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसी से मैं गरजता हूँ॥५३।५५॥ तुम ब्राह्मण, वृद्ध, युद्ध करने में अशक्त और पाण्डवों से स्नेह रखनेवाले हो। इसी से मोहवश मेरा अपमान करते हो। किन्तु हे द्विज! यदि फिर तुम मुझे अप्रिय कटु वचन सुनाओगे तो मैं तुम्हारी दुर्मति का दण्ड तुमको अवश्य दूँगा, शीघ्र तलवार निकालकर तुम्हारी जीभ काट लूँगा। हे दुर्मति ब्राह्मण! तुम कौरव-सेना को डराते और उत्साहहीन करते हुए पाण्डवों की प्रशंसा कर रहे हो। इस बारे में मैं जो उचित बात

तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान्नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२ ॥
एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः ।
जयमाकांक्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ ६३ ॥
दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥ ६४ ॥
विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लिकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसन्धः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चाऽन्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ ६६ ॥
निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६७ ॥
यांश्च तांस्तौपि सततं दुर्योधनरिपून्द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥
क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह ।
प्रभावं नाऽत्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥ ६९ ॥
ग्रस्तान्बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे ।
दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

कहता हूँ सो सुनो।कौरवपक्ष के योद्धा लोग ऐसे वैसे नहीं हैं॥५६।५९॥कुरुराज दुर्योधन,द्रोणाचार्य,शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, शल्य,सोमदत्त,भूरि, अश्वत्थामा, विविंशति और स्वयं तुम, ये युद्धनिपुण योद्धा जहाँ कवच पहन करके युद्ध करने को खड़े हों वहाँ इन्द्र के बराबर बल रखनेवाला भी शत्रु कोई मनुष्य इन्हें सहज में नहीं जीत सकता। ये सब वीर शूर, अस्त्रनिपुण, बली, स्वर्गलाभ की इच्छा से युद्ध करनेवाले, धर्मज्ञ और युद्ध विशारद हैं और युद्ध में देवताओं को भी मार सकते हैं॥५०।६२॥ये सब वीर पाण्डवों को मारने और कौरवेन्द्र को विजय दिलाने के निमित्त कवच पहन करके युद्धभूमि में स्थित हैं। तथापि मेरी सम्मति यह है कि बहुत बलवान् योद्धाओं के लिए भी विजय की प्राप्ति दैव के अधीन ही है। इसी से, देखो, महात्मा महाबाहु अपराजित भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए हैं और महाबलशाली देवताओं से कभी भी न हारनेवाले महावीर विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसन्ध, सुदक्षिण, श्रेष्ठ रथी शल, पराक्रमी भगदत्त तथा और अनेक योद्धा राजा लोग पाण्डवों के हाथ से मारे गये

हैं। हे पुरुषाधम ! इस दैव की प्रतिकूलता के अतिरिक्त और क्या मानते हो?॥६३।६७॥हे द्विज ! दुर्योधन के शत्रु जिन पाण्डवों की तुम इतनी स्तुति कर रहे हो उनकी ओर के भी तो सैंकड़ों सहस्रों शूर मारे गये हैं और कौरवों के साथ ही उनकी सेना भी दिन-दिन कम होती चली जा रही है। मुझे तो इसमें पाण्डवों का कुछ प्रभाव नहीं देख पड़ता जिसके कारण, हे द्विजाधम ! तुम उनको नित्य हम लोगों से बहुत बली समझते हो। मैं दुर्योधन के हित के निमित्त यथाशक्ति पाण्डवों से युद्ध करने का यत्न करता हूँ, किन्तु जय की प्राप्ति दैव के हाथ ही है॥६८।७०॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ अट्ठावन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५८ ॥

अथ एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

सञ्जय उवाच तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खङ्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ॥ १ ॥
ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ॥ २ ॥

अश्वत्थामोवाच यदर्जुनगुणांस्तथ्यान्कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात्सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥ ३ ॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद्गणयन्मृधे ॥ ४ ॥
क ते वीर्यं क चाऽस्त्राणि यं त्वां निर्जित्य संयुगे ।
गाण्डीवधन्वा हतवान्प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥ ५ ॥
येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥ ६ ॥
यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ७ ॥

एक सौ उनसठ अध्याय ॥ १५९ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण का मामा कृपाचार्य से कठोर बातें करते देखकर महावीर अश्वत्थामा क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। सिंह जैसे मस्त हाथी पर झपटता है वैसे ही वे खङ्ग खींचकर, दुर्योधन के सम्मुख ही, वेग से कर्ण की ओर चले॥१।२॥अश्वत्थामा ने कर्ण से कहा—हे नराधम ! महात्मा कृपाचार्य अर्जुन के यथार्थ पराक्रम और गुणों का वर्णन करते हैं, पर तुम दुर्मति और द्वेष के कारण शूर श्रेष्ठ कृपाचार्य को कुवाक्य कह रहे हो। हे मूढ़ ! गर्व के मारे तुम अपने मुख अपनी प्रशंसा कर रहे हो और युद्धभूमि में वर्तमान वीरों में से किसी को अपने बराबर नहीं समझते। त्रिभुवन में श्रेष्ठ धनुर्द्धर मामा कृपाचार्य से तुम ऐसे कठोर वचन कह रहे हो। जब अर्जुन ने तुम्हें जीतकर तुम्हारे सम्मुख ही जयद्रथ को मार डाला तब तुम्हारा पराक्रम और तुम्हारे अस्त्र कहाँ चले गये थे?॥३।५॥हे सूत ! हे अधम ! तुम केवल मनोरथ करके वृथा ही उन अर्जुन को जीतना चाहते हो, जिन्होंने साक्षात् महादेवजी से युद्ध किया और उन्हें अपने असाधारण पराक्रम से सन्तुष्ट कर दिया। श्रीकृष्ण सहित जिनको इन्द्र समेत सब देवता और दानव

लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ ८ ॥
कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच—तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः ॥ १० ॥
कर्ण उवाच—शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः ।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
अश्वत्थामोवाच—तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १२ ॥
दुर्योधन उवाच—अश्वत्थामन्प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथञ्चन ॥ १३ ॥
त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत्कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ १४ ॥
एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
सञ्जय उवाच—प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः ।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥ १६ ॥
ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः ।
सौम्यस्वभावाद्राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥ १७ ॥

भी नहीं जीत सकते, उन त्रिभुवन के श्रेष्ठ वीर अजेय योद्धा अर्जुन को तुम इन राजाओं के साथ जीतना चाहते हो, यह तुम्हारी केवल दुर्बुद्धि ही है। हे दुर्मति कर्ण ! हे नराधम ! देखो ठहर जाओ, मैं अभी तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् किये देता हूँ। सञ्जय कहते हैं कि महावीर अश्वत्थामा अब वेग से कर्ण की ओर बढ़े। तब स्वयं कृपाचार्य और राजा दुर्योधन ने उनको पकड़ लिया। हे महाराज ! निर्भय भाव से स्थित कर्ण ने दुर्योधन से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ ! तुम इसे छोड़ दो। यह शूर और युद्धप्रिय होने पर भी दुर्मति और अधम ब्राह्मण है। इसे आक्रमण करके मेरे बाहुबल का पराक्रम देखने दो। कर्ण के वचन सुनकर अश्वत्थामा ने कहा—हे दुर्मति सूतपुत्र ! तुम्हारी इन बातों को मैं क्षमा करता हूँ। वीर अर्जुन रण में तुम्हारे इस गर्व को मिटावेंगे॥१०।१२॥अब दुर्योधन ने कहा—हे अश्वत्थामा ! प्रसन्न होओ, क्षमा करो। कर्ण के ऊपर तुम्हें कोप न करना चाहिए। हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और शकुनि, यही मेरे सहायक हैं और इन्हीं के ऊपर मेरे भारी कार्य को सम्पन्न करने का भार है। हे ब्रह्मन् ! वह देखो, कर्ण से युद्ध करने के निमित्त गरजते और ललकारते हुए पाण्डवगण और उनकी सेना चारों ओरसे हमारे सम्मुख आ रही है॥१३।१५॥सञ्जय कहते हैं—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! आपके पुत्र दुर्योधन ने महामनस्वी अश्वत्थामा

कृप उवाच—तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच—ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥
कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ।
ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम् ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथाऽनदन् ।
अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥ २३ ॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन्पुरुषाधम ।
अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥ २४ ॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नाऽनेनाऽर्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६ ॥
हतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥

को इसप्रकार अनुनय विनय करके प्रसन्न किया, जिससे उनका क्रोध शान्त हो गया। तब शान्त प्रकृति कृपाचार्य ने भी कोमल भाव धारण करके कहा—हे दुर्बुद्धि कर्ण! हम तो तुम्हारा सब अपराध क्षमा करते हैं, किन्तु वीर अर्जुन रणभूमि में तुम्हारे इस घोर दर्प को चूर्ण कर देंगे॥१६।१८॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! इसके उपरान्त यशस्वी पाञ्चाल और पाण्डवगण एकत्र होकर चारों ओर से गर्जन तर्जन करते हुए कर्ण के सम्मुख आये। यह देखकर वीर्यशाली महातेजस्वी कर्ण भी, देवगण सहित इन्द्र की भाँति, कौरवों के साथ अपने बाहुबल के आश्रय उनका सामना करने के निमित्त उद्यत हुए॥१९।२१॥दोनों ओर से घोर सिंहनाद करते हुए योद्धा भिड़ गये। कर्ण के साथ पाण्डवों का भयानक संग्राम होने लगा। महायशस्वी पाञ्चाल और पाण्डवगण कर्ण को सम्मुख देखकर ऊँचे स्वर से चिल्लाने और कहने लगे कि "यह कर्ण है, कहाँ कर्ण है, ठहर जाओ कर्ण, महारण में हम लोगों के साथ युद्ध करो, हे दुरात्मा! हे पुरुषाधम कर्ण! ठहर जाओ!" कुछ लोग कर्ण को देखकर लाल लाल नेत्र निकालकर कहने लगे—इस गर्वित दुर्मति सूतपुत्र कर्ण को सब लोग मिलकर मार डालो। इस दुष्टके जीवित रहनेका कुछ प्रयोजन नहीं। यह पाण्डवों का शत्रु है। यही पापी सब अनर्थों की जड़ है। यह दुर्योधन का हितैषी और उसके कहे पर चलनेवाला

वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ।
तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महारथान् ॥ २८ ॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ।
दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥ २९ ॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान्क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ३० ॥
वारयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।
ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥ ३१ ॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ ३२ ॥
शरवर्षं तु तत्कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत्प्रभो ॥ ३३ ॥
तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाऽऽप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३५ ॥
निवार्य च शरौघांस्तान्पार्थिवानां महारथः ।
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥
आत्मनामाङ्कितान्घोरान्राधेयः प्राहिणोच्छरान् ।
ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७ ॥

है । इसलिए सब लोग मिलकर इसे शीघ्र मार डालो । हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर के भेजे हुए सब महारथी क्षत्रिय इस प्रकार कहते हुए चले और कर्ण को मारने के निमित्त घोर बाण बरसाने लगे॥२४।२८॥उन महारथियों को वेगसे अपनी ओर आते और बाण प्रहार करते देखकर भी कर्ण न तो भयभीत ही हुए और न व्याकुल ही हुए । संग्राम में न हारनेवाले स्फूर्तिशाली महाबली कर्ण आपके पुत्रों का कल्याण करने के निमित्त अकेले ही, सागर के समान उमड़ती आ रही, उस असंख्य सेना को बाणों से रोकने लगे॥२८।३१॥पाण्डव पक्ष के सैकड़ों सहस्रों योद्धा बड़े बड़े धनुषों को हिलाते और बाणों की वर्षा करते हुए बढ़ने लगे और इन्द्र से जैसे दैत्य युद्ध करते हैं वैसे ही पराक्रमी कर्ण से युद्ध करने लगे । महावीर कर्ण ने बहुत से बाण छोड़कर उन राजाओं के असंख्य बाणों को काट काटकर गिरा दिया । एक पक्ष जो कार्य करता था, उसके उत्तर में वैसा ही या उससे अधिक कार्य दूसरा पक्ष करता था । देवासुर संग्राम में इन्द्र और दानवों का जैसा दारुण युद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध उस समय होने लगा ॥३१।३४॥हे महाराज ! उस समय हमें कर्ण की अद्भुत स्फूर्ति देख पड़ी । सब लोग यत्न करके भी कर्ण पर प्रहार नहीं कर पाते थे । महापराक्रमी कर्ण इस प्रकार महारथी राजाओं के बाणों को व्यर्थ करके उनके रथों के युग, ईषादण्ड, छत्र, ध्वजा, घोड़े आदि

वभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥
तत्रतत्राऽभ्यवेक्षाम सङ्घान्कर्णेन ताडितान् ।
शिरोभिः पतितै राजन्बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥
वभूवाऽऽयोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।
युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ४४ ॥
तद्यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।
न हन्यात्पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥
ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव ।
वीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥

के ऊपर अपने नाम के अक्षरों से अङ्कित तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥३१।३७॥अब कर्ण के बाणों से पीड़ित राजा लोग, शीतकाल में जाड़े से पीड़ित गाय आदि की भाँति, व्याकुल होकर काँपते हुए इधर उधर भागने लगे। शत्रुपक्ष के असंख्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के झुण्ड के झुण्ड, कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर, मरने और गिरने लगे। समर में न हटनेवाले शूरों के सिर और हाथ कट कटकर चारों ओर एकत्र होने लगे। मरे, मारे जा रहे और आर्तनाद कर रहे योद्धाओं से परिपूर्ण रणक्षेत्र उस समय यमपुरी के समान भयानक हो उठा॥३७।४१॥हे महाराज! कर्ण के विकट पराक्रम को देखकर राजा दुर्योधन अश्वत्थामा के समीप जाकर कहने लगे—हे आचार्य पुत्र! देखो, कवच पहने हुए वीर कर्ण सब राजाओं से युद्ध कर रहे हैं। कार्तिकेय के पराक्रम से पीड़ित असुर सेना के समान यह पाण्डवों की सेना कर्ण के बाणों की चोट न सह सकने के कारण भागी जा रही है। इस सेना को कर्ण से हारकर भागते देख वे अर्जुन कर्ण को मारने आ रहे हैं। हम लोगों को इस समय वही उपाय करना चाहिए जिसमें हम लोगों के सम्मुख ही अर्जुन महारथी सूत पुत्र को मार न डालें॥४२।४५॥हे महाराज! तब अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी कृतवर्मा, दैत्य सेना को नष्ट करने के निमित्त उद्यत इन्द्र के समान, अर्जुन को आते देखकर कर्ण की सहायता

प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं तथा वृत्रं शतक्रतुः ।
धृतराष्ट्र उवाच—संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत्किमुत्तरम् ।
यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ।
स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।
सञ्जय उवाच—आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ॥ ५१ ॥
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद्धनञ्जयम् ।
तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२ ॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।
स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं पार्थो नाऽमृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्छिलाधौतान्प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥
विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव ॥ ५६ ॥
तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।
शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८ ॥

करने के निमित्त चले। उधर पाञ्चालों सहित महाबाहु अर्जुन भी, वृत्रासुर के प्रति इन्द्र की भाँति, कर्ण पर आक्रमण करने चले॥४६।४८॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! वैकर्तन कर्ण नित्य अर्जुन के साथ लाग-डाँट रखते और उन्हें जीतने का उत्साह दिखाया करते थे। उस समय नित्य के अत्यन्त वैरी यम-तुल्य अर्जुन को कुपित होकर आते देख कर्ण ने क्या किया? ॥४८।५१॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! जैसे मस्त हाथी दूसरे हाथी की ओर झपटता है वैसे ही महावीर कर्ण भी अर्जुन को आते देखकर उनकी ओर चले। महावीर अर्जुन ने बड़े वेग से आ रहे कर्ण को सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणों से ढक दिया। यह देखकर महाबाहु कर्ण क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने शीघ्र तीन बाण अर्जुन को मारे॥५१।५३॥महावीर अर्जुन से कर्ण की वह स्फूर्ति देखी नहीं गई।उन्होंने तीक्ष्ण तीन सौ बाण मारकर बड़े क्रोध से हँसते-हँसते एक भयानक नाराच बाण छोड़ा, जो कर्ण के बायें हाथ के अगले भाग में जाकर लगा। अर्जुन के बल-

व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः ।
तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९ ॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
तदद्भुतं महद्युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६० ॥
क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।
ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयाऽन्वितः ।
अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम् ॥ ६२ ॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥ ६३ ॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।
स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥ ६५ ॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत ।
राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥
धनञ्जयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।
द्रवतस्तान्समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥ ६७ ॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।
अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

पूर्वक चलाये गये उग्र नाराच बाण की गहरी चोट से कर्ण के हाथ से धनुष गिर पड़ा। पराक्रमी कर्ण ने शीघ्र ही धनुष उठाकर स्फूर्ति दिखलाते हुए क्षण भर में अर्जुन को बाणों से छिपा दिया॥५४।५८॥यह देखकर महावीर अर्जुन बाण बरसाने लगे। उन्होंने देखते ही देखते कर्ण के सब बाणों को काटकर व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार एक दूसरे से बढ़कर कार्य कर दिखाने का यत्न कर रहे महाधनुर्द्धर वीर एक दूसरे को बाणों से पीड़ित करने लगे। एक हथिनी के लिए भिड़ रहे दो जङ्गली मस्त हाथियों की भाँति क्रुद्ध होकर कर्ण और अर्जुन अद्भुत संग्राम करने लगे॥५८।६१॥ महाधनुर्द्धर अर्जुन ने कर्ण का पराक्रम देखकर स्फूर्ति के साथ उनके धनुष की मूठ काट डाली। फिर भल्ल बाणों से उनके चारों घोड़ों को मारकर एक बाण से सारथी का सिर भी काट गिराया। इस प्रकार धनुष, सारथी और घोड़ों के न रहने पर कर्ण विवश हो गये। अर्जुन ने अवसर पाकर कर्ण को चार विकट बाण मारे। तब पुरुषश्रेष्ठ कर्ण, अर्जुन के बाणों से विह्वल होकर, बिना घोड़ों के रथ से कूद पड़े और कृपाचार्य के रथ पर चढ़ गये॥६१।६६॥अर्जुन के बाण शरीर में लगने से काँटेदार "स्याही" नाम के पशु के समान जान पड़ रहे कर्ण, प्राण बचाने के निमित्त,जब कृपाचार्य के रथ पर चले गये तब कर्ण को परास्त देखकर आपके पक्ष के सैनिक लोग अर्जुन

एष पार्थवधायाऽहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान्हनिष्यामि सपञ्चालान्ससोमकान् ॥ ६९ ॥
अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ७० ॥
अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवाऽऽयतीः ॥ ७१ ॥
अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥
जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥
न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७६ ॥
एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ७७ ॥
यावन्नः पश्यमानानां प्राणान्पार्थेन सङ्गतः ।
न जह्यात्पुरुषव्याघ्रस्तावद्वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥

के बाणों से पीड़ित होकर चारों ओर भागने लगे। इस प्रकार अपने सैनिकों को भागते देखकर राजा दुर्योधन उन्हें लौटाने के लिए कहने लगे—हे शूर क्षत्रियो! भागो मत। लौटो, खड़े रहो। अर्जुन को मारने के निमित्त मैं स्वयं जाता हूँ। मैं सब पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकों को मारूँगा॥६६।६९॥प्रलय के समय काल की तरह आज मैं अर्जुन से युद्ध करूँगा और सब पाण्डव मेरा अद्भुत पराक्रम देखेंगे। आज समर में योद्धा लोग मेरे छोड़े हुए सहस्रों बाणों को आकाश में टीड़ीदल की भाँति जाते देखेंगे। आज युद्ध में सैनिक लोग देखेंगे कि मेरे धनुष से, वर्षा काल में जलधारा की भाँति, बाणों की वर्षा होगी हे शूरो! ठहरो, अर्जुन से भयभीत होओ मत। मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को परास्त करूँगा। जैसे जल जन्तुओं का निवासस्थान महासागर तटभूमि को लाँघकर नहीं जा सकता, वैसे ही आज अर्जुन मेरे पराक्रम और बाहुबल को नहीं सह सकेंगे॥७०।७४॥क्रोध से लाल नेत्र किये हुए राजा दुर्योधन अब बहुत सी सेना साथ लेकर अर्जुन से युद्ध करने को चले। महाबाहु दुर्योधन को अर्जुन के सम्मुख जाते देख, अश्वत्थामा के समीप जाकर, कृपाचार्य ने कहा—देखो अश्वत्थामा! ये राजा दुर्योधन कुपित होकर अर्जुन से युद्ध करने जा रहे हैं। पतङ्ग जैसे अग्नि पर जलने के निमित्त ही झपटता है वैसे ही इनका अर्जुन पर आक्रमण करना है। ये अर्जुन

यावत्फाल्गुनबाणानां गोचरं नाऽद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय संयुगे ॥ ७९ ॥
यावत्पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवार्यताम् ॥ ८० ॥
अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥
दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥
मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥
मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥
न हि ते संभ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥
दुर्योधन उवाच—आचार्यः पाण्डुपुत्रान्वै पुत्रवत्परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥
मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥
धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥

से भिड़कर कहीं अपने प्राण न गँवा दें और हम देखते ही रह जायँ । इसलिए तुम शीघ्र जाकर दुर्योधन को रोको॥७५।७८॥अर्जुन के बाणों के सम्मुख पहुँचने से पहले ही राजा को लौटा लाओ । अर्जुन के छोड़े हुए सर्प-सदृश घोर बाणों से राजा भस्म हो जायँगे; इसलिए तुम उनको लौटा लाओ। हे भाई ! हम सबके रहते राजा का, यों असहाय मनुष्य की भाँति, स्वय युद्ध करने जाना मुझे अनुचित जान पड़ता है। सिंह से हाथी की भाँति अर्जुन से दुर्योधन के युद्ध करने पर मुझे दुर्योधन का जीवन दुर्लभ जान पड़ता है॥७९। ८२॥हे राजेन्द्र! अपने मामा के वचन सुनकर श्रेष्ठ अस्त्रज्ञ अश्वत्थामा शीघ्रता से दुर्योधन के समीप जाकर कहने लगे—हे राजेन्द्र ! मेरे जीते-जी मेरी उपेक्षा करके तुम स्वय युद्ध करने जा रहे हो, यह कदापि उचित नहीं । तुम भलीभाँति जानते ही हो कि सदा तुम्हारा हितचिन्तक हूँ । अर्जुन की विजय देखकर तुम व्याकुल होओ नहीं । तनिक ठहर जाओ, मैं स्वय अर्जुन से युद्ध करने जाता हूँ। तुम निश्चित होकर रहो, मैं अर्जुन को रोकता हूँ॥८३।८५॥अश्वत्थामा के वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा—हे ब्रह्मन्! आचार्य तो पाण्डवों को पुत्र की तरह मानते हैं और सब तरह उन्हें बचाते हैं । और तुम भी सदा उनके प्रति उपेक्षा करते हो, मन लगाकर उन्हें परास्त करने का यत्न नहीं करते। मेरे दुर्भाग्य से हो या युधिष्ठिर और द्रौपदी का प्रिय

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥
अश्वत्थामन्प्रसीदस्व नाशयैतान्ममाऽहितान् ।
तवाऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥
पञ्चालान्सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान्हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥
एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान्वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥
अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥
त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत्सर्वमपञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥
एवं सिद्धाऽब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥
न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९७ ॥
न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद्योधयितुं वीर सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

करने के निमित्त हो, मालूम नहीं किस कारण से, युद्ध के समय तुम्हारा पराक्रम धीमा पड़ जाता है। मुझ लोभी को बारम्बार धिक्कार है, जिसके कारण मेरे सुख के योग्य सब भाई-बन्धु घोर दुःख पा रहे हैं ॥८६।८८॥ हे ब्रह्मन्! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन ऐसा होगा जो महेश्वर के समान पराक्रमी और श्रेष्ठ योद्धा तथा समर्थ होकर भी शत्रुओं का संहार न करे! हे अश्वत्थामा! मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे शत्रुओं का नाश करो॥ तुम्हारे अस्त्र-शस्त्रों के सम्मुख देवता और दानव कोई भी नहीं स्थित हो सकता। तुम अनुचरों सहित पाञ्चाल और सोमक वीरों को मारो। तुम्हारे ही बल से सुरक्षित होकर हम लोग शेष शत्रुओं को नष्ट कर देंगे॥८९।९१॥ हे विप्र! ये यशस्वी पाञ्चालगण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, दावानल की भाँति, भस्म करते हुए मेरी सेना में विचर रहे हैं। हे महाबाहो! हे पुरुषश्रेष्ठ! इन्हें और कैकेय देश के वीरों को तुम रोको और मारो। ये लोग अर्जुन के बाहुबल से सुरक्षित होकर हम लोगों के सम्मुख ही हमारी सेना को नष्ट किये डालते हैं। हे अश्वत्थामा! शीघ्रता से इन शत्रुओं का संहार करो। पहले हो या पीछे, यह तुम्हारा ही कार्य है॥९२।९४॥ हे महाबाहो! तुम पाञ्चालों का वध करने के निमित्त ही उत्पन्न हुए हो। मैंने सिद्ध पुरुषों के मुख से सुना है कि तुम कुपित होकर इस पृथ्वी को पाञ्चालों से शून्य कर दोगे। हे ब्रह्मन्!

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥
शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥ १०० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

ऐसा ही होगा; क्योंकि सिद्धों के वचन मिथ्या नहीं हो सकते । हे पुरुषसिंह ! इसलिए तुम शीघ्र ही अनुचरों सहित पाञ्चालों का संहार करो । मैं यह सत्य कहता हूँ कि पाञ्चालों सहित पाण्डवों की कौन कहे, इन्द्र सहित देवता भी तुम्हारे अस्त्रों के सम्मुख नहीं स्थित हो सकते॥९५।९७॥हे वीर ! मैं सत्य कहता हूँ,पाण्डव और सोमकगण बलपूर्वक तुमसे युद्ध नहीं कर सकते । हे महाबाहो ! जाओ-जाओ,देर न करो।यह देखो,हमारी सेना अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भाग रही है । हे वीर ! तुम अपने तेज और पराक्रम के प्रभाव से पाञ्चालों सहित पाण्डवों को परास्त कर सकते हो॥९८।१००॥

द्रोणपर्व का एक सौ उनसठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५९ ॥

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच—दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः ।
चकाराऽरिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा ।
प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः ॥ १ ॥
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ।
प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चाऽपि पितुश्च मे ॥ २ ॥
तथैवाऽऽवां प्रियो तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ।
शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ॥ ३ ॥
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात्पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ४ ॥
ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात्कुरूद्वह ।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ५ ॥
युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चाऽस्मान्युयुत्सताम् ।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥

एक सौ साठ अध्याय ॥ १६० ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज!राजा दुर्योधन ने जब रणदुर्दर्ष वीर अश्वत्थामा से यों कहा तब इन्द्र जैसे दैत्यों को मारने का यत्न करते हैं वैसे ही अश्वत्थामा शत्रुओं को मारने का यत्न करने लगे । उन्होंने दुर्योधन से कहा— हे राजेन्द्र ! इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डवगण मुझे और मेरे पिता को अत्यन्त प्रिय हैं और हम पिता-पुत्र दोनों ही पाण्डवों को बहुत ही प्यारे हैं । किन्तु युद्ध के समय उस प्रीति का कोई विचार नहीं करता॥१।२॥मैं, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा, ये मिलकर क्षण भर में पाण्डवों की सारी

द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् ।
आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहितैस्तव ॥ २६ ॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाऽग्रतः ॥ २७ ॥
ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शिरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥
ते तु पंक्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।
सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाऽऽक्रान्त इवोरगः ॥ ३० ॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो वाणपाणिरभाषत ।
धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥
यावत्त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।
द्रौणिरेवमथाऽऽभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।
स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥
द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा ।
न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।
ततस्त्वाऽहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥

त्थामा के समीप पहुँचकर धृष्टद्युम्न ने कहा—हे आचार्य-पुत्र ! इन साधारण योद्धाओं को मारने से क्या लाभ है ? यदि शूर होने का दावा रखते हो तो आओ मुझसे युद्ध करो तनिक मेरे आगे ठहरो, मैं अभी तुमको मारकर यमपुर भेज दूँगा॥२३।२७॥ महाप्रतापी धृष्टद्युम्न अब अश्वत्थामा के ऊपर मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। मधुलोभी भौंरे जैसे कतार बाँधकर फूले हुए पेड़ पर गिरते हैं वैसे ही धृष्टद्युम्न के छोड़े हुए सुवर्ण-पुङ्खयुक्त, चमकीली धारवाले, सबके शरीर को फाड़ने की शक्ति रखनेवाले तीक्ष्ण बाण निरन्तर अश्वत्थामा के शरीर में प्रवेश होने लगे॥२८।३०॥ पाँव मारने से क्रुद्ध सर्प के समान उग्र प्रहार से क्रोधान्ध अश्वत्थामा, हाथ में बाण लेकर, अविचलित भाव से कहने लगे—हे धृष्टद्युम्न ! अब तुम स्थिर होकर क्षण भर मेरे आगे स्थित रहो; मैं अभी तीक्ष्ण बाणों से तुम्हें यमपुर भेजे देता हूँ। शत्रुदमन अश्वत्थामा स्फूर्ति के साथ चारों ओर से तीक्ष्ण बाण बरसाकर धृष्टद्युम्न को पीड़ित करने लगे ॥३०।३३॥ युद्धदुर्मद पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न इस प्रकार पीड़ित होने पर, उग्र वचन कहकर, अश्वत्थामा के प्रति गर्जन-तर्जन कर कहने लगे—हे आचार्य के पुत्र ! तुमको मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्ति का वृत्तान्त शायद मालूम नहीं। हे दुर्मति विप्र ! मैं पहले द्रोण को मारकर फिर तुमको भी मारूँगा। इसी प्रतिज्ञा के कारण द्रोण के जीते-जी मैं तुमको

इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।
यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।
यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।
इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन्पन्नगो यथा ।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाऽकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।
तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥
द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥

नहीं मारता। प्रात काल नहीं होने पावेगा, इसी रात्रि में तुम्हारे पिता को पहले मारकर फिर तुमको भी मारूँगा ॥३३।३७॥देखो, तुममें पाण्डवों के प्रति जितना द्वेष-भाव और कौरवों के ऊपर भक्ति है, सो सब स्थिर होकर दिखलाओ॥निश्चय जानो कि मैं तुम्हें कदापि जीता न छोड़ूँगा। ब्राह्मण के कर्मों को छोड़कर जो ब्राह्मण क्षत्रिय धर्म करने लगता है वह अधर्म है। उसका वध करने में किसी को दोष नहीं हो सकता।हे पुरुषाधम! तुम वैसे ही अपना धर्म छोड़कर क्षत्रियवृत्ति ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण हो और इसी लिए मैं तुम दोनों पिता-पुत्रों को मारूँगा॥३७।३९॥हे महाराज! धृष्टद्युम्न के यों कठोर वचन कहने पर ब्राह्मणश्रेष्ठ अश्वत्थामा क्रोध से विह्वल हो उठे। वे मानों भस्म कर देंगे, इस प्रकार धृष्टद्युम्न की ओर देखकर सर्प के समान श्वासें लेने लगे और "ठहर जा, ठहर जा" कहकर धृष्टद्युम्न के ऊपर घोर बाणों की वर्षा करने लगे॥३९।४१॥पाञ्चाल-सेना सहित धृष्टद्युम्न, अश्वत्थामा के बाणों से पीड़ित होकर भी, विचलित नहीं हुए; बल्कि अपने बाहुबल के आश्रय धैर्य धारण करके वे अश्वत्थामा की बाण-वर्षा का उत्तर अपने बाणों से देने लगे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार क्रोधान्ध महाधनुर्द्धर वे दोनों वीर प्राणपण से एक दूसरे के बाणों को व्यर्थ करके चारों ओर बाण बरसाने लगे। सिद्ध-चारण आदि आकाशचारी लोग धृष्टद्युम्न और अश्वत्थामा का भयानक सग्राम

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः ।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥
त्वं तु लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव ।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥ ९ ॥
मन्ये त्वं कुत्सितो राजन्पापात्मा पापपूरुषः ।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥
अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥
योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान्वरान् ।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥ १२ ॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिन्दम ।
अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ १३ ॥
सिंहेनेवाऽर्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः ।
अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः ।
आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान्संख्ये पञ्चालान्सोमकैः सह ।
ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान्हनिष्यामि भारत ॥ १६ ॥

सेना को नष्ट कर सकते हैं । इसी प्रकार, यदि हम लोग युद्ध में तुम्हारी ओर न हों तो,पाण्डव भी क्षण भर में सारी कौरवसेना का नाश कर सकते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ ! हम लोग अपनी शक्ति भर पाण्डवों से युद्ध करते हैं और वे लोग भी अपने बल के अनुसार हमसे युद्ध करते हैं । इस प्रकार एक ओर का तेज दूसरी ओर के तेज से टकराकर शान्त हो जाता है।मैं सत्य कहता हूँ कि पाण्डवों के जीते जी सहसा सहज में उनकी सेना नहीं जीती जा सकती॥४।७॥सर्वथा समर्थ पाण्डव अपने अधिकार के लिए जी-जान से युद्ध कर रहे हैं, फिर वे तुम्हारी सेना का संहार क्यों न करेंगे ! हे कौरव ! तुम अत्यन्त लोभी,शठ (दगाबाज) सबसे खटका रखनेवाले,अभिमानी और पापप्रकृति हो। इसी से सर्वदा हम पर शत्रुओं के पक्षपाती होने का सन्देह किया करते हो । मैं समझता हूँ कि तुम क्षुद्र, कुत्सित विचारवाले, पापी हो; तुम्हारे अन्तःकरण में सदा पाप की भावना बनी रहती है । इसी से तुम हम अनन्य हितचिन्तक अनुगतों को सन्देह की दृष्टि से देखते हो॥८।१०॥यह तुम्हारा सरासर अन्याय है । मैं तो तुम्हें अपना जीवन सौंप चुका हूँ । लो, अब तुम्हारे निमित्त युद्ध करने जाता हूँ । हे कुरुनन्दन ! मैं प्राणों का मोह छोड़कर शत्रुओं से युद्ध करूँगा और चुने हुए श्रेष्ठ श्रेष्ठ योद्धाओं को मारूँगा।तुम्हारा प्रिय करने के निमित्त संग्राम में पाञ्चाल,सोमक,कैकेय

न हि ते वीर मोद्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः ।
एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन्सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १८ ॥
ततोऽब्रवीत्स कैकेयान्पञ्चालान्गौतमीसुतः ।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥
स्थिरीभूताश्च युध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।
तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।
ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरान्पञ्चालान्सहसोमकान् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्रणे ।
ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥

और पाण्डव आदि सबसे मैं घोर युद्ध करूँगा। आज मेरे बाणों से मारे जा रहे पाञ्चाल और सोमकगण, सिंह के आक्रमण करने पर भागती हुई गायों की भाँति चारों ओर भागेंगे॥११।१४॥आज राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम और पाञ्चाल सोमक आदि का युद्ध में विनाश देखकर खिन्न होंगे।हे भरतकुलश्रेष्ठ!योद्धाओं में से जो लोग सम्मुख आकर मुझसे युद्ध करेंगे उसमें से कोई भी जीता नहीं बचेगा॥१४।१७॥हे महाराज! आपके पुत्र से यों कहकर, उनका प्रिय करने के निमित्त,महाबाहु अश्वत्थामा युद्ध करने चले। उनका रूप और क्रोध देखकर सब योद्धा भयभीत हो गये। अब वीरवर अश्वत्थामा ने समरभूमि के मध्य में पहुँच कर सब कैकय और पाञ्चालों से कहा—हे महारथी योद्धाओ! तुम लोग पहले मेरे ऊपर प्रहार कर लो। स्थिर होकर अपनी स्फूर्त्ति, अस्त्रविद्या और पराक्रम दिखाते हुए युद्ध करो॥वारवर अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर पाञ्चाल आदि शत्रुपक्ष के सब योद्धा उसी प्रकार उनके ऊपर शस्त्रों की वर्षा करने लगे, जिस प्रकार वर्षाकाल के मेघ जल बरसाते हैं॥१७।२१॥ अश्वत्थामा ने उन शस्त्रों और बाणों को व्यर्थ करके, धृष्टद्युम्न और पाण्डवों के आगे ही, उनमें के दस श्रेष्ठ वीरों को मार डाला। अश्वत्थामा के बाणों से मारे जा रहे पाञ्चाल और सोमकगण उन्हें छोड़कर चारों ओर भागने लगे। पाञ्चालों और सोमकों को भागते देखकर महारथी धृष्टद्युम्न क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और अश्वत्थामा से युद्ध करने के निमित्त उनकी ओर चले॥२१।२३॥धृष्टद्युम्न के साथ सुवर्णमण्डित और जल भरे मेघ के गरजने के समान शब्द करनेवाले बड़े बड़े रथों पर सवार, युद्ध से कदापि विमुख न होनेवाले, एक सौ चुने हुए योद्धा भी चले। अश्व

शरौघैः पूरयन्तौ तावकाशं च दिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥
नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥
अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४८ ॥
तौ प्रवृद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥
सिंहनादरवाश्चाऽऽसन्दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाऽभवत् ॥ ५१ ॥
ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ५२ ॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याऽभ्यद्रवद्रणे ।
पञ्चालांश्चैव तान्सर्वान्बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ।
ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे ।
शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ॥ ५५ ॥

देखकर उनकी बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगे॥४१।४५॥ तब एक दूसरे को मारने के निमित्त उद्यत वे विकट वेशधारी दोनों वीर, बाणों से दसों दिशाओं को व्याप्त करते हुए, इस प्रकार घोर संग्राम करने लगे कि उनके बाणों से सर्वत्र अँधेरा छा गया, किसी को वे नहीं देख पड़ते थे। उनके धनुष मण्डलाकार घूम रहे थे और वे नृत्य सा कर रहे थे। वे दोनों वीर स्फूर्ति के साथ विचित्र युद्ध कर रहे थे, जिसे देखकर सहस्रों योद्धा उनकी प्रशंसा करने लगे॥४६।४८॥ वन में जङ्गली मस्त दो हाथी जैसे भिड़ते हैं वैसे ही उन दोनों को भिड़ते देखकर दोनों पक्ष के सैकड़ों सहस्रों सैनिक प्रसन्न होकर सिंहनाद करने, शङ्ख बजाने और अनेक विचित्र बाजे बजाने लगे। कायरों के लिए भय को बढ़ानेवाले उस दारुण संग्राम में दो घड़ी तक दोनों ने समान रूप से युद्ध किया॥४९।५१॥ इसके पश्चात् महावीर अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ धृष्टद्युम्न का धनुष, ध्वजा और छत्र काटकर पार्श्वरक्षकों, सारथी और चारों घोड़ों को मार डाला। फिर पराक्रमी अश्वत्थामा उनकी ओर वेग से बढ़े और उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से सहस्रों पाञ्चालों को मारकर उनकी सेना को भगा दिया॥५२।५४॥ इन्द्र के समान महारथी अश्वत्थामा का यह अद्भुत कर्म देखकर पाण्डवों की सेना बहुत ही व्याकुल हुई। पुनि अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न के साथी सौ महारथी पाञ्चालों को सौ बाणों से मार

त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन्वै महारथान् ।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥ ५६ ॥
नाशयामास पञ्चालान्भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ।
ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः ॥ ५७ ॥
अगच्छन्द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ।
स जित्वा समरे शत्रून्द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ५८ ॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ।
स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५९ ॥
सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयैर्निर्जित्य संख्येऽरिगणान्सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ॥ ६० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

डाला और फिर तीन बाणों से अन्य तीन महारथियों को यमपुर भेज दिया। धृष्टद्युम्न और अर्जुन के सम्मुख ही अश्वत्थामा ने असंख्य पाञ्चालसेना का संहार कर डाला॥५४।५७॥उस महासंग्राम में मारे जा रहे पाञ्चाल और सृञ्जयगण अश्वत्थामा को छोड़कर भाग खड़े हुए। उनके रथ और ध्वजा आदि सब अस्त व्यस्त हो गये और वे सब प्राण लेकर भाग खड़े हुए।हे राजेन्द्र ! महावीर अश्वत्थामा समर में शत्रुओं को जीतकर वर्षा ऋतु के मेघ की भाँति गरजने लगे। प्रलयकाल में असंख्य प्राणियों को भस्म करके अग्नि जैसे प्रचण्ड होती है वैसे ही समर में बहुत से शूर शत्रुओं को मारकर अश्वत्थामा शोभायमान हुए।सहस्रों शत्रुओं के दल को जीतकर प्रतापी अश्वत्थामा वैसे ही शोभायमान हुए जैसे असुरों को मारने पर इन्द्र की शोभा होती है।सब कौरव लोग अश्वत्थामा की प्रशंसा करने लगे॥५७।६०॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ साठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६० ॥

अथ एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच— ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात्पाण्डवान्संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।
अम्बष्ठान्मालवान्वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ॥ ३ ॥

एक सौ इकसठ अध्याय ॥ १६१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! तब धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेन ने चारों ओर से अश्वत्थामा को घेरकर उन पर आक्रमण (हमला) किया। यह देखकर राजा दुर्योधन भी,द्रोणाचार्य को साथ लेकर, पाण्डवों की सेना को रोकने चले। फिर घमासान युद्ध होने लगा॥१।३॥राजा युधिष्ठिर ने क्रुद्ध होकर अम्बष्ठ,मालव,

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान्क्रुद्धो वृकोदरः ।
अभीषाहाञ्छूरसेनान्क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।
यौधेयानद्रिजान्राजन्मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ।
निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।
क्षिप्तैःकनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥ ८ ॥
द्यौरिवाऽऽदित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।
हत प्रहरताऽभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ।
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥
व्यधमत्तान्महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ११ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥ १२ ॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३ ॥

वङ्ग, शिबि और त्रिगर्त देश की सेना को मारना प्रारम्भ किया। उधर कुपित भीमसेन ने भी अभीषाह, शूरसेन आदि देशों के युद्धदुर्मद क्षत्रियों को मार-काटकर पृथ्वी में रक्त की कीच कर दी। हे राजेन्द्र! पराक्रमी अर्जुन ने भी यौधेय, पहाड़ी, मद्रक और मालव देश के वीरों की सेनाओं को तीक्ष्ण बाणों से छिन्न भिन्न कर डाला। मज्जा तक गहरे घुसनेवाले नाराच बाणों की चोटें खाकर, दो शिखरवाले पर्वतों के समान, बड़े-बड़े हाथी मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥३।७॥ हाथियों की कटी हुई सूँड़ें इधर-उधर तड़पती हुई दिखाई पड़ती थी, जिनसे जान पड़ता था कि समरभूमि में सहस्रों सर्प रेंग रहे हैं। राजाओं के सुवर्ण-चित्रित श्वेत छत्र कट-कटकर चारों ओर गिरने लगे, जिनके कारण वह रणभूमि प्रलयकाल में सूर्य, चन्द्र और ग्रहों से शोभित आकाशमण्डल के समान जान पड़ रही थी। उस समय द्रोणाचार्य के रथ के सम्मुख "मार डालो, प्रहार करो, बेधड़क बेध डालो, काट डालो" यही बातें सुन पड़ती थीं। महावीर द्रोण ने क्रोध से रौद्र रूप धारण करके, आँधी जैसे मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है वैसे ही, वायव्य अस्त्र का प्रयोग करके पाञ्चालसेना को मारना प्रारम्भ किया। भीमसेन और अर्जुन के सम्मुख ही द्रोणाचार्य के दारुण अस्त्र से मारे जा रहे पाञ्चालगण भयभीत होकर भाग गये हुए ॥७।१२॥ महावीर भीमसेन और अर्जुन यह देखकर,

भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ।
तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।
तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥
महत्या सेनया राजञ्जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।
ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥
नाऽशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।
सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत्सर्वतोमुखी ।
उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

असख्य रथसेना साथ लेकर, शीघ्र ही उस स्थान पहुँचे। अर्जुन द्रोणाचार्य की दाहिनी ओर से और भीमसेन द्रोणाचार्य की बाईं ओर से उनके ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे। तब पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और सोमकगण भी भीमसेन और अर्जुन के साथ आगे बढ़कर कौरवसेना के ऊपर आक्रमण करने लगे। यह देखकर राजा दुर्योधन के पक्ष के महारथी योद्धा लोग, असख्य सेना लेकर, आचार्य की सहायता के निमित्त उनके समीप आ गये। उस समय दिशाओं में घना अँधेरा छाया हुआ था और अधिक रात्रि व्यतीत होने के कारण सैनिकों की आँखें भी निद्रा से बन्द सी हुई जाती थीं॥१२।१७॥महावीर अर्जुन इसी अवसर में कौरवसेना को फिर तीक्ष्ण बाणों से विदीर्ण करने लगे। अर्जुन के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर सैनिक लोग चारों ओर भागने लगे। कोई-कोई राजा अपने-अपने वाहन छोड़कर, अर्जुन के भय से विह्वल होने के कारण, पैदल ही प्राण ले-लेकर भागने लगे। तब महावीर द्रोणाचार्य, राजा दुर्योधन और कौरवदल के अन्यान्य योद्धा लाख यत्न करके भी भागती हुई सेना को नहीं रोक सके॥१७।१९॥

द्रोणपर्व का एक सौ इकसठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६१ ॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६२ ॥

सञ्जय उवाच—सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥
नह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात्सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥ २ ॥

एक सौ बासठ अध्याय ॥ १६२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! इसी समय महावीर सात्यकि ने सोमदत्त को भारी धनुष बजाते देखकर, कुपित होकर, सारथी से कहा—हे सूत! मुझे शीघ्र ही सोमदत्त के समीप ले चलो। मैं सत्य

ततः सम्प्रेषयन्त्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान्सर्वशब्दातिगान्रणे ॥ ३ ॥
तेऽवहन्युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५ ॥
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥
असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चाऽपि तं राजन्नविध्यत्सायकैः शितैः ॥ ८ ॥
तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥
रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ॥ ११ ॥
शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥

कहता हूँ, रण में महाबली शत्रु सोमदत्त को मारे बिना नहीं लौटूँगा॥१।२॥तब सारथी ने सात्यकि की आज्ञा से सिन्धु देश के, मन के समान शीघ्रगामी, श्वेत रङ्ग के और किसी प्रकार के शब्द से न भड़कने वाले बहुमूल्य घोड़ों को हाँक दिया। असुर-वध के निमित्त उद्यत इन्द्र को उनके घोड़े जिस प्रकार ले चले थे उसी प्रकार वेग से जानेवाले घोड़े सात्यकि को ले चले॥३।४॥महाबाहु सोमदत्त ने सात्यकि को युद्ध करने के निमित्त वेग से आते देखकर वैसे ही उन्हें बाणों से ढक दिया जैसे वर्षा ऋतु का मेघ सूर्य को छिपा लेता है। सात्यकि ने भी अविचलित रहकर कुरुश्रेष्ठ सोमदत्त के चारों ओर बाणों का जाल सा बना दिया॥५।७॥तब महावीर सोमदत्त ने सात्यकि की छाती में साठ तीक्ष्ण बाण मारे। महाबली सात्यकि ने भी उन्हें असंख्य तीक्ष्ण बाणों से घायल करना प्रारम्भ किया। हे महाराज! इस प्रकार एक दूसरे के बाणों से घायल होने के कारण वे दोनों वीर वसन्तकाल में फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान शोभायमान होने लगे। कुरुवंश और यदुवंश के यश को बढ़ानेवाले उन दोनों वीरों के सब अङ्ग रक्त से तर हो रहे थे और वे इस प्रकार एक दूसरे को क्रोध की दृष्टि से देख रहे थे कि मानों भस्म कर देंगे॥८।१०॥शत्रुमर्दन दोनों वीर मण्डलाकार रथ घुमाकर युद्ध कर रहे थे। उस समय उनका रूप घोर हो

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन्प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥
संप्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥
ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥ १५ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
वाह्लीकस्य रणे राजन्सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥
सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥
सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥
अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्बहुधा राजन्भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥

रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि मानों दो मेघ गरज-गरजकर बरस रहे हैं। सब अङ्गों में बाण बिंध जाने के कारण वे शल्लकी 'स्याही' के समान दिखाई पड़ रहे थे। सुवर्णपुङ्खयुक्त बाणा से शरीर छिद जाने के कारण वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे वर्षाकाल में जुगनुओं से शोभित दो बड़े वृक्ष हों॥११।१३॥ बाणों से सब अङ्ग प्रदीप्त होने के कारण वे उल्काओं से शोभित दो गजराजों के समान शोभायमान हो रहे थे। हे राजेन्द्र! तब महारथी सोमदत्त ने एक अर्धचन्द्र बाण से सात्यकि के बड़े भारी धनुष को काट डाला और फिर स्फूर्त्ति के साथ पहले पचीस और फिर दस बाण उनको मारे॥१४।१६॥सात्यकि ने उसी समय दूसरा दृढ धनुष लेकर स्फूर्ति से सोमदत्त को पाँच बाण मारे और हँसते हँसते एक भल्ल बाण से उनके रथ की सुवर्णशोभित ध्वजा काटकर गिरा दी। सोमदत्त ने अपने रथ की ध्वजा कटते देखकर, कुछ भी विचलित न हो, सात्यकि को तीक्ष्ण पचीस बाण मारे॥१७।१९॥तब सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से सोमदत्त के सुदृढ धनुष को काट डाला और उनको सुवर्णपुङ्खयुक्त सौ बाण मारे। महाबली महारथी सोमदत्त ने शीघ्रता से दूसरा धनुष लेकर सात्यकि को बाणों से पीड़ित करना प्रारम्भ किया॥२०।२२॥महावीर सात्यकि भी क्रोध से विह्वल होकर सोमदत्त को बाणवर्षा [redacted] पीड़ित करने लगे

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन्बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥
ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥
तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥
स पपात द्विधा छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥
ततस्तु सात्यकी राजन्सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥
ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥
सारथेश्च शिरः कायाद्भल्लेन नतपर्वणा ।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन्स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥
स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः ।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताऽऽशु भारत ॥ ३२ ॥

और महारथी सोमदत्त भी उनके बाणों का उत्तर बाणों से देने लगे । इसी मध्य में सात्यकि की सहायता करने के निमित्त भीमसेन ने सोमदत्त को दस बाण मारे।सोमदत्त ने तनिक भी विचलित न होकर भीमसेन को तीक्ष्ण बाण मारे । सात्यकि की सहायता कर रहे भीमसेन ने क्रुद्ध होकर, सोमदत्त की छाती ताककर, एक लोहे का भारी परिघ (बेलन) फेंका॥२३।२५॥ कुरुकुल की कीर्ति बढ़ानेवाले वीरवर सोमदत्त ने उस भयानक परिघ को वेग से आते देखकर हँसते-हँसते स्फूर्त्ति के साथ बाणों से दो टुकड़े करके गिरा दिया। हे महाराज ! यह लोहे का बेलन सोमदत्त के बाणों से दो टुकड़े होकर, वज्राघात से फटे हुए पर्वत के शिखर की भाँति,पृथ्वी पर गिर पड़ा॥२६।२७॥अब महाप्रतापी सात्यकि ने हँसते-हँसते एक भल्ल बाण से सोमदत्त का धनुष और पाँच बाणों से हस्तावाप (दस्ताना) काटकर चार बाणों से घोड़ों को और एक भल्ल बाण से सारथी को मार डाला॥२८।३०॥फिर सोमदत्त को ताककर,शिला पर रगड़कर पैना किया गया, सुवर्णपुंखयुक्त, प्रज्वलित अग्नि के समान भयानक एक उग्र बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा।हे महाराज ! सात्यकि के छोड़े हुए उग्र बाण ने वेग से जाकर सोमदत्त के हृदय को चीर दिया।श्रेष्ठ रथी महाबाहु सोमदत्त उस भयानक बाण की चोट से विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और उसी क्षण मर गये॥३१।३२॥

सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः ।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥
तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥
छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम् ।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥
ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः ।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥
सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥
स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः ।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥
ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः ।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥

कौरव-सेना के योद्धा लोग महारथी सोमदत्त की मृत्यु से अत्यन्त कुपित होकर,बहुत सी रथसेना साथ लेकर, सात्यकि पर आक्रमण करने चले। इधर पाण्डव लोग, सम्पूर्ण प्रभद्रकगण को और बहुत सी सेना को साथ लेकर,द्रोणाचार्य की सेना का नाश करने के निमित्त चले।धर्मपुत्र युधिष्ठिर क्रोध के वश होकर,द्रोणाचार्य के सम्मुख ही, उनकी सेना को मारकर भगाने लगे ॥३४।३६॥यह देखकर तेजस्वी द्रोणाचार्य क्रोध से लाल नेत्र करके वेग से उनके सम्मुख आये। उन्होंने तीक्ष्ण सात बाण युधिष्ठिर को मारे। युधिष्ठिर ने भी क्रुद्ध होकर आचार्य को पाँच बाण मारे। द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के बाणों की चोट से विह्वल हो उठे। क्रोध से होंठ चाटते हुए आचार्य ने स्फूर्ति के साथ युधिष्ठिर की ध्वजा और धनुष काट डाला॥३७। ३९॥हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर ने तुरन्त दूसरा दृढ़ धनुष लेकर घोड़े, सारथी, ध्वजा, रथ और द्रोणाचार्य को एक सहस्र बाण मारे। उनकी यह स्फूर्ति देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ॥४०।४१॥युधिष्ठिर के बाणों की गहरी चोट से महारथी द्रोणाचार्य ऐसे व्याकुल हो उठे कि क्षण भर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रथ पर

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४३ ॥
असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान् ।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥
चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ॥ ४७ ॥
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८ ॥
योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥
राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाऽराज्ञा युद्धमिष्यते ।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५० ॥
यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनञ्जयः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥
वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ५२ ॥

ध्वजा के सहारे बैठे रहे। थोड़ी देर के पश्चात् सचेत होकर वे क्रोध के मारे सर्प की भाँति श्वास लेने लगे।इसके पश्चात् उन्होंने वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया। प्रतापी युधिष्ठिर ने तनिक भी न व्याकुल होकर वायव्य अस्त्र से ही उस अस्त्र को व्यर्थ कर दिया और स्फूर्ति के साथ द्रोणाचार्य का बहुत बड़ा दृढ धनुष काट डाला। क्षत्रियों का मानमर्दन करनेवाले आचार्य ने शीघ्र दूसरा धनुष हाथ में लिया,किन्तु युधिष्ठिर ने तीक्ष्ण भल्ल बाणों से उसको भी काट डाला॥४२।४६॥इसी समय श्रीकृष्ण ने द्रोणाचार्य को बहुत क्रोधित करना (धर्मराज के लिए) अच्छा न समझकर युधिष्ठिर से कहा—हे महाबाहु ! मैं जो कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिए। आप अब आचार्य से युद्ध न कीजिए। द्रोणाचार्य सदा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त आपको पकड़ने की धुन में लगे रहते हैं। फिर इनके साथ आपका युद्ध मुझे उचित नहीं जान पड़ता। इन्हें मारने के लिए जिनकी उत्पत्ति हुई है वे धृष्टद्युम्न ही इन्हें मारेंगे। इसलिए आप गुरु से युद्ध करना छोड़कर वहाँ जाइए, जहाँ राजा दुर्योधन हैं। राजा को राजा से ही युद्ध करना चाहिए।जो राजा नहीं है उससे राजा का युद्ध करना उचित नहीं। जब तक इधर, मेरी सहायता से,वीर अर्जुन और भीमसेन कौरवों के साथ युद्ध करते हैं तब तक उधर आप हाथी,घोड़े,रथ आदि को साथ लेकर दुर्योधन से युद्ध कीजिए॥४७।५१॥हे महाराज !

प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान्योधान्व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥ ५३ ॥
रथघोषेण महता नादयन्वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥ ५४ ॥
भीमस्याऽनिघ्नतः शत्रून्पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान्व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

यह सुनकर युधिष्ठिर क्षण भर सोचकर, गुरु के सम्मुख से, हट गये। मुख फैलाये हुए काल के समान घोर रूप धारण किये, शत्रुनाशन भीमसेन जहाँ पर आपके योद्धाओं का नाश कर रहे थे वहीं युधिष्ठिर भी वर्षा-काल के मेघ के गरजने के समान रथके शब्द से पृथ्वीतल को कँपाते और दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते पहुँचे और भीमसेन की सहायता करने लगे। इधर द्रोणाचार्य भी उस रात्रि के युद्ध में पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना को मारते और भगाते हुए चारों ओर विचरने लगे॥५२।५५॥

द्रोणपर्व का एक सौ बासठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६२ ॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

सञ्जय उवाच-- वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥
नाऽपश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृधे महत् ॥ २ ॥
नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम ।
वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ।
ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥ ५ ॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।
महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६ ॥

एक सौ तिरसठ अध्याय ॥ १६३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगने पर एक तो रात्रि के अँधेरे और उस पर धूल उड़ने के कारण योद्धाओं को कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। पास ही खड़े हुए योद्धा तक एक दूसरे को नहीं देख पाते थे। केवल अनुमान से और योद्धाओं के अपने-अपने नाम के उच्चारण से शत्रु-मित्र को पहचानकर योद्धा लोग घोर युद्ध कर रहे थे। उस लोमहर्षण संग्राम में असंख्य हाथी, घोड़े और मनुष्य मर-मरकर, अधमरे हो-होकर गिरने लगे॥१।३॥ हे नृपश्रेष्ठ! आपके पक्ष से वीर द्रोणाचार्य कृपाचार्य,

अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तत्र मन्त्रिते ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ।
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्विहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत्किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥
कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृतः ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच—ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तॄनथाऽऽदिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥
द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्राजाऽभ्ययाद्गोपयन्वै निशायाम् ॥ ११ ॥
उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान्प्रदीपान् ॥ १२ ॥
ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा विद्याधराश्चाऽप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥
नागाः सयक्षोरगकिन्नराश्च हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।
दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तोऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।
सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता व्यरोचताऽग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥

कर्ण और पाण्डव पक्ष से भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि दोनों सेनाओं को मथ रहे थे। इन महारथियों के द्वारा चारों ओर से मारी जा रही सेनाएँ उस अँधेरे में इधर-उधर भागने और नष्ट होने लगीं। व्याकुल हुए हुए अंतत सैनिक चारों ओर भागते समय शत्रुओं के प्रहार से मरने लगे। हे महाराज! आपके पुत्र की दुर्मति के कारण सहस्रों महारथी योद्धा और सब सैनिक उस अँधेरे में व्याकुल होकर परस्पर ही मरने-मारने लगे॥३।७॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! पाण्डवों के पराक्रम से जब उत्साह नष्ट हो गया और अँधेरे के कारण घबराहट फैल गई तब उस हलचल में हम लोगों के मन की क्या दशा हुई? उस अँधेरे में कौरवों और पाण्डवों की सेना कैसे एक दूसरे को देख या पहचान सकी॥८।९॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! द्रोणाचार्य ने सेनापतियों को आज्ञा देकर, मरने से शेष रही हुई सब सेना एकत्र करके, फिर से व्यूह की रचना कराई। उसके अग्र भाग में स्वयं द्रोणाचार्य, मध्य में शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शकुनि स्थित हुए और राजा दुर्योधन स्वयं उस रात्रि के समय सारी सेना की देखभाल करते तथा सैनिकों को उत्साहित करते हुए आगे बढ़े। राजा दुर्योधन ने धैर्य बँधाकर सब पैदल सेना से कहा कि इस समय बड़ा अँधेरा है, इसलिए तुम लोग अस्त्र-शस्त्र रख दो और हाथों में जलते हुए दीपक (मशालें) ले लो॥१०।१२॥ हे महाराज! यह आज्ञा प्राप्त होने से प्रसन्न होकर सब पैदल सिपाहियों ने जलती हुई मशालें हाथों में

महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।
रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६ ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाऽऽशु ॥ १७ ॥
सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां यथाऽन्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८ ॥
प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन्समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यङ्गतः सूर्य इवांऽशुमाली ॥ १९ ॥
जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥
गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभा रश्मिभिराजमीढ पुनः पुनः सञ्जनयन्ति दीपान् ॥ २१ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि खड्गा दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥
शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाऽभरणप्रभाभिर्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३ ॥
पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि वीरावधूतानि तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र तपात्यये विद्युदिवाऽन्तरिक्षे ॥ २४ ॥

ले लीं। उस समय युद्ध देखने के निमित्त आकाश में एकत्र हुए देवता, ऋषि, गन्धर्व, देवर्षि, विद्याधर, अप्सरा, नाग, यक्ष, सर्प, किन्नर आदि ने भी प्रसन्न होकर हाथों में प्रज्वलित [रत्न-] दीप ले लिये। दिशाओं की अधिष्ठात्री देवियाँ सुगन्धित तैलयुक्त दीपक जलाकर अन्तरिक्ष से रणभूमि में उतरने लगीं। विशेष-कर नारद और पर्वत नाम के दोनों देवर्षियों ने कौरवों और पाण्डवों की सेना में उजेला करने के निमित्त दीपक जलाकर रणभूमि में पहुँचाये। वह दो भागों में बँटी हुई सेना रात्रि के समय दीपकों की प्रभा, बहुमूल्य दिव्य आभूषणों की चमक और चल रहे शस्त्रों की कान्ति से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुई। हे महाराज! आपकी सेना के प्रत्येक रथ में पाँच, प्रत्येक हाथी पर तीन और प्रत्येक घोड़े पर एक, इस हिसाब से असंख्य दीपक जलाये गये। क्षण भर में ये सब दीपक जल उठे और आपकी सारी सेना में उजेला करने लगे॥१३।१७॥ हाथ में मशालें और तेल लिए हुए पैदलों के झुण्डों से शोभित सेनादल अन्तरिक्ष में बिज-लियों से शोभित घनघटा के समान दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार सेना में उजेला हो जाने पर अग्नि की तरह शत्रुओं को जला रहे सुवर्ण-कवचधारी वीर श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उस सेना के मध्य में मध्याह्न के सूर्य के समान शोभा को प्राप्त हुए। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! उस समय सुनहरे आभूषण, निष्क, चमकीले धनुष, तरकस और विविध शस्त्रों पर उस प्रकाश की आभा पड़ने से चौगुनी चमक उत्पन्न हो गई॥१८।२०॥ वीरों के द्वारा घुमाई जा रही शैक्य, लोहे की गदा, स्वच्छ परिघ और रथशक्ति आदि पर वह प्रकाश पड़ने से ऐसा जान पड़ने लगा मानों उन अस्त्र शस्त्रों के भीतर और भी असंख्य दीपक जल रहे हैं। छत्र, चमर, खड्ग,

प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नतां चाऽऽपततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५ ॥
महावने दारुमये प्रदीप्ते यथा प्रभा भास्करस्याऽपि नश्येत् ।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥
तत्सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घानचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥
गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये ध्वजेषु चाऽन्ये जघनेषु चाऽन्ये ॥ २८ ॥
सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये पश्चात्पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्निहस्ता व्यदीपयन्पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २९ ॥
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्निहस्ताः सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तास्तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम् ।
तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं बलं तवाऽऽसीद्बलवद्बलेन ॥ ३१ ॥
भाः कुर्वता भानुमता शनेन दिवाकरेणाऽग्निरिवाऽभिगुप्तः ।
तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥

प्रज्वलित बड़ी-बड़ी उल्का और युद्ध कर रहे वीरों की हिलती हुई सुवर्ण की माला आदि पर उस प्रकाश के पड़ने से अपूर्व शोभा दिखाई पड़ने लगी। हे राजेन्द्र! इस प्रकार शस्त्रों की चमक, दीपकों के प्रकाश और आभूषणों की कान्ति से आपकी सेना अत्यन्त प्रकाशित हो उठी॥२१।२३॥ चमकीले, रक्त में सने, वीरों के हाथों से चलाये गये, शरीरों को काटनेवाले शस्त्र—वर्षा ऋतु के समय आकाशमण्डल में बिजली की तरह—चारों ओर उस प्रकाश में चमकने लगे। वेग से झपटकर शत्रु पर शस्त्रों का वार कर रहे वीरों के कम्पित मुखमण्डल आँधी में हिल रहे कमलों के समान बहुत ही शोभित हो रहे थे। जिस प्रकार वृक्षों से परिपूर्ण वन में अग्नि लगने से उसके सम्मुख सूर्य की भी आभा फीकी पड़ जाती है, उसी प्रकार उस समय आपकी सेना प्रकाश से प्रज्वलित सी हो उठी। उस समय उस सेना का भयानक रूप देखनेवालों के मन में महाभय उत्पन्न कर रहा था॥२४।२६॥ पाण्डवों ने हमारी सेना में उजेले का प्रबन्ध देखकर तुरन्त अपनी सेना की टुकड़ियों में भी पैदल सेना को दीपक जलाने की आज्ञा दे दी। पैदल सेना के लोगों ने स्फूर्ति के साथ दीपक और मशाले जला लीं। पाण्डवों ने प्रत्येक हाथी पर सात, प्रत्येक रथ में दस और प्रत्येक घोड़े के ऊपर दो दीपक जलाये। इसी प्रकार आसपास, ध्वजाओं पर और मध्यस्थल में भी असंख्य दीपक जला दिये गये। सेना के सब दलों में, आसपास, आगे, पीछे, मध्य में, चारों ओर दीपक ही दीपक दिखाई पड़ रहे थे। असंख्य पैदल सिपाही हाथों में मशालें और दीपक लेकर सेना के सब भागों में उजेला पहुँचाने लगे। दोनों सेनाओं के मध्य में जलती हुई मशालें लेकर लोग परिभ्रमण करने लगे। सेना के सब दलों में हाथी, रथ, घोड़े आदि के ऊपर पैदलों के हाथों में प्रकाशित दीपकों और मशालों के प्रकाश से आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ जगमगा उठीं। हे राजेन्द्र! पाण्डवों की प्रबल सेना के प्रकाश से आपकी सेना

तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं बभूव तेषां तत्र चैव सैन्यम् ।
तेन प्रकाशेन दिवं गतेन सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ।
तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४ ॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भिरायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ।
रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५ ॥
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।
तच्छक्तिसङ्घाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् ।
तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा सन्तापयन्पाण्डवान्विप्रमुख्यः ॥ ३७ ॥
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथाऽर्को वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६३ ॥

वैसे ही अधिकतर प्रकाशित हो उठी, जैसे सूर्य का प्रकाश पड़ने से अग्नि का तेज और अधिक बढ़ जाता है॥२७।३२॥दोनों सेनाओं के दीपकों का प्रकाश पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सब दिशाओं में विस्तृत हो गया। उस प्रकाश से आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगीं।वह प्रकाश आकाश तक पहुँच गया। उसे देखकर देवताओं के गण, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध और अप्सरा आदि आकाशचारियों के दल देखने के निमित्त आकर एकत्र होने लगे।उस समय वह रण का मैदान देवता, गन्धर्व, यक्ष,असुरेन्द्र,अप्सरा आदि के झुण्डों और मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गारोहण कर रहे वीरों से परिपूर्ण होने के कारण देवलोकसा जान पड़ने लगा।दीपकों से प्रकाशित, क्रुद्ध योद्धाओं और शीघ्रता से जा रहे घोड़ों से शोभित, रथ हाथी घोड़ों से क्षोभ को प्राप्त और चतुरङ्गिणी सेना की व्यूह रचना से दर्शनीय दोनों सेनाएँ देवताओं और दैत्यों के व्यूहों के समान जान पड़ती थीं। उस रात्रि के समय रथों के जमघट से वर्षाकाल का दुर्दिन सा प्रतीत होने लगा।क्योंकि चल रही' शक्तियों के समूह प्रचण्ड आँधी के समान, बड़े बड़े रथ मेघमाला के समान, हाथियों घोड़ों और रथों का शब्द मेघगर्जन के समान, शस्त्रों की वर्षा जलवर्षा के समान और रक्त का प्रवाह जलप्रवाह के समान दिखाई पड़ रहा था। हे महाराज! उस महासमर में प्रचण्ड अग्नि के समान सबको भस्म कर रहे महात्मा द्रोणाचार्य बाणों से पाण्डवों की सेना को वैसे ही तपा रहे थे जैसे शरद् ऋतु के आकाश में मध्याह्नकाल के समय प्रचण्ड सूर्यदेव अपनी किरणोंसे सब लोकोंको तपाते हैं॥३२।३८॥

द्रोणपर्व का एक सौ तिरसठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६३ ॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६४ ॥

सञ्जय उवाच— प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥
ते समेत्य रणे राजञ्शस्त्रप्रासासिधारिणः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥
देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥
उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुन्धरा ॥ ५ ॥
व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाऽऽबभुः ॥ ६ ॥
असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् ।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥
रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ८ ॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् ।
ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥
व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन्सर्वपार्थिवान् ।
धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः ।
किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११ ॥

एक सौ चौंसठ अध्याय ॥ १६४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अँधेरे और धूल से ढकी हुई उस रणभूमि में इस प्रकार उजेला होने पर परस्पर वध करने की अभिलाषा से योद्धा लोग परस्पर भिड़ गये।प्रास,खड्ग आदि अनेक प्रकार के शस्त्र हाथों में लिये,एक दूसरे के अपराधी और द्वेषी योद्धा लोग क्रोध की दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखने लगे। रत्नजटित सुवर्ण की डण्डियों से शोभित और सुगन्धित तेल से भरे हुए सहस्रों दीपक और मशालें चारों ओर जलने से और देवता, गन्धर्व आदि के रत्न दीपकों से उस समय वह पृथ्वी ऐसी जान पड़ती थी जैसे ग्रह-तारागण आदि से परिपूर्ण आकाशमण्डल हो। जलती हुई सैकड़ों मशालें और उल्काओं से ऐसा जान पड़ता था, मानों प्रलयकाल में पृथ्वीमण्डल जल रहा हो॥१।५॥उन दीपकों से सब दिशाएँ वैसी ही जान पड़ती थीं जैसे वर्षा ऋतु के सन्ध्याकाल में जुगनुओं से परिपूर्ण वृक्ष होते हैं। हे राजेन्द्र! तब सब वीर योद्धा लोग पृथक्-पृथक् भिड़कर युद्ध करने लगे। घुड़सवार घुड़सवार से, हाथी का योद्धा हाथी के योद्धा से, रथी रथी से प्रसन्नतापूर्वक भिड़ गया॥उस घोर रात्रिकाल में आपके पुत्र की आज्ञा से युद्ध कर रही चतुरङ्गिणी सेना,सहसा बड़ी मात्रा में, नष्ट होने लगी। इसी समय वीर अर्जुन स्फूर्ति के साथ बड़े-बड़े राजाओं को मारते हुए कौरव-सेना को नष्ट करने लगा॥६।१०॥राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! दुर्धर्ष असहनशील शत्रुनाशन महावीर अर्जुन जब कुपित होकर मेरे पुत्र की सेना में प्रवेश हुए तब तुम

दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ।
के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिन्दमाः ॥ १२ ॥
द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥
के पृष्ठतश्चाऽप्यभवन्वीरा वीरान्विनिघ्नतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान्रणे ॥ १४ ॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥
यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥
अव्यग्रानेव हि परान्कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान्संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥ १७ ॥
हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच – द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान्भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९ ॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥
द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥

लोगों के मन की कैसी अवस्था हुई होगी ? [उत्साहित होकर युद्ध करने लगे या भयभीत होकर भाग खड़े हुए] मेरी सेनाओं ने क्या किया ? दुर्योधन ने उस समय क्या अपना कर्त्तव्य निश्चित किया ? कौन-कौन शत्रुनाशन वीर योद्धा अर्जुन से युद्ध करने के निमित्त उनके आगे आये और किन किन योद्धाओं ने अर्जुन के आने पर द्रोणाचार्य की रक्षा की ? द्रोणाचार्य के रथ के दाहने और बायें चक्रों की रक्षा किन किन लोगों ने की? वीरों का नाश कर रहे आचार्य के पृष्ठ-भाग की रक्षा करते हुए कौन कौन लोग उनके साथ हुए ? जब अपराजित महापराक्रमी आचार्य रथ के मार्गों में नाचते से बहुत बड़ा धनुष लेकर पाञ्चालों की सेना में प्रवेश हुए तब उनके आगे शत्रुओं को मारते हुए कौन कौन वीर चले ?॥१०।१५॥ हे सञ्जय ! जिन पुरुषसिंह ने क्रोध से धूमकेतु की भाँति प्रज्वलित होकर पाञ्चाल-सेना के रथियों के झुण्ड के झुण्ड नष्ट कर दिये, वे द्रोणाचार्य अन्त को कैसे मारे गये ? तुम शत्रुओं को अव्यग्र, अपराजित, प्रसन्न और संग्राम में उत्साहित बतलाते हो और कहते हो कि मेरे पक्ष के रथी मारे गये, छिन्न भिन्न होकर भागने लगे, शत्रुओं ने उनके रथ नष्ट कर दिये और उन्होंने युद्ध में उत्साह और तेज की कमी दिखलाई॥१६।१८॥ सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र! उस रात्रि में घमासान युद्ध करने के निमित्त उद्यत द्रोणाचार्य का अभिप्राय जानकर दुर्योधन ने

त्रिगर्तानां च ये शूरा हताशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान्पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥
आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ॥ २३ ॥
द्रोणो हि बलवान्युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत्त्रिदशान्युद्धे किमु पार्थान्ससोमकान् ॥ २४ ॥
ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चाल्या धृष्टद्युम्नान्महारथान् ॥ २५ ॥
पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद्रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥ २६ ॥
तस्मात्सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
सुगुप्तः पाण्डवान्हन्यात्सृञ्जयांश्च ससोमकान् ॥ २७ ॥
सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः ॥ २८ ॥
तथाऽर्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः ॥ २९ ॥
शेषांश्च पाण्डवान्योधाः प्रसभं हीनतेजसः ।
सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ॥ ३० ॥

अपने अनुगत भाइयों से और कर्ण, वृषसेन, शल्य, दुर्धर्ष, दीर्घबाहु आदि महारथियों तथा उनके साथी योद्धाओं से कहा कि सब लोग यत्नपूर्वक पराक्रम प्रकट करते हुए पीछे रहकर द्रोणाचार्य की ही रक्षा करें। कृतवर्मा उनके दाहने पहिये की और शल्य बायें पहिये की रक्षा करें॥१९।२१॥और त्रिगर्त देश के जो महारथी मरने से बचे थे उन्हें,आचार्य के आगे रहकर, शत्रुओं से युद्ध करने की आज्ञा दी गई।दुर्योधन ने कहा—वीरवर आचार्य इस समय मन लगाकर शत्रुओं से युद्ध करेंगे और उन्हें मारेंगे और पाण्डव भी अपनी सेना सहित आचार्य को रोकने और मारने का यत्न कर रहे हैं। इसलिए तुम लोग द्रोणाचार्य की ही रक्षा और सहायता करो।द्रोणाचार्य बलवान्, युद्ध में स्फूर्ति से हाथ चलानेवाले और प्रतापी हैं। वे युद्ध में, पाञ्चालों सहित पाण्डवों की कौन गिनती है, देवताओं को भी जीत सकते हैं॥२२।२४॥तुम सब महारथी लोग एकत्र होकर बड़ी सावधानी से महारथी धृष्टद्युम्न से द्रोणाचार्य की रक्षा करो।पाण्डवों की सेना में वीर धृष्टद्युम्न के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं देख पड़ता,जो द्रोणाचार्य का सामना कर सके।इसलिए सब प्रकार द्रोणाचार्य की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य कर्त्तव्य है।सुरक्षित द्रोणाचार्य पाण्डव, सृञ्जय, सोमक आदि सब शत्रुओं को मार सकते हैं॥२५।२७॥युद्ध में सेना के अग्र भाग में युद्ध करनेवाले सब सृञ्जयगण जब मार डाले जायँगे तब वीर अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न को और कर्ण महारथी अर्जुन को मार डालेंगे। फिर मैं भी महाबली भीमसेन को जीत लूँगा॥रह गये अन्य पाण्डव,सो वे इन लोगों के मरने पर उत्साह और तेज से हीन हो जायँगे और उन्हें मेरी ओर के अन्य योद्धा सहज ही मार डालेंगे। अतएव

तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम् ।
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ३१ ॥
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ।
अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ॥ ३३ ॥
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं समपीडयन् ।
द्रौणिः पञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृञ्जयान् ॥ ३४ ॥
छादयाञ्चक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत ॥ ३५ ॥
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ।
नैवाऽस्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम् ॥ ३६ ॥
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

इस प्रकार आज के युद्ध में मदा के लिए मेरी विजय स्पष्ट देख पड़ती है । इसलिए तुम लोग जाकर शीघ्र महारथी द्रोणाचार्य की ही रक्षा करो॥२८।३१॥ हे महाराज ! राजा दुर्योधन ने उस अँधेरी रात्रि के दारुण अँधेरे में इस प्रकार युद्ध करने के निमित्त सारी सेना को आज्ञा दे दी। अब दोनों सेनाओं में परस्पर विजय की अभिलाषा से घोर युद्ध होने लगा। अर्जुन कौरव-सेना को पीड़ित करने लगे और कौरव-सेना अर्जुन को पीड़ित करने लगी। इस प्रकार दोनों पक्ष अनेक अस्त्र-शस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे॥३१।३४॥अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के पिता पाञ्चालराज द्रुपद को और द्रोणाचार्य सृञ्जयगण को अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से घायल करने लगे। परस्पर प्रहार कर रहे पाण्डव-पाञ्चाल सैनिकों और कौरव सैनिकों का घोर कोलाहल और आर्तनाद सुनाई पड़ने लगा। हे राजेन्द्र ! उस भयङ्कर रात्रि में जैसा घोर संग्राम हुआ वैसा संग्राम हमने या और लोगों ने कभी पहले नहीं देखा-सुना॥३४।३७॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौंसठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६४ ॥

अथ पञ्चषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

सञ्जय उवाच—वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
अब्रवीत्पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान् ।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया ॥ २ ॥

एक सौ पैंसठ अध्याय ॥ १६५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सब प्राणियों का नाश करनेवाला महाभयानक रात्रियुद्ध छिड़ने पर युधिष्ठिर ने भी पाण्डव-पाञ्चाल-सोमकगण की सम्मिलित सेना को आज्ञा दी कि तुम लोग दौड़ो,

राज्ञस्ते वचनाद्राजन्पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाऽभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ ३ ॥
तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥
शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात्कौरवो राजन्भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥
सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥
भीमसेनमथाऽऽयान्तं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥
नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन्वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥
शिखण्डिनमथाऽऽयान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन्वारयामास संयुगे ॥ १० ॥
प्रतिविन्ध्यमथाऽऽयान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥
भैमसेनिमथाऽऽयान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥

जाओ, द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त उन्हीं पर आक्रमण करो। महाराज की आज्ञा पाकर पाञ्चाल-सृञ्जयगण भयानक शब्द और सिंहनाद करते हुए द्रोणाचार्य की ओर चले ॥१।३॥ तब हम लोग भी उत्साह और दर्प के साथ गरजते ललकारते हुए उन की ओर चले और अपनी शक्ति उत्साह पराक्रम आदि के अनुसार उनसे युद्ध करने लगे। राजा युधिष्ठिर सेना का मध्यान्न करते हुए आचार्य पर आक्रमण करने आ रहे थे। यह देखकर, एक मस्त हाथी जैसे दूसरे मस्त हाथी से भिड़ने के लिए झपटता है वैसे ही, वीर कृतवर्मा उनसे युद्ध करने चले। चारों ओर समर-भूमि में बाण बरसा रहे सात्यकि से युद्ध करने के निमित्त, कुरुकुल में उत्पन्न, भूरि आगे बढ़े ॥४।६॥ द्रोण पर झपट रहे महारथी सहदेव को वैकर्तन कर्ण ने रोका। मुख फैलाये हुए काल के समान भयानक भीमसेन को आते देखकर, जीवन का मोह छोड़कर, राजा दुर्योधन ने उनका सामना किया। सब प्रकार के युद्धों में निपुण श्रेष्ठ योद्धा नकुल को शकुनि ने शीघ्र ही रोका॥७।९॥ रथ पर सवार होकर आ रहे शिखण्डी को कृपाचार्य ने रोका। मोर के रङ्ग के घोड़ों से शोभित रथ पर आ रहे प्रतिविन्ध्य को दुःशासन ने रोका। सैकड़ों माया जाननेवाले घटोत्कच राक्षस को अस्त्रनिपुण अश्वत्थामा ने रोका॥१०।१२॥ सेना और अनुचरों सहित आ रहे महारथी द्रुपद को वृषसेन ने,

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥
विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥
शतानीकमथाऽऽयान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाऽऽशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥
अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥
तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥ १७ ॥
तथाऽन्यान्पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान् ।
तावका रथिनो राजन्वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥
गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे ।
योधयन्तश्च मृद्नन्त' शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥
निशीथे तुरगा राजन्द्रावयन्त' परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥
सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन्महाराज विनदन्त' पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥
नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥

द्रोण पर आक्रमण करने से, रोका । आचार्य को मारने के निमित्त शाघ्रता से चले आ रहे राजा विराट को कुपित शल्य न रोका। नकुल के पुत्र शतानीक को चित्रसेन ने विचित्र बाणों से रोका॥१३।१५॥श्रेष्ठ योद्धा महारथी अर्जुन को आते देखकर राक्षसेन्द्र अलम्बुष ने रोका । वैसे ही उधर शत्रुओं को रण में मार रहे महाधनुर्द्धर उत्साही महात्मा आचार्य को धृष्टद्युम्न ने रोका॥१६।१७॥हे महाराज ! इस प्रकार पाण्डव पक्ष के आये हुए महारथियों को आपके पक्ष के योद्धा वेग से रोकने लगे। हाथियों के ऊपर से युद्ध करने वाले सैंकड़ों सहस्रों योद्धा गजारोही योद्धाओंसे भिड़कर युद्ध करते दिखाई पड़ते थे॥१८।२०॥प्रास, शक्ति, ऋष्टि आदि शस्त्र हाथ में लिये हुए घुड़सवार घोड़े दौड़ाते घुड़सवारों से भिड़ गये और गरजने लगे। वेग से घोड़ों को दौड़ाने के कारण वे लोग परदार पर्वतों के समान जान पड़ते थे। बहुत से पैदल योद्धा गदा, मुशल आदि अनेक शस्त्रों से परस्पर प्रहार कर रहे थे॥२१।२२॥हे राजेन्द्र ! तटभूमि जैसे समुद्र के

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २६ ॥
माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चाऽर्दयच्छरैः ॥ २७ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणान्पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन्धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥
तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥ ३१ ॥
सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥ ३२ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३३ ॥

वेग को रोकती है, वैसे ही हृदीक के पुत्र कृतवर्मा ने क्रुद्ध होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर को रोका। युधिष्ठिर ने ठहर-ठहर कहकर कृतवर्मा को पहले पाँच और फिर बीस शीघ्रगामी बाण मारे। कृतवर्मा ने कुपित होकर भल्ल बाण से युधिष्ठिर का धनुष काट डाला और फिर सात बाण मारे॥२३।२५॥महारथी युधिष्ठिर ने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्मा की छाती और हाथों में दस तीक्ष्ण बाण मारे। धर्मपुत्र के बाणों की चोट खाकर भी कृतवर्मा विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी क्रोध-पूर्वक युधिष्ठिर को सात बाण मारे। युधिष्ठिर ने उन का धनुष और हस्तावाप काटकर उनको अत्यन्त ही तीक्ष्ण पाँच बाण मारे वे बाण उनके सुवर्णचित्रित बहुमूल्य कवच को काटकर शरीर को फोड़कर, बिल में सर्प की भाँति, पृथ्वी में प्रवेश हो गये॥२६।२९॥ कृतवर्मा ने क्षण भर में दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिर को साठ और उनके सारथी को नव बाण मारे। तब युधिष्ठिर ने धनुष रखकर विषैले सर्प के समान भयङ्कर शक्ति कृतवर्मा के ऊपर चलाई। वह सुवर्ण-चित्रित भारी शक्ति कृतवर्मा के दाहिने हाथ को भेदकर पृथ्वी-तल में प्रवेश हो गई॥३०।३२॥इसी मध्य में युधिष्ठिर ने धनुष लेकर कृतवर्मा को तीक्ष्ण बाणों से ढक दिया। कृतवर्मा ने भी स्फूर्ति के साथ क्षण भर में युधिष्ठिर के रथ, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया। तब युधिष्ठिर ने ढाल और तलवार हाथ में ली; किन्तु

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥
ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥
तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
अप्रैषीत्समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥
तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥ ३७ ॥
ततः शरशतेनाऽऽजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चाऽस्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥ ३८ ॥
हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाऽम्बरात् ॥ ३९ ॥
स छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद्रणात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥
कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयाने नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

कृतवर्मा ने शीघ्र ही तीक्ष्ण बाणों से ढाल और तलवार को काट डाला॥३३।३५॥अब युधिष्ठिर ने सुवर्ण-दण्डयुक्त असह्य तोमर हाथ में लेकर वेग से कृतवर्मा के ऊपर फेंका। युधिष्ठिर के हाथ से छूटकर आ रहे उस तोमर के कृतवर्मा ने हँसते हँसते स्फूर्त्ति के साथ दो टुकड़े कर दिये। इसके पश्चात् धर्मराज को सौ बाण मारे। कृतवर्मा ने तीक्ष्ण बाणों से धर्मराज का कवच भी काट डाला॥३६।३८कृतवर्मा के बाणों की चोट से युधिष्ठिर का बहुमूल्य सुवर्णरत्नभूषित कवच, आकाश से ताराओं की भाँति, गिर पड़ा। धनुष, रथ और कवच न रहने पर युधिष्ठिर कृतवर्मा के बाणों से पीड़ित होकर उनके आगे से भाग गये। युधिष्ठिर को जीतकर महावीर कृतवर्मा फिर द्रोणाचार्य के रथ के पहियों की रक्षा करने लगे॥३९।४१॥

द्रोणपर्व का एक सौ पैंसठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६५ ॥

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच -भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत्प्रयाणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥
अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत्तस्य शोणितम् ॥ २ ॥

एक सौ छासठ अध्याय ॥ १६६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! हाथी की भाँति, वेग से आ रहे सात्यकि का भूरि ने सामना किया।

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥ ३ ॥
तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥ ४ ॥
तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥
तावन्योन्यं शरै राजन्संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रूणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत्समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥
स विध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥
छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥
स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाऽऽकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

सात्यकि ने क्रुद्ध होकर भूरि के हृदय में पाँच तीक्ष्ण बाण मारे, जिनके लगने से रक्त की धारा बह चली। तब कुरुकुल-श्रेष्ठ भूरि ने भी रणनिपुण सात्यकि की छाती में दस बाण मारे॥१।३॥इस प्रकार क्रोधान्ध, काल के समान, दोनों महावीर क्रोध से लाल नेत्र किये हुए बड़े-बड़े धनुष खींचकर बाण बरसाने और एक दूसरे को घायल करने लगे। कुछ देर तक दोनों भयानक युद्ध करते रहे॥४।६॥महापराक्रमी सात्यकि ने हँसते हँसते महावीर भूरि के धनुष को काटकर दो टुकड़े कर दिया। फिर ठहर-ठहर कहकर उनकी छाती में नव तीक्ष्ण बाण मारकर वे गरजने लगे। शत्रु के बाणों से धनुष कटने और बहुत घायल होने पर भूरि को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर सात्यकि को तीन बाण मारे और हँसते-हँसते एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से उनका धनुष काट डाला॥७।१०॥शत्रु ने जब धनुष काट डाला तब क्रोधान्ध सात्यकि ने, स्फूर्ति के साथ, भूरि के वक्षःस्थल में एक भयानक शक्ति चलाई। उस शक्ति के लगने से भूरि का शरीर विदीर्ण हो गया और वे आकाश से गिरे हुए प्रकाशमान मङ्गल ग्रह की भाँति रथ से नीचे गिर पड़े॥११।१२॥हे राजेन्द्र! तब महावीर अश्वत्थामा बड़े वेग से सात्यकि के सम्मुख पहुँचकर, "ठहर जा, ठहर जा" कहकर, गर्जन-तर्जन करते हुए वैसे ही उन पर बाण बरसाने लगे जैसे मेघ किसी पर्वत

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥
तिष्ठतिष्ठेति चाऽऽभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाऽम्बुदः ॥ १४ ॥
तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥
तिष्ठतिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥ १६ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ॥ १८ ॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।
शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ २० ॥
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् ।
स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा ।
ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥

पर जल बरसाते हैं। इसी समय महापराक्रमी घटोत्कच ने अश्वत्थामा को सात्यकि के रथ के सम्मुख आते देखकर दारुण सिंहनाद किया और कहा—हे द्रोणाचार्य के पुत्र! तुम यहीं खड़े रहो, मेरे आगे से जीते-जी अन्यत्र नहीं जा सकोगे। कार्त्तिकेय ने जैसे महिषासुर को मारा था वैसे ही आज मैं तुमको मार डालूँगा। हे ब्राह्मण! मैं अभी तुम्हारा युद्ध का अभिमान मिटा दूँगा॥१३।१७॥हे महाराज! क्रोध से लाल लाल नेत्र किये हुए शत्रुनाशन घटोत्कच यों कहकर, कुपित, सिंह जैसे गजराज पर झपटता है वैसे ही, बड़े वेग से आक्रमण करने के निमित्त अश्वत्थामा के सम्मुख पहुँचा और मेघ जैसे पृथ्वी पर जल बरसाते हैं वैसे ही अश्वत्थामा के ऊपर रथ के धुरे के बराबर बड़े-बड़े बाण बरसाने लगा॥१७।१९॥अश्वत्थामा ने भी विषैले सर्प के समान बाणों से राक्षस के बाणों को व्यर्थ करके उसको मर्मभेदी तीक्ष्ण सौ बाण मारे। अश्वत्थामा के बाणों में घटोत्कच छिप सा गया। वह रणभूमि में काँटों से युक्त स्याही के समान जान

वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाऽभ्यवीवृषत् ।
तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।
स दुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५ ॥
व्यधमत्सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाऽभवत् ॥ २६ ॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।
ततोऽस्त्रसङ्घर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥ २७ ॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।
स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।
ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः ।
स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३२ ॥
ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप ।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥ ३३ ॥

पड़ने लगा॥ १९।२२॥ फिर कुपित होकर वह वज्र के समान, भयानक क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराच, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि विविध बाणों की वर्षा अश्वत्थामा पर करने लगा। महापराक्रमी अश्वत्थामा भी धैर्यधारणपूर्वक दिव्य मन्त्रों से अभिमन्त्रित भयानक बाण चलाकर राक्षस के चलाये हुए उन वज्रसदृश दुःसह बाणों को वैसे ही छिन्न-भिन्न करने लगे, जैसे वायु अपने वेग से मेघों को तितर-बितर कर देती है॥ २३। २६॥ उन दोनों वीरों के बाणों के परस्पर रगड़ खाने और टकराने से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिन्हें देखकर जान पड़ता था कि आकाशमण्डल में सन्ध्या के समय सहस्रों जुगनू चमक रहे हैं हे महाराज! अश्वत्थामा ने, आपके पुत्रों के हित के निमित्त, बाणवर्षा से सब दिशाओं को व्याप्त कर दिया और बाणों से घटोत्कच को व्याकुल कर डाला। उस घोर रात्रि के समय अश्वत्थामा और राक्षस घटोत्कच फिर इन्द्र और प्रह्लाद के समान दारुण युद्ध करने लगे॥ २६। ३०॥ घटोत्कच ने क्रोधान्ध होकर अश्वत्थामा के वक्षःस्थल में कालाग्नि-सदृश दस बाण मारे। उन बाणों की गहरी चोट से व्यथित अश्वत्थामा आँधी से हिल रहे वृक्ष की भाँति विचलित हो उठे और ध्वजा के डण्डे का आश्रय ले कर मूर्छित-से हो गये॥ ३०। ३२॥ इस समय आपकी सेना के लोगों ने यह समझा कि अश्वत्थामा मर गये। इससे वे लोग शोक के मारे हाहाकार करने लगे। अथ-

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ॥ ३५ ॥
मुमोचाऽऽकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याऽऽशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान्द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात्सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥
तथा तु समरे विध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥
पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषाऽतिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४१ ॥
भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥
तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥
तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥

त्थामा की यह दशा देखकर पाञ्चाल और सृञ्जयगण, उल्लास के मारे, सिंहनाद करने लगे। क्षण भर के पश्चात् महावीर अश्वत्थामा ने सचेत होकर बाँयें हाथ में धनुष लेकर उसकी डोरी कान तक खींची और घटोत्कच को ताककर शीघ्र ही एक यमदण्ड तुल्य भयानक बाण छोड़ा। वह सुन्दर पुङ्ख-युक्त बाण घटोत्कच के हृदय को फाड़कर धरती के भीतर प्रवेश हो गया॥३३।३७॥ अश्वत्थामा के बाण की गहरी चोट खाकर महाशूर घटोत्कच अचेत सा होकर रथ के ऊपर बैठ गया। उसे व्याकुल देखकर सारथी स्फूर्त्ति के साथ उसके रथ को अश्वत्थामा के सम्मुख से हटा ले गया। महारथी अश्वत्थामा इस प्रकार राक्षस-राज घटोत्कच को जीतकर भयानक सिंहनाद करने लगे। दुर्योधन आदि आपके पुत्रों और योद्धाओं ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। उस समय वे मध्याह्न के सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी और दुर्निरीक्ष्य होकर शत्रु-सेना में तपने लगे॥३८। ४१॥ उधर राजा दुर्योधन भी द्रोणाचार्य से संग्राम कर रहे भीमसेन को तीक्ष्ण बाण मारने लगे। भीमसेन

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥
तस्य भीमो धनुश्छित्वा ध्वजं च दशभिः शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम् ।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ।
अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४७ ॥
तान्निहत्य शरान्भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ।
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४८ ॥
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥ ४९ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ५० ॥
तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ।
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा ॥ ५१ ॥
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ।
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः ॥ ५२ ॥
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारसवीं शुभाम् ॥ ५३ ॥

ने दुर्योधन को दस बाण मारे। दुर्योधन ने भी भीमसेन को बीस विकट बाण मारे। वे दोनों वीर एक दूसरे के बाणों से इस प्रकार ढक गये कि आकाश में मेघों से छिपे हुए चन्द्र सूर्य के समान जान पड़ने लगे॥४२।४४॥ कुरुराज दुर्योधन भीमसेन को पाँच बाण मारकर "ठहर तो जा, ठहर तो जा!" ऐसा कहकर गरजने लगा। तब महाबली भीमसेन ने दस बाणों से दुर्योधन के धनुष और ध्वजा के टुकड़े टुकड़े कर डाले और फिर उनके मर्मस्थलों में अमोघ नब्बे बाण मारे। यह स्फूर्ति देखकर कुरुराज दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो उठे। वे दूसरा दृढ़ धनुष लेकर, सब योद्धाओं के सम्मुख ही, भीमसेन को तीक्ष्ण बाण मारने लगे॥४५।४७॥ महाबली भीमसेन ने दुर्योधन के बाणों को काटकर उनको पचीस क्षुद्रक बाण मारे। तब दुर्योधन ने क्रोधान्ध होकर क्षुरप्र बाण से भीमसेन के धनुष के टुकड़े टुकड़े कर डाले और उन्हें दस बाणों से घायल किया। वीर भीमसेन ने शीघ्र ही अन्य दूसरा धनुष लेकर दुर्योधन को सात बाण मारकर अपनी स्फूर्ति दिखलाई। राजा दुर्योधन ने शीघ्र ही फिर भीमसेन का धनुष काट डाला। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र विजयशाली दुर्योधन ने इस प्रकार पाँच बार भीमसेन के धनुष काट डाले॥४८। ५२॥ बार बार धनुष कटने के कारण पराक्रमी भीमसेन को अत्यन्त क्रोध हो आया। उन्होंने लोहे की बनी हुई, भारी और भयानक, शक्ति दुर्योधन के ऊपर चलाई। यमराज की बहन के समान प्राण ले लेनेवाली, अग्नि पुञ्ज सी, आकाश मण्डल में सिंदूर की रेखा सी शोभाय-

मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव ।
सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम् ॥ ५४ ॥
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ।
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ५५ ॥
ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ।
चिक्षेपाऽऽविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥ ५६ ॥
ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दाऽस्य रथं पुनः ॥ ५७ ॥
पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद्भीतः प्रणश्य च ।
आरुरोह रथं चाऽन्यं नन्दकस्य महात्मनः ॥ ५८ ॥
ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निशि कौरवान् ॥ ५९ ॥
तावकाः सैनिकाश्चाऽपि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥ ६० ॥
तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२ ॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाऽभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं द्रोणस्याऽथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

मान वह शक्ति दुर्योधन की ओर अत्यन्त वेग से चली। महारथी दुर्योधन ने सब योद्धाओं के सम्मुख ही स्फूर्त्ति से उस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले॥५३।५५॥ तब भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, दुर्योधन के रथ को ताककर, बड़े वेग से एक प्रकाशमान भारी गदा चलाई। उस दारुण गदा की चोट से दुर्योधन का रथ, घोड़े और सारथी सब कुछ चूर-चूर हो गया। अब भीमसेन का पराक्रम देखकर दुर्योधन भय के मारे भाग खड़े हुए और वीर नन्दक के रथ पर सवार हो गये॥५६।५८॥रात्रि के उस घने अँधेरे में रथ टूटने के साथ ही दुर्योधन को मरा हुआ जानकर वीर भीमसेन कौरवों को ललकारने,डराने और सिंह की भाँति गरजने लगे।आपके पक्ष के सैनिक भी, दुर्योधन को मृत जानकर, हाहाकार करने और भागने लगे॥५९। ६०॥इसी समय धर्मराज युधिष्ठिर कौरवपक्ष के योद्धाओं का आर्तनाद और भीमसेन का सिंहनाद सुनकर, दुर्यो-

धन को मरा हुआ जानकर, तुरन्त ही भीमसेन के समीप आ गये॥६१।६२॥तब पाञ्चाल, कैकेय, मत्स्य और सृञ्जयगण द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त सुसज्जित हो-कर उनकी ओर जाने लगे।इसके पश्चात् घने अँधेरे में परस्पर प्रहार करते हुए योद्धाओं के सम्मुख ही शत्रुपक्ष के साथ द्रोणाचार्य का घोर संग्राम होनेलगा॥६३।६४॥

द्रोणपर्व का एक सौ छासठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६६ ॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

सञ्जय उवाच—सहदेवमथाऽऽयान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥
सहदेवस्तु राधेयं विध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥
तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चाऽस्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥
ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
तस्य कर्णो हयान्हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥
विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥ ६ ॥
अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥
तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याऽच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥

एक सौ सड़सठ अध्याय ॥ १६७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र!इसी समय महारथी कर्ण ने सहदेव को, आचार्य के समीप बड़े वेग से आते देखकर, रोका। पराक्रमी सहदेव ने पहले कर्ण को नव बाण मारकर फिर दस बाणों से घायल किया। महावीर कर्ण ने भी उनको सन्नतपर्वयुक्त सौ बाण मारे और अपनी स्फूर्ति दिखाकर उनका धनुष और उसकी डोरी काट डाली॥१।३॥ महावीर सहदेव ने शीघ्र ही कर्ण के मर्मस्थलों में बीस बाण मारे। यह देखकर सभी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् पराक्रमी कर्ण ने कुपित होकर अनेक बाणों से सहदेव के सारथी और घोड़ों को मार डाला॥रथ के न रहने पर जब सहदेव ढाल-तलवार लेकर प्रहार करने को उद्यत हुए तब कर्ण ने हँसते-हँसते बाणों से तुरन्त ही ढाल और तलवार के कई टुकड़े कर डाले॥४।६॥ सहदेव ने क्रुद्ध होकर कर्ण के रथ को ताककर एक सुवर्ण मण्डित बहुत ही भारी भयानक गदा चलाई।

ससंभ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
रथचक्रं प्रगृह्याऽऽजौ मुमोचाऽऽधिरथं प्रति ।
तदापतद्वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ ११ ॥
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत्सूतनन्दनः ।
तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥ १२ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाऽश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान्बहून् ॥ १३ ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान्व्यधमच्छरैः ।
स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥ १४ ॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।
तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सहदेवं विशाम्पते ।
मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ।
अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन्भूयोऽब्रवीद्वचः ॥ १७ ॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥

प्रतापी कर्ण न सहदेव की चलाई उस गदा को वेग से आते देखकर, निरन्तर बाण मारकर, धरती पर गिरा दिया॥७।९॥गदा को खाली जाते देखकर सहदेव ने तुरन्त ही एक दारुण शक्ति कर्ण के ऊपर चलाई।उस शक्ति को भी कर्ण ने बाणों से काट डाला। तब महावीर सहदेव ने व्याकुल होकर,रथ से कूदकर, रथ का पहिया निकालकर कर्ण के ऊपर फेंका। कर्ण ने काल-चक्र के समान अकस्मात् अपनी ओर आ रहे उस चक्र को सहस्रों बाणों से तिल तिल भर काट डाला। इस प्रकार उस पहिये के भी निष्फल होने पर पराक्रमी सहदेव ने ईषादण्ड, जोत, युग आदि रथ के अङ्ग, मरे हुए हाथियों के शरीर, घोड़ों और मनुष्यों की लाशें आदि जो कुछ मिला वही उठा उठाकर कर्ण के ऊपर फेंकना प्रारम्भ किया। किन्तु वीर कर्ण ने बाणवर्षा करके उनके सब प्रहारों को व्यर्थ कर डाला॥१०।१४॥अपने को अस्त्र शस्त्र से हीन और कर्ण के बाणों से पीड़ित देखकर सहदेव रण छोड़ कर भाग खड़े हुए। यशस्वी कर्ण क्षण भर उनका पीछा करते रहे और हँसकर इस प्रकार कठोर वचन कहने लगे —हे कायर सहदेव ! अपने समान के योद्धाओं से ही युद्ध करो, अपने से विशेषता रखनेवाले महारथियों से अब न भिड़ना। मेरी इस बात से भय भीत होओ मत, मैं तुम्हारा वध न करूँगा॥१५।१७॥ हे महाराज ! यों कहकर, धनुष के सिरे से सहदेव को मारकर, कर्ण कहने लगे—हे सहदेव ! वे अर्जुन कौरवों से युद्ध कर रहे हैं, वहीं जाकर अपनी रक्षा करो, या तुम्हारा जी चाहे तो घर को लौट जाओ। हे महाराज। इस प्रकार सहदेव को बाणों और वाक्यों से विह्वल करके महारथी कर्ण पाञ्चालों और पाण्डवों की सेना को भस्म करते हुए आगे बढ़ गये। महा-

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात्पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥ १९ ॥
वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नाऽवधीत्समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन्सत्यसन्धो महायशाः॥ २० ॥
सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्शरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ २१ ॥
आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥
विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥ २३ ॥
तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद्राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥
मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २५ ॥
प्रतिविव्याध तं राजन्नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६ ॥
तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शितान्शरान् ॥ २८ ॥

यशस्वी सत्यप्रतिज्ञ कर्ण ने कुन्ती से प्रतिज्ञा कर ली थी कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य और किसी पाण्डव को नहीं मारूँगा, इसी कारण उन्होंने सहदेव को छोड़ दिया॥१७।२०॥उधर सहदेव कर्ण के बाणों से घायल और वाक्यों से अत्यन्त व्यथित हो उठे। व्याकुलता के मारे उन्हें अपना जीवन भार सा प्रतीत पड़ने लगा। तब वे पाञ्चालदेशीय महारथी जनमेजय के रथ पर शीघ्रता से चढ़कर अन्यत्र युद्ध करने को चल दिये ॥२१।२२॥हे राजेन्द्र! मत्स्य देश के राजा विराट अपनी सेना साथ लिये द्रोणाचार्य से युद्ध करने जा रहे थे। महावीर शल्य ने आगे बढ़कर उनको रोका। शल्य उनके ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे। पूर्व समय में इन्द्र के साथ जम्भ का जैसा संग्राम हुआ था वैसा ही घोर युद्ध ये दोनों वीर करने लगे।मद्रनरेश शल्य ने मत्स्याधिपति विराट को सौ तीक्ष्ण बाण शीघ्रता से मारे। राजा विराट ने भी शल्य को पहले नव, फिर तिहत्तर और फिर सौ तीक्ष्ण बाण मारे॥२३।२६॥तब महापराक्रमी शल्य ने तुरन्त ही राजा विराट के चारों घोड़े मार डाले और फिर दो बाणों से उनकी ध्वजा और छत्र भी काट गिराया॥मत्स्याधिपति विराट बिना घोड़ों के अपने रथ से नीचे कूद पड़े और धनुष चढ़ाकर निरन्तर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। तब महावीर शतानीक अपने भाई विराट को बिना रथ के, पैदल ही, युद्ध करते देखकर सब योद्धाओं के सम्मुख ही

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाऽभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥
शतानीकमथाऽऽयान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३० ॥
तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥
ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥
ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३३ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाऽऽविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभः ॥ ३४ ॥
सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाऽऽहवशोभिना ।
तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ३६ ॥
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन्राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः ॥ ३७ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।
तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८ ॥
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥

रथ पर बैठकर शूरश्रेष्ठ शल्य के सम्मुख आये। महारथी शल्य ने शतानीक को आते देखकर कुछ देर तक उनसे युद्ध किया और अन्त को उन्हें मार ही गिराया ॥२७।३०॥हे राजेन्द्र! महावीर शतानीक के यमृत्यु को प्राप्त हो जाने पर सेनापति विराट उनके रथ पर बैठकर क्रोध से लाल लाल नेत्र करके दुगना पराक्रम प्रकट करने लगे। उन्होंने धनुष चढ़ाकर इतने बाण छोड़े कि उनसे शल्य का रथ छिप सा गया। तब पराक्रमी शल्य ने अत्यन्त कुपित होकर सेनापति विराटकी छाती में अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारा॥३१।३३॥शल्य के बाण की गहरी चोट से पीड़ित और अचेत होकर महावीर विराट रथ पर गिर पड़े। उनकी यह दशा देखकर सारथी शीघ्र ही युद्धभूमि से उनका रथ हटा ले गया। उस समय पाण्डवों की सेना शल्य के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर इधर उधर भागने लगी। यह देखकर महावीर अर्जुन का रथ लेकर कृष्णचन्द्र शल्य के सम्मुख आये॥३४।३७॥तब राक्षसराज अलम्बुष अर्जुन के सम्मुख आया। उसके रथ में आठ पहिये थे और

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥
स बभौ राक्षसो राजन्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधाऽर्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाऽद्रिराट् ॥ ४१ ॥
किरन्बाणगणान्राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि ।
अतितीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत ।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥
तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत् ।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥
सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥
पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाऽच्छिनत् ।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणाऽस्य द्विधाऽकरोत् ॥ ४६ ॥
अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धःप्राद्रवद्भयात् ॥ ४७ ॥
तं विजित्याऽर्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरञ्शरगणान्राजन्नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥
वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥

घुड़मुँहे भयङ्कर पिशाच उस रथ को खींच रहे थे। रक्त से भीगी हुई लाल पताका और लाल मालाएँ उस लोहमय ऋक्षचर्म-मण्डित रथ की शोभा बढ़ा रही थीं। ऊँचे डण्डे से युक्त ध्वजा पर पंख फैलाये, नेत्र निकाले, भयानक शब्द कर रहा एक गिद्ध बैठा हुआ था। पर्वतराज जैसे प्रचण्ड आँधी को रोकते हैं वैसे ही उस गहरे काले रङ्ग की अञ्जनराशि के समान काले अलम्बुष राक्षस ने अर्जुन को रोककर उन पर बहुत से बाण बरसाना प्रारम्भ किया॥३७।४१॥ उस समय उसके साथ अर्जुन का ऐसा घोर संग्राम होने लगा कि गिद्ध, कौए, चील्ह, उल्लू, कङ्क, गीदड़ आदि मांसाहारी जीव बहुत ही आनन्दित हुए और दर्शक (देखनेवाले) भी सन्तुष्ट हो गये। महावीर अर्जुन ने सौ बाणों से अलम्बुष को अत्यन्त पीड़ित करके तीक्ष्ण नव बाणों से उसकी ध्वजा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर तीन बाणों से उसके सारथी को मारकर तीन ही बाणों से रथ का त्रिवेणु काटकर एक बाण से धनुष काट डाला और चार बाणों से चारों घोड़े भी मार डाले। तब राक्षसराज अलम्बुष ने एक और धनुष लेकर उस पर डोरी चढ़ाई। महावीर अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ उसी समय वह धनुष काट डाला और उसके शरीर में तीक्ष्ण चार बाण मार ॥४२।४६॥ रथविहीन अलम्बुष ने जब खड्ग उठाया तो अर्जुन ने उसके भी दो टुकड़े कर दिये। फिर अर्जुन के चार बाण और लगने से विह्वल होकर अल-

तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना ।
सम्प्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलम्बुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६७ ॥

म्बुष भय के मारे युद्ध छोड़कर भाग खड़ा हुआ। हे महाराज! इस प्रकार पराक्रमी अर्जुन अलम्बुष को परास्त करके शत्रुपक्ष के घोड़े, हाथी, मनुष्य आदि पर बाण बरसाते हुए शीघ्रता के साथ आचार्य की ओर चले॥४६।४८॥ आचार्य के सैनिक अर्जुन से भिड़कर आँधी के उखाड़े वृक्षों की भाँति पृथ्वीतल पर गिरने लगे। यह देखकर कौरवपक्ष के सब योद्धा भय के मारे समरभूमि छोड़कर चारों ओर भागने लगे॥४९।५०॥

द्रोणपर्व का एक सौ सड़सठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६७ ॥

अथ अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६८ ॥

सञ्जय उवाच—शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥
नाकुलिश्चित्रसेनं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥ २ ॥
चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ३ ॥
नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म सन्नतपर्वभिः ।
गात्रात्संच्यावयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५ ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः ।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६ ॥
स छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहाऽरिविदारणम् ॥ ७ ॥
ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥ ८ ॥

एक सौ अड़सठ अध्याय ॥ १६८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इधर आपके पुत्र चित्रसेन ने नकुल के पुत्र शतानीक को, तीक्ष्ण बाणों से कौरवसेना का नाश करते देखकर, रोका। नकुल के पुत्र ने पाँच बाण मारकर चित्रसेन को पीड़ित किया। चित्रसेन ने भी उनको पहले तीक्ष्ण दस बाण मारकर फिर वक्षःस्थल में तीक्ष्ण नव बाण मारा॥१।३॥ तब शतानीक ने सन्नतपर्वयुक्त बहुत से बाण मारकर चित्रसेन का कवच काट डाला। इससे सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। कवच न रहने पर महावीर चित्रसेन केंचुल छोड़नेवाले सर्प के समान शोभायमान हुए। अब शतानीक ने तीक्ष्ण बाणों से उनकी ध्वजा और धनुष काट डाला॥४।६॥ इस प्रकार कवच और धनुष न रहने

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष ।
जघान चतुरो वाहान्सारथिं च नरोत्तमः ॥ ९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥ १० ॥
तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥ १३ ॥
यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चाऽनघ ॥ १४ ॥
वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥ १५ ॥
तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ १६ ॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाऽद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥

पर चित्रसेन को बड़ा ही क्रोध चढ़ आया। उन्होंने शत्रुओं के शरीर को विदीर्ण करनेवाला अन्य धनुष लेकर नौ बाणों से शतानीक को घायल किया। तब पराक्रमी शतानीक ने क्रुद्ध होकर चित्रसेन के सारथी और चारों घोड़ों को मार डाला॥७-९॥ महारथी चित्रसेन ने उसी समय रथ से उतरकर शतानीक को पचीस बाण मारे। महावीर शतानीक ने चित्रसेन को बाणों की वर्षा करते देखकर एक अर्धचन्द्र बाण से उनका रत्नमण्डित धनुष काट डाला। इस प्रकार घोड़े, सारथी, रथ और धनुष न रहने पर वीर चित्रसेन शीघ्र कृतवर्मा के रथ पर चले गये॥१०-१२॥ राजेन्द्र! उधर कर्ण के पुत्र वीर वृषसेन महाराज द्रुपद के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रुपद ने कर्ण पुत्र के दोनों हाथों में और वक्षःस्थल में साठ बाण मारे। तब वृषसेन ने भी अत्यन्त कुपित होकर रथ पर सवार राजा द्रुपद के वक्षःस्थल में अनेक तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया॥१३-१५॥ वे दोनों वीर एक दूसरे के बाणों के लगने से कण्टक रोम-युक्त शल्यकी (स्याही) की भाँति शोभा को प्राप्त हुए। सुवर्णपुङ्ख-युक्त नतपर्व सीधे बाणों की चोट से दोनों के शरीर रक्त से नहा गये। अद्भुत दो कल्पवृक्षों अथवा फूले हुए ढाक के समान उन सुवर्ण-वर्ण वीरों के शरीर शोभायमान हुए। दोनों के कवच कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥१६-१८॥ अब महावीर वृषसेन ने राजा द्रुपद को

वृषसेनस्ततो राजन्द्रुपदं नवभिः शरैः ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥
ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन्विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाऽम्बुदः ॥ २० ॥
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय रुक्मवद्धं नवं दृढम् ।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतशितं दृढम् ॥ २२ ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य च ।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन्सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥
हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा वृषसेनशराहतः ॥ २४ ॥
सारथिस्तमपोवाह स्मरन्सारथिचेष्टितम् ।
तस्मिन्प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
सम्प्राद्रवत्तदा राजन्निशीथे भैरवे सति ॥ २६ ॥
प्रदीपैरपरित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः ।
व्यराजत मही राजन्वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥
तथाऽङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुन्धरा ।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥

पहले नौ बाण, फिर सत्तर बाण और फिर तीन तीक्ष्ण बाण मारकर विह्वल कर दिया। वे सहस्रों बाण बरसा-कर अद्भुत स्फूर्ति दिखाते हुए बरस रहे मेघ के समान दिखाई पड़ने लगे। महावीर द्रुपद ने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण भल्ल बाण से वृषसेन के धनुष के दो टुकड़े कर डाले॥१९,२१॥ कर्ण के पुत्र ने उसी समय और एक सुवर्णमण्डित धनुष लेकर तरकस से एक भयानक भल्ल निकालकर उस पर चढ़ाया और सोमकों के हृदय में भय का सञ्चार करते हुए वह बाण राजा द्रुपद के ऊपर छोड़ा। वृषसेन का चलाया हुआ वह बाण राजा द्रुपद के हृदय को छेद करके पृथ्वी के भीतर प्रवेश हो गया। उस भल्ल बाण के प्रहार से महावीर द्रुपद मूर्च्छित हो गये। तब सारथी अपने कर्तव्य का खयाल करके उन्हें लेकर रण से भाग गया॥२२।२५॥ हे महाराज! महारथी पाञ्चालराज के भाग जाने पर कौरवों की सेना उस भयङ्कर रात्रि के समय, बाणों से जिनके कवच कट गये हैं ऐसे, द्रुपद के सैनिकों पर आक्रमण करती हुई उनके पीछे दौड़ी। उस समय इधर-उधर दीप जलते रहने के कारण जान पड़ने लगा कि मेघहीन आकाश-मण्डल में ग्रह चमक रहे हैं। चारों ओर अङ्गद आदि के गिरने से यह रण-भूमि वर्षाकाल में बिजलियों से शोभित मेघों के समान जान पड़ने लगी। तारकासुर-संग्राम में जैसे इन्द्र के भय से दानव भाग खड़े हुए थे वैसे ही वृषसेन के

ततः कर्णसुतात्त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः ।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥
तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः ।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ ३० ॥
तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१ ॥
तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥
स विजित्य रणे शूरान्सोमकानां महारथान् ।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥
प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥
तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥ ३५ ॥
प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः ।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३८ ॥

भय से सोमकगण भागने लगे॥२८॥२९॥वृषसेन के बाणों से पीड़ित होकर भाग रहे सोमकगण दीपकों के उजेले में दूर से भी दिखाई पड़ रहे थे। उन सब को परास्त करके कर्ण पुत्र मध्याह्न के सूर्य के समान प्रचण्ड तेज से शोभायमान हुए। कौरव और पाण्डव पक्ष के सहस्रों राजाओं की मण्डली में प्रतापी वृषसेन का तेज ही सबसे अधिक प्रज्वलित हो रहा था। हे महाराज! वीर कर्ण-पुत्र इस प्रकार सोमक सेना को छिन्न भिन्न करके युधिष्ठिर की ओर चले॥३०।३३॥ इसी समय युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य को कुपित होकर कौरव सेना का नाश करते देखकर आपके पुत्र दुःशासन उन्हें रोकने के निमित्त चले। वे दोनों वीर युद्ध के निमित्त परस्पर भिड़कर आकाश मण्डल में स्थित बुध और सूर्य के समान शोभायमान हुए। दुःशासन ने अद्भुत कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्य के मस्तक में तीन बाण मारे। दुःशासन के बाण लगने से प्रतिविन्ध्य शिखरोंवाले पर्वत से जान पड़ने लगे॥३४।३७॥उन्होंने दुःशासन को पहले नव और फिर सात तीक्ष्ण बाण मारे। तब दुःशासन ने तीक्ष्ण बाणों से प्रतिविन्ध्य के घोड़ों को गिराकर एक भल्ल बाण से सारथी को मार डाला। फिर ध्वजा काटकर धनुर्धर प्रतिविन्ध्य के रथ के टुकड़े टुकड़े कर डाले। युद्ध दुःशासन ने सन्नत पर्वयुक्त तीक्ष्ण बाणों से प्रतिविन्ध्य के रथ की पताका, तरकस, जोत, रास आदि सब

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान्कर्म दुष्करम् ।
प्रातिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥
सारथिं चाऽस्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत् ।
रथं च तिलशो राजन्व्यधमत्तस्य धन्विनः ॥ ४० ॥
पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन्योक्त्राणि च प्रभो ।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४१ ॥
विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत्तव सुतं किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ४२ ॥
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव ।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ४३ ॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ४४ ॥
आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४५ ॥
ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४६ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुःशासनादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

शत्रुओं को काट डाला ॥ ३८-४१ ॥ रथ न रहने पर भी प्रतिविन्ध्य रण से भागे नहीं। वे पैदल ही धनुष हाथ में लेकर असंख्य बाण चलाने और दुःशासन से युद्ध करने लगे। दुःशासन ने यह देखकर एक क्षुरप्र बाण से उनके उस धनुष के भी दो टुकड़े कर डाले और उनको मारकर दस बाण मारे। उस समय प्रतिविन्ध्य के भाइयों ने प्रतिविन्ध्य को रथहीन देखकर बहुत सी सेना के साथ उनके समीप पहुँचकर उनकी सहायता की ॥ ४२-४४ ॥ प्रतिविन्ध्य सुतसोम के चमकीले बहुमूल्य रथ पर बैठकर अन्य धनुष लेकर दुःशासन को तीक्ष्ण बाणों से घायल करने लगे। यह देखकर कौरवपक्ष के वीरगण दुःशासन की सहायता करने के निमित्त बहुत सी सेना सहित आकर, उन्हें अपने मध्य में करके, शत्रुपक्ष के साथ युद्ध करने लगे। हे महाराज! उस अत्यन्त घोर रात्रि में कौरव और पाण्डव-गण यमराज के देश को बढ़ानेवाला दारुण युद्ध करने लगे ॥ ४५-४७ ॥

०

द्रोणपर्व का एक सौ अड़सठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६८ ॥

अथ एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

सञ्जय उवाच
नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ १ ॥

कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥
यथैव नकुलो राजञ्शरवर्षाण्यमुञ्चत ।
तथैव सौवलश्चापि शिक्षां सन्दर्शयन्युधि ॥ ३ ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥ ४ ॥
रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ ५ ॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे ॥ ६ ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥ ७ ॥
सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन्विवृतलोचनौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ८ ॥
स्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह ॥ ९ ॥
नकुलस्तु भृशं विद्धः स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽऽविशन्महत् ॥ १० ॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथाऽऽगतम् ।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ११ ॥

एक सौ उनहत्तर अध्याय ॥ १६९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महारथी शकुनि, नकुल को कौरव-सेना का संहार करते देखकर, सम्मुख जाकर "ठहर जा, ठहर जा" कहकर गरजने लगे। उस समय पहले से वैर में बंधे हुए वे दोनों वीर एक दूसरे को मार डालने की इच्छा से सुदृढ़ विशाल धनुष कान तक खींचकर बाण बरसाने लगे। महावीर नकुल जिस प्रकार स्फूर्ति से बाण बरसाते थे, उसी प्रकार अपनी युद्धशिक्षा दिखाते हुए शकुनि भी बाणों की वर्षा करते थे॥१।३॥ दोनों वीरों के शरीरों में इतने बाण लगे कि वे कांटेदार शल्लकी और शाल्मली के पेड़ों के समान जान पड़ने लगे। उनके कवच बाणों की चोट से छिन्न भिन्न हो गये थे और वे रक्त से तर हो गये थे॥४।६॥ वे विचित्र कल्पवृक्षों अथवा फूले हुए ढाक के पेड़ों की भांति शोभा को प्राप्त हो रहे थे। लाल लाल नेत्र निकालकर वे दोनों वीर इस प्रकार क्रोध-कुटिल दृष्टि से परस्पर देखते थे मानों एक दूसरे को दृष्टि से ही भस्म कर डालेंगे। अब शकुनि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हंसते हंसते नकुल के हृदय में एक विकट कर्णिक बाण मारा॥७।१०॥ शकुनि का वह बाण नकुल के हृदय में प्रवेश हो गया और उसकी असह्य चोट से अचेत होकर वे रथ पर बैठ गये॥ प्रबल शत्रु नकुल की यह दशा देखकर शकुनि वर्षा काल

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात्सौबलं भूयो व्यात्तानन इवाऽन्तकः ॥ १२ ॥
संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥ १३ ॥
अथाऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत्तदा ।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥ १४ ॥
त्रिशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च ।
ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥ १५ ॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा ।
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १६ ॥
ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा ।
तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवाऽनघ ॥ १७ ॥
अपोवाह रथेनाऽऽशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।
ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च येषां पदानुगाः ॥ १८ ॥
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत्सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात्तेन तदा राजन्यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ॥ २० ॥
शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत्स वेगितः ॥ २१ ॥

के मेघ की भाँति ज़ोर से गरजने लगे। क्षण भर के पश्चात् नकुल सावधान हुए और वे मुख फैलाये हुए काल की भाँति फिर शकुनि की ओर वेग से चले। उन्होंने अत्यन्त ही कुपित होकर शकुनि को आठ बाण मारे और फिर उनकी छाती में निरन्तर सौ बाण मारे ॥१०।१३॥ फिर शकुनि के बाणयुक्त धनुष की मूठ बड़ी स्फूर्ति से काट डाली और ध्वजदण्ड को भी काट गिराया। इसके पश्चात् नकुल ने एक विकट तीक्ष्ण धारवाला बाण मारा, जिससे शकुनि की जाँघें चिर गईं और वे व्याध के बाण से घायल पङ्खदार श्येन पक्षी की भाँति रथ पर लोट गये। नकुल के बाण से अत्यन्त पीड़ित शकुनि, जिस प्रकार कामुक किसी स्त्री से लिपटता है उसी प्रकार, ध्वजा के डण्डे से लिपट कर अचेत हो गये। तब उनके सारथी ने उन्हें अचेत होकर रथ पर गिरते देखकर रक्षा के लिए, वहाँ से रथ को हटा दिया। यह देखकर पाण्डव और उनके साथी बड़े आनन्द से चिल्लाने और सिंहनाद करने लगे ॥१४।१८॥ महावीर नकुल इस प्रकार शकुनि को परास्त करके सारथी से कहने लगे—हे सूत! तुम अब मेरा रथ द्रोणाचार्य की सेना के सम्मुख ले चलो। आज्ञा पाते ही सारथी रथ को द्रोणाचार्य की ओर ले चला ॥१९।२०॥ इधर कृपाचार्य ने महारथी शिखण्डी को, द्रोणाचार्य के सम्मुख आते देखकर, रोका। तब शिखण्डी ने हँसते हँसते उनको नव भल्ल बाण मारे।

गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिन्दमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ २२ ॥
तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥ २३ ॥
महद्युद्धं तयोरासीद्घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २४ ॥
शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥
प्रकृत्या घोररूपं तदासीद्घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद्घोररूपा भयानका ।
शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ॥ २७ ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ।
तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ॥ २८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ।
तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९ ॥
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ।
स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥ ३१ ॥

आपके पुत्रों के हितैषी कृपाचार्य ने शिखण्डी को पहले पाँच और फिर बीस बाण मारे । पूर्व समय में इन्द्र और शम्बरासुर का जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही अत्यन्त भयङ्कर युद्ध वे दोनों महावीर करने लगे ॥२१।२४॥ वे वर्षाकाल के मेघों के समान बाणों की वर्षा से आकाश मण्डल को पूर्ण करने लगे। उस समय वह संग्राम अत्यन्त भयानक हो उठा। हे महाराज! वह रात्रि योद्धाओं को कालरात्रि सी जान पड़ने लगी॥२५।२७॥ जब शिखण्डी ने एक अर्धचन्द्र बाण से कृपाचार्य का धनुष काट डाला तब कृपाचार्य ने क्रोधान्ध होकर शिखण्डी के ऊपर एक सुवर्णदण्ड-शोभित, सीधी नोक-वाली, तीक्ष्ण, भयानक शक्ति चलाई । महावीर शिखण्डी ने स्फूर्ति से बहुत से बाण चलाकर उस शक्ति को काट डाला। वह महा प्रभावशाली शक्ति कटकर पृथ्वी पर गिरकर उस स्थान को प्रकाशित करने लगी॥२७। ३०॥ अब कृपाचार्य ने शीघ्र दूसरा धनुष लेकर असंख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से शिखण्डी को छिपा सा दिया। आचार्य के बाणों से पीड़ित शिखण्डी मूढ़ और विह्वल से होकर रथ पर बैठ गये, कुछ भी प्रतीकार न कर सके । शिखण्डी को इस प्रकार शिथिल देखकर, उन्हें मार डालने के निमित्त, कृपाचार्य निरन्तर बाण वर्षा करने लगे । पाञ्चाल-सोमकगण शिखण्डी को अत्यन्त शिथिल और युद्धविमुख देखकर उनकी सहायता के निमित्त उनके समीप पहुंचे । उन्होंने शिखण्डी को

न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ।
सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥ ३२ ॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।
विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३३ ॥
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।
तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
महत्या सेनया सार्ध ततो युद्धमवर्तत ।
रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ॥ ३५ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।
द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशाम्पते ॥ ३६ ॥
अन्योन्यमभितो राजन्क्रूरमायोधनं बभौ ।
पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७ ॥
अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाऽङ्गना ।
रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ ३८ ॥
अगृह्णन्बहवो राजञ्शलभान्वायसा इव ।
तथा गजान्प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः ॥ ३९ ॥
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ।
सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥ ४० ॥
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नाऽतिचक्रमुः ।
धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥ ४१ ॥
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि ।
दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥

अपने मध्य में कर लिया। तब आपके पुत्रगण भी बहुत सी सेना साथ लेकर कृपाचार्य की सहायता करने के निमित्त पहुँचे। उन्होंने आचार्य को अपने मध्य में कर लिया॥३०।३४॥इसके पश्चात् दोनों पक्ष घमासान युद्ध करने लगे। रथी योद्धा एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित होकर प्रहार करने लगे और दौड़ रहे रथों की घरघराहट मेघ गर्जन सी प्रतीत होने लगी। घोड़ों और हाथियों के सवार एक दूसरे को मारने का उद्योग करने लगे। इस प्रकार वह समरभूमि अत्यन्त भयानक हो उठी। दौड़ रहे पैदल सैनिकों के पाँवों की धमक से, भयभीत हुई-हुई स्त्री की भाँति, पृथ्वी काँप उठी॥३५।३८॥रथी लोग रथों पर बैठे हुए आगे बढ़कर वैसे ही शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने लगे जैसे कौए टीड़ियों पर झपटते हैं।मदमत्त हाथी मदोन्मत्त हाथियों से भिड़कर युद्ध करने लगे। घोड़ों के सवार घोड़ों के सवारों से और पैदल पैदलों से भिड़कर एक दूसरे का संहार करने लगे। उस रात्रि के समय दौड़ते, भागते और फिर लौटते सैनिकों का घोर कोलाहल चारों

अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ।
सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३ ॥
दिवसप्रतिमा राजन्बभूव रणमूर्धनि ।
आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति ॥ ४४ ॥
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः ।
दिवं च पृथिवीं चैव दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ ४५ ॥
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः ।
अस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम् ॥ ४६ ॥
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।
तस्मिन्कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥ ४७ ॥
न किञ्चिद्विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।
अवधीत्समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहात्सखायं च सखा तथा ।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥ ४९ ॥
स्वे स्वान्परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

और गूंज उठा॥३८।४२॥रथ, हाथी, घोड़े आदि पर जलते हुए दीपक आकाशसे गिरी हुई उल्काओंके समान जान पड़ने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! दीपकों और मशालों से प्रकाशित उस रात्रि में दिन के समान उजेला हो रहा था। जैसे सूर्यके उजेले से संसार का अँधेरा दूर हो जाता है वैसे ही इधर-उधर प्रकाशित दीपकों से युद्धभूमि का घोर अन्धकार दूर हो गया। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिशा और उपदिशाएँ सब धूल तथा अन्धकार मे व्याप्त हो गई थीं, किन्तु फिर दीपकों का प्रकाश सर्वत्र विस्तृत हो गया। वीरों के कवच, मणि आभूषण और अस्त्र आदि की प्रभाएँ उन दीपकों के प्रकाश में फीकी पड़ गई॥४२।४७॥हे भारत! रात्रि के समय भयङ्कर युद्ध उपस्थित होने पर किसी को अपने पराये का ज्ञान नहीं रहा। अनजाने में पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, मित्र-मित्र को, मामा भानजे को, भानजा मामा को और आत्मीय लोग आत्मीय स्वजनों को मारने लगे। इस प्रकार वह दारुण समर मर्यादारहित और कायरों के लिए अतीव भयङ्कर हो उठा॥४७।५०॥

द्रोणपर्व का एक सौ उनहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६९ ॥

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १७० ॥

सञ्जय उवाच — तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥
सन्दधानो धनुः श्रेष्ठं ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नमथाऽऽयान्तं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥
तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥
बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६ ॥
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदाऽन्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥
विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात्परवीरहा ।
द्रोणस्याऽन्तकरं घोरं व्यसृजत्सायकं ततः ॥ १० ॥
स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत्सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥
तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन्द्रोणायेत्यब्रुवन्वचः ॥ १२ ॥

एक सौ सत्तर अध्याय ॥ १७० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार अत्यन्त भीषण संग्राम छिड़ने पर महावीर धृष्टद्युम्न दृढ़ धनुष लेकर बारम्बार उसकी डोरी खींचते हुए आचार्य के सुवर्णभूषित रथ के सम्मुख वेग से चले। द्रोणाचार्य-वध के निमित्त धृष्टद्युम्न को उद्यत देखकर, उनकी सहायता करने के निमित्त, पाञ्चाल और पाण्डवगण उनके साथ चले॥१।३॥ यह देखकर आपके पुत्र पूर्ण यत्न से आचार्य की रक्षा करने लगे। इस प्रकार उस रात्रि के समय दोनों पक्ष के वीरों के भिड़ने पर वे विशाल सेनाएँ क्षोभ को प्राप्त दो सागरों के समान जान पड़ने लगीं॥३।५॥ तब महावीर धृष्टद्युम्न आचार्य की छाती में पाँच बाण मारकर सिंहनाद करने लगे। आचार्य ने भी पच्चीस बाणों से धृष्टद्युम्न को घायल करके एक भल्ल बाण से उनका धनुष काट डाला। आचार्य के बाणों की चोट खाकर प्रतापी धृष्टद्युम्न ने शीघ्र ही वह कटा हुआ धनुष फेंक दिया॥६।८॥ उन्होंने होंठ चबाते-चबाते और एक धनुष हाथ में लिया और आचार्य को मारने के निमित्त धनुष की डोरी खींचकर उनके ऊपर एक जीवन-नाशक भयानक बाण छोड़ा। उस विकट बाण ने सारी सेना को उदित सूर्य की भाँति प्रकाशित कर दिया। धृष्टद्युम्न के छोड़े हुए उस बाण को देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य

तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति ।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥
स छिन्नो बहुधा राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः ।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः ॥ १५ ॥
शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥
पाञ्चाल्यं त्वरयाऽविध्यन्सर्व एव महारथाः ।
स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्याऽर्थे महाहवे ॥ १७ ॥
सर्वानसम्भ्रमाद्राजन्प्रत्यविद्ध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवाऽऽत्मजम्॥ १८ ॥
ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥
द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चाऽन्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २० ॥
स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥
भल्लेनाऽन्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥

कहने लगे कि द्रोणाचार्य का कल्याण हो॥११-१२॥ इसी समय महाबली कर्ण ने स्फूर्ति के साथ उस बाण के बारह टुकड़े कर डाले। कर्ण के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर वह बाण विषहीन सर्प की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब महावीर कर्ण ने धृष्टद्युम्न को दस बाण मारे। इसी समय महारथी धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा ने पाँच, द्रोणाचार्य ने सात, शल्य ने दस, दुःशासन ने तीन, राजा दुर्योधन ने बीस और शकुनि ने पाँच बाण मारे॥१३-१६॥ आचार्य की रक्षा के निमित्त तत्पर रहे सात महारथियों के बाणों से एक साथ इस प्रकार पीड़ित पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने उनमें से प्रत्येक को तीन-तीन बाण मारे। तब महारथी धृष्टद्युम्न के बाणों से बहुत ही पीड़ित होकर, एकत्र होकर, धृष्टद्युम्न को पाँच पाँच बाणों से घायल करने लगे॥१७-१९॥ हे राजेन्द्र! उस समय वीर द्रुमसेन अत्यन्त ही कुपित होकर ठहर ठहर कहते हुए धृष्टद्युम्न के सम्मुख आये। उन्होंने पहले एक और फिर अन्य तीन बाण मारे। तब महारथी धृष्टद्युम्न ने स्फूर्ति के साथ सुवर्णपुङ्ख-शोभित प्राणहारी पैने तीन तीक्ष्ण बाण मारकर एक भल्ल बाण से द्रुमसेन का, सुवर्णकुण्डलों की प्रभा से अलङ्कृत, सिर काटकर गिरा दिया। दाँतों से ओठ चबा रहे द्रुमसेन का सिर, आँधी से पके हुए ताड़ के फल की भाँति, पृथ्वी पर गिर पड़ा॥२०-२२॥ और धृष्टद्युम्न ने उन महारथियों को फिर तीक्ष्ण

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ सन्दष्टौष्ठपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥
तान्स विद्ध्वा पुनर्योधान्वीरः सुनिशितैः शरैः ।
राधेयस्याऽच्छिनद्भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥ २४ ॥
न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।
निकर्तनमिवाऽत्युग्रं लांगूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥
सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥ २६ ॥
दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः ।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥
षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥
तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥ ३० ॥
तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥
स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत्समागमो राजन्बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥
त्रासयन्रथघोषेण क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥

भल्ल बाणों से पीड़ित करके विचित्र युद्ध में निपुण कर्ण का धनुष काट डाला। जैसे महासिंह अपनी पूँछ का कटना नहीं सह सकता वैसे ही वीर कर्ण अपने धनुष का कटना न सह सके। क्रोध से लाल नेत्र किये, श्वास ले रहे, वीर कर्ण ने शीघ्र और धनुष हाथ में लिया और महाबली धृष्टद्युम्न के ऊपर बाण बरसाना प्रारम्भ किया। कर्ण को कुपित देखकर शेष छः महारथियों ने शीघ्रता के साथ धृष्टद्युम्न को मार डालने के निमित्त चारों ओर से घेर लिया॥२४।२७॥हे महाराज! आपके छः महारथियों से घिरे हुए धृष्टद्युम्न को देख कर हम लोगों ने जाना कि अब वे जीते नहीं बच सकते। इसी समय महाबली सात्यकि, बाणों की वर्षा करते हुए, सहायता करने के निमित्त धृष्टद्युम्न के समीप पहुँच गये। कर्ण ने रणदुर्मद सात्यकि को, आते देख कर, दस तीक्ष्ण बाण मारे॥२८।३०॥महावीर सात्यकि सब योद्धाओं के सम्मुख ही कर्ण को दस बाण मारकर "भागना नहीं, यहीं ठहरो" कहकर गरजने लगे। अब राजा बलि और इन्द्र के समान पराक्रमी सात्यकि

कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली ।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥
विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविद्धयत ॥ ३५ ॥
तथैव युद्ध्यमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत्समम् ॥ ३६ ॥
तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो ।
अविध्यत्सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥
तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते ।
न्यपतत्स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥
पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
सहस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयङ्करे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥

और कर्ण का घोर संग्राम होने लगा॥क्षत्रियश्रेष्ठ सात्यकि रथ की घरघराहट से क्षत्रियों को विह्वल करते हुए कर्ण को बाणों से पीड़ित करने लगे॥३१।३४॥ पराक्रमी कर्ण भी धनुष के शब्द से पृथ्वीमण्डल को कँपाते हुए संग्राम करने और विपाठ,कर्णिक,नाराच,वत्सदन्त, क्षुरप्र आदि अनेक प्रकार के बाणोंसे सात्यकि को व्यथा पहुँचाने लगे। यादवश्रेष्ठ सात्यकि भी कर्ण के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय उन दोनों का युद्ध समभाव से चलने लगा। महावीर कर्ण को आगे करके आपके पुत्र चारों ओर से तीक्ष्ण बाण बरसा-कर सात्यकि को घायल करने लगे॥महाबली सात्यकि अपनी अस्त्रविद्या और बाणों के प्रभाव से सब योद्धाओं सहित कर्ण के बाणों को व्यर्थ करके वृषसेन की छाती में विकट बाण मारने लगे॥३५।३८॥सात्यकि के अमोघ अनिवार्य बाणों से अत्यन्त पीड़ित और अचेत होकर पराक्रमी वृषसेन रथ पर गिर पड़े।उनके हाथ से धनुष छूटकर गिर गया। यह देखकर वीर कर्ण ने समझा कि वृषसेन मारे गये। वे पुत्रशोक से कातर और क्रोधान्ध होकर सात्यकि को पीड़ित करने लगे। महारथी सात्यकि भी कर्ण के बाणों से व्यथित होकर उन्हें बार-बार विविध बाणों से घायल करने लगे। [इसी मध्य में वृषसेन सावधान हुए और फिर वे युद्ध करने लगे।]॥३९।४१॥सात्यकि ने कर्ण को दस और वृषसेन को सात बाण मारकर दोनों के

वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन्गाण्डीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥
श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥
एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् ।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः ।
एषा विदार्यते राजन्बहुधा भारती चमूः ॥ ४८ ॥
विप्रकीर्णान्यनेकानि नहि तिष्ठन्ति कर्हिचित् ।
वातेनेव समुद्भूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे ।
द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ५० ॥
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निःस्वनो महान् ।
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे ।
हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ५२ ॥
शृणु शब्दान्बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति ।
अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ ५३ ॥

धनुष और हस्तावाप (दस्ताने) काट डाले। महाबली कर्ण और वृषसेन तुरन्त ही शत्रुओं के लिए भयङ्कर धनुषों पर डोरी चढ़ाकर चारों ओर से तीक्ष्ण बाणों से सात्यकि को घायल करने लगे। हे महाराज! इस प्रकार वीर संहारकारी संग्राम छिड़ने पर गाण्डीव धनुष का घोर गम्भीर शब्द निरन्तर सुनाई पड़ने लगा॥४२।४४॥कर्ण ने गाण्डीव का शब्द और अर्जुन के रथ के पहियों की घरघराहट सुनकर राजा दुर्योधन से कहा—हे महाराज! वीर अर्जुन प्रधान-प्रधान वीरों और कौरवों की सेना को मारकर गाण्डीव धनुष का शब्द कर रहे हैं। अर्जुन के मेघनिर्घोष-तुल्य रथ का शब्द चारों ओर सुनाई पड़ रहा है। इससे जान पड़ता है कि अर्जुन अपना कार्य सिद्ध कर रहे हैं। यह देखिये, कौरव सेना अर्जुन के बाणों की चोट से छिन्न भिन्न होकर चारों ओर भाग रही है। आपकी सेना के लोग किसी प्रकार एक स्थान पर स्थित नहीं हो सकते ॥४५।४८॥वायु जैसे मेघों को तितर-बितर कर देती है वैसे ही अर्जुन अपने बाणों से उन्हें छिन्न भिन्न कर रहे हैं। अधिक क्या, इस समय आपके सैनिक अर्जुन के सम्मुख पहुँचकर, महासागर में पड़ी हुई छोटी नाव की भाँति, नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। हे राजसिंह! देखिए, योद्धा लोग गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों की चोट से गिर रहे हैं, कोई इधर-उधर भाग रहे हैं। उनका कोलाहल, अर्जुन के रथ के समीप—आकाश

इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान् ।
एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ॥ ५४ ॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः ।
सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ५५ ॥
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत् ।
सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥ ५६ ॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ ।
सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः ।
तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥
यावत्पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् ।
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥
यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः ।
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥ ६० ॥
कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।
यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ६१ ॥
वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनञ्जयम् ॥ ६२ ॥
दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥

में मेघ के गरजने के समान —दुन्दुभि बजने का शब्द, आर्तनाद और हाहाकार निरन्तर सुनाई पड़ रहा है ॥४९।५३॥ देखिए, महावीर सात्यकि हम लोगों के मध्य में प्रवेश हो आये हैं और धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से युद्ध करने में प्रवृत्त होकर भी आपके भाइयों के मध्य में घिरे हुए हैं। इस समय जो हम सात्यकि और धृष्टद्युम्न को मार सकें तो अवश्य हमारी विजय होगी॥५३।५६॥ इसलिए हे राजेन्द्र! हम सबने एकत्र होकर जिस प्रकार अभिमन्यु को मारा था उसी प्रकार इन दोनों वीरों को भी मार डालें। इस समय हमारा यही कर्तव्य है। यह देखिए, धृष्टद्युम्न और सात्यकि को बहुत से कौरव वीरों के साथ संग्राम करते जानकर अर्जुन द्रोणाचार्य की सेना के सम्मुख चले आ रहे हैं। अतएव आप सात्यकि के समीप बहुत से प्रधान प्रधान रथी योद्धाओं को भेजिए। सात्यकि को बहुत से वीर रथी घेर लेंगे तो अर्जुन यह नहीं जान सकेंगे कि वे कहाँ पर हैं, इसलिए उनकी सहायता भी नहीं कर सकेंगे। इस समय हमारे पक्ष के सब वीर योद्धा सात्यकि वध के लिए निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसावें॥५७।६०॥ हे राजेन्द्र! कर्ण के मन का भाव जानकर दुर्योधन शकुनि से कहने लगे—हे मामाजी! तुम दस सहस्र रथों और इतने ही हाथियों के साथ लेकर अर्जुन के समीप जाओ। दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु और दुःप्रधर्षण, ये असंख्य पैदल सेना लेकर तुम्हारे साथ जायेंगे। तुम इस समय

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल ।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥ १४ ॥
देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ १५ ॥
एवमुक्तो ययौ पार्थान्पुत्रेण तव सौबलः ।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ १६ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान् ।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ १७ ॥
प्रयाते सौबले राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ १८ ॥
अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान्बहून् ।
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ १९ ॥
भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत ।

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥
तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥
तान्दृष्ट्वाऽऽपततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन्विशिखान्बहून् ॥ ५ ॥
तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६ ॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान् ।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः ॥ ७ ॥
पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत ।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८ ॥
एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत ।
बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥ ९ ॥
तेन शब्देन महता पूरिताऽभूद्वसुन्धरा ।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥ १० ॥
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम् ।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ॥ ११ ॥
सुतस्तत्राऽब्रवीद्राजन्सारथिं रथिनां वरः ।
यत्रैष शब्दस्तत्राऽश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥

एक सौ इकहत्तर अध्याय ॥ १७१ ॥

सञ्जय कहते हैं - हे नरनाथ ! इसके उपरान्त कौरव पक्ष के युद्धप्रिय वीरगण क्रोध के वश होकर बड़े वेग से सात्यकि के सम्मुख आये।उन्होंने सुवर्णरत्न-विभूषित रथ, घोड़े, हाथी आदि के घेरों से उन्हें घेर लिया।वे गरजते और सिंहनाद करते हुए सात्यकि को मार डालने के निमित्त असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे॥१।४॥धनुर्धरश्रेष्ठ, युद्धदुर्मद, शत्रुपक्ष-विनाशन सात्यकि भी उन महारथियों को आते देखकर असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसाने और सन्नतपर्वयुक्त उग्र बाणों से उनके सिर काटने लगे। उन्होंने क्षुरप्र बाणों से हाथियों की सूँड़ों, घोड़ों की गर्दनों और की आयुध सहित बाहुओं को, काट काटकर, ढेर लगा दिया॥५।७॥उस समय वह समरभूमि इधर-उधर गिरे हुए चँवर और श्वेत छत्र आदि से ऐसी जान पड़ती थी,जैसे नक्षत्रमण्डलों से शोभित आकाश-मण्डल होवे हे महाराज ! पराक्रमी सात्यकि जब सेना का संहार करने लगे तब ऐसा कोलाहल सुनाई पड़ने लगा मानों प्रेत रो रहे हों। उस शब्द से पृथ्वी परि-पूर्ण हो उठी। वह रात्रि भी निष्ठुर रूप धारण करके सब प्राणियों के निमित्त भयावह हो गई॥८।१०॥हे महाराज ! उस रात्रिकाल में आपके पुत्र राजा दुर्यो-सात्यकि के बाणों से अपनी सेना का नाश होते

तेन सञ्चोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् ।
सूतः सञ्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४ ॥
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवाऽर्दितः शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥ १६ ॥
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम् ॥ १७ ॥
शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥
ततोऽस्य वाहान्समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात्तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥ १९ ॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्पुत्रस्तव विशाम्पते ।
मुमोच निशितान्बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥
शरान्पञ्चशतांस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन्प्रेषितांस्तनयेन ते ॥ २१ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः ॥ २२ ॥

देखकर और लोमहर्षण उग्र शब्द सुनकर सारथी से कहने लगे - हे सूत ! जिस स्थान पर यह तुमुल कोलाहल हो रहा है वहाँ शीघ्र मेरा रथ ले चलो । सारथी आज्ञा प्राप्त करते ही सात्यकि के सम्मुख रथ ले चला॥११।१२॥इस प्रकार समर में बहुत ही थके हुए,विचित्र युद्ध में निपुण,दृढधन्वा दुर्योधन सात्यकि की ओर वेग से चले । तब महाबली सात्यकि ने रक्त पीनेवाले तीक्ष्ण बारह बाण कान तक खींचकर दुर्योधन को मारे । राजा दुर्योधन पहले ही सात्यकि के बाणों की चोट से पीड़ित होकर अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने भी सात्यकि को दस बाण मारे । इस समय पाञ्चालों के साथ कौरवों का दारुण संग्राम होने लगा॥१४।१७॥महाबली सात्यकि ने कुपित होकर राजा दुर्योधन की छाती में अस्सी तीक्ष्ण बाण मारे। फिर असंख्य बाण बरसाकर उनके घोड़ों को मार डाला और सारथी को भी एक बाण मारकर नीचे गिरा दिया । राजा दुर्योधन ने बिना घोड़ों के रथ पर से ही सात्यकि के ऊपर सुतीक्ष्ण पचास बाण चलाये। महावीर सात्यकि ने स्फूर्ति के साथ दुर्योधन के उन बाणों को काट डाला और एक भल्ल बाण से उनके धनुषकी मूठकाट डाली॥१८।२२॥तब दुर्योधन,धनुष और रथ न रहने पर,शीघ्र ही कृतवर्मा के उज्ज्वल रथ पर चढ़ गये । हे प्रजा-वत्सल ! इस प्रकार राजा दुर्योधन जब समर से भाग गये तब महावीर सात्यकि

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३ ॥
दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते ॥ २४ ॥
शकुनिश्चाऽर्जुनं राजन्परिवार्य समन्ततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चाऽपि सहस्रशः ॥ २५ ॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् ।
ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन्विपुलं क्षयम् ।
ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ २८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनाऽस्य संरुरोध महारथम् ॥ २९ ॥
तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥
निवार्य तान्बाणगणैर्युधि राजन्धनञ्जयः ।
जघान तावकान्योधान्वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ३१ ॥
भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥
शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥ ३३ ॥

बाण बरसाने और हमारी सेना को छिन्न भिन्न करने लगे॥२३।२४॥उधर महाबली शकुनि ने सहस्रों हाथी, घोडे, रथ साथ लेकर चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया और वे उन पर निरन्तर विविध अस्त्र शस्त्र बरसाने लगे। क्षत्रियगण काल के द्वारा प्रेरित होकर दिव्य अस्त्रों के द्वारा वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे॥२५।२७॥उस समय महारथी अर्जुन क्रोध के वश होकर [शकुनि को समर से भगाने के निमित्त] उन सहस्रों रथों, घोडों और हाथियों को मारने लगे । शकुनि ने अर्जुन को सैकडों बाण मारकर उनके रथ को रोक दिया॥२७।२९॥अर्जुन ने शकुनि को बीस और अन्य महाधनुर्धरों को तीन तीन बाण मारकर शत्रुपक्ष के सब बाणों को व्यर्थ कर दिया । हे महाराज ! इन्द्र जैसे असुरों को मारते हैं वैसे ही वे वज्र के समान और वेग से जानेवाले बाणों से आपके पक्ष के योद्धाओं को मारने लगे । उस समय योद्धाओं के कटे हुए, हाथी की सूँड के समान, सहस्रों हाथों से परिपूर्ण रणभूमि ऐसी जान पडने लगी कि पाँच मुखवाले नागों से

निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पर्वनैर्निवभौ मही ॥ ३४ ॥
कृत्वा तत्कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।
उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥ ३६ ॥
ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् ।
अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद्रणे ॥ ३७ ॥
निन्ये च चतुरो वाहान्यमस्य सदनं प्रति ।
ततो रथादवप्लुत्य सौवलो भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते ।
तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९ ॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाऽम्बुभिः ।
तौ तु विद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४० ॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ।
अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ॥ ४१ ॥
विच्छिन्नानि तथा राजन्बलान्यासन्विशाम्पते ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ।
उत्सृज्य वाहान्समरे चोदयन्तस्तथाऽपरे ॥ ४३ ॥

व्याप्त हो रही है॥३०।३२॥ सुन्दर नासिका और कुण्डलों से शोभित, क्रोध के मारे नेत्र निकाले और दाँतों से होंठ चबा रहे, निष्क-चूडामणि- आदि से अलङ्कृत, क्षत्रियों के प्रिय वचन बोलनेवाले मुखमण्डल रणभूमि में कट कटकर गिर रहे थे, जिनसे वह पृथ्वी खिले हुए कमलों से शोभित सी जान पड़ती थी॥३३। ३४॥पराक्रमी अर्जुन ने इस प्रकार भयानक हत्या काण्ड करके शकुनि को सन्नतपर्वयुक्त पाँच बाणों से घायल किया और शकुनि के सम्मुख ही सिंहनाद करके उनके पुत्र उलूक को तीन बाण मारे। उलूक ने भी क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण को कई बाण मारे और घोर सिंहनाद किया, जिससे पृथ्वीमण्डल मानों गूँज उठा॥३५।३७॥इसी मध्य में अर्जुन ने शकुनि का धनुष काटकर चारों घोड़ों को भी मार डाला। तब शकुनि अपने रथ से कूदकर स्फूर्ति से उलूक के रथ पर चढ़ गये। एक रथ पर बैठे हुए वे पिता और पुत्र उसी प्रकार अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे, जैसे पर्वत पर मेघ जल छोड़ते हैं। हे महाराज! अर्जुन ने उनको तीक्ष्ण बाणों से घायल करके आपकी सेना को बाणवर्षा से भगाना प्रारम्भ किया॥३७।४०॥वायु के झोंके लगने से मेघ जैसे तितर-बितर होते हैं वैसे ही अर्जुन के बाणों की चोट से आपके सैनिक लोग भाग खड़े हुए। बाणों से पीड़ित और भय से विह्वल वह सेना रात्रि के समय जान लेकर जिधर सूझ पड़ा उधर

सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
विजित्य समरे योधांस्तावकान्भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४५ ॥
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।
तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥
आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत्सारवत्तरम् ।
धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन्विव्याध संयुगे ।
तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥
व्यधमत्कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥ ५० ॥
यथा वैतरणी राजन्यमराजपुरं प्रति ।
द्रावयित्वा तु तत्सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥
अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।
अथ दध्मुर्महाशङ्खान्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ५२ ॥
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ॥ ५३ ॥

भागने लगी। उस दारुण अन्धकार में कुछ सैनिक वाहनों को छोड़कर पैदल ही भागे, कुछ वाहनों को शीघ्रता से हाँकते हुए भागे और कुछ व्याकुल होकर इधर-उधर चक्कर खाने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार आपके योद्धाओं को जीतकर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने अपने शङ्ख बजाने लगे॥४०।४५॥ इसी समय धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को तीन बाण मारकर स्फूर्ति के साथ एक तीक्ष्ण बाण से उनके धनुष की डोरी काट डाली। क्षत्रियों का मानमर्दन करने वाले महावीर द्रोणाचार्य ने शीघ्र ही वह धनुष फेंककर एक और दृढ़ धनुष लेकर धृष्टद्युम्न को सात और उनके सारथी को पाँच तीक्ष्ण बाण मारे॥४६।४८॥ तब महारथी धृष्टद्युम्न ने निरन्तर बाण बरसाकर क्षण भर में द्रोणाचार्य को युद्ध से भगा करके इन्द्र जैसे असुर सेना का संहार करें, वैसे ही कौरव सेना को मारना प्रारम्भ कर दिया। हे राजेन्द्र! इस प्रकार आपके पुत्रों की सेना का जब संहार होने लगा तब दोनों पक्ष की सेनाओं के मध्य में वैतरणी नदी के समान भयानक रक्त की नदी बह चली। उसकी लहरों और प्रवाह में सैकड़ों मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों की लाशें बहने उतराने लगीं॥४९।५१॥ महातेजस्वी धृष्टद्युम्न इस प्रकार कौरव सेना को नष्ट भ्रष्ट करके देवताओं के मध्य इन्द्र के समान पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना के मध्य में शोभायमान होकर शङ्ख बजाने लगे। उस

सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे सकुल्युद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

समय शिखण्डी, नकुल, सहदेव, सात्यकि और भीमसेन आदि पाण्डव पक्ष के वीरगण भी कौरव दल के सहस्रों राजाओं और क्षत्रियों को मारकर विजयलाभ करके राजा दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा आदि के सम्मुख ही बारम्बार सिंहनाद और शङ्खध्वनि करने लगे॥५१।५४॥

द्रोणपर्व का एक सौ इकहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७१ ॥

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

सञ्जय उवाच — विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १ ॥
अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः ।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥
निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् ।
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥
यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि ।
आवां पाण्डुसुतान्संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५ ॥
तदैवाऽहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम् ।
नाऽकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥ ६ ॥
यदि नाऽहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७ ॥

एक सौ बहत्तर अध्याय ॥ १७२ ॥

सञ्जय कहने लगे कि हे महाराज! अब राजा दुर्योधन अपनी सेना को पाण्डवों के बाणों से मरते और भागते देखकर कर्ण और द्रोणाचार्य के समीप व्याकुल हुए हुए पहुँचे और अपनी वचन-चातुरी दिखाते हुए क्रोधपूर्ण स्वर में कहने लगा — हे श्रेष्ठ वीरो! आप लोगों ने अर्जुन के हाथों जयद्रथ का मरना देखकर, कुपित होकर, यह रात्रियुद्ध की अग्नि जलाई है। किन्तु इस समय पाण्डवों की सेना के वीर मेरी सेना का संहार कर रहे हैं, और शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होकर भी आप लोग क्यों असमर्थ की भाँति खड़े खड़े कोलाहल देख रहे हैं ॥१।४॥ यदि मेरा साथ छोड़ देने की ही आप लोगों की इच्छा थी तो पहले आप लोगों को यह कहकर भरोसा नहीं देना था कि हम लोग पाण्डवों को पराजय कर देंगे। यदि मुझे पहले से प्रतीत हो जाता कि आप लोग पाण्डवों के पक्ष को पराजय नहीं करेंगे, तो मैं कभी पाण्डवों से वैर न

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ ८ ॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
शैनेयप्रमुखान्पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥ ९ ॥
तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥
अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम् ।
अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ११ ॥
कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चाऽपि सप्तभिः ॥ १२ ॥
एते कौरवसंक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् ।
दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ॥ १३ ॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः ।
तत्र द्रोणोऽहरत्प्राणान्क्षत्रियाणां विशाम्पते ॥ १४ ॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः ।
द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥ १५ ॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥ १६ ॥
भागिनेयान्वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः॥ १७ ॥

करता और ऐसा लोकसंहारकारी घोर युद्ध न छिड़ता। अस्तु, इस समय जो आप दोनों वीर मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहते तो अपने योग्य पराक्रम के साथ पाण्डव-सेना से युद्ध करो॥५।७॥हे महाराज! महावीर आचार्य द्रोण और कर्ण राजा दुर्योधन के वचन सुनकर, लाठी की चोट खाए हुए छिड़े नाग की भाँति, अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। वे तर्जन गर्जन करते हुए घोर युद्ध करने की अभिलाषा से पाण्डवपक्ष के सात्यकि आदि वीरों की ओर वेग से आगे बढ़े। तब पाण्डव भी अपने सेनाओं को साथ लेकर इन दोनों महारथियों के सम्मुख आये॥८।१०॥महाधनुर्धर, सब शस्त्रों के ज्ञाता, आचार्य द्रोण ने क्रुद्ध होकर शीघ्रता के साथ सात्यकि को दस बाण मारे। महावीर कर्ण ने दस, राजा दुर्योधन ने सात, वृषसेन ने दस और शकुनि ने सात तीक्ष्ण बाण सात्यकि को मारे॥११।१३॥उसी समय सोमक-गण आचार्य को पाण्डव सेना का नाश करते देखकर चारों ओर से उन पर बाणों की वर्षा करने लगे। महातेजस्वी द्रोण क्रोध से अत्यन्त विचलित हो उठे। सूर्य जैसे अपनी किरणें फैलाकर अँधेरे को दूर करते हैं, वैसे ही वे भी बाण बरसाकर क्षत्रियों के प्राण हरने लगे। द्रोणाचार्य के बाणों की चोट से पीड़ित होकर पाञ्चालगण घोर आर्तनाद करने लगे। कोई पुत्र को, कोई पिता को, कोई भाई को, कोई मामा को, कोई भानजे को, कोई मित्र को, कोई सम्बन्धी और

अपरे मोहिता मोहात्तमेवाऽभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे ॥ १८ ॥
सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना ।
निशि सम्प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १९ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याऽच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ २० ॥
तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन्किरन्तौ सायकान्बहून् ॥ २२ ॥
पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥
द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥ २४ ॥
एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणाऽपि कौन्तेय पृतना नाऽवतिष्ठते ॥ २५ ॥
तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥ २६ ॥
तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २७ ॥

बान्धव आदि को छोड़ छोड़कर जान बचाने के निमित्त भागने लगे। कोई कोई बाण-प्रहार से मूढ़ से होकर द्रोणाचार्य के सम्मुख ही दौड़कर जाने लगे। उस घोर संग्राम में पाण्डवपक्ष की असंख्य सेना मारी गई ॥१३।१८॥ जो सेना मरने से बची रह, द्रोणाचार्य के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर, पाण्डवों के, श्रीकृष्ण के और धृष्टद्युम्न के सम्मुख ही भागने लगी। उस समय पाण्डवों की सेना ने दीपक और मशालें फेंक दीं, इस कारण चारों ओर घना अंधेरा छा गया। किसी को भी कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। केवल कौरवपक्ष के दीपकों के उजेले में पाण्डवपक्ष के योद्धाओं का भागना भर नजर आता था। इसी समय द्रोणाचार्य और कर्ण पाण्डवों की सेना को भागते देखकर बाण बरसाते हुए वेग के साथ उनका पीछा करने लगे॥१९।२२॥ हे राजेन्द्र! पाञ्चालगण जब इस प्रकार भागने और नष्ट होने लगे तब श्रीकृष्ण ने बहुत ही खेद के साथ कहा— हे अर्जुन! महावीर सात्यकि और धृष्टद्युम्न पाञ्चाल सेना को साथ लिये हुए द्रोणाचार्य और कर्ण से युद्ध कर रहे हैं। इस समय हमारे पक्ष के महारथी और सेना सभी कर्ण तथा आचार्य के अचूक बाणों की चोट से छिन्न भिन्न होकर भाग रहे हैं, किसी प्रकार युद्ध करने को नहीं लौटते हैं। इसलिये आओ, हम यत्नपूर्वक उन्हें लौटावें ॥२३।२७॥ अब महारथी अर्जुन और श्रीकृष्ण भाग

एतौ हि वलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ तव बलैर्नाशयेतां निशामिमाम् ॥ २८ ॥
तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद्वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥
वृकोदरमथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाऽब्रवीद्राजन्हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥
एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्त्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥ ३१ ॥
एतेन सहितो युध्य पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥
ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥
सञ्जय उवाच— ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान्ममृदतुर्युधि ॥ ३४ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ३५ ॥
तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी ।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६ ॥
रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ३७ ॥

रहे अपने सैनिकों को पुकारकर कहने लगे—हे श्रेष्ठ योद्धाओ ! क्षत्रियो ! तुम लोग भयविह्वल होकर भागो नहीं । भयभीत मत होओ । यह देखो, हम सैन्य सग्रह करके व्यूह बनाकर द्रोणाचार्य और कर्ण को रण से भगाये देते हैं॥२६।२८॥हे महाराज ! इसी समय वीरवर भीमसेन भागती हुई सेना को लौटा लाये । उनको आते देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के हृदय में हर्ष-सञ्चार करने के निमित्त फिर कहा—यह देखो, समर में प्रशसनीय अद्भुत कार्य करनेवाले महावीर भीमसेन क्रुद्ध होकर, सोमकगण और पाण्डवों की सेना साथ लेकर, द्रोणाचार्य और कर्ण से सग्राम करने को आ रहे हैं । इसलिये तुम भीमसेन के और अपने दल के पाञ्चालदेशीय महारथियों के साथ होकर शत्रुपक्ष की सेना का सहार करो । अब पराक्रमी अर्जुन और श्रीकृष्ण कर्ण और आचार्य द्रोण के सम्मुख पहुँचे॥२९।३३॥सञ्जय कहते हैं—तब पाण्डवपक्ष की सब सेना फिर लौटकर शत्रुओं का सहार करती हुई द्रोण और कर्ण के सम्मुख उपस्थित हुई । उस समय पूर्ण चन्द्रमा के उदय से उमड़े हुए दो महासागरों के समान अत्यन्त उत्तेजित दोनों पक्ष की सेना उस रात्रिकाल में परस्पर भिड़कर घमासान युद्ध करने लगी॥३३।३५॥ कौरवदल के सैनिक उन्मत्त की भाँति दीपक छोड़कर धीर स्थिर भाव से पाण्डवों के साथ घमासान युद्ध करने लगे । उस समय धूलि और अँधेरा सब दिशाओं में

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः ।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥ ३८ ॥
निःशब्दमासीत्सहसा पुनः शब्दो महानभूत् ।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥ ३९ ॥
यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम ।
तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥ ४० ॥
तथा संयुध्यमानानां विगाढाऽऽसीन्महानिशा ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

छा गया। जय की आकांक्षा रखनेवाले वीर योद्धा लोग अपने-अपने नाम गोत्र सुना सुनाकर युद्ध करने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! स्वयंवर की सभा में जैसे राजा लोगों के नाम गोत्र आदि का विवरण सुन पड़ता है, वैसे ही उस रणभूमि में युद्ध कर रहे राजाओं के नाम गोत्र आदि का बखान सुनाई पड़ने लगा॥३६।३८॥ हे महाराज! उस समय कुछ देर तक रणभूमि में सन्नाटा सा छा गया। किन्तु क्षण भर के पश्चात् जब सैनिक क्रोधान्ध होकर भिड़ गये तब हारने और जीतनेवाली दोनों सेनाओं में फिर दारुण कोलाहल सुन पड़ने लगा। उस समय जिस-जिस स्थान पर दीपक या मशाल का उजेला दिखाई पड़ता था, उसी-उसी स्थान पर वीरगण पतङ्गों की तरह जा टूटते थे। इस प्रकार पाण्डवों और कौरवों का तुमुल युद्ध होने पर रात्रि भी धीरे-धीरे अत्यन्त भयानक रूप धारण करने लगी॥३९।४१॥

द्रोणपर्व का एक सौ बहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७२ ॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

सञ्जय उवाच — ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा ।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥
प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष ।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २ ॥
तावन्योन्यं शरैः संख्ये सञ्छाद्य सुमहारथौ ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३ ॥
ततः पञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
सारथिं चतुरश्चाऽश्वान्कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥

एक सौ तिहत्तर अध्याय ॥ १७३ ॥

सञ्जय ने कहा — हे कुरुकुल-तिलक! इसके पश्चात् शत्रुदमन कर्ण ने रणभूमि में धृष्टद्युम्न को देखकर उनके वक्षःस्थल में मर्मभेदी दस तीक्ष्ण बाण मारे। महारथी धृष्टद्युम्न ने ठहर जा, ठहर जा कहकर कर्ण को दस बाण मारे। इस प्रकार ये दोनों महावीर कान तक धनुष की डोरी खींचकर एक दूसरे को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित और आच्छन्न करने लगे ॥१।३॥महापराक्रमी कर्ण ने युद्धभूमि में पाञ्चालों के

कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याऽश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥
विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवाऽन्वपद्यत ॥ ७ ॥
आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८ ॥
कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् ।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाऽम्बुजम् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥ १० ॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः ।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ११ ॥
कर्णस्याऽपि रथे वाहानन्यान्सूतोऽभ्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान्महावेगान्सैन्धवान्साधुवाहिनः ॥ १२ ॥
लब्धलक्षस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान् ।
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाऽचलम् ॥ १३ ॥
सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः ।
सम्प्राद्रवत्सुसन्त्रस्ता सिंहेनेवाऽर्दिता मृगी ॥ १४ ॥

प्रधान धृष्टद्युम्न के सारथी और चारों घोड़ों को मार-कर तीक्ष्ण बाणों से उनका धनुष काट डाला। इस प्रकार महारथी धृष्टद्युम्न घोड़े, सारथी और धनुष न रहने पर हाथ में परिघ लेकर रथ पर से कूद पड़े, और बड़े वेग से कर्ण के रथ के समीप जाकर उन्होंने उनके चारों घोड़ों को मार डाला॥४।६॥कर्ण ने जब उन्हें जहरीले बाण मारे तब वे पैदल ही पाण्डवों की सेना में लौट आये। यहाँ वे सहदेव के रथ पर सवार होकर कर्ण से भिड़ने को उद्यत हुए तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने रोककर कहा कि अब तुम कर्ण से युद्ध न करो॥७।८॥उधर महाप्रतापी कर्ण सिंहनाद, धनुष की टङ्कार और शङ्खनाद करने लगे। हे राजेन्द्र! तब महारथी पाञ्चाल और सोमकगण धृष्टद्युम्न को परास्त देखकर बहुत ही क्रुद्ध हो उठे। वे अस्त्र-शस्त्र लेकर, जीवन की आशा छोड़कर, वेग से कर्ण के सम्मुख जाने लगे॥९।११॥इसी समय कर्ण का सारथी, सिन्धु देश के, शीघ्रगामी श्वेत घोड़ों को रथ में जोतकर कर्ण के समीप ले आया। तब एकाग्र होकर महारथी कर्ण वैसे ही पाञ्चाल देश के महारथियों पर बाण बरसाने लगे जैसे मेघ पर्वत पर जलधारा बरसाता है।पाञ्चाल-सेना के वीर कर्ण के बाणों से बहुत पीड़ित हो उठे। वे सिंह के मारे मृगों की भाँति भयभीत होकर भागने लगे॥१२।१४॥अनेक योद्धा घोड़ों, हाथियों और रथों पर से पृथ्वी पर गिर पड़े। महाबाहु कर्ण वेग से रथ

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५ ॥
धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १६ ॥
ऊरू चिच्छेद चाऽन्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते ।
वाजिपृष्ठगतस्याऽपि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १७ ॥
नाऽज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः ।
सञ्छिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥
ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चाऽपि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९ ॥
अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् ।
कर्णमेवाऽभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥
तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ २१ ॥
अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥
कर्णेनाऽभ्याहता राजन्पञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्ष्यमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥
पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २५ ॥

दौड़कर भाग रहे हाथियों के सवारों और पैदलों पर क्षुरप्र बाण बरसाने लगे । किसी के हाथ, किसी की जाँघें और किसी के कुण्डल शोभित मस्तक कट कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे । उस समय अन्यान्य महारथीगण युद्ध में ऐसे तन्मय हो गये कि उन्हें अपने छिन्न भिन्न शरीरों और वाहनों का कुछ भी स्मरण नहीं रहा ॥१५।१८॥ पाञ्चाल और सृञ्जयगण इस प्रकार अत्यन्त पीड़ित और भिन्न होने लगे । उस समय तिनके की आवाज पर भी उन्हें जान पड़ता था कि कर्ण आ गये । वे अपने पक्ष के योद्धाओं को भी कर्ण समझकर उनके समीप से भागने लगे । पराक्रमी कर्ण चारों ओर बाण बरसाते हुए उनके पीछे दौड़े ॥१९।२१॥ कर्ण और द्रोणाचार्य के बाणों की मार से अचेत से होकर पञ्चाल लोग चारों ओर देखते हुए भागने लगे । समरभूमि में कोई भी स्थिर न हो सका ॥२२।२३॥ हे राजेन्द्र ! उस समय युधिष्ठिर ने अपनी सेना को भागते देख स्वयं भी रण छोड़कर भागने की इच्छा मन में लाकर, अर्जुन से कहा—हे भाई ! यह देखो, महा-

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥
यथा विसृजतश्चाऽस्य सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
पश्यामि नाऽन्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ २७ ॥
यदत्राऽनन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत्कुरुष्व धनञ्जय ॥ २८ ॥
एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाऽब्रवीत् ।
भीतः कुन्तिसुतो राजा राधेयस्याऽद्य विक्रमात् ॥ २९ ॥
एवङ्गते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान्व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ ३० ॥
द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥ ३१ ॥
पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान्रथोदारान्किरन्तं निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥
नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३३ ॥
स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३४ ॥
श्री वासुदेव उवाच—पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाऽऽहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५ ॥

वीर कर्ण इस भयङ्कर रात्रि के समय प्रचण्ड सूर्य की भाँति तप रहे हैं। तुम्हारे योद्धा कर्ण के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर अनाथ की तरह आर्तनाद करते हुए भाग रहे हैं। कर्ण ऐसी स्फूर्ति दिखा रहे हैं कि ये कब बाण धनुष पर चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं, यह नहीं देख पड़ता। इससे जान पड़ता है कि ये हमें जीता न छोड़ेंगे। हे अर्जुन! अब समयोचित कर्तव्य का निश्चय करके ऐसा करो, जिसमें शीघ्र कर्ण का वध हो॥२४।२८॥हे महाराज! युधिष्ठिर के यों कहने पर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! आज सूतपुत्र का पराक्रम देखकर धर्मराज बहुत ही भयभीत हो गये हैं। देखो, कौरव-सेना बारम्बार हम लोगों पर आक्रमण कर रही है। इसलिए तुम शीघ्र ही समय के अनुसार कार्य करो॥२९।३०॥आचार्य के बाणों से पीड़ित होकर हमारे सैनिक लोग भाग रहे हैं। कोई भी समरभूमि में स्थित नहीं हो सकता। महाबाहु कर्ण भी तीक्ष्ण बाणों की चोट से प्रधान-प्रधान योद्धाओं को भगाते हुए निर्भय समरभूमि में विचर रहे हैं। हे श्रीकृष्ण! सर्प जैसे किसी के पाँव का प्रहार नहीं सह सकता, वैसे ही युद्धभूमि में कर्ण का यह पराक्रम मेरे लिए असह्य है। हे कृष्णचन्द्र! तुम अभी कर्ण के समीप मेरा रथ ले चलो। आज या तो मैं कर्ण को मारूँगा और या वही दुरात्मा मुझको मार डालेगा॥ ३१।३४॥श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! मैं अलौ-

नैतस्याऽन्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनञ्जय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ॥ ३६ ॥
न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।
घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९ ॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४० ॥
सततं चाऽनुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नाऽत्र संशयः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः ।
आजुहावाऽथ तद्रक्षस्तच्चाऽऽसीत्प्रादुरग्रतः ॥ ४२ ॥
कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते ।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ४३ ॥
ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥
वासुदेव उवाच घटोत्कच विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नाऽन्यस्य कस्यचित् ॥ ४५ ॥

विकट पराक्रमी कर्ण को इन्द्र की भाँति रणभूमि में विचरते देख रहा हूँ। तुम्हारे या घटोत्कच के अतिरिक्त और कोई इस समय कर्ण से युद्ध नहीं कर सकता, किन्तु इस समय कर्ण के समीप तुम्हारा जाना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। कर्ण ने तुम्हारे नाश के निमित्त प्रज्वलित भारी उल्का के समान, इन्द्र की दी हुई, भयानक शक्ति बड़े यत्न से अपने समीप रख छोड़ी है। उसी अमोघ शक्ति के बल पर वह इस प्रकार भयङ्कर युद्ध करता हुआ निर्भय विचर रहा है॥३५।३९॥ इसलिये सदा तुम्हारा भक्त अनुगत घटोत्कच ही इस समय कर्ण का सामना करे। वह देवसदृश पराक्रमी राक्षस भीमसेन के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। दिव्य, आसुर, राक्षसों और मनुष्यों के सब अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में वह विशेष रूप से पारदर्शी है। इसलिये घटोत्कच ही कर्ण को मार सकता है॥४०।४१॥ हे महाराज! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने उसी समय घटोत्कच को अपने समीप बुलाया। विचित्र कवच पहने हुए घटोत्कच अर्जुन का आह्वान सुनते ही खड्ग और धनुष बाण आदि लेकर उनके समीप आ पहुँचा। अर्जुन और श्रीकृष्ण को प्रणाम करके गर्व के साथ घटोत्कच ने कहा— हे महात्मन्! मैं उपस्थित हूँ। आज्ञा दीजिए, क्या करूँ?॥४२।४३॥

स भवान्मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव ।
विविधानि तवाऽस्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ॥ ४६ ॥
पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी ।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥ ४७ ॥
एष कर्णो महेष्वासो मतिमान्दृढविक्रमः ।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८ ॥
किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४९ ॥
निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवाऽर्दिता मृगाः ॥ ५० ॥
एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नाऽन्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥ ५१ ॥
स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहाऽऽत्मनः ।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥
एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
कथं नस्तारयेद्दुःखात्स त्वं तारय बान्धवान् ॥ ५३ ॥
इच्छन्ति पितरः पुत्रान्स्वार्थहेतोर्घटोत्कच ।
इह लोकात्परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥
तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ५५ ॥

तब श्रीकृष्ण ने मुसकराकर उस उज्ज्वल वदनवाले काले मेघ के समान घटोत्कच से कहा — हे घटोत्कच ! मेरी बात को तुम ध्यान देकर सुनो । इस तुमुल संग्राम में तुम्हारे ही अनुपम पराक्रम प्रकट करने का समय है । तुम्हारे अतिरिक्त और कोई कर्ण के आगे युद्ध में अपूर्व पराक्रम नहीं प्रकट कर सकता । तुम राक्षसी मायाएँ और बहुत प्रकार के अद्भुत अमोघ अस्त्रों का प्रयोग जानते हो। इसलिए तुम इस समय समरसागर में डूब रहे पाण्डवों को नाव बनकर उबारो॥४४।४६॥ यह देखो, पाण्डवों की सेना उन गायों के झुण्ड की भाँति, जिसे चरानेवाले पीट रहे हों, कर्ण के बाण-प्रहार से भयभीत होकर भाग रही है । महाप्रतापी कर्ण पाण्डव सेना के मुख्य मुख्य क्षत्रियों का संहार कर रहा है । पराक्रमी धनुर्धर योद्धा लोग असंख्य बाणों की वर्षा करके भी कर्ण के बाणों की मार से रणभूमि में नहीं स्थित हो सकते॥४७।४९॥इस घोर आधी रात्रि के समय पाञ्चालगण कर्ण के तीक्ष्ण बाणों से बहुत ही पीडित हो रहे हैं, और सिंह के आक्रमण से भयभीत हुए-हुए मृग की भाँति भयाकुल होकर भाग रहे हैं । हे घटोत्कच ! इस समय तुम्हारे अतिरिक्त कर्ण को और कोई नहीं रोक सकता । इसलिए तुम माता और पिता के कुल तथा अपने तेज,पराक्रम एवं अस्त्रबल के अनुरूप कार्य करो॥५०।५२॥हे घटोत्कच ! मनुष्य यह कामना किया करते हैं कि पुत्र हमें और हमारे भाई-बन्धुओं

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः ।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परन्तप ॥ ५६ ॥
रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः ।
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥ ५७ ॥
जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥
सञ्जय उवाच—केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिन्दमम् ॥ ५९ ॥
घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ६० ॥
तद्भवान्यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥
जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ६२ ॥
घटोत्कच उवाच – अलमेवाऽस्ति कर्णाय द्रोणायाऽलं च भारत ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥
अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥

सो इस लोक में दुःख से बचावेगा और परलोक में उसके द्वारा श्रेष्ठ गति प्राप्त होगी। इसी के लिए ही लोग पुत्र की कामना करते हैं। अतएव इस समय तुम सङ्कट के सागर में पड़े हुए अपने पितृकुल और उसके भाई बन्धुओं का उद्धार करो। तुम सब प्रकार समर्थ हो। तुम जब युद्ध करते हो तब तुम्हारे अस्त्रों का प्रभाव अत्यन्त भयानक और मायाएँ दुस्तर हो उठती हैं॥५३-५५॥ इसलिए तुम इस रात्रि के समय कर्ण के बाणों से छिन्न भिन्न पाण्डव सेना का उद्धार करो। हे राक्षसेन्द्र! राक्षसगण रात्रि के समय अमित पराक्रमी, अत्यन्त दुर्द्धर्ष और रण निपुण हो उठते हैं। रात्रि के समय उनका मायाबल बहुत बढ़ जाता है। इसलिए तुम इस घोर अंधेरी रात्रि में मायाबल से धनुर्धर कर्ण का वध करो। इधर पाण्डवगण धृष्टद्युम्न को अपना अगुआ बनाकर द्रोणाचार्य को मारेंगे॥५६-५८॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! श्रीकृष्ण के यों कह चुकने पर अर्जुन ने भी घटोत्कच से कहा — हे वत्स! मेरी पाण्डव-सेना में तुम, महारथी सात्यकि और महाबाहु भीमसेन, यही तीन योद्धा मेरी सम्मति में सबसे श्रेष्ठ हैं। अब तुम इस रात्रिकाल में कर्ण के साथ द्वैरथ युद्ध करो। पराक्रमी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक होंगे। पहले इन्द्र ने जैसे महावीर कार्त्तिकेय के साथ मिलकर, उन्हें सेनापति बनाकर, तारकासुर को मारा था वैसे ही तुम आज महारथी सात्यकि के साथ मिलकर कर्ण को मार गिराओ॥५९-६२॥ अर्जुन के ये वचन सुनकर राक्षसराज घटोत्कच बोला- हे महात्मन्! क्या कर्ण, क्या द्रोण और क्या अन्य सब अस्त्रविद्या के पारदर्शी श्रेष्ठ क्षत्रियगण, कोई भी हो, मैं समर में सबका सामना कर सकता हूँ। मैं आज कर्ण के साथ ऐसा युद्ध करूँगा कि जब तक यह पृथ्वी रहेगी, तब तक लोग इसकी चर्चा करेंगे।

न चाऽत्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन्।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा ।
अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६६ ॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम् ।
प्रहसन्पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ६७ ॥
तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७३॥

आज क्या शूर, क्या कायर, क्या भयविह्वल होकर हाथ जोड़नेवाला, शरणागत, भागनेवाला, कोई भी शत्रुपक्ष का मनुष्य मेरे हाथ से नहीं बचेगा । राक्षसधर्म के अनुसार मैं सबको मार डालूंगा॥६३।६४॥हे महाराज! शत्रुनाशन घटोत्कच यो कहकर आपके सैनिकों के हृदय में भय उत्पन्न करता हुआ कर्ण के साथ युद्ध करने को बड़े वेग से चला। महाधनुर्द्धर कर्ण ने उस प्रज्वलित मुखवाले विषैले नाग के समान क्रोध से आ रहे निशाचर को हँसते हँसते रोका। हे राजसिंह! उस समय महाबाहु कर्ण और घटोत्कच दोनों ही इन्द्र और प्रह्लाद की तरह दारुण संग्राम करने लगे॥६६।६८॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ तिहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७३ ॥

अथ चतुस्सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १७४ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन्सूतपुत्ररथं प्रति ।
आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥
अब्रवीत्तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः ।
एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥
अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् ।
वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।
रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥
मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥ ५ ॥

एक सौ चौहत्तर अध्याय ॥ १७४ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! राजा दुर्योधन ने घटोत्कच को कर्ण के मारने की इच्छा से वेग से आते देखकर दुःशासन से कहा—हे भाई! यह देखो, राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच कर्ण के वेग और पराक्रम को देखकर उससे युद्ध करने को आ रहा है। इस लिए महाबली पराक्रमी कर्ण जहाँ पर घटोत्कच से युद्ध करने के निमित्त स्थित हैं, उस स्थान पर तुम असंख्य सेना साथ लेकर जाओ और यत्नपूर्वक उनकी

दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।
दुर्योधन तवाऽमित्रान्प्रख्यातान्युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥
पाण्डवान्हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।
जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥ ७ ॥
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।
तस्याऽपचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ।
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥
तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥ ९ ॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुपसम्भवम् ॥ १० ॥
पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११ ॥
तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ १२ ॥
अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १३ ॥

रक्षा करो। यह भयङ्कर निशाचर असावधानता के कारण कहीं कर्ण का नाश न कर डाले॥१।५॥हे महाराज ! राजा दुर्योधन दु:शासन को यों आज्ञा दे ही रहे थे कि महाबलशाली जटासुर के पुत्र अलम्बुष* राक्षस ने दुर्योधन के समीप आकर कहा—हे राजेन्द्र! आप आज्ञा कीजिए। मैं आपके शत्रु रणदुर्मद पाण्डवों को, उनके अनुचर राजाओं सहित, मार डालना चाहता हूँ। पूर्व समय में नीचप्रकृति पाण्डवों ने मेरे पिता राक्षसश्रेष्ठ जटासुर का वध किया है, इसलिए वे मेरे घोर वैरी हैं। मैं इस समय आपकी आज्ञा पाकर शत्रुओं के रक्त और मांस से अपने पूर्वपुरुषों को तृप्त करना चाहता हूँ। मेरी पूर्ण इच्छा है कि मैं इस प्रकार अपने पिता के ऋण से छुटकारा पाऊँ॥५।८॥ हे महाराज ! अलम्बुष के वचन सुनकर कुरुपति दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुए।वे बारम्बार अलम्बुष की प्रशंसा करके उसे उत्साहित करते हुए आह्लादपूर्वक कहने लगे—हे राक्षसेन्द्र ! तुम द्रोण, कर्ण आदि श्रेष्ठ वीरों की सहायता से सहज ही में पाण्डवों का नाश कर सकोगे।अब मैं तुमको यह अनुमति देता हूँ कि तुम शीघ्र ही इस क्रूरकर्मा मनुष्यपुत्र निशाचर घटोत्कच को पहले मारो। यह पाण्डवों का परम हितैषी दुरात्मा निशाचर आकाशमार्ग में स्थित होकर मेरे रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य आदि को नष्ट कर रहा है। इसलिए तुम शीघ्र ही इसे मार गिराओ॥९।११॥ अब भीषणमूर्ति जटासुर के पुत्र ने राजा दुर्योधन की बात मानकर घोर युद्ध ठान दिया। उसने घटोत्कच को ललकारकर उस पर बाण बरसाना प्रारम्भ किया। तब घटोत्कच ने भयानक पराक्रम प्रकट किया। प्रचण्ड

*इससे पहले अलम्बुष का तीन बार युद्ध हो चुका है। शालकटङ्कट नाम से प्रसिद्ध, राक्षस अलम्बुष को घटोत्कच ने मारा है। सात्यकि ने राजा अलम्बुष को मारा है और राक्षसराज अलम्बुष अर्जुन से परास्त होकर रणभूमि से भाग गया है।

ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥ १४ ॥
विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १५ ॥
तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥
घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १७ ॥
अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥
तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चाऽतिदारुणम् ॥ १९ ॥
ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान्सहस्रशः ।
अलम्बुषं चाऽभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाऽचलम् ॥ २० ॥
ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चाऽन्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥
जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाऽभ्याहनद् दृढम् ॥ २२ ॥
मुष्टिनाऽभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ २३ ॥

आँधी जैसे मेघों को छिन्न भिन्न कर डालती है, वैसे ही अकेले घटोत्कच ने अलम्बुष, कर्ण और दुस्तर कुरु-सेना को मथना प्रारम्भ किया ॥१२।१३॥ पराक्रमी अलम्बुष ने घटोत्कच के मायाबल को देखकर उसे अनेक प्रकार के बाणोंसे पीड़ित करके पाण्डव-सेना को तहस-नहस कर डाला। पाण्डवों की सेना पवन-सञ्चालित मेघों की भाँति छिन्न भिन्न हो गई। इधर आपकी सेना भी महावीर घटोत्कच के बाणों से घायल होकर, दीपक फेंक फेंककर, उस अंधेरे में ही भागने लगी॥१५।१७॥ तब महावीर अलम्बुष कुपित होकर, महावत जैसे हाथी को अंकुश मारे वैसे ही, घटोत्कच को तीक्ष्ण बाणों से व्याकुल करने लगा॥१८॥ घटोत्कच यह देखकर बहुत ही कुपित हो उठा। उसने देखते ही देखते अलम्बुष के रथ, सारथी और सब अस्त्र शस्त्र खण्ड खण्ड करके नष्ट कर दिये। उसके पश्चात् अट्टहास करके वह अलम्बुष, कर्ण और कौरवों के ऊपर- पर्वत पर मेघ जैसे वर्षा करें वैसे ही—बाण बरसाने लगा॥१९।२०॥ हे राजेन्द्र! आपकी चतुरङ्गिणी सेना घटोत्कच के बाणों से पीड़ित और क्षोभ को प्राप्त होकर परस्पर में ही एक दूसरे को विनष्ट करने लगी। रथ और सारथी से हीन अलम्बुष यह देखकर बहुत ही कुपित हो उठा। उसने झपटकर घटोत्कच को एक सुदृढ़ मुक्का मारा। अलम्बुष के मुष्टिप्रहार की चोट से महावीर घटोत्कच वैसे ही कांप उठा जैसे भूकम्प के समय वृक्ष-तृण गुल्म-लता-सहित

ततः सपरिघाभेन द्विट्सङ्घघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ २४ ॥
तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले ॥ २५ ॥
जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥
अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष च भूतले ॥ २७ ॥
तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥
विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २९ ॥
पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३० ॥
पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३१ ॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ ।
परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥ ३२ ॥
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।
हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥ ३३ ॥

बड़ा पर्वत काँपने लगता है॥२१।२३॥घटोत्कच ने भी शत्रुओं को मारने में समर्थ, लोहे के बेलन के समान, बाहु उठाकर अलम्बुष को एक घूँसा मारा। इसके पश्चात् दोनों हाथों से अलम्बुष को खींचकर पृथ्वी पर गिरा दिया और ऊपर से रगड़ने लगा ॥२४।२५॥ कुछ देर के पश्चात् महाबली अलम्बुष घटोत्कच के हाथ से छुटकारा पाकर उठ खड़ा हुआ और फिर उस पर झपटा। उसने भी घटोत्कच को उठाकर नीचे पटक दिया।वह भी घटोत्कच को नीचे दबाकर पीसने लगा॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार वे दोनों भारी डील डौलवाले दानव भिड़कर लोमहर्षण युद्ध करने लगे॥२६।२९॥ फिर वे माया प्रकट करके इन्द्र और राजा बलि की भाँति घोर युद्ध करने लगे और एक दूसरे से बढ़कर कार्य कर दिखाने की चेष्टा में प्रवृत्त हुए। वे दोनों महाबली वीर एक दूसरे को मार डालने के प्रयत्न में लगे हुए थे। वे पहले अग्नि और समुद्र के रूप में प्रकट हुए। फिर गरुड़ और तक्षक बन गये। इसके पश्चात् उन्होंने मेघ और घोर आँधी का रूप रख लिया। देखते ही देखते वे वज्र और महापर्वत, गजराज और शार्दूल, राहु और सूर्य आदि के विविध विचित्र रूप रखने और युद्ध करने लगे। अलम्बुष और घटोत्कच दोनों इस प्रकार सैकड़ों मायाएँ प्रकट करके बहुत समय तक एक दूसरे पर परिघ, गदा, प्रास, मुद्गर, पट्टिश, मुसल, चट्टान आदि के प्रहार करते हुए

युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।
ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥ ३४ ॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।
गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाऽऽहवे ।
ततो घटोत्कचः खड्गमुद्यम्याऽद्भुतदर्शनम् ॥ ३६ ॥
रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।
स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चाऽतिभैरवम् ॥ ३७ ॥
निचकर्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।
शिरस्तच्चाऽपि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥ ३८ ॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।
अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥ ३९ ॥
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥
अब्रवीच्च ततो राजन्दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥
पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ।
स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् ।
तिष्ठस्व तावत्सुप्रीतो यावत्कर्णं वधाम्यहम् ॥ ४३ ॥

विचित्र युद्ध करते रहे । कभी रथ पर, कभी घोड़ों पर, कभी हाथियों पर बैठकर और कभी पैदल ही दोनों महा मायावी राक्षस घोर युद्ध करते थे॥३०। ३४॥इसी मध्य में वीर घटोत्कच अलम्बुष को मारने के अभिप्राय से, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, अपने स्थान से उछला और बाज पक्षी की भाँति झपटकर शत्रु के ऊपर पहुँच गया । मयासुर को जैसे विष्णु ने पकड़ लिया था वैसे ही घटोत्कच ने महाकाय राक्षसेन्द्र अलम्बुष को पकड़ लिया और ऊपर उठाकर पृथ्वी पर जोर से दे मारा । इसके पश्चात् उसने अद्भुतरूप तीक्ष्ण खड्ग खींचकर अलम्बुष का भयानक, विकृत-दर्शन, सिर काट डाला । हे महाराज ! छूटने के लिए छटपटा रहे, तड़प रहे, गरज रहे, शत्रु के सिर को पराक्रमी घटोत्कच ने स्फूर्ति के साथ धड़ से अलग कर डाला । रक्त से तर उस सिर के केश पकड़े हुए घटोत्कच शीघ्रता के साथ दुर्योधन के रथ के समीप पहुँचा॥३५।३९॥मुसकरा रहे महाबाहु राक्षस ने वह अलम्बुष का सिर दुर्योधन के रथ पर फेंक दिया । अब वह वर्षाऋतु के बादल की भाँति जोर से गरजने लगा । घटोत्कच ने सिंह की तरह गरजकर दुर्योधन से कहा — देखो,इस तुम्हारे परम हितैषी को मैंने मार डाला । इसका पराक्रम तुमने देख लिया । अब कर्ण की और फिर अपनी भी यही दशा तुम देखोगे । [शास्त्र में लिखा है कि] जो व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम

एवमुक्त्वा ततः प्रायात्कर्णं प्रति नरेश्वर ।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान्कुपितो रणमूर्धनि ॥ ४४ ॥
ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलम्बुपराभवे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

तीनों की हानि न होने देना चाहता हो वह राजा, ब्राह्मण और स्त्री से खाली हाथ न मिले। उसी के अनुसार यह शत्रु का सिर उपहार लेकर मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। जब तक मैं कर्ण का वध नहीं करता तब तक तुम प्रसन्न हो लो॥३०।४३॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच इतना कहकर कर्ण की ओर चला। वह कुपित होकर कर्ण के ऊपर असंख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा। उस समय मनुष्य और राक्षस का भयानक, आश्चर्यजनक, दारुण संग्राम होने लगा॥४४।४५॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७४ ॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १७५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत्कथम् ॥ १ ॥
कीदृशं चाऽभवद्रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः ।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥ २ ॥
किम्प्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा ।
कीदृशं वर्म चैवाऽस्य शिरस्त्राणं च कीदृशम् ॥ ३ ॥
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ।
सञ्जय उवाच—लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शंकुकर्णो महाहनुः ।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः ।
नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयङ्करः ॥ ६ ॥
महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः ।
विकृतः परुषस्पर्शो विकचोद्वृद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥

एक सौ पचहत्तर अध्याय ॥ १७५ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! उस घोर आधी रात्रि के समय कर्ण के साथ राक्षस घटोत्कच का कैसा युद्ध हुआ? संग्राम में कर्ण को जीतनेवाले घटोत्कच का रूप उस युद्ध के समय कैसा था? उसका रथ कैसा था? उसकी माया कैसी थी? उसके शस्त्र कैसे थे? उसके घोड़े, रथ की ध्वजा और धनुष आदि कैसे और कितने बड़े थे? उसका कवच और शिरस्त्राण कैसा था? हे सञ्जय! तुम वर्णन करने में निपुण हो॥ मेरे प्रश्नों का उत्तर दो॥१।४॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! सुनिए। घटोत्कच के नेत्र लाल-लाल, डील-डौल लम्बा-

स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान् ।
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥ ८ ॥
उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाऽचलः ।
तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९ ॥
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत ।
कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥ १० ॥
धारयन्विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ११ ॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ।
सर्वायुधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥ १२ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम् ।
मत्तमातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः ॥ १३ ॥
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।
वहन्तो राक्षसं घोरं बालवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥
विपुलाभिः सटाभिस्ते ह्रेषमाणा मुहुर्मुहुः ।
राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥ १५ ॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह हयान्रणे ।
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १६ ॥
संसक्त इव चाऽभ्रेण यथाऽद्रिर्महता महान् ।
दिवःस्पृक् सुमहान्केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः॥ १७ ॥

चौड़ा, भुजाएँ लम्बी, सिर बड़ा, कान कील से नुकीले, पेट गड्ढा सा गहरा, रङ्ग नीला और आकार विकृत था। रोएँ खड़े हुए, मुख ताम्रवर्ण, दाढ़ी मूछ के बाल भूरे, ठोढ़ी चौड़ी और बड़ी, मुख कानों तक फटा हुआ, दाढ़ें तीक्ष्ण, चार दाँत बड़े बड़े, जीभ और होंठ लम्बे और लाल, भौंहें लम्बी, नासिका स्थूल, गर्दन लाल और शरीर पर्वत के समान था। कमर चौड़ी, नाभि गूढ़ और मस्तक पर बालों का जूड़ा था। वह महामायावी राक्षस हाथों में कटक, अङ्गद आदि आभूषण पहने हुए था। किसी बड़े पर्वत पर अग्नि के समान उसके हृदय में सुवर्ण के पदक शोभायमान थे उसके मस्तक पर सुवर्णमय, विचित्र, कामदार, तोरणसदृश किरीट मुकुट शोभा बढ़ा रहा था। बालसूर्य के समान कुण्डल, सुवर्ण की माला और महाप्रभा-सम्पन्न काँसे का कवच वह पहने हुए था। उसका रथ भी विचित्र था। उसमें सैकड़ों किङ्किणियाँ लगी थीं, जो चलने में बजती थीं। लाल रङ्ग की ध्वजा-पताका उसमें लगी हुई थी। रीछ का चमड़ा उसमें मढ़ा था। अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त, ध्वजा-माला आदि से शोभित, आठ पहियोंवाला, मेघ के समान शब्द करनेवाला वह महारथ चार सौ हाथ के घेरे का था॥४-१३॥ मस्त हाथी के समान, लाल नेत्रोंवाले, भयानक, काले रङ्ग के, बलवान्, ऊँचे, मेहनती, अनेक प्रकार के मुख और आकारवाले एक सौ गरजते हुए बहुमूल्य घोड़े घटोत्कच के उस रथ को ले चलते थे। उन घोड़ों

रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।
वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥ १८ ॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन्दिशः ॥ १९ ॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ।
तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ २० ॥
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ॥ २१ ॥
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ २२ ॥
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ।
ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥ २३ ॥
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः ।
स सन्निपातस्तुमुलस्तयोरासीद्विशाम्पते ॥ २४ ॥
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ।
तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥ २५ ॥
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥

की गरदन के बाल बड़े-बड़े थे। वे बार बार हिनहिनाते थे। उज्ज्वल कुण्डलों से शोभित मुखवाला उसका सारथी विरूपाक्ष घोड़ों की रास हाथ में लिये घोड़ों को हाँक रहा था। सूर्य जैसे अपने सारथी अरुण के साथ शोभायमान होते हैं वैसे ही, किसी पर्वत पर मेघ के समान, राक्षस घटोत्कच रथ पर बैठा शोभा को प्राप्त हो रहा था॥१३।१७॥ उसके रथ में बहुत ऊँची ध्वजा थी, जिस पर लाल मुख का मांसाहारी अत्यन्त भयानक एक गिद्ध बैठा हुआ था। हे महाराज! राक्षसराज घटोत्कच बारह हाथ ऊँचे, हाथ भर चौड़े, दृढ़ डोरीवाले और इन्द्र के वज्र के समान शब्द करनेवाले धनुष को लिये रथ के पहिये के समान मोटे बाण बरसाकर सब दिशाओं को व्याप्त कर रहा था। उस वीरों का नाश करनेवाली रात्रि के समय इस प्रकार घटोत्कच कर्ण से युद्ध करने के निमित्त कौरव-सेना में पहुँचा। उसके धनुष का दारुण शब्द सैनिकों को वज्रपात के समान भयानक सुनाई पड़ा और वे भय के मारे ऐसे काँपने लगे जैसे समुद्र में हलचल मचने से लहरें उठती हैं॥१७।२२॥ महावीर कर्ण ने उस विरूपाक्ष भीषणमूर्ति निशाचर को, आते देखकर, अहङ्कार के साथ स्फूर्ति से रोकने की चेष्टा की। हाथी जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी से भिड़ने को झपटे, अथवा साँड़ जैसे साँड़ की ओर बढ़े, वैसे ही कर्ण भी बाण बरसाते हुए घटोत्कच की ओर अग्रसर हुए। हे प्रजावत्सल! उस समय इन्द्र और शम्बरासुर के समान कर्ण और घटोत्कच घोर युद्ध करने लगे॥२२।२४॥ दोनों वीर भयानक शब्द करनेवाले श्रेष्ठ धनुष हाथ में लिये बाणों से एक दूसरे को घायल करने लगे। कान तक खींचकर छोड़े गये बाणों की चोट से दोनों के काँसे के कवच छिन्न भिन्न हो गये और दोनों के

न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २७ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ।
सञ्छिन्दन्तौ च गात्राणि सन्दधानौ च सायकान् ॥ २८ ॥
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः ।
तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥
विभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ ।
तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥ ३० ॥
नाऽकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ।
तत्प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाऽभवत् ॥ ३१ ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन्कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
तस्य सन्धतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चाऽऽसक्तमस्यतः ॥ ३२ ॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाऽभवन् ।
घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥ ३३ ॥
ततः प्रादुष्करोद्दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
कर्णेन सन्धितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥ ३४ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५ ॥
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ।
तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥ ३६ ॥

बाण दोनों के शरीरों में प्रवेश होने लगे । जैसे दो सिंह नखों से या दो हाथी दाँतों से परस्पर प्रहार करें, वैसे ही वे दोनों योद्धा रथशक्ति और बाण आदि शस्त्रों से एक दूसरे के शरीर को काटने लगे । वे एक दूसरे के अङ्गों को छिन्न भिन्न करते, धनुष पर बाण चढ़ाते और उल्कासदृश बाणों से परस्पर जलाते हुए दुर्निरीक्ष्य हो उठे । उनकी ओर नेत्र उठाकर देखना असम्भव हो गया॥२४।२९॥ उस समय बाणों से सब अङ्ग फट-फट जाने से उन दोनों के शरीर रक्त से युक्त हो गये । ऐसा जान पड़ता था, मानो गेरू के पर्वतों से झरने झर रहे हैं । महातेजस्वी दोनों वीर यत्नपूर्वक तीक्ष्ण बाणों से परस्पर व्यथित कर रहे थे, एक दूसरे के शरीर को छिन्न भिन्न कर रहे थे, तथापि तनिक भी विचलित नहीं होते थे । हे महाराज ! इस प्रकार उस रात्रि के समय दोनों वीर जीवन की आशा छोड़कर घोर युद्ध कर रहे थे । बहुत देर तक दोनों में समान रूप से युद्ध हुआ, कोई भी कम नहीं पड़ा॥ घटोत्कच तीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढ़ाकर स्फूर्ति के साथ निरन्तर छोड़ रहा था। उसके धनुष का शब्द सुनकर अपने और पराये पक्ष के सैनिक समान रूप से भयभीत हो गये॥२९।३३॥ हे राजेन्द्र ! जब अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ कर्ण किसी प्रकार उस राक्षस को नहीं दबा सके तब उन्होंने दिव्य अस्त्र प्रकट किया । घटोत्कच ने जब कर्ण को दिव्य अस्त्र का प्रयोग करते

भूतान्तकमिवाऽऽयान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ।
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ।
ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत्समन्ततः ॥ ३८ ॥
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः ।
आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥ ३९ ॥
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ।
तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४० ॥
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ।
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ।
मायायां तु प्रहीणायाममर्षाद्घटोत्कचः ॥ ४२ ॥
विससर्ज शरान्घोरान्सूतपुत्रं त आविशन् ।
ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ।
सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥

देखा। तब उसने भी राक्षसी माया प्रकट की। शूल, मुद्गर, पर्वत और वृक्ष हाथों में लिये घोररूप राक्षसों की भारी सेना घटोत्कच के समीप देख पड़ी। भारी धनुष हाथ में लिये, उग्र कालदण्डधारी मृत्यु के समान, प्राणियों का संहार करने वाले आते हुए राक्षस को देख कर सब लोग भयभीत हो गये॥३३।३७॥घटोत्कच ने घोर सिंहनाद किया, जिससे भय के मारे हाथियों ने मल मूत्र कर दिया और सब मनुष्य व्यथित हो उठे। इसके पश्चात् चारों ओर से अत्यन्त उग्र शिलाओं की वर्षा होने लगी॥आधी रात्रि के समय अधिक बलवान् हो जाने से राक्षसों की सेना लोहे के चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी, पट्टिश आदि बहुत से अस्त्रों की वर्षा करने लगी॥३७।४०॥हे महाराज! आपके पुत्र और योद्धा लोग वह भयानक संग्राम देखकर अत्यन्त व्यथित होकर चारों ओर भागने लगे।अपने बल का अभिमान रखनेवाले अकेले प्रतापी कर्ण तब मानो तनिक भी विचलित न हुए। वे अपने बाणों से घटोत्कच की माया को नष्ट करने लगे। यह देखकर घटोत्कच क्रोध के मारे अधीर हो उठा। वह कर्ण के नाश के निमित्त असंख्य बाण छोड़ने लगा। राक्षस के चलाये हुए बाण कर्ण के शरीर को भेदकर रक्त में भीगकर कुपित सर्प के समान पृथ्वी में प्रवेश होने लगे॥४०।४४॥तब महाप्रतापी कर्ण ने क्रुद्ध होकर घटोत्कच से अधिक बल विक्रम प्रकट करते हुए उसको तीक्ष्ण दस

चिक्षेपाऽऽधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ।
प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥
अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।
घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५० ॥
क्षिप्ता भ्राम्य शरैः साऽपि कर्णेनाऽभ्याहताऽपतत् ।
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥ ५२ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांऽशुभिः ।
तस्य सर्वान्हयान्हत्वा सञ्छिद्य शतधा रथम् ॥ ५३ ॥
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
न चाऽस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ५४ ॥
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललतो यथा ।
न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ।
स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥ ५६ ॥

बाण मारे। कर्ण के बाण मर्मस्थल में लगने से घटोत्कच व्यथित हो उठा। उसने कर्ण को मार डालने के निमित्त सहस्र आरों से युक्त, सूर्य सदृश प्रभासम्पन्न, मणिरत्न-विभूषित, छुरधार एक दिव्य चक्र लेकर फेंका। महावीर कर्ण ने राक्षस के फेंके उस चक्र के बाणों से टुकड़े टुकड़े कर डाले। तब वह अभागे मनुष्य के मनोरथ के समान व्यर्थ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥४४-४८॥ यह देख क्रोधान्ध होकर, राहु जैसे सूर्य को ढक लेते हैं, घटोत्कच कर्ण को बाणों से ढकने लगा। रुद्र, इन्द्र और उपेन्द्र के समान पराक्रमी कर्ण ने, बिना किसी प्रकार की व्याकुलता के, शीघ्र ही अपने बाणों से घटोत्कच के रथ को अदृश्य सा कर दिया। तब घटोत्कच ने कर्ण को ताककर एक सुवर्णपट्टभूषित लोहे की भारी गदा घुमाकर फेंकी। महाबली कर्ण ने उसे अपने असंख्य बाणों से रोककर घुमाकर पृथ्वी पर गिरा दिया। तब महाकाय काला घटोत्कच उछलकर अन्तरिक्ष में पहुंच गया और काली घनघटा की भांति गरजकर आकाश से वृक्षों की वर्षा करने लगा॥४८-५२॥ सूर्य की किरणें जैसे मेघों को बेधती हैं वैसे ही कर्ण ने आकाश में स्थित मायानिपुण घटोत्कच को बाणों से घायल किया। इसके पश्चात् उसके रथ के घोड़ों को मार डाला, रथ के सैकड़ों टुकड़े कर डाले और जलधारा बरसानेवाले मेघ के समान वे उस पर बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने इतने बाण मारे कि घटोत्कच

मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ।
सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च ॥ ५७ ॥
अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चाऽपतन् ।
भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ॥ ५८ ॥
विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत ।
स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥
अग्रसत्सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ।
पुनश्चापि महाकायः सञ्छिन्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत ।
तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणदन्कुरुपुङ्गवाः ॥ ६१ ॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।
पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ६२ ॥
व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।
अंगुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥ ६३ ॥
सागरोर्मिरिवोद्भूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ।
वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ।
सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥

के शरीर में दो अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं रहा, जिसमें बाण का घाव न हो। और घटोत्कच काँटों से ढकी शल्लकी की भाँति जान पड़ने लगा। हे महाराज! कर्ण के बाणों से वह राक्षस इस प्रकार ढक गया कि उसका शरीर, रथ या ध्वजा कुछ भी नहीं देख पड़ता था॥५२। ५६॥तब माया में निपुण घटोत्कच ने अपने अस्त्र के प्रभाव से कर्ण के दिव्य अस्त्र को शान्त कर दिया। फिर वह कर्ण के साथ मायायुद्ध करने लगा। आकाश से असंख्य बाण कर्ण और उनकी सेना पर गिरने लगे; परन्तु यह प्रतीत नहीं पड़ता था कि कौन किधर से उन बाणों को बरसा रहा है। राक्षस घटोत्कच ने माया के बल से अपना आकार और भी विकृत और भयङ्कर बना लिया। वह कौरव सेना को पीड़ित और भय-विह्वल करता हुआ विचरने लगा। उसने पहले विकराल मुख फैलाकर कर्ण के सब दिव्य अस्त्रों को ग्रस लिया॥५९।६०॥उसके पश्चात् ही कौरव सेना ने देखा कि घटोत्कच मृत्यु को प्राप्त होकर गिर पड़ा है, उसका शरीर सैकड़ों जगह से छिन्न भिन्न हो गया है और वह न हिलता है, न डुलता है। यह देख उसे मृत्यु को प्राप्त हुआ जानकर कौरव लोग घोर सिंहनाद करने लगे। [किन्तु वास्तव में राक्षस मरा नहीं था, यह सब तो उसकी माया ही थी।] महावीर घटोत्कच शीघ्र ही दिव्य शरीर धारण करके प्रकट हुआ और चारों ओर युद्धभूमि में विचरने लगा। वह कभी मैनाक पर्वत की भाँति ऊँचा होकर सैकड़ों सिर और सैकड़ों पेटवाला देख पड़ता था। कभी अंगुष्ठ भर का छोटा रूप रख लेता था। कभी उमड़े हुए समुद्र की लहरों के समान टेढ़ा होकर ऊपर आकाश में देख पड़ता था और कभी पृथ्वी को फाड़कर जल में समा जाता था। क्षण भर में दूसरी जगह उठ

क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाऽभ्येत्य दंशितः ।
गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत्कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते ।
तिष्ठेदानीं क मे जीवन्सूतपुत्र गमिष्यसि ॥ ६७ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ॥ ६८ ॥
उत्पपाताऽन्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ।
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥
रथाक्षमात्रैरिपुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७० ॥
शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात्प्राप्तामशातयत् ।
दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जाऽन्तर्हितः पुनः ।
सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ॥ ७२ ॥
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ।
तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥ ७३ ॥
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे ।
स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥
ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ।
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥ ७५ ॥

से ऊपर निकल रहा था॥६०।६४॥ हे महाराज! इस प्रकार अनेक प्रकार की माया दिखाकर घटोत्कच सुन्दर रथ पर बैठा हुआ दीख पड़ा। उसके कानों में सुवर्ण के कुण्डल और शरीर में सुदृढ़ कवच शोभायमान हो रहा था। मायाबल से आकाश, पृथ्वी और सब दिशाओं में फिरने के उपरान्त सुवर्णभूषित रथ पर बैठा हुआ घटोत्कच कर्ण के समीप पहुँचा। उसने निर्भय भाव से कहा — हे कर्ण! ठहर जाओ, अब तुम मेरे हाथ से बचकर कहाँ जाओगे? मैं अभी रणभूमि में तुम्हारी युद्ध की श्रद्धा दूर किये देता हूँ॥६५।६८॥ हे राजेन्द्र! उस पर क्रमी घोर रूप के ध... से [illegible] नेत्र करके इस प्रकार कहता हुआ आकाश में चला गया और जोर से अट्टहास करने लगा। सिंह जैसे हाथी पर चोट करे, वैसे ही वह कर्ण को बाण मारने लगा। घटोत्कच जब कर्ण के ऊपर जलधारा की भाँति बड़े बड़े बाण बरसाने लगा तब महावीर कर्ण ने यह स्फूर्ति दिखलाई कि वे बाण समीप भी न आने पाते थे और कर्ण उनको दूर ही कर डालते थे॥६९।७२॥ महाकर्मा घटोत्कच अपनी माया को निष्फल होते देखकर फिर मायाबल से शूल, प्रास, खड्ग, मुद्गर आदि शस्त्र बरसानेवाला, अत्यन्त ऊँचे शिखरों से युक्त और वृक्षों की पंक्तियों से शोभित ऊँचा पर्वत बन गया। वीर कर्ण उस अञ्जनराशितुल्य उस शस्त्र बरसानेवाले पर्वत को देखकर भी

अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् ।
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ७६ ॥
व्यधमत्कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ॥ ७७ ॥
जघानाऽस्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ।
ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥ ७८ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम् ।
स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ॥ ७९ ॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ।
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ॥ ८० ॥
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ८२ ॥
घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
ननाद भैरवं नादं भीषयन्सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥
भूयश्चाऽञ्जलिकेनाऽथ समार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाऽऽशु घटोत्कचः ॥ ८४ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
विचकर्ष बलात्कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥

विचलित नहीं हुए। उन्होंने दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके क्षण भर में उस पर्वत का नष्ट कर दिया। तब राक्षस घटोत्कच आकाश में चला गया। उसने इन्द्रधनुष से शोभित नीले मेघ का रूप रखकर कर्ण के ऊपर पत्थरों की वर्षा की॥७२।७६॥तब अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ कर्ण ने वायव्य अस्त्र का प्रयोग करके उस काले मेघ का रूप रखनेवाले राक्षस को छिन्न भिन्न कर दिया। कर्ण ने बाणों से दसों दिशाओं को व्याप्त करके राक्षस के सब अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट कर दिया। महाबली घटोत्कच हँसकर फिर महारथी कर्ण के आगे माया फैलाने लगा। कर्ण ने देखा कि रथ पर महारथी घटोत्कच अविचलित भाव से बैठा हुआ उनकी ओर आ रहा है। उसके साथ हाथी, घोड़े, रथ आदि पर सवार असंख्य क्रूर राक्षस हैं। सिंह शार्दूल के समान, मस्त हाथी के समान पराक्रमी वे राक्षस विविध कवच और अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किये हैं। देवता जैसे इन्द्र के आसपास हों, वैसे ही वे सब राक्षस घटोत्कच को चारों ओर से घेरे हुए थे॥७६।८२॥वीर कर्ण फिर धैर्य के साथ उस राक्षस से संग्राम करने लगे। घटोत्कच ने कर्ण को पाँच बाण मारे और सब राजाओं को भयाकुल करनेवाला भयानक सिंहनाद किया। उसने फिर स्फूर्ति के साथ कर्ण के बहुत से बाणों को छिन्न भिन्न करके एक उग्र अञ्जलिक बाण से उनके हाथ का धनुष काट डाला। कर्ण ने दूसरा सुदृढ धनुष, जो कि इन्द्र धनुष के समान

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान्खेचरान्राक्षसान्प्रति ॥ ८६ ॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवाऽर्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८७ ॥
विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतगजान्विभुः ।
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ८८ ॥
स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥ ९० ॥
ऋते घटोत्कचाद्राजन्राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात्क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन्सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ ९२ ॥
तलं तलेन संहत्य सन्दश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ९३ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत्क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥ ९४ ॥
स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥ ९५ ॥

ऊँचा और बड़ा था, लेकर बलपूर्वक खींचा। हे महाराज! महारथी कर्ण उसके पश्चात् आकाशचारी राक्षसों के ऊपर सुवर्णपुङ्ख और शत्रुओं का संहार करनेवाले बाण बरसाने लगा॥८२।८६॥ सिंह जैसे हाथियों के झुण्ड को पीड़ित करते हैं वैसे ही वीर कर्ण ने उन चौड़ी छाती-वाले राक्षसों को पीड़ित कर दिया। अग्निदेव जैसे प्रलयकाल में सब प्राणियों को भस्म करते हैं वैसे ही कर्ण ने घोड़े, हाथी और सारथी आदि सहित उन राक्षसों को क्षण भर में बाणों से नष्ट कर दिया। पूर्व-समय में भगवान् रुद्र जैसे त्रिपुरासुर को भस्म करके शोभा को प्राप्त हुए थे वैसे ही कर्ण भी राक्षसी सेना का संहार करके शोभायमान हुए॥८७।८९॥ पाण्डव पक्ष के सहस्रों राजाओं में भीम-पराक्रमी कुपित अन्तक के समान घटोत्कच के अतिरिक्त और कोई कर्ण की ओर नेत्र उठाकर के देख भी नहीं सकता था। जैसे दो बड़ी उल्काओं से तेल की बूँदें गिरें वैसे ही क्रुद्ध घटोत्कच के नेत्रों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह ताल ठोकता और होठ चबाता हुआ, हाथियों के समान ऊँचे, पिशाच के समान मुखवाले गधे जिसमें जुते हुए थे ऐसे माया-रचित रथ पर सवार होकर सारथि से कहने लगा— हे सारथी! तू शीघ्र मुझे कर्ण के रथ के समीप ले चल ॥९०।९४॥ हे राजेन्द्र! घटोत्कच इस प्रकार भयानक रथ पर बैठकर फिर कर्ण के साथ द्वन्द्व युद्ध करने लगा। उसने कर्ण के ऊपर रुद्रनिर्मित, आठ चक्रों से युक्त,

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९६ ॥
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् ।
आयसीं निशितां शूलैः कदम्बामिव केसरैः ॥ ९७ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद्धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥ ९८ ॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥ ९९ ॥
कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥ १०० ॥
एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान्सूतपुत्रः परन्तप ॥ १०१ ॥
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ १०२ ॥
स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ १०३ ॥
एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥ १०४ ॥
निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असम्भ्रान्तस्तदा कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥ १०५ ॥

एक भयानक वज्र चलाया। यह वज्र लोहे का बना था। यह आठ कोस ऊँचा और चार कोस लम्बा था। इस पर शूल ही शूल लगे हुए थे। यह देख कर्ण ने रथ पर धनुष रखकर स्फूर्ति के साथ उछलकर, समीप आने पर, उस वज्र को हाथ में पकड़ लिया। फिर उन्होंने वह वज्र उस राक्षस के ही ऊपर चला दिया। घटोत्कच शीघ्र रथ से पृथ्वी पर कूद पड़ा॥९५।९८॥ उस तेजोमय वज्र ने घटोत्कच के घोड़े, सारथी, ध्वजा आदि सामग्री सहित रथ को भस्म कर दिया॥ यह वज्र पृथ्वीतल को चीर करके पाताल में चला गया। यह देखकर देवगण बहुत ही विस्मित हुए। महावीर कर्ण ने उस देव निर्मित वज्र को हाथ में पकड़ लिया, इसके लिए सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। हे राजेन्द्र! महावीर कर्ण यह दुष्कर कर्म करके फिर अपने रथ पर सवार हो बाणों की वर्षा करने लगे॥९९।१०१॥ उस भयानक समर में देवतुल्य कर्ण ने जैसे अद्भुत कर्म किये वैसे कर्म और कोई मनुष्य नहीं कर सकता॥ तब राक्षसराज घटोत्कच कर्ण के बाणों से व्याप्त होकर जलधाराओं से आवृत पर्वत के समान प्रतीत होने लगा। उसके पश्चात् वह फिर अन्तर्द्धान हो गया और माया तथा स्फूर्ति के प्रभाव से कर्ण के सब दिव्य अस्त्रों को व्यर्थ करने लगा ॥१०२।१०४॥ कर्ण फिर उससे युद्ध करने लगे। महाराज! महाबली घटोत्कच क्रुद्ध होकर, अनेक

ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान् ॥ १०६ ॥
ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाऽप्ययोमुखाः ॥ १०७ ॥
स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः ।
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ १०८ ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च ।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥ १०९ ॥
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ११० ॥
उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ॥ १११ ॥
प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनाऽस्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ११२ ॥
ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥ ११३ ॥
स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥ ११४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

रूप रखकर, महारथी योद्धाओं को भयाकुल करने लगा। चारों ओर से सिंह, व्याघ्र, चीते, अग्नि उगलते हुए विषैले नाग और लोहमुख पक्षी समरभूमि में आने लगे॥१०५।१०७॥ हिमालय के समान ऊँचा निशाचर कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से व्याप्त और व्याकुल होकर उसी स्थान अन्तर्द्धान हो गया। अब असंख्य राक्षस, पिशाच, कुत्ते और विकृत मुखवाले भेड़िये कर्ण को खा जाने के लिए दौड़ते आते दिखाई पड़े। भयानक शब्द से कर्ण को डराने लगे॥१०८। १११॥ कर्ण ने रक्त से नहाये हुए विविध शस्त्रों के द्वारा उनमें से प्रत्येक को घायल किया। फिर दिव्य अस्त्र से राक्षसी माया का नाश करके सन्नतपर्व बाणों से घटोत्कच के घोड़ों को चोट पहुँचाई। उसके घोड़े कर्ण के बाणों से घायल और भग्नपृष्ठ हो उसके सम्मुख ही पृथ्वी पर गिर पड़े। हे महाराज! इस प्रकार अपनी माया को निष्फल होते देखकर "देख, मैं अभी तुझे मार डालता हूँ" यों कर्ण से कहकर राक्षसराज अन्तर्द्धान हो गया॥११३।११४॥

द्रोणपर्व का एक सौ पचहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७५ ॥

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

सञ्जय उवाच —तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १ ॥

महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २ ॥
नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥ ३ ॥
किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तदा ।
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥
विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।
स मत्त इव मातङ्ग· सक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ।
विदित ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ।
परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥ ७ ॥
किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ।
तमहं सगणं राजन्सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥
हैडिम्बि च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ।
अद्य कुन्तीसुतान्सर्वान्वासुदेवपुरोगमान् ॥ ९ ॥
हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।
निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।
प्रतिगृह्याऽब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभि· परिवारित· ॥ ११ ॥

एक सो छिहत्तर अध्याय ॥ १७६ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे महाराज! जब कर्ण और घटोत्कच का घोर युद्ध हो ही रहा था कि राक्षसेन्द्र अलायुध पाण्डवों के साथ अपने पुराने वैर का स्मरण करके, विकट रूपवाले असंख्य राक्षसों का साथ ले कर, राजा दुर्योधन के समीप आया। पहले महावीर भीमसेन ने उसके सजातीय, महापराक्रमी, ब्राह्मण भक्षी महातेजस्वी बकासुर, किर्मीर और उसके परम मित्र हिडिम्ब को मार डाला था॥२।४॥ भीमसेन का यह शत्रुता का आचरण अलायुध के अन्तःकरण में अब तक खटका करता था। इस समय कौरवों पाण्डवों के रात्रियुद्ध का समाचार प्राप्त होने पर, भीमसेन को मारने की अभिलाषा से, युद्ध करने के निमित्त वह रणभूमि में आया। मत्त हाथी और कुपित सर्प की भाँति श्वास ले रहा वह असुर राजा दुर्योधन के समीप आकर कहने लगा — हे महाराज! आप जानते हैं कि भीमसेन ने मेरे परम मित्र हिडिम्ब, बक और किर्मीर तथा अन्यान्य राक्षसों को मारकर हिडिम्बा के साथ बलात्कार किया था॥४।८॥ अतएव आज मैं, कृष्ण जिनके सहायक हैं उन, पाण्डवों को और अपने सजातीय हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच को हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेना सहित मारकर खा जाऊँगा। इसी के लिए मैं यहाँ आया हूँ। अब आप अपनी

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् ।
नहि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥
एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अभ्ययात्त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥
दीप्यमानेन वपुषा रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥
तस्याऽप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥
तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः ।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६ ॥
तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥
तस्याऽप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १८ ॥
तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥ १९ ॥
दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २० ॥
रथेन तेनाऽनलवर्चसा तदा विद्रावयन्पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो विद्युन्माली मेघ इवाऽन्तरिक्षे ॥ २१ ॥

सेना को युद्ध करने से रोक दीजिए। मैं अपनी सेना को साथ लेकर पाण्डवों से युद्ध करूँगा॥८।१०॥ हे महाराज! भाइयों सहित राजा दुर्योधन, अलायुध के वाक्य सुनकर, बहुत सन्तुष्ट हुए और कहने लगे— हे राक्षसश्रेष्ठ! मेरे सैनिक लोग उत्साह के साथ शत्रुओं से युद्ध करते हैं। और वैर का बदला चुकाने को उत्सुक हो रहे हैं, कभी स्थिर नहीं होंगे। इसलिए हम लोग तुमको और तुम्हारी सेना को आगे करके शत्रुओं से युद्ध करेंगे॥११।१२॥ हे राजेन्द्र! राक्षसेन्द्र अलायुध दुर्योधन की बात मानकर, पुरुषाद राक्षसों के साथ सूर्य के समान प्रकाशमान रथ पर बैठकर, अपनी राक्षसी सेना साथ ले बड़े वेग से घटोत्कच की ओर चला। उसका रथ भी घटोत्कच के रथ के समान ही चार सौ हाथ के घेरे का, बहुत से तोरणों से युक्त, रीछ के चमड़े से मढ़ा हुआ और चित्रित था। उस रथ में रक्त मांस खानेवाले, बड़े बड़े हाथी से ऊँचे, कर्कश शब्द करनेवाले, वेग से जानेवाले सौ घोड़े लगे हुए थे। उसके रथ का शब्द भी मेघ के गर्जने के समान था। उसका भी धनुष सुवर्ण-मण्डित, सुदृढ़ प्रत्यञ्चा से शोभित और बहुत बड़ा था॥१३।१७॥ उसके भी बाण रथ के धुरे के समान लम्बे और बड़े, सुवर्णपुंख-युक्त, सिल्ली पर घिसकर तेज किये गये और अनेक थे। वह सब प्रकार सब बातों में वीर घटोत्कच के तुल्य था। उसके रथ की

ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्र महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।

हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्समन्ततः पाण्डवयोधवीराः ॥ २२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

ध्वजा भी सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान और गीदड़ आदि मांसाहारी जीवों से सुरक्षित थी। उसका रूप घटोत्कच के समान ही था। राक्षसराज अलायुध उज्ज्वल अंगद, मुकुट, माला, पगड़ी, खड्ग, ढाल, तरकस गदा, भुशुण्डी, मुशल, हल, धनुष आदि धारण किये हुए था। वह हाथी के चमड़े के समान स्थूल कवच पहने हुए था। अग्नि के तुल्य तेजोमय रथ पर बैठकर पाण्डवों की सेना को भगाता हुआ वह राक्षस युद्धभूमि में उसी प्रकार विचरने लगा, जिस प्रकार आकाश में बिजली सहित मेघ शोभायमान हो। पाण्डव पक्ष के महाबली श्रेष्ठ योद्धा राजा लोग भी कवच पहने हुए उत्साहपूर्वक चारों ओर से उस राक्षस को घेरकर उससे युद्ध करने लगे॥१८।२२॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ छिहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७६ ॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

सञ्जय उवाच तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।

हर्षमाहारयाञ्चक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥

तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।

अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवाऽर्णवम् ॥ २ ॥

पुनर्जातमिवाऽऽत्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ।

अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाऽभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये ।

कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ ४ ॥

उपप्रेक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः ।

तथैव तावका राजन्वीक्षमाणास्ततस्ततः ॥ ५ ॥

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।

तत्कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।

तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ७ ॥

एक सौ सतत्तर अध्याय ॥ १७७ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे राजेन्द्र ! जैसे समुद्र के पार होने की इच्छावाले पुरुष नौका रहित होकर फिर नौका को पाकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही सब कौरव और दुर्योधन आदि आपके पुत्र उस भीमकर्मा राक्षस को आया हुआ देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। कौरव पक्ष के राजाओं ने समझा कि उनका फिर से नया जन्म हुआ। वे लोग राक्षस अलायुध का स्वागत करने लगे॥१।३॥ हे महाराज! उस समय रात्रि में कर्ण के साथ घटोत्कच का अत्यन्त भयानक युद्ध आरम्भ होने पर सब पाञ्चाल और अन्य राजा लोग विस्मय के साथ दोनों का पराक्रम देखने लगे। आपके पक्ष के योद्धा भी भ्रान्त में हो गये। द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥
पश्यैतान्पार्थिवाञ्शूरान्निहतान्भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान्पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥
तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवाऽनुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥
पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥ १२ ॥
एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥
ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥
तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥ १५ ॥
रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥ १६ ॥
तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ १७ ॥

आदि वीर योद्धा रणभूमि में घटोत्कच के घोर अद्भुत कर्म तथा मायाबल को देख चिल्लाकर कहने लगे कि "अब कौरव दल नष्ट होने से नहीं बच सकता"॥४। ६॥आपकी सब सेना कर्ण के जीवन से निराश होकर बहुत ही भय विह्वल और उद्विग्न होकर हाहाकार करने लगी। दुर्योधन ने कर्ण को अत्यन्त पीड़ित देख अलायुध से कहा — हे राक्षसेन्द्र ! कर्ण घटोत्कच से युद्ध करते हुए अपने बल वीर्य के अनुरूप कार्य कर रहे हैं। तथापि मायावी घटोत्कच महावीर राजाओं को उसी प्रकार विविध अस्त्रों से पीड़ित कर रहा है जिस प्रकार कोई हाथी बड़े बड़े वृक्षों को पीड़ित करे और तोड़े॥७।१०॥इसलिए इस समय तुम पराक्रम प्रकट करके घटोत्कच को शीघ्र मारो। ऐसा न हो कि पापी घटोत्कच मायाबल का आश्रय लेकर कर्ण को मार डाले॥११।१२॥पराक्रमी अलायुध, दुर्योधन के वचन सुनकर, घटोत्कच की ओर वेग से चला। तब घटोत्कच कर्ण को छोड़कर शत्रु अलायुध को बाण मारने लगा। हे महाराज ! वन में हथिनी के लिए जैसे दो मस्त हाथी लड़ें, वैसे ही दोनों राक्षस क्रुद्ध होकर घोर युद्ध करने लगे॥१३।१५॥महारथी कर्ण भी इस अवसर में राक्षस से छुटकारा पाकर, सूर्य सदृश प्रकाशमान रथ दौड़ाकर, भीमसेन के सम्मुख पहुँचे। भीमसेन ने आते हुए कर्ण का कुछ ख्याल न करके अलायुध के रथ की ओर अपना रथ बढ़ाया॥उन्होंने देखा कि

रथेनाऽऽदित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ्छरौघान्प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदाऽलायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ १९ ॥
तं भीमः सहसाऽभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो ।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥
तथैवाऽलायुधो राजञ्छिलाधौतैरजिह्मगैः ।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिन्दम ॥ २१ ॥
तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् ।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ २२ ॥
स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः ।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥
ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः ।
विनेदुस्तुमुलान्नादान्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ २४ ॥
तांस्त्रास्यमानान्भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् ।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥
तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः ।
अलायुधस्तु तानस्तान्भीमेन विशिखान्रणे ॥ २६ ॥
चिच्छेद कांश्चित्समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत् ।
स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥

सिंह जैसे किसी साँड़ पर आक्रमण करे वैसे ही अलायुध घटोत्कच पर विकट आक्रमण कर रहा है, इसलिए वे पुत्र की सहायता करने को अलायुध के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥१६।१८॥उनने भीमसेन को आते देखकर घटोत्कच को छोड़कर उन्हें युद्ध के निमित्त ललकारा। राक्षसों का नाश करनेवाले भीमसेन सहसा अलायुध के सम्मुख जाकर उस पर और उसके साथियों पर विकट बाणों की वर्षा करने लगे। अलायुध भी भीमसेन के ऊपर, सिल्ली पर रगड़कर तीक्ष्ण किये गये, सीधे जानेवाले बाणों की वर्षा करने लगा। उसके साथ के भयानक राक्षस भी अनेक प्रकार के शस्त्र लेकर भीमसेन की ओर दौड़े। वे आपके पुत्रों की विजय चाहते थे॥१९।२२॥इस प्रकार पराक्रमी भीमसेन पर बहुत से राक्षस प्रहार करने लगे, किन्तु इसकी चिन्ता न करके भीमसेन ने उनमें से प्रत्येक को पाँच पाँच तीक्ष्ण बाण मारे। भीमसेन के बाणों से मारे जा रहे वे क्रूरमति राक्षस अनुचित रीति से चिल्लाते हुए चारों ओर भागने लगे॥२३।२४॥राक्षसों को उद्विग्न देखकर महाबली अलायुध वेग से भीमसेन की ओर दौड़ा और उन पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा। भीमसेन भी उसे तीक्ष्ण धारवाले बाणों से पीड़ित करने लगे। अलायुध ने भीमसेन के कुछ बाणों को स्फूर्ति से काट डाला और कुछ को समीप आने पर हाथ से पकड़कर व्यर्थ कर दिया। पराक्रमी भीमसेन ने राक्षस

गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा ।
तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥ २८ ॥
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ।
स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥
तानप्यस्याऽकरोन्मोघान्राक्षसो निशितैः शरैः ।
ते चाऽपि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः ॥ ३० ॥
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान् ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः ।
तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥ ३२ ॥
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशङ्गतम् ॥ ३३ ॥
पदमस्याऽनुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३४ ॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।
नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
इतरान्राक्षसान्घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव ।
त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥ ३६ ॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ।
एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥

को ताककर वज्रपात के समान एक भयानक गदा उसके ऊपर फेंका॥२५।२८॥उस ज्वालापूर्ण गदा को आते देखकर राक्षस ने अपनी गदा से उस पर ऐसी चोट मारी कि वह लौटकर भीमसेन की ओर चली गई। भीमसेन ने राक्षस के ऊपर असंख्य बाण छोड़े, परन्तु उसने तीक्ष्ण बाणों से उन बाणों को भी व्यर्थ कर दिया॥२८।३०॥रात्रि के समय भयानक रूपवाले सब राक्षस भी अलायुध की आज्ञासे शत्रुपक्षके रथों,हाथियों आदि को मारने लगे। राक्षसों के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित पाञ्चाल,सृञ्जयगण और उनके हाथी घोड़े आदि वाहन बहुत ही व्याकुल हो उठे। हे महाराज! इस प्रकार युद्ध की भीषणता देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! वह देखो, महाबाहु भीमसेन अलायुध के वश में हो गये हैं। इस समय तुम कुछ विचार न करके भीमसेन की ही सहायता करो॥३०।३४॥धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,युधामन्यु,उत्तमौजा और द्रौपदी के पाँचों पुत्र मिलकर महारथी कर्ण से युद्ध करने को जायँ। बल वीर्यशाली नकुल,सहदेव और पराक्रमी सात्यकि तुम्हारी आज्ञा से अन्य राक्षसों को मारें। हे महाबाहो! द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित इस शत्रुसेना का संहार तुम करो, क्योंकि हम लोगों के लिए यह बहुत ही भयङ्कर समय उपस्थित है। श्रीकृष्ण के यों कहने पर सब महारथी, उनकी आज्ञा के अनुसार, कर्ण और अलायुध आदि राक्षसों से युद्ध करने के निमित्त चल दिये

जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान्रणे ।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३८ ॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
हयांश्चाऽस्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ॥ ३९ ॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः ।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥ ४० ॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।
ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥ ४१ ॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ।
तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥ ४२ ॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ।
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नरराक्षसोः ॥ ४३ ॥
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् ।
गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥ ४४ ॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥ ४५ ॥
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ।
तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥ ४६ ॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।
तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥ ४७ ॥
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

॥३४।३८॥इधर प्रबल प्रतापी अलायुध ने विषैले सर्प-सदृश बाणों से भीमसेन का धनुष काट डाला और तीक्ष्ण बाणों से उनके सारथी तथा रथ के घोड़ों को नष्ट कर डाला । घोड़ों और सारथी से हीन रथ पर से भीमसेन उतर पड़े । उन्होंने बड़े जोर से गरजकर एक भयानक गदा चलाई । राक्षस ने अपनी गदा के प्रहार से भीमसेन की चलाई हुई, भयानक शब्द करने-वाली, उस भारी गदा को चूर चूर कर दिया।वह जोर से सिंहनाद करने लगा॥३८।४२॥अलायुध का वह भयानक कार्य देखकर भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने हर्षपूर्वक दूसरी गदा हाथ में ली । उस समय वे,मनुष्य और राक्षस,दोनों परस्पर भिड़कर दारुण गदायुद्ध करने लगे। गदाओं की चोट के शब्द से पृथ्वी काँपने लगी । क्षण भर के पश्चात् दोनों ही गदाएँ छोड़कर परस्पर भिड़कर वज्र तुल्य घूँसों से युद्ध करने लगे । क्रोध में भरे हुए दोनों बली वीर रथ के पहिये, युग, जुआ, अधिष्ठान, उपस्कर आदि जो कुछ सामग्री समीप पड़ी पाते थे उसी से एक दूसरे पर प्रहार करते थे॥४२।४५॥दोनों के शरीर से रक्त बह रहा था । मस्त महागजराज के समान दोनों वीर

परस्पर भिड़कर एक दूसरे को खींचने लगे। पाण्डवों के हितकारी श्रीकृष्ण ने दोनों की दशा देखकर भीमसेन की रक्षा के निमित्त घटोत्कच को भेजा॥४६।४८॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सो सतहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७७ ॥

अथ अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १७८ ॥

सञ्जय उवाच—सन्दृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद्राजन्घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥
पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥
स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात्कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥
स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४ ॥
तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बेश्चाऽपि भारत ॥ ५ ॥
अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान्भीमदर्शनान् ।
वेगेनाऽऽपततः शूरान्प्रगृहीतशरासनान् ॥ ६ ॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥
सर्वांश्च समरे राजन्किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान् ॥ ८ ॥
कर्णश्च समरे राजन्व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन्पञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥

एक सौ अठहत्तर अध्याय ॥ १७८ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! महात्मा श्रीकृष्ण ने भीमसेन को राक्षस से दबते देखकर घटोत्कच से कहा—हे महाबाहो ! देखो, राक्षस अलायुध तुम्हारे और सब सैनिकों के सम्मुख भीमसेन को दबाना चाहता है। इसलिए तुम शीघ्र कर्ण को छोड़कर अलायुध के समीप जाओ। पहले उसे मारकर फिर कर्ण को मारना॥१।३॥तब महावीर घटोत्कच कर्ण को छोड़कर बकासुर के भाई राक्षसराज अलायुध के साथ संग्राम करने लगा। रात्रि के समय घटोत्कच और अलायुध का बड़ा घमासान युद्ध होने लगा। धनुष हाथ में लिये भीमदर्शन अलायुध के साथी योद्धा राक्षसों को, वेग से आते देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध महारथी सात्यकि, नकुल और सहदेव तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न करने लगे॥४।७॥उधर क्षत्रियश्रेष्ठ वीर अर्जुन चारों ओर बाण बरसाकर सब श्रेष्ठ राजाओं को युद्ध में विमुख करने लगे। इधर वीर कर्ण भी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि पाञ्चालों के महारथियों को बाणप्रहार से भगाने लगे। धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों

तान्वध्यमानान्दृष्ट्वाऽथ भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान्प्रकिरन्रणे ॥ १० ॥
ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान्यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥
ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु ।
अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम् ।
परिघेणाऽतिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२ ॥
स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः ।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १३ ॥
ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम् ।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥ १४ ॥
सा हयांश्च रथं चाऽस्य सारथिं च महास्वना ।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥
स भग्नहयचक्राक्षाद्विशीर्णध्वजकूबरात् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १६ ॥
स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्विभ्राजितं चाऽऽसीत्तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥ १७ ॥
ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः ।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्राऽऽसीद्धि महाहवे ॥ १८ ॥
तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसस्य च ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययाऽवधीत् ॥ १९ ॥

को मार जाते देखकर पराक्रमी भीमसेन बाण बरसाते हुए शीघ्रता के साथ कर्ण के समीप पहुँचे और बाण मारने लगे॥८।१०॥इसी दौरान में राक्षसों को मार कर नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी कर्ण के समीप पहुँच गये। वे सब मिलकर कर्ण से युद्ध करने लगे। उधर सब पाञ्चाल योद्धा मिलकर द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करने लगे। हे राजेन्द्र ! राक्षसश्रेष्ठ अलायुध ने क्रुद्ध होकर शत्रुनाशन घटोत्कच के मस्तक पर एक बहुत बड़ा लोहे का परिघ (बेलन) मारा। उस प्रहार से महाबली घटोत्कच अचेत से हो गए, पर उसने क्षण भर निश्चेष्ट रहकर अपने को सँभाल लिया॥११।१३॥उसके पश्चात् घटोत्कच ने प्रज्वलित अग्नि के समान शतघण्टायुक्त सुवर्णभूषित गदा अलायुध के ऊपर फेंकी। राक्षस के हाथ से वेग से छूटी हुई उस गदा ने अलायुध के रथ, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर डाला। घोर शब्द से युक्त गदा के प्रहार से घोड़े, पहिये, जुआ, ध्वजा, कूबर आदि के टूटने पर राक्षस अलायुध राक्षसी माया का आश्रय लेकर रथ से कूद पड़ा और आकाश में जाकर रक्त की वर्षा करने लगा। आकाश में एकाएक घटाएँ घिर आईं, बिजली चमकने लगी, वज्रपात के साथ निरन्तर कड़कड़ाहट और चटचटा शब्द होने लगा॥१४।१८॥

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि ।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥
अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२ ॥
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः ।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ।
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥ २३ ॥
उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ।
शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥
इंगुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः ।
पलाशैश्चाऽरिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५ ॥
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥ २६ ॥
तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्यतामिव ।
युद्धं समभवद्घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥
हरीन्द्रयोर्यथा राजन्वालिसुग्रीवयोः पुरा ।
तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा ।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥ २८ ॥

अलायुध की वह माया देखकर घटोत्कच भी आकाश में चला गया। उसने माया के द्वारा उस सब माया को नष्ट कर दिया। मायावी अलायुध ने माया के बल से अपनी माया का नाश देखकर घटोत्कच के ऊपर घोर पत्थरों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया। भीमसेन के पुत्र ने अपने बाणों से उस शिलावृष्टि को व्यर्थ कर दिया। यह उसने एक अद्भुत कर्म किया।इसके पश्चात् दोनों राक्षस एक दूसरे पर अनेक प्रकार के शस्त्र और वृक्ष बरसाने लगे॥१९।२१॥दोनों दोनों पर लोहमय परिघ, शूल, गदा, मुशल, मुद्गर, पिनाक, करवाल, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच, तीक्ष्ण भल्ल, बाण, चक्र, परश्वध, अयोगुड़, भिन्दिपाल, गोशीर्ष और उलूखल आदि विविध शस्त्र बरसाते रहे। फिर शस्त्र चुक जाने पर शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पक, इंगुद, बदरी, फूले हुए कोविदार, पलाश, अरिमेद, प्लक्ष, न्यग्रोध, पीपल आदि बड़ी-बड़ी डालोंवाले महावृक्षों को उखाड़कर एक दूसरे पर बरसाने लगे।इसके पश्चात् अनेक धातुओं से परिपूर्ण पर्वतों के बड़े-बड़े शिखर उखाड़कर एक दूसरे पर फेंकने लगे, जिससे पर्वतों के विदीर्ण होने का सा घोर शब्द होने लगा॥२२।२७॥हे महाराज!पूर्व समय में वानरराज वालि और सुग्रीव का जैसा दारुण संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम दोनों राक्षस करने लगे।अनेक प्रकार के घोर शस्त्रों और बाणों से युद्ध करने के उपरान्त दोनों राक्षस तीक्ष्ण खड्ग लेकर एक दूसरे से भिड़ गये।

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥
तौ खिन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावभिवृष्टाविवाऽम्बुदौ ॥ ३० ॥
अथाऽभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाऽऽक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्ताऽस्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥
सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥
हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिन्दमम् ।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३३ ॥
ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
अवादयन्पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥ ३४ ॥
अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी ॥ ३५ ॥
अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६ ॥
अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥
तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातॄणां चाऽप्यमन्यत ॥ ३९ ॥

दोनों महाबली राक्षसों ने दौड़कर एक दूसरे के केश पकड़ लिये। फिर बाहु डालकर महाबली दोनों राक्षस हाथ से हाथ पकड़कर मल्लयुद्ध करने लगे। बहुत वर्षा चुके मेघ की भाँति उन दोनों के शरीरों से पसीना और रक्त बह चला॥२९।३०॥इसी दौरान में घटोत्कच ने बलपूर्वक अलायुध को पकड़कर ऊपर उठा लिया और घुमाकर पटक देने के पश्चात् शत्रु का कुण्डलों से शोभित सिर खड्ग से काट डाला और घोर सिंहनाद किया॥३१।३२॥बकासुर के भाई महाकाय राक्षस अलायुध की मृत्यु देखकर पाञ्चाल और पाण्डवगण सिंहनाद करने लगे। युद्ध में राक्षस के मरने पर परम प्रसन्न पाण्डव दल के लोग सहस्रों नगाड़े और शङ्ख बजाने लगे॥३३।३४॥वह दीपमाला से अलंकृत रात्रि पाण्डवों के लिये अत्यन्त विजयदायिनी हो उठी॥महाबली घटोत्कच ने अलायुध का कटा हुआ सिर दुर्योधन के सम्मुख फेंक दिया॥३५।३६॥राक्षसराज अलायुध की मृत्यु देखकर राजा दुर्योधन अपनी सेना सहित बहुत ही व्याकुल हो उठे। क्योंकि अलायुध ने पहले आकर

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाऽभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधवधे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७८॥

स्मरण करके दुर्योधन के समीप आकर भीमसेन को मारने की प्रतिज्ञा की थी।उसकी वह दृढ प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन ने समझ लिया था कि अब भीमसेन मारे गये और उनके भाई,भीमसेन के हाथ से छुटकारा पाकर, बहुत दिनों तक जियेंगे। किन्तु इस समय घटोत्कच के हाथ से अलायुध की मृत्यु देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि भीमसेन ने उनके भाइयों को मारने की जो प्रतिज्ञा की है वे अवश्य पूर्ण करेंगे।३७।४०॥

द्रोणपर्व का एक सौ अठहत्तर अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७८ ॥

अथ ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

सञ्जय उवाच—निहत्याऽलायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान्नादान्वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १ ॥
तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत्सुदारुणम् ॥ २ ॥
अलायुधविपक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान्समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥
ततः परमनाराचैर्युधामन्युत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥
तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥
तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७ ॥

एक सौ उनासी अध्याय ॥ १७९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज!इस प्रकार अलायुध को मारकर प्रसन्नतापूर्वक राक्षसेन्द्र घटोत्कच आपकी सेना के सम्मुख अनेक प्रकार के भयानक शब्द और सिंहनाद करने लगा।हृदय को कम्पायमान् कर देनेवाला उस राक्षस का गरजना सुनकर आपकी सेना के लोग बहुत ही भयभीत हो गये। अलायुध से घटोत्कच को भिड़ते देखकर महावीर कर्ण पाञ्चाल सेना की ओर चले गये थे॥१।३॥वहाँ उन्होंने कान तक खींचकर दस-दस बाण धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को मारे। फिर उग्र नाराच बाण मारकर युधामन्यु,उत्तमौजा और महारथी सात्यकि को कँपा दिया।पाञ्चालवीर भी दाहिनी और बाईं ओर से बराबर कर्ण पर बाण बरसा रहे थे और उनके धनुष मण्डलाकार घूमते ही देख पड़ते थे॥४। ६॥ वर्षा ऋतु में मेघों के गरजने के समान उन वीरों के धनुष की डोरी की ध्वनि और रथ के पहियों की घरघराहट सुनाई पड़ रही थी। उस समय रणभूमि मेघमण्डल के समान जान पड़ रही थी। धनुष की डोरी और रथ के पहियों का शब्द मेघगर्जन के समान,

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै धनुस्ताडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च संग्राममेघः स वमूव राजन् ॥ ८ ॥
नदद्भुतं शैल इवाऽप्रकम्पो वर्षं महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥
ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून्व्यपोहत्समरे महात्मा वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥
सञ्छिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः ।
केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्वैकर्तनेनाऽऽशु कृता वभूवुः ॥ ११ ॥
अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरं ते वलमभ्यपद्यन् ।
तान्प्रेक्ष्य भग्नान्विमुखीकृतांश्च घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२ ॥
आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्संननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३ ॥
तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥
तद्बाणधारावृतमन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभिर्विचित्रपुष्पाभिरिव प्रजाभिः ॥ १५ ॥
समाहितावप्रतिमप्रभावावन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषम् ॥ १६ ॥

धनुष बिजली के समान, ध्वजाएँ शिखर के समान और बाण आदि अनेक शस्त्रों की वर्षा जल की बूँदों के समान प्रतीत होती थी॥शत्रुओं का मर्दन करनेवाले, पर्वत के समान अविचल, वीरश्रेष्ठ कर्ण उस अद्भुत शस्त्रवर्षा को नष्ट करने लगा॥७।९॥आपके पुत्रों का हित करनेवाले कर्ण वज्र सदृश सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं का संहार कर रहे थे। कर्ण ने स्फूर्ति के साथ बाणों से किसी की ध्वजा के टुकड़े टुकड़े कर दिये, किसी के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला, किसी के सारथी और किसी के घोड़े मार डाले। युद्ध में किसी प्रकार चैन न पाकर, कर्ण के भयानक बाणों से घायल होकर, योद्धा लोग धर्मराज युधिष्ठिर की सेना में प्रवेश करने लगे॥१०।१२॥महावीर घटोत्कच अपने योद्धाओं को छिन्न भिन्न और रण में विमुख देखकर क्रोध से अत्यन्त अधीर हो उठा। वह सिंहनाद करके, सुवर्णरत्नशोभित रथ पर बैठकर, कर्ण के सम्मुख पहुँचा और उन पर वज्र-तुल्य बाण छोड़ने लगा। दोनों वीर उस समय कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, अशनि, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठ, शृङ्ग, क्षुरप्र आदि बाण बरसाकर आकाश को व्याप्त करने लगे। वे तिरछे जा रहे बाण अन्तरिक्ष में व्याप्त होने से, उनके सुवर्णमय पुङ्खों की प्रभा से, अन्तरिक्ष विचित्र पुष्पमालाओं से शोभित सा प्रतीत होने लगा॥१३।१५॥दोनों अप्रतिम प्रभावशाली वीर एकाग्रतापूर्वक उत्तम अस्त्रों से परस्पर प्रहार करने लगे। उस समय समर में उन दोनों वीरों के पराक्रम में किसी को कुछ विशेषता नहीं देख पड़ती थी, दोनों का समान पराक्रम और युद्धकौशल देख पड़ता था। आकाश में राहु और सूर्य के युद्ध के समान कर्ण और घटोत्कच का वह विचित्र, अपनी उपमा न रखनेवाला, अद्भुत

अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच—घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८ ॥
तेनाऽस्त्रेणाऽवधीत्तस्य रथं सहयसारथिम् ।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच—अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा सम्प्राक्रोशन्कुरवः सर्व एव ।
कथं नाऽयं राक्षसः कूटयोधी हन्यात्कर्णं समरे दृश्यमानः ॥ २१ ॥
ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी सर्वा दिशः प्रावृणोद्बाणजालैः ।
न वै किञ्चित्प्रापतत्तत्र भूतं तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥
नैवाऽऽददानो न च सन्दधानो न चेषुधी स्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात्सूतपुत्रः सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥
ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥
ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरासन्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चाऽस्याः प्रादुरासीत्सुघोरः सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥
ततः शराः प्रापतन्रुक्मपुङ्खाः शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि ।
परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ २६ ॥

से घोर और तुमुल युद्ध होता रहा॥१६।१७॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! जब अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ कर्ण किसी प्रकार घटोत्कच से अधिक पराक्रम नहीं प्रकट कर सके तब उन्होंने एक उग्र अस्त्र का प्रयोग किया। उसी अस्त्र से कर्ण ने घटोत्कच के सारथी, रथ और घोड़ों को नष्ट कर दिया॥रथ न रहने पर घटोत्कच स्फूर्त्ति के साथ अन्तर्द्धान हो गया॥१८।१९॥धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे सञ्जय!कूटयुद्ध में निपुण निशाचर के अन्तर्द्धान होने पर मेरे पक्ष के वीरों ने क्या सोचा और क्या किया?॥२०॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! राक्षसेन्द्र घटोत्कच को अन्तर्द्धान होते देखकर कौरव पक्ष के सब लोग जोर से चिल्लाने लगे कि यह कूटयुद्ध करनेवाला राक्षस युद्ध में अदृश्य रहकर अवश्य ही कर्ण को मार डालेगा। हे महाराज ! कौरवों के ये वचन सुनकर स्फूर्त्तिशाली और अस्त्रों के द्वारा विचित्र युद्ध करनेवाले कर्णने बाण वर्षा से सब दिशाओं को ढँकसा दिया॥ बाणों से अन्तरिक्ष में अँधेरा सा छा गया॥इतने पास-पास बाण छा गये कि कोई भी प्राणी उनके मध्य से होकर नीचे नहीं आ सकता था॥अन्तरिक्ष को बाणों से परिपूर्ण कर रहे कर्ण ऐसी स्फूर्त्ति दिखा रहे थे कि नहीं प्रतीत होता था, कब वे तरकस में हाथ लगाते है, कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढाते हैं और कब छोड़ते हैं॥२१।२३॥इसी दौरान में राक्षसराज घटोत्कच ने अन्तरिक्ष में राक्षसी माया प्रकट की।

मयूखिनः परिघा लोहबद्धा गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः शतघ्न्यश्च प्रादुरासन्समन्तात् ॥ २७ ॥
महाशिलाश्चाऽपतंस्तत्र तत्र सहस्रशः साशनयश्च वज्राः ।
चक्राणि चाऽनेकशतक्षुराणि प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥
तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥
शराहतानां पततां हयानां वज्राहतानां च तथा गजानाम् ।
शिलाहतानां च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव ॥ ३० ॥
सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्घटोत्कचेनाऽभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं तद् बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रमत्तत् ॥ ३१ ॥
हाहाकृतं सम्परिवर्तमानं संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात्पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥
तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् ।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्महद्भयं तव पुत्रान्विवेश ॥ ३३ ॥
शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो नदन्तीः ।
रक्षोगणान्नर्दतश्चापि वीक्ष्य नरेन्द्रयोधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४ ॥
ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैलनिकाशकायाः ।
नभोगताः शक्तिविपक्तहस्ता मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥

उस दारुण माया के कारण अन्तरिक्ष में लाल रङ्ग के भयानक बादल प्रकट हो गये । ऐसा जान पड़ा कि उस अग्निशिखा आकाश में जल रही है । हे कौरवेन्द्र! उसके पश्चात् उससे बिजलियाँ चमकने लगीं और उल्काएँ प्रज्वलित हो उठीं । सहस्रों नगाड़ों के बजने का सा घोर शब्द प्रकट होकर लोगों के मन में त्रास उत्पन्न करने लगा । फिर चारों ओर से सुवर्णपुङ्ख बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मुसल, परश्वध, तेल से स्वच्छ किये गये खड्ग, उज्ज्वल तोमर, पट्टिश, लोहे के परिघ, तीक्ष्ण शूल, सुवर्णपट्टभूषित विचित्र भारी गदा, शतघ्नी आदि शस्त्र, भारी शिलाएँ, सहस्रों अशनि, वज्र, सैकड़ों छुरेवाले चक्र, कौरव-सेना और कर्ण के ऊपर बरसने लगे॥२४-२८॥उस शक्ति, शिला, परश्वध, प्रास, खड्ग, वज्र, अशनि, मुद्गर आदि की भारी वृष्टि को कर्ण अपने बाणों से नष्ट नहीं कर सके। बाणों से घायल होकर गिर रहे घोड़ों का, वज्रों से घायल होकर गिर रहे हाथियों का और शिलाओं से टूटे-फूटे महारथों का घोर शब्द होने लगा । अनेक प्रकार के भयानक शस्त्रों को बरसा-कर घटोत्कच ने चारों ओर से दुर्योधन की सेना को बहुत ही व्याकुल कर दिया । साधारण सैनिक पुरुष हाहाकार करते हुए चारों ओर भागने, भटकने और विषाद से विह्वल होकर छिपने लगे । आर्य क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके मुख्य वीर योद्धा लोग रण-भूमि में डटे रहे, युद्ध छोड़कर भागे नहीं॥२९-३२॥ राक्षसी माया से उत्पन्न उन शस्त्रों की घोर वर्षा को आते और उससे अपनी असंख्य सेना को मरते देखकर आपके पुत्र बहुत ही भयविह्वल हो उठे । अग्नि उगलने के कारण प्रज्वलित जिह्वावाली सियारियों का भयानक शब्द करने और राक्षसों को गरजते देखकर योद्धा लोग बहुत ही व्यथित हो उठे। तीक्ष्ण भयानक दाढ़ें, प्रज्वलित

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६ ॥
शूला भुशुण्ड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः स्थूलाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥
विकीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः सभग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्नाः संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥
एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्तस्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।
मायाः सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन नाऽमुञ्चन्वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥
तस्मिन्घोरे कुरुवीरावमर्दे कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥
पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां तस्मिन्द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥
तस्मिन्संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे नाऽऽज्ञायन्ते कुरवो नेतरे च ॥ ४२ ॥
निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं कर्णं स्मैकं तत्र राजन्नपश्यन् ॥ ४३ ॥

जिह्वा से अग्नि उगल रहे, तीक्ष्ण दाढ़ों और दाँतोंमे भयानक हाथों में शक्ति लिये हुए राक्षसों के समूह आकाश म पहुँचकर मेघों के समान कौरवदल पर शस्त्रों की उग्र वर्षा करने लगे॥३३।३५॥राक्षसोंके बरसाये हुए बाण, शक्ति, शूल, गदा, उग्र प्रज्वलित परिघ, वज्र,पिनाक, अशनि,चक्र,शतघ्नी आदि शस्त्रों के प्रहार से निमथित योद्धा मर मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। हे महाराज! मायावी राक्षस लोग आपके पुत्र की सेना पर निरन्तर शूल, भुशुण्डी, पत्थर,लगुड, शतघ्नी, लोह के खण्डों से भूषित स्थूणा आदि बरसाने लगे।उस समय आपके पक्ष के लोगों में भय के मारे खलबली मच गई।शूरों के सिर फट गये थे, अङ्ग कट गये थे,आँते निकलकर ढेर हो गई थीं और वे रणभूमि म पड़े हुए थे। हाथियों और घोड़ों की लाशें छिन्न भिन्न हो गई थीं और वे पृथ्वी पर पड़ी हुई थीं। पत्थरों से तोड़े गये रथ पड़े थे॥३६।३८॥जो लोग भय के मारे जीवन दान माँग रहे थे उन्हें भी दुष्ट राक्षस नहीं छोड़ते थे। घटोत्कच की माया से उत्पन्न वे घोर राक्षस बराबर शस्त्रों की वर्षा करते जा रहे थे। इस प्रकार काल-कृत क्षत्रियों का नाश उपस्थित होने पर कौरव पक्ष के सहसा वीर मारे जाने लगे।सब कौरवदल के लोग सहसा साहस छोड़कर भाग खड़े हुए और चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—हे कौरवो! भागो भागो! अब किसी प्रकार यह सेना बच नहीं सकती।पाण्डवों का पक्ष लेकर इन्द्र सहित सब देवता हमें मार रहे हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! इस प्रकार समर सङ्कटसागर म डूब रहे लोगों के लिये कर्ण द्वीप के समान आश्रयस्थल हुए॥३९।४१॥घमासान युद्ध मचने पर, कौरव सेना के भागने और छिपने पर,सेनादलों के विभागमें प्रकाश न रहने पर, नहीं जान पड़ता था कि कौन पाण्डव दल के लोग हैं और कौन कौरव दल के लोग हैं। उस मर्यादाहीन युद्ध के अवसर पर घोर रूप से पीड़ित लोग चारों ओर भागने लगे।उन लोगों को सभी दिशाएँ शून्य देख पड़ने लगीं।उस समय रणभूमि में अकेले

ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं दिव्यां मायां योधयन्राक्षसस्य ।
ह्रीमान्कुर्वन्दुष्करं चाऽऽर्यकर्म नैवाऽमुह्यत्संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥
ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं राजन्सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च ।
असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये सम्पश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥
तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥
ततो हताश्वादवरुह्य यानादन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चाऽस्त्रे मायया वध्यमाने नैवाऽमुह्यच्चिन्तयन्प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥
ततोऽब्रुवन्कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाऽद्य तूर्णं नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥ ४८ ॥
करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
यो नः संग्रामाद्घोररूपाद्विमुच्येत्स नः पार्थान्सबलान्योधयेत ॥ ४९ ॥
तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन ।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः॥ ५० ॥
स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च ।
महच्चक्रुष्टं निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥
स वै क्रुद्धः सिंह इवाऽत्यमर्षी नाऽमर्षयत्प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥

कर्ण ही उस शस्त्रवर्षा को छाती पर रोकते दिखाई पड़ रहे थे। हे महाराज! कर्ण ने अपने बाणों से अन्तरिक्ष को व्याप्त कर दिया। वे राक्षस की दिव्य माया का सामना करते हुए उससे युद्ध कर रहे थे दुष्कर कर्म करके आर्यधर्म का पालन करते हुए कर्ण उस युद्ध में किसी प्रकार मोह को नहीं प्राप्त हुए॥४२।४४॥तब सिन्धु देश और बाह्लीक देश के सब लोग भयाकुल होकर कर्ण की ओर देखने लगे। राक्षस की विजय देखकर भी कर्ण के मोहित न होने की प्रशंसा करने लगे॥४५॥इसी अवसर में घटोत्कच ने एक चक्रयुक्त शतघ्नी फेंकी। उसके प्रहार से कर्ण के चारों घोड़े घुटनों के बल गिरकर मर गये। उनके दाँत गिर पड़े और उनकी जीभें और आँखें बाहर निकल आईं। तब कर्ण रथ से उतरकर कौरवों को अचेत देख सोचने लगे कि इस समय क्या करना चाहिए अपने दिव्य अस्त्र को राक्षस की माया से निष्फल होते देखकर भी कर्ण को मोह प्राप्त नहीं हुआ और वे उस समय के योग्य कर्तव्य सोचने लगे॥४६।४७॥तब राक्षस की उस माया को देखकर कर्ण की ओर देखते हुए सब कौरव कहने लगे—हे कर्ण! अब शीघ्र ही अपनी अमोघशक्ति से इस राक्षस को मारो। देखो,ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र और कौरव नष्ट हुए जा रहे हैं। भीमसेन और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे? आधी रात्रि के समय हमें पीड़ित और नष्ट कर रहे इस पापी राक्षस को तुम मार डालो। हममें से जो कोई इस दारुण युद्ध से जीता बचेगा, वही तो सेना सहित पाण्डवों से युद्ध करेगा। इसलिए तुम इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति से शीघ्र इस घोर राक्षस को मार डालो हे कर्ण! ऐसा करो,जिससे इन्द्र-तुल्य पराक्रमी सब कौरव इस रात्रि-युद्ध में अपने योद्धाओं सहित जीवन न खो बैठें॥४८।५०॥हे राजेन्द्र! तब कर्ण ने उस

याऽसौ राजन्निहिता वर्षपूगान्वधायाऽऽजौ सत्कृता फाल्गुनस्य।
यां वै प्रादात्सूतपुत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ ५३ ॥
तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम्।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४ ॥
तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम्।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम् ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्सनिर्घाता चाऽशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥
सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ ५७ ॥
स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगैर्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन्नादान्विविधान्भैरवांश्च प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या ॥ ५८ ॥
इदं चाऽन्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं चकाराऽसौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन्काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९ ॥
ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः ।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ६० ॥
स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा भीमं कृत्वा भैममेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तत्र सैन्यैकदेशमपोथयत्स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥

रात्रियुद्ध में अपने को पीड़ित और सब सेना को भय-विह्वल देखकर और कौरवों का कोलाहल तथा आर्त-नाद सुनकर राक्षस के ऊपर वह अमोघ शक्ति चलाने का दृढ़ निश्चय कर लिया । इन्द्र ने कर्ण से कुण्डल लेकर उन्हें यह अति घोर अमोघ वैजयन्ती शक्ति दी थी । बहुत वर्षों से कर्ण ने, अर्जुन को मारने के निमित्त, यह शक्ति अपने समीप रख छोड़ी थी। सिंह के समान क्रुद्ध कर्ण ने रण में राक्षस से अपना पराभव न सह सकने के कारण उसे मारने के निमित्त वह श्रेष्ठ शक्ति अपने हाथ में ली । वह उत्तम शक्ति मृत्यु की जिह्वा के समान लपलपा रही, पाशयुक्त, मृत्यु की बहन सी, प्रज्वलित उल्का के समान और शत्रु के शरीर को विदीर्ण करनेवाली थी ॥५३॥५४॥ कर्ण के हाथ में वह प्रज्वलित शक्ति देखकर राक्षस भयभीत हो गया और विन्ध्याचल के समान शरीर धारण करके भागा। कर्ण के हाथ में वह शक्ति देखकर आकाशमण्डल में स्थित प्राणी दारुण शब्द करने लगे। घोर आँधी चलने लगी। दारुण शब्द के साथ पृथ्वी पर वज्रपात हुआ । एक पुरुष को मारकर इन्द्र के समीप चली जानेवाली वह भयङ्कर शक्ति कर्ण के हाथ से जो छूटी, तो उसने न केवल राक्षस की सारी माया को भस्म कर दिया और वेग से उस राक्षस के हृदय को फाड़कर वह बिजली की तरह चमकती हुई ऊपर चली गई और नक्षत्र-मण्डल के मध्य में प्रवेश होकर अदृश्य हो गई॥५५।५७॥

हे राजेन्द्र ! दिव्य और नाग, मनुष्य तथा राक्षसों के विविध अस्त्रों से पहले ही घटोत्कच का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था । अब वह भयानक शब्द करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। इन्द्र की शक्ति ने उसके प्राणों को उसके शरीर से पृथक् कर दिया । हे महाराज! पहले अनेक अद्भुत कर्म करने के अनन्तर उस राक्षस

पतद्रक्षः स्वेन कायेन तूर्णमतिप्रमाणेन विवर्धता च ।
प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां गतासुरक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥
ततो मिश्राः प्राणदन्सिंहनादैर्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चाऽनकाश्च ।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन्कौरवेयाः ॥ ६३ ॥
ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः ।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत्तत्स्वसैन्यम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

ने मरते समय भी शत्रुक्षय के लिए यह अद्भुत कर्म किया कि शक्ति से मर्मस्थल विदीर्ण होने पर मेघ और पर्वत के समान भारी शरीर धारण कर लिया। इसके उपरान्त वह भिन्नशरीर राक्षसेन्द्र मरकर अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका सिर नीचे था, शरीर चेष्टा रहित था और जीभ बाहर निकल आई थी। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया था। भीमकर्मा घटोत्कच ने भयानक रूप से गिरकर मरते समय भी अपने बढ़ रहे शरीर से, पाण्डवों का प्रिय करने के निमित्त, आपकी एक अक्षौहिणी सेना को कुचलकर मार डाला॥५८। ६२॥ मायावी राक्षस को मरते और उसकी माया को नष्ट होते देखकर कौरव पक्ष के लोग बहुत प्रसन्न हुए। वे सिंहनाद और शङ्खनाद करते हुए भेरी, मुरज, नगाड़े आदि अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे। वृत्रासुर के मारे जाने पर पहले देवताओं ने जैसे इन्द्र की पूजा की थी, वैसे ही कौरवगण कर्ण की प्रशंसा करने लगे। प्रसन्न चित्त कर्ण ने भी आपके पुत्र दुर्योधन के रथ पर बैठकर अपनी सेना के भीतर प्रवेश किया॥६३।६४॥

द्रोणपर्व का एक सौ उनासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७९ ॥

अथ अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

सञ्जय उवाच—हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥
वासुदेवस्तु हर्षेण महताऽभिपरिप्लुतः ।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् ॥ २ ॥
स विनद्य महानादमभीषूनसंनियम्य च ।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥
ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चाऽसकृत् ।
रथोपस्थगतो धीमान्प्राणदत्पुनरच्युतः ॥ ४ ॥

एक सौ अस्सी अध्याय ॥ १८० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! घटोत्कच को मरकर पर्वत की भाँति गिरते देख पाण्डवगण बहुत ही दुखित हुए। शोक के मारे उनके नेत्रों में आँसू भर आये, किन्तु कृष्णचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे। [उनके इस आचरण से पाण्डव बहुत ही व्यथित हुए।] श्रीकृष्ण ने घोड़ों की रास रोककर अर्जुन को गले लगा लिया। वे आँधी से हिल रहे वृक्ष की भाँति रथ के ऊपर नाचने लगे। अर्जुन को फिर गले में लगाकर श्रीकृष्ण बारम्बार तालियाँ पीटकर, ताल ठोककर और सिंहनाद करके

प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः ।
अर्जुनोऽथाब्रवीद्राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥
अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाऽद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥
विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् ।
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥
यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिन्दम ।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥
समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम् ।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥
वासुदेव उवाच – अतिहर्षमिमं प्राप्तं श्रृणु मे त्वं धनञ्जय ।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥
शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाऽऽजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥ १२ ॥
शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह ।
य एनमभितस्तिष्ठेत्कार्तिकेयमिवाऽऽहवे ॥ १३ ॥
दिष्ट्याऽपनीतकवचो दिष्ट्याऽपहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघाऽस्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥

हर्ष प्रकट करने लगे॥१-४॥ वासुदेव को इस प्रकार आनन्दित देख व्याकुल होकर महाबली अर्जुन ने उत्सुकता के साथ कहा—हे मधुसूदन! हमारे सैनिक और हम लोग घटोत्कच की मृत्यु देखकर शोक से अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं॥५-७॥ किन्तु आप इस समय जो इस प्रकार हर्ष प्रकट कर रहे हैं, उसका क्या कारण है? हर्ष का स्थान न होने पर भी आपका यह अत्यन्त हर्ष देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है। घटोत्कच की मृत्यु देखकर हमारी सेना रण से भाग रही है और हम लोग अत्यन्त ही उद्विग्न हो रहे हैं। हे भगवन्! अवश्य इस हर्ष का कोई विशेष कारण होना चाहिए। अतः इस आनन्द का कारण, यदि छिपाने योग्य न हो तो, शीघ्र बताइए। आप जैसे गम्भीर पुरुष के धैर्य का छूटना, मेरी समझ में, समुद्र के सूखने और सुमेरु के चलने के समान है॥८-१०॥ अर्जुन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे—हे अर्जुन! जिस कारण मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है, वह मैं कहता हूँ, सुनो। कर्ण ने इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति घटोत्कच के ऊपर चला दी है, इससे अब समझ लो कि कर्ण को मारना बहुत सुगम हो गया है। अब तुम कर्ण को मरा हुआ ही समझो। कार्तिकेय के समान हाथ में शक्ति लिये हुए कर्ण के सम्मुख इस संसार का कोई और पुरुष नहीं ठहर सकता॥११-१३॥ [illegible] ही कर्ण के कवच और कुण्डलों

यदि हि स्यात्सकवचस्तथैव स्यात्सकुण्डलः ।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे ॥ १५ ॥
वासवो वा कुवेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः ।
यमो वा नोत्सहेत्कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥
गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाऽहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥
त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चाऽयं कृतः परपुरञ्जयः ॥ १८ ॥
उत्कृत्य कवचं यस्मात्कुण्डले विमले च ते ।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥
आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा ।
तथाऽद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवाऽनलः ॥ २० ॥
यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता याऽसौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाभ्यां निमायाऽथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्याऽमन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥
एवङ्गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नाऽन्येन केनचित् ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चाऽनघ ॥ २३ ॥

को माँगकर ले गये थे और यह अमोघ शक्ति, जो कर्ण ने इन्द्र से माँग ली थी, आज घटोत्कच पर चलाने के कारण कर्ण के हाथ से निकल गई। यह हमारे लिए बड़े ही भाग्य की बात है। यदि इस महावीर कर्ण के समीप कवच और कुण्डल रहते तो यह वीर पुरुष देवगण-सहित तीनों लोकों को परास्त कर सकता था। इन्द्र, कुबेर, वरुण, यमराज आदि लोकपाल भी समर में कर्ण का सामना नहीं कर सकते थे। अधिक क्या, यदि तुम गाण्डीव धनुष और मैं सुदर्शन चक्र लेकर दोनों जने कर्ण को परास्त करना चाहते तो नहीं परास्त कर सकते थे॥१५।१७॥ हे अर्जुन! इन्द्र ने तुम्हारा हित करने के निमित्त पहले ही [मायामय ब्राह्मण रूप से] कर्ण के समीप आकर उससे कवच और कुण्डल माँग लिए थे। प्रतापी कर्ण ने शरीर के साथ ही उत्पन्न स्वाभाविक कवच और कुण्डल काटकर इन्द्र को दे दिये थे, इसी से कर्ण का नाम वैकर्तन भी पड़ गया॥ इस समय वह वैसा ही निस्तेज हो गया है, जैसे मन्त्र से बाँधा हुआ क्रुद्ध विषैला सर्प या बुझी हुई अग्नि हो॥१८।२०॥ महारथी कर्ण ने जिस दिन कवच और कुण्डलों के बदले में इन्द्र से एक पुरुषघातिनी अमोघ दिव्य शक्ति प्राप्त की थी उसी दिन से वह उस शक्ति को तुम्हारे प्राण लेने के निमित्त अपने समीप सावधानी से रक्खे हुए था। उस शक्ति के द्वारा तुम्हारा वध करने का उसने दृढ़ विचार कर रक्खा था। इस समय वीर कर्ण के हाथ से वह शक्ति निकल गई है। अब कर्ण से तुमको कुछ भी खटका नहीं है। हे पुरुषसिंह! मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं कि यद्यपि इस समय कर्ण के समीप वह शक्ति नहीं है, तो भी तुम्हारे अतिरिक्त और कोई योद्धा समर्थ मार नहीं सकता॥२१।२३॥ कर्ण नित्य निरन्तर ब्राह्मण-

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः ॥ २४ ॥
युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने नर्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥
विमदान्रथशार्दूलान्कुरुते रणमूर्धनि ।
मध्यङ्गत इवाऽऽदित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥
तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन्मुहुः ।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥
त्रिदशैरपि चाऽस्यद्भिः शरवर्षं समन्ततः ।
अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥ २९ ॥
कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥
एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय च्छिद्रे ह्येनं त्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे विमग्ने हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥
न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्यमप्येकवीरो बलभित्सवज्रः ।
जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२ ॥
एकैकशो निहताः सर्व एते योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ।
अथाऽपरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परचक्रावमर्दी घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षेऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

भक्त (ब्रह्मण्य), सत्यवादी, तपस्वी, दानी और शत्रुओं पर भी दया करता है, इसी से वह वृष (धर्मप्रधान) कहलाता है। महाबाहु कर्ण युद्ध में मुख नहीं मोड़ता। यह सदा धनुष चढ़ाकर, वन में सिंह जैसे गरजकर गजराजों को विमर्दित करता है वैसे ही, रण के मैदान में सिंह-सदृश महारथी क्षत्रियों का मानमर्दन करता है॥२४।२६॥हे पुरुषसिंह! तुम्हारे पक्ष के श्रेष्ठ योद्धा लोग, मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी, प्रतापी कर्ण की ओर नजर भरकर देख तक भी नहीं सकते। महावीर कर्ण, वर्षाऋतु में जलधारा बरसानेवाले मेघ के समान, जब दिव्य अस्त्रों और बाणों की वर्षा करने लगता है तब औरों की कौन कहे, सब देवता भी चारों ओर से बाणों की वर्षा करके उसको परास्त नहीं कर सकते बल्कि कर्ण के बाणों के प्रहार से उन्हीं के शरीर से रक्त बहेगा और माँस कट कटकर गिरेगा॥हे अर्जुन! कवच-कुण्डल हीन कर्ण इस समय इन्द्र की दी हुई शक्ति निकल जाने से साधारण मनुष्य के समान हो गया है॥२६।३०॥किन्तु यह सब होने पर भी उसको मारने का एक ही उपाय है। युद्ध करते समय, शाप वश, उसके रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायगा। उसी

समय मेरा इशारा पाकर सावधानी के साथ तुम, पहिया निकालने में लगे हुए असावधान, कर्ण को मार डालना। अब भी त्रिलोकी में एकमात्र वीर इन्द्र भी वज्र लेकर शस्त्रधारी अजेय कर्ण को नहीं मार सकते॥३१।३२॥ हे धनञ्जय ! मैंने तुम्हारे हित के निमित्त अनेक प्रकार के उपाय निकालकर क्रमशः महाबली अद्वितीय वीर मगधराज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल, निषादराज अद्वितीय धनुर्द्धर एकलव्य, हिडिम्ब, बक, किर्मीर, अलायुध और उग्रकर्मा घटोत्कच आदि मनुष्यों और राक्षसों का वध किया और कराया है॥३२।३३॥

द्रोणपर्व का एक सौ अस्सी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८० ॥

अथ एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

अर्जुन उवाच — कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन ।
जरासन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥
वासुदेव उवाच — जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥ २ ॥
दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान् ।
तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥
ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।
धार्तराष्ट्रचमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥
सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनञ्जय ।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥
एकैको हि पृथक्तेषां समस्तां सुरवाहिनीम् ।
योधयेत्समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥
जरासन्धो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ॥ ८ ॥

एक सौ इक्यासी अध्याय ॥ १८१ ॥

अर्जुन ने पूछा — हे श्रीकृष्ण ! आपने हमारे हित के निमित्त कैसे, किन किन, उपायों को निकालकर जरासन्ध आदि राजाओं और राक्षसों का वध कराया है ?॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! मगधराज जरासन्ध, शिशुपाल और निषादराज एकलव्य यदि पहले ही न मार डाले गये होते तो इस समय वे तुम्हारे लिए अत्यन्त भय का कारण होते। वे महारथी जीते होते तो दुर्योधन अवश्य ही उन्हें अपनी ओर से युद्ध का निमन्त्रण देता। वे सब दिव्य अस्त्रविद्या में निपुण, रणदुर्मद, महावीर निरन्तर हमसे द्वेष रखने और शत्रुता का आचरण करते थे। इसलिए वे अवश्य ही कौरवों का पक्ष लेते और दुर्योधन की सहायता तथा रक्षा करते॥२।४॥ अधिक क्या कहूं, कर्ण, मगधराज जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और निषादराज एकलव्य, ये चारों मिलकर यदि दुर्योधन का पक्ष लेते तो सारी पृथ्वी के राजाओं को भी वश में कर लेते। हे धनञ्जय ! मैंने ही उनका संहार कराया है। उनके वध में मैंने जिन उपायों से

सीमन्तामिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् ।
अदृश्यताऽऽपतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः ॥ ९ ॥
तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १० ॥
अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि ।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥
तत्र सा राक्षसी घोरा जरा नाम्नी सुविक्रमा ।
सन्दधे सा हि सञ्जातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥ १२ ॥
द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक्पृथक् ।
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥
सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चाऽस्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥
विनाभूतः स गदया जरासन्धो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनञ्जय ॥ १५ ॥
यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥
त्वद्धितार्थं च नैषादिरंगुष्ठेन वियोजितः ।
द्रोणेनाऽऽचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥

काम लिया है उनको एकाग्र होकर सुनो। देखो, बिना युक्ति के इन लोगों को देवता भी नहीं मार सकते थे। हे पार्थ! इनमें से एक एक वीर ऐसा था जो अकेला ही, लोकपालों के द्वारा सुरक्षित, सम्पूर्ण शत्रु-सेना से युद्ध कर सकता था ॥५।७॥ पहले बलदेवजी ने जरासन्ध को जीते ही पकड़ लिया था।उस अपमान से कुपित होकर उसने हमारे मारने के निमित्त अग्नि के समान प्रभापूर्ण, सबका संहार करने में समर्थ,वज्र सदृश एक सर्वघातिनी गदा फेंकी थी। जरासन्ध की चलाई हुई, आकाश में सीमन्त रेखा (स्त्रियों की माँग की सिंदूर की रेखा)सी, इन्द्र के चलाये हुए वज्र के समान वेग से वह गदा हम लोगों की ओर आ रही थी। यह देखकर महावीर बलभद्रजी ने उस गदा को व्यर्थ करने के निमित्त स्थूणाकर्ण नाम का अस्त्र छोड़ा। अस्त्र के वेग से टकराकर वह गदा पृथ्वी पर गिर पड़ी।उसकी धमक से पृथ्वी फट गई और पर्वत हिल उठे॥८।११॥ हे अर्जुन! महाबली जरासन्ध दो माताओं के पेट से उत्पन्न हुआ था, अर्थात् उसके शरीर का आधा-आधा भाग अलग-अलग गर्भ से उत्पन्न हुआ था।जरा नाम की एक प्रभावशालिनी राक्षसी ने उन भागों को एक में जोड़कर जिला दिया,इसी से उसका नाम जरासन्ध पड़ा। वह राक्षसी भी पुत्र बान्धव आदि के साथ उस गदा और स्थूणाकर्ण अस्त्र के प्रभाव से मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। हे पार्थ! प्रतापी जरासन्ध के समीप वह भयानक गदा न रहने से ही महावीर भीमसेन तुम्हारे सम्मुख उस प्रकार जरासन्ध को मार सके। यदि महाप्रतापी जरासन्ध के हाथ में वह गदा होती तो इन्द्र आदि देवता भी उसे नहीं मार सकते थे॥१२।१६॥हे अर्जुन! महावीर द्रोणाचार्य ने तुम्हारा

स तु बद्धांगुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवाऽपरः ॥ १८ ॥
एकलव्यं हि सांगुष्ठमशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥
किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् ।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥
त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि ।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥
स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वसुरासुरैः ।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ।
हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥ २३ ॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ।
हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाऽप्यलायुधः ॥ २४ ॥
हैडिम्बश्चाऽप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः ।
यदि ह्येनं नाऽहनिष्यत्कर्णः शक्त्या महामृधे ॥ २५ ॥
मया वध्यो भविष्यत्स भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ २६ ॥

हित करने के निमित्त ही वन में जाकर, अपने को गुरु बताकर, गुरुदक्षिणा में सत्यविक्रमा निषादराज एकलव्य से दाहने हाथ का अँगूठा कटवा लिया था। महापराक्रमी एकलव्य उँगलियों में अंगुलित्राण पहने दूसरे परशुराम के समान वन में विचरता था। वह महा अभिमानी वनचारी निषाद बड़ा भारी धनुर्द्धर योद्धा था; परन्तु अँगूठा न रहने से निकम्मा हो गया। अँगूठा रहने पर युद्ध में देवता, दानव, राक्षस, नाग आदि सब मिलकर भी उसको नहीं जीत सकते थे। साधारण मनुष्य तो उसकी ओर देख तक भी नहीं सकते थे। वीर एकलव्य दृढ़ मुष्टि से दिन-रात बाण चलाने का अभ्यास किया करता था। बाण-विद्या में वह सफलता भी प्राप्त कर चुका था। तुम्हारे हित के निमित्त ही मैंने संग्राम में उसको मार डाला॥१७।२१॥ हे पार्थ ! तुम्हारे हित के निमित्त ही मैंने चेदि देश के राजा पराक्रमी शिशुपाल को, तुम्हारे सम्मुख ही, मारा है। उसे संग्राम में सब देवता और दैत्य भी एकत्र होकर नहीं जीत सकते थे। उसके तथा अन्य देव-द्रोही राजाओं और राक्षसों के वध के निमित्त ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ। तुम्हारी सहायता और सब लोकों के हित के निमित्त ही मेरा जन्म हुआ है। हे अर्जुन ! रावण के समान बली, ब्राह्मणों के यज्ञों को नष्ट करने-वाले अन्य हिडिम्ब, बकासुर, किर्मीर आदि राक्षसों को भीमसेन ने मारा है। मायावी अलायुध को घटोत्कच ने तुम्हारे सम्मुख ही मारा है और मायावी घटोत्कच का वध भी मैंने उपाय से कर्ण के द्वारा, उस अमोघ शक्ति के प्रयोग से, कराया है॥२१।२५॥ मैं सत्य कहता हूँ, यदि कर्ण इन्द्र की दी हुई शक्ति से आज घटोत्कच को न मारता तो फिर मुझे अवश्य उस राक्षस का वध करना पड़ता। मैंने तुम लोगों

एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ॥ २७ ॥
व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८ ॥
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाऽव्यया ।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा ॥ २९ ॥
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ।
न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ ३० ॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ।
सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥ ३१ ॥
तस्याऽपि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ।
वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥ ३२ ॥
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ।
लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

का प्रिय करने के ख्याल से ही अब तक घटोत्कच को नहीं मारा था। दुष्ट घटोत्कच ब्राह्मणों का द्रोही था और यज्ञ आदि पुण्य-कार्यों में विघ्न डालता था। यह पापी धर्म का लोप करनेवाला था, इसी से मैंने इस प्रकार इसको मरवा डाला। साथ ही इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति भी कर्ण के पास से निकाल दी॥२५।२८॥हे अर्जुन ! मैं सत्य कहता हूँ, जो लोग धर्म का लोप करनेवाले हैं मेरे वध्य हैं, यह मेरी प्रतिज्ञा है। मैं सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि जहाँ वेदपाठ या ब्राह्मणभक्ति, सत्य, दमन, शौच, ह्री (लोकलज्जा), श्री, धैर्य, क्षमा आदि सद्गुण हैं वहीं मैं नित्य रहता हूं। हे अर्जुन ! तुम वैकर्तन कर्ण को मारने की तनिक भी चिन्ता न करो।मैं तुमको उपाय बता दूँगा,जिससे तुम कर्ण का सामना कर सकोगे और उसे मार सकोगे॥२८।३१॥दुर्योधन को भी रण में भीमसेन मारेंगे उसके वध का उपाय भी मैं बता दूँगा। हे अर्जुन ! शत्रुसेना में यह कोलाहल बढ़ता जा रहा है। तुम्हारी सेना के दल दसों दिशाओं में भय के मारे भाग रहे हैं।कौरव-दल के लोग इस समय उत्साह के साथ ताक-ताककर तुम्हारी सेना का संहार कर रहे हैं।श्रेष्ठ योद्धा द्रोणाचार्य,अग्नि के समान,हमारी सेना को भस्म कर रहे हैं॥३१।३३॥

द्रोणपर्व का एक सौ इक्यासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८१ ॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।
कस्मात्सर्वान्समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥ १ ॥
तस्मिन्हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।

एकवीरवधे कस्माद्युद्धे न जयमादधे ॥ २ ॥
आहूतो न निवर्त्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥
ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया ।
जघान न वृषः कस्मात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥
नूनं बुद्धिविहीनश्चाऽप्यसहायश्च मे सुतः ।
शत्रुभिर्व्यसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥
याऽस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम् ।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६ ॥
कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत्फलं बलीयसा ।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥
यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतोस्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः ।
मन्ये विद्वन्वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥
घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्तथाऽपि कृत्यं शक्तिनाशात्कृतं स्यात् ९ ॥
इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचिन्त्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अघातयद्वासुदेवो नृसिंहः प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां हितं च ॥ १० ॥

एक सौ बयासी अध्याय ॥ १८२ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय! एक ही वीर को मारकर चली जानेवाली अमोघ शक्ति जो कर्ण के समीप थी उसे कर्ण ने, सब वीरों को छोड़कर, अर्जुन के ऊपर अब तक क्यों नहीं चलाई थी? एक अर्जुन की मृत्यु से ही सब पाण्डव और सृञ्जय मर जाते, या उन्हें मारना सुगम हो जाता। फिर कर्ण ने अर्जुन को मारकर विजय प्राप्त करने का यत्न क्यों नहीं किया! अर्जुन की यह प्रतिज्ञा है कि यदि कोई युद्ध के निमित्त उन्हें बुलावे तो वे कभी पीछे नहीं हटते। कर्ण को उचित था कि वे स्वयं अर्जुन को खोजकर उनसे युद्ध करते। फिर उन्होंने अर्जुन को द्वैरथ युद्ध के निमित्त बुलाकर इन्द्र की दी हुई उस अमोघ शक्ति से अब तक क्यों नहीं मार डाला? हे सञ्जय! तुम इसका कारण बताओ॥१-४॥ दुर्योधन अवश्य ही बुद्धिहीन, असहाय और पापमति है। शत्रुओं ने धोखा देकर, कर्ण की शक्ति को व्यर्थ करके, इस समय उसे निरुपाय कर दिया है। फिर वह कैसे शत्रुओं को जीत सकता है! जो इन्द्र की दी हुई शक्ति उसके लिए परम आश्रय और एकमात्र विजय प्राप्ति का उपाय थी उसे श्रीकृष्ण ने, युक्तिपूर्वक घटोत्कच के ऊपर चलवाकर, व्यर्थ कर दिया। हे सञ्जय! जैसे कुष्ठ आदि प्रबल रोग से पीड़ित व्यक्ति के हाथ से कोई बलवान् नीरोग पुरुष फल को छीन ले वैसे ही श्रीकृष्ण के यत्न से वह अमोघ शक्ति, घटोत्कच के ऊपर चलाये जाने से, कर्ण के हाथ से निकल गई॥५-७॥ जैसे सूअर और कुत्ते के युद्ध में किसी की मृत्यु होने से चाण्डाल का लाभ ही होता है वैसे ही, मेरी समझ में, कर्ण और घटोत्कच के युद्ध में किसी की मृत्यु होने से वासुदेव ने पाण्डवों का लाभ सोच लिया था। यदि घटोत्कच कर्ण को मार डालता तो

सञ्जय उवाच—एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥
तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३ ॥
साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥
तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखः शत्रून्पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥
स विशेषात्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम् ।
हन्याक्षिप्रं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाऽशनिः ॥ १६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममाऽऽत्मजः ।
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥
स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
न मुक्तवान्कथं सूतताममोघां धनञ्जये ॥ १८ ॥

यह पाण्डवों के लिए बड़ा भारी लाभ था; और यदि घटोत्कच को कर्ण ने मार डाला तो भी शक्ति उनके हाथ से निकल जाने के कारण लाभ पाण्डवों का ही हुआ। परम बुद्धिमान् वासुदेव ने यही सोचकर घटोत्कच को कर्ण से भिड़ा दिया था। इस प्रकार युद्ध में पाण्डवों का हित और प्रिय करने के विचार से पुरुषसिंह श्रीकृष्ण ने कर्ण के द्वारा घटोत्कच को मरवा डाला॥८।१०॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज! कर्ण ने उस शक्ति से अर्जुन को मारने का दृढ विचार कर रक्खा था। उनके इस विचार को जानकर ही महाचतुर श्रीकृष्ण ने उस अमोघ शक्ति को व्यर्थ करने के निमित्त राक्षस घटोत्कच को कर्ण से लड़ने को भेजा था। किन्तु हे महाराज! यह सब आपकी ही कुमन्त्रणा का फल है। हे कुरुश्रेष्ठ! यदि श्रीकृष्ण महारथी कर्ण के सामने से टालकर अर्जुन की रक्षा न करते रहते, तो हम लोग पहले ही अर्जुन को मारकर विजयी हो जाते॥११।१३॥ हे महाराज! योगेश्वर श्रीकृष्ण यदि ऐसे कौशल से न करते तो अब तक न जाने कब के अर्जुन मर चुके होते—घोड़े, ध्वजा, रथ आदि सहित अर्जुन का पता भी न होता। हे पार्थिव! श्रीकृष्ण सदा सर्वथा अनेक प्रकार के उपायों से अर्जुन की रक्षा करते रहते हैं और वे सम्मुख समर में सब शत्रुओं को जीतते और मारते जाते हैं। असाधारण शक्तिशाली श्रीकृष्ण यदि अब तक विशेष रूप से अर्जुन की रक्षा न करते तो अवश्य ही कर्ण की वह शक्ति, वज्रपात से भस्म हुए वृक्ष की भाँति, अर्जुन को भस्म कर देती॥१४।१६॥ राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरा पुत्र दुर्योधन, विरोधी (किसी की न माननेवाला) और अपने को सबसे अधिक बुद्धिमान् समझनेवाला है। उसके सलाहकार भी क्षुद्र हैं। इसी कारण अर्जुन के वध और जयलाभ का यह उपाय हाथ से निकल गया। हे सूत! मुझे रह-रहकर आश्चर्य तो यह होता है कि महाबुद्धिमान् और सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण ने अर्जुन को सम्मुख पाकर भी उन पर यह अमोघ शक्ति अब तक क्यों नहीं चलाई? हे सञ्जय!

तत्रापि समतिक्रान्तमेतद्गावल्गणे कथम् ।
एतमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नाऽवबोधितः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच—दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च ।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥ २० ॥
श्वः सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम् ।
प्रेष्यवत्पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥
अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः ।
स्थापयेद्यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम् ॥ २२ ॥
कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २३ ॥
कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः ।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २४ ॥
तस्मात्पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५ ॥
हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन्वशे तस्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि हि स निहतः शयीत भूमौ यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत् २७ ॥

तुम, उस शक्ति का वृत्तान्त जानते हुए भी, क्यों भूल रहे ? तुमने कर्ण को अर्जुन पर शक्ति चलाने की बात क्यों नहीं सुझाई॥१७।१९॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और मैं, हम चारों मनुष्य नित्य रात्रि को यही सोचते थे और कर्ण से कहते थे कि हे कर्ण ! प्रातःकाल सबको छोड़कर तुम उस अमोघ शक्ति से अर्जुन को मार डालो। अर्जुन के मरने पश्चात् हम लोग पाण्डवों और पाञ्चालों को अपने वश में कर लेंगे। अर्जुन के बिना [illegible] सब लोग हमारे आज्ञाकारी हो जायँगे। अथवा अर्जुन के मारे जाने पर भी श्रीकृष्ण [illegible] युद्ध करने के निमित्त खड़ा करेंगे, इसलिए अर्जुन को न मारकर उस शक्ति से श्रीकृष्ण को ही मार डालो ॥२०।२२॥ श्रीकृष्ण ही पाण्डवों की जड़ हैं, [illegible] आदि [illegible] ज्योतिर्गणों का आधार चन्द्रमा है वैसे ही पाण्डवों का आश्रय, बल, स्वामी, सहायक, परमगति सब कुछ श्रीकृष्ण ही हैं। इस कारण पत्ते, शाखा, स्कन्ध आदि को छोड़कर पाण्डवों की जड़ श्रीकृष्ण को ही मार डालो जिससे सब क्लेश मिट जाय। हे कर्ण ! यदि तुम श्रीकृष्ण को मार डालोगे तो इसमें सन्देह नहीं कि सारी पृथ्वी तुम्हारे अधीन हो जायगी॥२३।२६॥ यादवों और पाण्डवों को प्रसन्न करनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण यदि शक्ति से मरकर रणभूमि में गिर जायँ तो हे नरेन्द्र ! यह पर्वत-समुद्र और वन सहित सारी पृथ्वी तुम्हारी ही हो जायगी। हे राजेन्द्र ! हर रात्रि को इस प्रकार हम लोग श्रीकृष्ण या अर्जुन को मारने का विचार करते थे, किन्तु जागने पर प्रातःकाल युद्धभूमि में देख कर [illegible] श्रीकृष्ण के सम्मुख [illegible]

सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥ २८ ॥
अर्जुनं चापि राधेयात्सदा रक्षति केशवः ।
न ह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २९ ॥
अन्यांश्चाऽस्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ ३० ॥
यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात्कृष्णो महामनाः ।
आत्मानं स कथं राजन्न रक्षेत्पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥
परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिन्दमम् ।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच—ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥
अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चाऽमितविक्रमा ।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा ॥ ३४ ॥
वासुदेव उवाच— दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः ।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।
नाऽन्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥
ऋते महारथात्कर्ण कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ।
स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥ ३७ ॥

हो जाता था। हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण सदा कर्ण से अर्जुन की रक्षा किया करते थे, वे कभी भी कर्ण के सम्मुख अर्जुन का रथ नहीं ठहराते थे— अर्जुन को अन्य योद्धाओं से लड़वाते थे॥२८।२९॥ श्रीकृष्ण सदा यही सोचा करते थे कि कर्ण की यह शक्ति किस प्रकार व्यर्थ हो जाय। हे महाराज ! जो महात्मा श्रीकृष्ण अर्जुन को सदा इस प्रकार कर्ण से बचाते रहते हैं, वे पुरुषोत्तम क्या आत्मरक्षा नहीं कर सकते थे ? सोच-विचारकर तीनों लोकों में किसी ऐसे वीर पुरुष को नहीं देख पाता, जो चक्रपाणि महात्मा श्रीकृष्ण को जीत सकता हो॥३०।३२॥ सञ्जय कहते हैं—हे कुरुराज ! महारथियों में श्रेष्ठ घटोत्कच की मृत्यु हो चुकने पर सत्यपराक्रमी सात्यकि ने भी श्रीकृष्ण से यही पूछा था कि हे वासुदेव ! कर्ण ने जब यह दृढ़ विचार कर रक्खा था कि इस अमोघ शक्ति से अर्जुन को मारूँगा, तो फिर उसने आज तक अर्जुन को सम्मुख पाकर भी उसका प्रयोग क्यों नहीं किया ? ॥३३।३४॥ इस प्रश्न के उत्तर में महात्मा वासुदेव ने कहा —हे शिनिवीर ! दुःशासन, शकुनि, कर्ण और जयद्रथ आदि सब दुर्योधन के समीप बैठकर नित्य रात्रि को सम्मति किया करते थे। सभी कहते थे कि हे कर्ण ! हे महाधनुर्धर ! युद्ध में तुम्हारा पराक्रम अपार है। तुम युद्ध में अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पर इस अमोघ शक्ति को न छोड़ना। देवताओं में इन्द्र

तस्मिन्विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३८ ॥
तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥
अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नाऽवसृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥
फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम् ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ४१ ॥
घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा ।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४३ ॥
त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत्सुदुर्लभम् ।
नेच्छेयं सात्वताऽहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४४ ॥
अतः प्रहर्षः सुमहान्युयुधानाऽद्य मेऽभवत् ।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४५ ॥
अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच— इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनञ्जयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२॥

के समान पाण्डवों में केवल अर्जुन ही महातेजस्वी और यशस्वी हैं। उन्हें मार सकने पर सृञ्जय और पाण्डवगण अग्नि से हीन देवताओं के समान मृतप्राय हो जायँगे ॥३५।३८॥ हे सात्यकि ! दुःशासन आदि कौरव पक्ष के वीरों के बार-बार यों कहने पर कर्ण ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा कर ली थी और सदा उसके हृदय में यह विचार बना रहता था कि मैं शक्ति से अर्जुन को मार डालूँगा । किन्तु मैं युद्ध के समय कर्ण को मोहित कर रखता था, इसी से उसने आज तक अर्जुन को सम्मुख पाकर भी उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया॥ हे सात्यकि! अर्जुन का वध करने में समर्थ वह शक्ति जब तक कर्ण के समीप थी तब तक मैं सदा चिन्तित रहा । तब तक न मुझे निद्रा आती थी, न चित्त को हर्ष ही होता था॥३९।४१॥ उस अमोघ शक्ति को, घटोत्कच के ऊपर चलाये जाने से, व्यर्थ होते देखकर आज मैं अर्जुन को मृत्यु के मुख से छूटा हुआ समझ रहा हूँ । देखो, पिता, माता, तुम लोग, भाई, बन्धु-बान्धव और प्राण भी मुझे अर्जुन से बढ़कर प्रिय नहीं हैं । युद्ध में अर्जुन की रक्षा करना ही मेरा सबसे प्रिय और प्रधान कार्य है । त्रैलोक्य के राज्य से भी अधिक दुर्लभ यदि कोई पदार्थ हो, तो उसे भी मैं अर्जुन के बिना नहीं प्राप्त करना चाहता॥४२।

४४॥हे यदुपुङ्गव ! इस समय अर्जुन का पुनर्जन्म सा हुआ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। रात्रि के समय घटोत्कच के अतिरिक्त और कोई कर्ण को ऐसा पीड़ित नहीं कर सकता था कि वह शक्ति का प्रयोग करने के निमित्त विवश हो। इसी निमित्त मैंने घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने के निमित्त भेजा था॥४५।४६॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! अर्जुन के ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण में निरन्तर निरत महात्मा वासुदेव ने उस समय सात्यकि से जो कुछ कहा था, सो मैंने आपको सुना दिया॥४७॥

द्रोणपर्व का एक सौ बयासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८२ ॥

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
अपनीतं महत्तात तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २ ॥
सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वाऽपि सञ्जय ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते ॥ ४ ॥
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ।
प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायाऽर्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥
ततः प्रभातसमये राजन्कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥ ६ ॥
दैवमेव परं मन्ये यत्कर्णो हस्तसंस्थया
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥
तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ८ ॥

एक सौ तिरासी अध्याय ॥ १८३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और तुम, इन चारों ने इस प्रकार जय की उपाय स्वरूप शक्ति को गँवाकर बहुत ही अनुचित काम किया। जब तुम भली भाँति जानते थे कि वह अनिवार्य शक्ति इन्द्र आदि देवताओं के लिए भी असह्य है, और समर में एक पुरुष का विनाश अवश्य कर सकती है, तब कर्ण ने क्यों नहीं पहले युद्ध के अवसर पर अर्जुन या श्रीकृष्ण के ऊपर उसका प्रयोग किया?॥१।३॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! यह तो चुरा कि हम लोग नित्य समरभूमि से लौटकर रात्रि को डेरे पर सम्मति करके कर्ण से कहते थे कि हे कर्ण! तुम कल प्रातःकाल होते ही युद्ध में श्रीकृष्ण या अर्जुन के ऊपर अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग करना, किन्तु प्रातःकाल होते ही कर्ण और अन्य सब योद्धाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती थी॥४।६॥हे राजेन्द्र! कर्ण के हाथ में वैसी अमोघ शक्ति रहने पर भी श्रीकृष्ण या अर्जुन का विनाश नहीं हुआ, इससे मेरी समझ में दैव ही सबसे प्रबल है। कर्ण अवश्य ही दैव की प्रतिकूलता और देवताओं की

कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो दैवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्धया केशवस्य च ।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥
कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥
भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा ॥ १२ ॥
ये च तेऽभ्यद्रवन्द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृञ्जयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन्कथं रणम् ॥ १३ ॥
सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ १४ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥
आचार्यं ये च तेऽरक्षन्दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वा कुर्वन्किमाहवे ॥ १६ ॥
भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समार्च्छन्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ १७ ॥
सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ १८ ॥

माया से बुद्धि नष्ट होने के कारण मोहित हो जाते थे और श्रीकृष्ण अथवा अर्जुन के ऊपर उस शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे॥७।९॥ राजा धृतराष्ट्र ने कहा हे सञ्जय ! तुम लोग अपनी-अपनी दुर्बुद्धि, श्रीकृष्ण के कौशल और दैव की प्रतिकूलता के कारण ही इस प्रकार विडम्बना को प्राप्त और विनष्ट हुए। इन्द्र की दी हुई अनिवार्य अमोघ शक्ति तुच्छ घटोत्कच को ही मारकर निष्फल हो गई ! इस दुर्नीति के कारण ही कर्ण, अपने पुत्र और अन्य सब राजा लोग यमपुर को गये हुए से जान पड़ते हैं। अस्तु, अब बताओ, घटोत्कच के मरने पर कौरवों और पाण्डवों में फिर किस प्रकार कैसा युद्ध हुआ ? [illegible] जो पाञ्चाल और सृञ्जयगण द्रोणाचार्य पर आक्रमण करते थे। और बढ़े [illegible] उन्होंने कैसा युद्ध किया॥१०।१३॥ द्रोणाचार्यजी भी भूरिश्रवा और जयद्रथ की मृत्यु के कारण क्रोध से अत्यन्त अधीर हो रहे थे। वे जम्हाई लेते शार्दूल और मुख फैलाये हुए काल के समान शत्रु पक्ष की सेना में प्रवेश करके जब प्राणपण से युद्ध और बाणों की वर्षा करने लगे, तब पाण्डव और सृञ्जयगण किस प्रकार उनका सामना करने को आगे बढ़े ? राजा दुर्योधन, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि जो वीर लोग आचार्य की रक्षा कर रहे थे, उन्होंने रणभूमि में क्या किया ? [illegible] द्रोणाचार्य [illegible] का वध कर रहे अर्जुन और भीमसेन पर किस प्रकार

सञ्जय उवाच—हते घटोत्कचे राजन्कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥ २० ॥
अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः ।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥
हैडिम्बस्यैव घातेन मोहो मामाविशन्महान् ।
एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद्घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥
तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ।
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥ २५ ॥
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ।
श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥ २७ ॥
ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नावबुध्यते ।
अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥

बाणों की वर्षा की । कौरवगण जयद्रथ के मारे जाने से और पाण्डवगण घटोत्कच के वध से बहुत ही कुपित हो रहे थे । दोनों दलों ने रात्रि के समय वैसा युद्ध किया॥१४।१८॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! उस भयङ्कर रात्रि के समय महाबली घटोत्कच के मारे जाने पर कौरव पक्ष के वीर प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करते हुए वेग से आक्रमण करके पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे । तब धर्मराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त दीनभाव से भीमसेन से कहा—हे भाई ! तुम शीघ्र कौरव सेना को रोकने का यत्न करो । मैं घटोत्कच की मृत्यु से अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूँ । भीमसेन से इतना कहकर राजा युधिष्ठिर, नेत्रों में आँसू भर-कर, अपने रथ पर बैठे हुए कर्ण का पराक्रम देख कर, बारम्बार लम्बी श्वास लेते हुए मोह को प्राप्त हो गये॥१९।२३॥युधिष्ठिर को अत्यन्त व्यथित देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे—हे महाराज ! साधारण पुरुषों की भाँति इस प्रकार शोक करना आपको उचित नहीं है । आपको इस प्रकार मोहाभिभूत न होना चाहिए । आप शोक के वेग को रोककर उठिए और युद्ध सञ्चालन का भार सँभालिए । आप इस प्रकार शोक से व्याकुल होंगे तो जय प्राप्त होने में संशय है॥२४।२६॥हे कुरुराज ! श्रीकृष्ण के वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर नेत्रों को पोंछकर बोले—हे महा-बाहो ! मैं धर्मों की परम गति को जानता हूँ । जो

वालेनाऽपि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ।
अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥ २९ ॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।
उषितश्च सहाऽस्माभिर्यावन्नाऽऽसीद्धनञ्जयः ॥ ३० ॥
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः ।
पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ ३१ ॥
आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान्प्रभो ।
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥
स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन ।
सैव मे परमा प्रीति राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥
भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे ।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥
पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः ।
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥ ३५ ॥
निशीथे पाण्डवं सैन्यमेताभ्यां प्रमर्दितम् ।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ ॥
अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव ।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥
एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः ।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ ३८ ॥

मनुष्य किसी के किये उपकार का विचार नहीं रखता, उस कृतघ्न पुरुष को ब्रह्महत्या करने का पातक लगता है। देखो, अर्जुन जब अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने के निमित्त गये थे तब घटोत्कच ने बालक होकर भी हमारी बहुत सहायता की थी। यह महावीर काम्यक वन में मेरी सेवा करता था और जब तक अर्जुन लौटकर नहीं आये तब तक हम लोगों के साथ ही रहा॥२९। ३०॥इस समर-विशारद वीर ने, गन्धमादन पर्वत पर जाने के समय, हम लोगों को दुर्गम स्थानों से उबारा और थकी हुई द्रौपदी को पीठ पर लादकर यथेष्ट स्थान पर पहुँचाया। महावीर घटोत्कच ने इस प्रकार हम लोगों की सहायता के निमित्त बहुत से दुष्कर कर्म किये। हे वासुदेव! भाई सहदेव के ऊपर जैसा मुझे स्वाभाविक स्नेह है, उससे दूगना स्नेह राक्षस घटोत्कच पर था। वह मेरा अत्यन्त भक्त और प्रीतिपात्र था। इसी कारण उसकी मृत्यु से मैं इतना शोकाकुल और मोहित हो रहा हूँ॥३१।३४॥हे यदुनन्दन! यह देखो, कौरव लोग मेरी सेना को मारकर भगा रहे हैं। महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण डटकर युद्ध कर रहे हैं। मस्त हाथी जैसे नल-वन को रौंदते हैं वैसे ही ये दोनों वीर पाण्डव सेना को नष्ट-भ्रष्ट किये डालते हैं। भीमसेन के बाहुबल और अर्जुन के विविध अस्त्रों के प्रति अनादर का भाव दिखाकर कौरवगण पराक्रम प्रकट कर रहे हैं। यह देखो, द्रोण, कर्ण

कथं वाऽस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन ।
हैडिम्बिः प्राप्तवान्मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥
कदर्थीकृत्य नः सर्वान्पश्यतः सव्यसाचिनः ।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥
यदाऽभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नाऽऽसीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ४१ ॥
निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥
उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥ ४३ ॥
व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥
तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन् ।
अल्पे च कारणे कृष्ण ततो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नाऽतिप्रियं मम ।
यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत्कर्तुं हि पाण्डवैः ॥ ४६ ॥
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः ।
एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥ ४७ ॥
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः ।
यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥

और दुर्योधन घटोत्कच की मृत्यु होने के कारण अपार आनन्द मना रहे हैं॥३५।३८॥हे श्रीकृष्ण ! हम लोगों के और तुम्हारे जीवित रहते, सबके सम्मुख ही, कर्ण कैसे महाबली पराक्रमी घटोत्कच को मार सका ?॥३९।४०॥जिस समय धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्रों ने अभिमन्यु को मारा था उस समय तो मत्त्रा अर्जुन समरभूमि में नहीं उपस्थित थे। हम सबको भी जयद्रथ ने व्यूह के द्वार पर रोक रक्खा था। उस समय अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य ही वास्तव में अभिमन्यु की मृत्यु का कारण हुए थे। उन्हीं ने अभिमन्यु के वध का उपाय बता दिया था। अश्वत्थामा ने अभिमन्यु की तलवार काटकर उसे निहत्था कर दिया था ॥४१।४३॥नीच कृतवर्मा ने उस विपन्न बालक के पार्श्वरक्षक और सारथी को मार डाला था। अन्य धनुर्धरों ने मिलकर उसे शस्त्रहीन देख करके मार डाला था। हे कृष्णचन्द्र ! सत्य पूछो तो अभिमन्यु के वध में जयद्रथ का साधारण ही अपराध था। उसी अपराध के कारण अर्जुन ने जयद्रथ को मार डाला और उनके इस कार्य में मुझे विशेष सन्तोष नहीं हुआ ॥४४।४६॥यदि पाण्डवों के लिए शत्रुवध ही उचित है तो, मेरी समझ में, पहले कर्ण और द्रोणाचार्य का वध होना चाहिए। हे पुरुषश्रेष्ठ ! यही दोनों हमारे दुःखों का मूल कारण हैं। इन्हीं दोनों की सहायता पाकर रण में दुर्योधन को ढाढ़स बँधा हुआ है। हे

तत्राऽब्रवीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ।
अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥
एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्राध्माप्य भैरवम् ॥ ५१ ॥
ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥ ५२ ॥
वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ।
ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान्दध्मुश्च दंशिताः ॥ ५३ ॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥ ५४ ॥
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥
एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् ।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥
तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसङ्कल्पं दह्यमानमिवाऽग्निना ॥ ५७ ॥
अभिगम्याऽब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
व्यास उवाच—कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ५८ ॥

माधव ! जिस युद्ध में द्रोण और कर्ण को अनुचरों सहित मारना चाहिए था, उस युद्ध में अर्जुन ने दूर-वासी जयद्रथ को मारा॥४६।४९॥अस्तु, अर्जुन भले ही यह कार्य न करें, किन्तु मुझे अवश्य कर्ण का वध करना चाहिए। इसलिए हे वीर ! मैं स्वयं कर्ण को मारने जाता हूं।यह देखो,महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्य की सेना से युद्ध कर रहे हैं।हे कुरुराज!राजा युधिष्ठिर यों कहकर भयानक धनुष चढ़ाकर शङ्ख बजाते हुए स्फूर्ति से कर्ण की ओर चले॥४९।५१॥इसी समय शिखण्डी असंख्य रथ, तीन सौ हाथी,पाँच सौ घोड़े और तीन हजार प्रभद्रक-सेना साथ लेकर धर्मराज युधिष्ठिर के पीछे चले। पाञ्चाल और पाण्डवगण भेरी और शङ्ख बजाने लगे॥५२।५४॥तब महाबाहु वासुदेव ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! यह देखो, धर्मराज क्रुद्ध होकर कर्ण को मारने के निमित्त जा रहे हैं। इसलिए उनको यों अकेले वीर कर्ण के सम्मुख जाने देना हम लोगों के लिये कदापि उचित नहीं है। अब श्रीकृष्ण ने स्फूर्ति के साथ शीघ्रता से घोड़ों को हाँक दिया और दूर पहुँचे हुए राजा युधिष्ठिर को रोकने के निमित्त वे आगे बढ़े॥५४।५६॥हे महाराज! इसी समय शोकपीड़ित, सन्तप्तचित्त, क्रोध की अग्नि से जल रहे-से और सहसा कर्ण को मारने के निमित्त जा रहे धर्मपुत्र युधिष्ठिर के सम्मुख महर्षि वेदव्यास आ गये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—हे महाराज !

सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्तिं रक्षितवान्हि सः ।
न चाऽगाद्‌ द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे ॥ ५९ ॥
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ।
वध्यमानेषु चाऽस्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर ।
ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥ ६१ ॥
दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद ।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥
तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे ।
मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥
कौरवान्समरे राजन्प्रतियुध्यस्व भारत ।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६५ ॥
नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवाऽनुचिन्तय ।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥ ६६ ॥
सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः ।
इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

संग्राम में कर्ण के सम्मुख उपस्थित रहकर भी जो अर्जुन अब तक जीवित हैं, इसे अपना बड़ा भाग्य समझिए । कर्ण ने अर्जुन को मारने के निमित्त ही वह अनिवार्य शक्ति जुगो रक्खी थी । यह बड़े भाग्य की बात है कि अब तक अर्जुन कर्ण से द्वन्द्वयुद्ध करने के निमित्त नहीं गये । ये दोनों वीर परस्पर में पूरी लाग-डाट रखते हैं और सामना होने पर अवश्य एक दूसरे के नाश के निमित्त दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हैं ॥५७।६०॥ अस्त्रविद्या में अर्जुन बढ़े चढ़े हैं, इसलिए जब कर्ण के सभी अस्त्र निष्फल हो जाते तब वे पीड़ित होकर, प्राणसङ्कट उपस्थित होने पर, इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति का प्रयोग करते और तब तुमको दारुण सङ्कट का सामना करना पड़ता । भाग्यवश कर्ण ने आज तक वैसा नहीं किया और उस शक्ति से राक्षस घटोत्कच को मार डाला । सत्य तो यह है कि कर्ण की बुद्धि को दैव ने भ्रष्ट कर दिया और अब शक्ति समीप न रहने के कारण कर्ण का काल निकट आ गया है । दैव तुम्हारे अनुकूल है; उस दैव की कृपा से ही उस शक्ति के द्वारा घटोत्कच का नाश हुआ है।इसलिए तुम क्रोध या शोक मत करो। हे युधिष्ठिर।संसार के प्रत्येक प्राणी को एक दिन अवश्य मरना है॥६०॥६४॥हे भारत ! अब तुम अपने सब भाइयों और शूर वीर राजाओं के साथ मिलकर कौरवों से युद्ध करो । हे तात ! आज के पाँचवें दिन तुम्हें विजय प्राप्त होगी; यह सब पृथ्वी तुम्हारी हो जायगी। हे पुरुषसिंह!तुम नित्य धर्म का ध्यान धरो और प्रसन्नता-

पूर्वक उच्च विचार, दया, तप, दान, क्षमा और सत्य का पालन तथा अनुशीलन करते रहो। यह निश्चय है कि जहाँ धर्म है, वहाँ जय है। हे कुरुश्रेष्ठ! महर्षि वेदव्यास जी युधिष्ठिर से यों कहकर वहीं पर अन्तर्द्धान होगये॥ ६४।६७॥

द्रोणपर्व का एक सौ तिरासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८३ ॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥ १८४ ॥

सञ्जय उवाच—व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥
घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम् ।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव ।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ ३ ॥
त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥ ४ ॥
अभिद्रव रणे हृष्टो न च ते भीः कथञ्चन ।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥ ५ ॥
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनञ्जयः ॥ ७ ॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।
तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥ ८ ॥
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।
तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ॥ ९ ॥

एक सौ चौरासी अध्याय ॥ १८४ ॥

सञ्जय कहते हैं— हे भरतश्रेष्ठ ! व्यासदेव के वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वयं कर्ण को मारने का विचार छोड़ दिया। उस रात्रि में कर्ण के हाथों घटोत्कच की मृत्यु होने से दुःख और क्रोध के मारे व्याकुल युधिष्ठिर ने भीमसेन को अकेले आपकी विशाल सेना का सामना करते देखकर धृष्टद्युम्न से कहा— हे वीर ! तुम द्रोणाचार्य को रोको। तुम तो द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त ही खड्ग, कवच, धनुष और बाण धारण किये हुए अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए हो। तुम उत्साह और हर्ष के साथ युद्ध करने जाओ, तुम्हें द्रोण से कुछ भी भय नहीं है। जनमेजय, शिखण्डी, यशोधर, दुर्मुख के पुत्र, नकुल, सहदेव, पुत्रों और भाइयों सहित महाराज द्रुपद और विराट, महाबली सात्यकि, अर्जुन, प्रभद्रकगण, केकयगण और द्रौपदी के पाँचों पुत्र, ये सब मिलकर द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त वेग से आ रहे हैं। सब रथी, हाथियों तथा घोड़ों के सवार और सब पैदल सेना मिलकर अकेले महारथी द्रोण को मारकर रथ से गिराने का पूर्ण उद्योग करें॥ १।९॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।
आगच्छतस्तान्सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ १० ॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध इच्छन्द्रोणस्य जीवितम् ।
ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥ १२ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥ १३ ॥
नाऽभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ।
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका ॥ १४ ॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।
सर्वे ह्यासन्निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥ १६ ॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।
ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।
अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ।
निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! तब पूर्वोक्त सब योद्धा, राजा युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार, द्रोण को जीतने के निमित्त वेग से आगे बढ़े । शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने समरभूमि में पूर्ण उद्योग से युद्ध करने के निमित्त सहसा आये हुए सब योद्धाओं से स्थिर भाव से सामना किया। यह देखकर राजा दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी सेना को द्रोणाचार्य की रक्षा करने के निमित्त आज्ञा दी । वे स्वयं सारी सेना साथ लेकर सुसज्जित हो पूर्ण उद्योग से आचार्य के प्राणों की रक्षा करने के निमित्त पाण्डवों की सेना की ओर बढ़े॥१०।१२॥ पाण्डव दल और कौरव दल के योद्धा, सारी सेना और सम्पूर्ण वाहन थक गये थे तथापि वे परस्पर तर्जन गर्जन करते हुए दारुण संग्राम करने लगे । हे महाराज ! उस समय महारथी लोग निद्रा के मारे अन्धे से हो रहे थे और अत्यन्त थक चुके थे इसलिए वे निश्चेष्ट से हो रहे थे । वह प्राणियों के प्राण हरनेवाली तीन पहर की घोर रात्रि उन लोगों को हजार पहर की दारुण कालरात्रि सी जान पड़ने लगी॥१२।१५॥ उस आधी रात्रि के समय निद्रा से चूर और थकी हुई सेना छिन्न भिन्न होने, कटने और मरने लगी । दोनों पक्ष के क्षत्रिय दीनचित्त, उत्साहरहित और अस्त्र शस्त्र हीन होने पर भी लोकलज्जा और अपने आर्य क्षत्रियधर्म के विचार से रण से नहीं हटते थे, अपनी सेना में डटे हुए खड़े थे । निद्रा के

तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम् ।
स्वप्नायमानांस्त्वपरे परानंतिविचेतसः ॥ २० ॥
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥ २१ ॥
अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः ॥ २२ ॥
संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथाऽपरान् ।
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥
हन्यमानमथाऽऽत्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाऽभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २४ ॥
तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः सन्नादयन्दिशः ॥ २५ ॥
श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा चाऽऽवृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चाऽत्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २७ ॥
ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युपिते पुनः ।
संसाधयिष्यथाऽन्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥

मारे सैनिकों के हाथों से अस्त्र-शस्त्र गिरते जाते थे। वे किसी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकते थे। वे सब हाथियों तथा घोड़ों की पीठों पर और रथों पर, जहाँ के तहाँ, सोने लगे॥१५।१९॥अन्य योद्धा लोग, जो कुछ सचेत थे, अनायास ही उन्हें मारकर गिराने लगे। बहुत लोग पड़े-पड़े स्वप्न देखने लगे और स्वप्न में ही शत्रुओं को देखकर तरह-तरह के वाक्य कहते हुए शस्त्र चला बैठते थे, जिनसे कहीं शत्रु मरते थे और कहीं वे अपने ही पक्षवालों को नष्ट कर देते थे। हे महाराज ! हमारी सेना के और शत्रुदल के सभी लोग निद्रा से अन्धे से हो रहे थे। निद्रा में ही तरह-तरह के अनुचित वचन कह रहे थे॥१९।२१॥निद्रा के मारे उनकी आँखें लाल हो रही थीं, तथापि युद्ध करना अपना कर्तव्य और धर्म समझकर वे डटे थे। उस दारुण अँधेरे के बीच रणभूमि में कुछ निद्रा में चूर वीर पुरुष, उसी दशा में इधर-उधर जाकर एक दूसरे का वध कर रहे थे। शूर लोग शूरों को इस प्रकार मार रहे थे। बहुत लोग निद्रा में ऐसे चूर हो रहे थे कि उन्हें कुछ भी प्रतीत नहीं होता था कि उन्हें कोई शत्रु मारने आ रहा है, या मार रहा है ॥२२।२४॥हे राजेन्द्र ! महावीर अर्जुन सब सैनिकों की यह अवस्था देखकर ज़ोर से कहने लगे—हे सैनिक योद्धाओ ! तुम लोग और तुम्हारे वाहन थक गये हैं। सब लोग निद्रा के मारे अन्धे से हो रहे हो। चारों ओर धूल छाई है और रात्रि का भी घोर अँधेरा फैला हुआ है। इसलिए तुम लोग चाहो तो कुछ देर तक इसी प्रकार यहीं रणभूमि में युद्ध बन्द करके सो जाओ। थोड़ी देर में चन्द्रमा का उदय होने पर, निद्रा और थकान दूर होने पर, फिर स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा से सब कौरव और पाण्डव युद्ध करेंगे॥२५।

तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशाम्पते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चाऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ २९ ॥
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥ ३० ॥
तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तत्र च भारत ॥ ३१ ॥
तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाऽक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ ३२ ॥
तत्सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन्राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥
सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३४ ॥
त्वयि वेदास्तथाऽस्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चाऽनघ ॥ ३५ ॥
यच्चाऽऽश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान्वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३६ ॥
इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन्विशाम्पते ॥ ३७ ॥
अश्वपृष्ठेषु चाऽप्यन्ये रथनीडेषु चाऽपरे ।
गजस्कन्धगताश्चाऽन्ये शेरते चाऽपरे क्षितौ ॥ ३८ ॥

२८॥हे प्रजानाथ ! सब धर्मों के ज्ञाता योद्धा लोग और सब सैनिक जन धार्मिक अर्जुन के ये उदार वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन की यह सम्मति सबको उचित जान पड़ी। कौरव पक्ष के सब लोग इस पर प्रसन्न होकर कहने लगे—हे कर्ण ! हे महाराज दुर्योधन ! पाण्डवों की सेना ने युद्ध बन्द कर दिया है, अब तुम भी युद्ध बन्द कर दो॥२९।३०॥हे महाराज ! तब अर्जुन के कहने के अनुसार कौरव और पाण्डव पक्ष के लोगों ने युद्ध बन्द कर दिया। सब सैनिक, देवता और ऋषि परम प्रसन्न होकर अर्जुन के उदार धर्मानुकूल वचनों की प्रशंसा करने लगे। थके और निद्रा से चूर सैनिकगण अर्जुन के दया-पूर्ण वचनों की प्रशंसा करके क्षण भर के लिए विश्राम करने लगे॥३१।३३॥हे राजेन्द्र ! आपके सैनिक विश्राम सुख का अवकाश पाकर अर्जुन की यों प्रशंसा करने लगे—हे निष्पाप ! तुम में वेद, सब अस्त्र, बुद्धि, पराक्रम, धर्म और प्राणियों के प्रति दया निरन्तर वर्तमान है। इसी से हे अर्जुन ! हम लोगों को विश्राम और दिलासा मिला है। इसलिए हम तुम्हारा कल्याण चाहते हैं। हे वीर ! तुम शीघ्र ही अपने मनोरथ पाओ॥३४।३६॥हे राजेन्द्र ! महारथी लोग अर्जुन की इस प्रकार प्रशंसा करके निद्रा के मारे चुप होकर विश्राम करने लगे। कोई घोड़े की पीठ पर, कोई हाथी के हौदे पर, कोई रथ के ऊपर जहाँ के तहाँ सोने और

सयुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चाऽन्ये नराः सुप्ताः पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥
गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥ ४० ॥
सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥ ४१ ॥
समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विक्षतां महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥
सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ ।
युद्धाद्विरम्य सुषुपुः श्रमेण महताऽन्विताः ॥ ४३ ॥
तत्तथा निद्रया भग्नमबोधं प्रास्वपद्बलम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाऽद्भुतम् ॥ ४४ ॥
ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ४५ ॥
ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ ४६ ॥
दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥

विश्राम करने लगे । अनेक शस्त्र, गदा, खड्ग, परश्वध, प्रास आदि धारण किये, कवच पहने सब योद्धा अलग-अलग सोने लगे॥३७।३९॥निद्रा से अन्धे हो रहे हाथी सर्प-सदृश सूँड़ों से पृथ्वी की धूल उड़ाते, और पृथ्वी को अपने निःश्वास से शीतल करते हुए, जहाँ-तहाँ पड़े सो रहे थे। ऐसे श्वास ले रहे थे और फुफकार रहे महासर्पों से युक्त पर्वतों के समान शोभायमान थे। सुनहरी लगामों से युक्त घोड़े गर्दन के बालों से लगे हुए, रथों के युग धारण किये थे और बारम्बार टापें पटककर, खोदकर, बराबर पृथ्वी को ऊबड़-खाबड़ बना रहे थे। इस प्रकार घोड़े भी जहाँ के तहाँ विश्राम कर रहे थे। थके हुए घोड़े, हाथी और योद्धा लोग युद्ध बन्द करके विश्राम करने लगे॥४०।४३॥उस समय सारी सेना ऐसी जान पड़ने लगी कि किसी चितेरे ने चित्रपट में चित्र बना दिये हैं। हे महाराज ! परस्पर के बाणों से जिनके अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये हैं ऐसे कुण्डलों से अलङ्कृत क्षत्रिय, हाथियों के मस्तकों पर पड़े हुए, सो रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो वे कामिनियों के कुचकलशों से लिपटे हुए सो रहे हैं ॥४४।४५॥हे महाराज ! कुछ देर के पश्चात् कामिनियों के कपोल के समान श्वेत, नयनों को आनन्द देनेवाले, चन्द्रमा का उदय हुआ। वे उदयाचल के सिंह के समान पूर्व दिशारूप कन्दरा से निकलकर किरण रूप केसरों से (सिंह की गर्दन के केशों से) सब दिशाओं को प्रकाशित और अन्धकाररूप हाथियों के झुण्ड को विदीर्ण करते हुए उदय हुए। शिव के

हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्ताद्भगवान्पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसञ्ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥ ४९ ॥
अरुणस्य तु तस्याऽनु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ५० ॥
उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥
ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाऽभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाऽऽशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥
प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तश्चरास्ततः ॥ ५३ ॥
बोध्यमानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥
यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत् ।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥
ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते ।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥ ५६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

वाहन नन्दी के समान, कामदेव के पुष्पमय धनुष के समान, नई दुलहिन के हास्य के समान श्वेत अतीव मनोहर भगवान् कुमुदिनी-नायक चन्द्रमा धीरे-धीरे अपनी कान्ति फैलाने लगे। उनकी सुनहरी किरणें चारों ओर फैलने लगीं। पहले चन्द्र की अरुण आभा प्रकट हुई। उस आभा के पीछे धीरे-धीरे सुनहरी किरणें निकलने लगीं॥४९।५०॥इसके पश्चात् प्रभा से अन्धकार को दूर करती हुई चन्द्रमा की किरणें धीरे-धीरे सब दिशाओं को, आकाश को और पृथ्वी को प्रकाशित करने लगीं। इसके पश्चात् क्षण भर में सारा जगत् प्रकाशमान हो उठा। संपूर्ण भुवन प्रकाशित होने पर वह रात्रि दिन के समान जान पड़ने लगी।उस समय रात्रि में विचरनेवाले जीव विचरने लगे और कुछ जीव जहाँ के तहाँ पड़े रहे॥५१।५३॥चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से सारी सेना वैसे ही जाग उठी जैसे सूर्य की किरणों के स्पर्श से कमल खिल जाते हैं। चन्द्रमा के उदय से जैसे सागर उमड़ पड़ता है वैसे ही चन्द्रोदय होने पर सारा सैन्यसागर खलबला उठा। हे राजेन्द्र ! उसके पश्चात् लोकसंहारकारी युद्ध फिर आरम्भ हो गया। श्रेष्ठ गति प्राप्त करने के निमित्त योद्धा लोग प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे ॥५४।५६॥

द्रोणपर्व का एक सौ चौरासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८४ ॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १८५ ॥

सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याऽब्रवीदिदम् ।
अमर्षवशमापन्नो जनयन्हर्षतेजसी ॥ १ ॥
दुर्योधन उवाच—न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः ।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥ २ ॥
यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च ।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥ ४ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥
न पाण्डवेया न वयं नाऽन्ये लोके धनुर्धराः ।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान्द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्भवान्हन्याद्दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥
स भवान्मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान्विशेषतः ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥

एक सौ पचासी अध्याय ॥ १८५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! इसी समय क्रोधान्ध हो रहे दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के समीप आकर उन्हें उत्तेजित करने के लिए यों कहा—हे आचार्य ! दीन, थके हुए, विश्राम कर रहे, ग्लानि को प्राप्त हो रहे शत्रुओं के प्रति उपेक्षा दिखलाना वीर पुरुष के लिए उचित नहीं है । विशेषकर लब्धलक्ष्य अथवा सम्मुख उपस्थित प्रबल शत्रु को छोड़ देना बड़ी भारी भूल है । हम लोगों ने आपका प्रिय करने के विचार से ही ऐसी दशा में पाण्डवों की सेना को नहीं मारा । इस समय पाण्डव लोग विश्राम करके बहुत ही प्रबल हो गये हैं और हम लोग तेज तथा बल से हीन हो रहे हैं ॥१-४॥ हे भगवन् ! जितने ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य अस्त्र हैं, वे सब विशेष रूप से आपको मालूम हैं । मैं सत्य कहता हूँ, आप जब मन लगाकर युद्ध कर रहे हों तब क्या पाण्डव, क्या हम लोग और क्या संसार के अन्य धनुर्द्धर वीर पुरुष, कोई भी आपकी बराबरी नहीं कर सकता । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप सब अस्त्रों को भली भाँति जानते हैं, इसलिए दिव्य अस्त्रों से देवता, दैत्य, गन्धर्व आदि सहित इन लोकों को नष्ट कर सकते हैं । पाण्डवगण आपके पराक्रम से डरते रहते हैं । किन्तु आप अपने तुल्य समझकर, या शिष्य होने का खयाल करके, अथवा मेरे अभाग्य के कारण, पाण्डवों के प्रति दया दिखाते हैं, उनको नहीं मारते ॥५-८॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! इस प्रकार दुर्योधन के कहने

स्थविरः सन्परं शक्त्या घटे दुर्योधनाऽऽहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥ १० ॥
अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ।
यद्भवान्मन्यते चापि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ११ ॥
तद्वै कर्ताऽस्मि कौरव्य वचनात्तव नाऽन्यथा ।
निहत्य सर्वपञ्चालान्युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥ १२ ॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन्सत्येनाऽऽयुधमालभे ।
मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ।
तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ १४ ॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम्
खाण्डवे येन भगवान्प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ॥ १५ ॥
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ।
यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चाऽन्ये बलगर्विताः ॥ १६ ॥
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चाऽपि विदितं तव ।
गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥ १७ ॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना ।
निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ १९ ॥

पर उनके वचनों से कुपित और उत्तेजित होकर, क्रोध करके, आचार्य कहने लगे—हे दुर्योधन ! मैं वृद्ध होने पर भी यथाशक्ति युद्ध कर रहा हूँ। मैं अस्त्रों को भली भाँति जानता हूँ, किन्तु ये सब शत्रु पक्ष के सैनिक उन अस्त्रों को नहीं जानते । यद्यपि अस्त्र न जाननेवालों को अस्त्रों से नष्ट करना आर्यों का धर्म नहीं है, तो भी अब मैं तुम्हारी जीत के निमित्त यही तुच्छ कार्य करूँगा । हे कौरव्य ! तुम्हारी इच्छा यही है। वह इच्छा शुभ हो या अशुभ, न्याय्य हो या अन्याय्य, किन्तु तुम्हारे कहने से उसे मैं पूर्ण करूँगा ॥९।१२॥हे राजेन्द्र! मैं शस्त्र छूकर सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि अब युद्ध में पराक्रम प्रकट करके जब सब पाञ्चालों को मार डालूँगा,तभी कवच खोलूँगा। हे महाराज ! तुम जो अर्जुन को इतनी देर युद्ध करने के कारण थका हुआ समझते हो, सो तुम्हारी भूल है । मैं उनके पराक्रम का ठीक-ठीक वर्णन करता हूँ, सुनो॥१२।१४॥कुपित होकर युद्ध कर रहे अर्जुन को देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई नहीं जीत सकता । तुम जानते हो कि खाण्डव वन के लिए होनेवाले युद्ध में वीर अर्जुन ने साक्षात् इन्द्र का सामना किया और बाणों की वर्षा से उन्हें हटा दिया॥ बल का गर्व रखनेवाले यक्ष, नाग और दैत्य आदि अनेकों वीरों को अर्जुन ने मारा है, यह भी तुमसे छिपा नहीं है॥१४।१७॥महावीर अर्जुन ने घोषयात्रा

विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम् ।
प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथा बलमिदं तव ॥ २० ॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते ।
सञ्जय उवाच—तं तदाऽभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ॥ २१ ॥
द्रोणं तव सुतो राजन्पुनरेवेदमब्रवीत् ।
अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥ २२ ॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाऽद्य भारतीम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽब्रवीत् ।
को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥
अक्षयं क्षपयेत्कश्चित्क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।
तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ॥ २५ ॥
नाऽसुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।
मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ॥ २६ ॥
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान्को व्रजेद्गृहान् ।
त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि ।
गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम् ॥ २८ ॥

के अवसर पर तुम्हें जीतकर पकड़ ले जानेवाले चित्रसेन आदि गन्धर्वों को जीतकर तुम्हें छुड़ाया था। प्रतापी अर्जुन ने देवताओं से भी न जीते जा सकनेवाले निवातकवच और हिरण्यपुर निवासी दानवों को मारा है। देव शत्रु दानवों को परास्त करनेवाले अर्जुन को भला साधारण मनुष्य कैसे जीत सकते हैं? हे राजेन्द्र! तुम्हारे सामने ही इन लोगों के साथ यत्न करने पर भी ... तुम्हारी सेना का संहार कर डाला है॥१७-२१॥ सञ्जय कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार आचार्य के मुख से अर्जुन की बड़ी प्रशंसा सुनकर अत्यन्त कुपित हो दुर्योधन ने फिर कहा—मैं, दुःशासन, कर्ण, मामा शकुनि, ये सब [illegible] सेना के दो भाग करके आज अर्जुन पर आक्रमण करेंगे और उसे मार डालेंगे। आप यही समझिए। आज निश्चय अर्जुन अवश्य ही मारा जायगा॥२१-२३॥

दुर्योधन की बात सुनकर द्रोणाचार्य हँसकर उनके इस विचार का अनुमोदन करके बोले—अच्छी बात है, जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। किन्तु मैं फिर यह कहे देता हूँ कि अर्जुन को मारना कोई हँसी खेल का काम नहीं है। क्षत्रियश्रेष्ठ गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले तेजस्वी अजेय अर्जुन को कौन क्षत्रिय इस समय में मार सकता है? मुझे तो अर्जुन को जीतनेवाला कोई नहीं देख पड़ता। शस्त्रधारी अर्जुन को कुबेर, इन्द्र, यमराज, वरुण आदि लोकपाल और असुर, नाग, राक्षस आदि भी सब नहीं मार सकते तब मनुष्य की तो बिसात ही क्या है॥२४-२६॥ हे भारत! तुम जो अर्जुन को मारने की बात कह रहे हो, यह मूढ़ लोगों का प्रलाप है। युद्ध में अर्जुन के सम्मुख जाकर कौन मनुष्य कुशलपूर्वक घर को लौट सकता है? तुम सब पर सन्देह करते हो, निष्ठुर

त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ।
इमान्किं क्षत्रियान्सर्वान्घातयिष्यस्यनागसः ॥ २९ ॥
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयाऽर्जुनम् ।
एष ते मातुल प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे ।
एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत्कितवः शठः ॥ ३१ ॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ।
त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥
असकृच्छून्यवन्मोहाद्धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥
पाण्डुपुत्रान्हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ।
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥ ३४ ॥
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह ।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ।
दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥ ३६ ॥
कृतकृत्योऽनृणश्चाऽसि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ।
इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

और पापी हो। इसी से जो लोग तुम्हारा कल्याण चाहते हैं, तुम्हारे हित में तत्पर हैं, उन्हें तुम कटु वचन कहते हो, उन पर अविश्वास करते हो। अच्छी बात तो यह है कि अपनी जीत के निमित्त अर्जुन के सम्मुख जाओ, देर न करो। जाकर अर्जुन को मारने का विचार पूर्ण करो। तुम यदि अर्जुन से युद्ध करने का साहस करते हो तो क्या हुआ? अन्ततः तुम भी तो क्षत्रिय हो और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हो। मैं यही कहता हूँ कि इन निरपराध क्षत्रियों का नाश क्यों करा रहे हो! तुम्हीं इस वैर की जड़ हो, इसलिए स्वयं अर्जुन के सम्मुख जाकर युद्ध करो और अपना विचार पूर्ण कर लो॥२९।३०॥ हे दुर्योधन! कपट का जुआ खेलनेवाले ये तुम्हारे मामा शकुनि हैं। ये भी बुद्धिमान् और पराक्रमी हैं। सो ये भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करने को अर्जुन से युद्ध करने जायँ। ये पाँसों के खेल में निपुण, कपटी, कुटिल, शठ और धोखा देने में अद्वितीय हैं। ये अवश्य युद्ध में पाण्डवों को जीत लेंगे। तुमने अपने पिता धृतराष्ट्र को सुनाकर, कर्ण के साथ हर्षपूर्वक बारम्बार मोहवश, गर्व करके कहा है कि हे तात! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, ये तीनों मिलकर समर में पाण्डवों को मार डालेंगे। हर सभा में इस प्रकार के तुम्हारे व्यर्थ प्रलाप मैं सुन चुका हूँ। सो अब अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो और कर्ण तथा दुःशासन के साथ अपने कथन

को सुख कर दिखाओ॥३१।३५॥यह देखो, तुम्हारे शत्रु पाण्डव-अर्जुन निःशङ्क होकर आगे ही खड़े हैं। अब जाकर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उनसे युद्ध करो। मेरी समझ में विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अर्जुन से सम्मुख युद्धकर उनके हाथ से मरना भी तुम्हारे लिए प्रशंसा की बात होगी। तुम इच्छापूर्वक दान कर चुके, भोग कर चुके, विद्या पढ़ चुके और इच्छानुसार ऐश्वर्य प्राप्त कर चुके। अब देवताओं, पितरों और ऋषियों के ऋण से मुक्त और कृतकृत्य हो। इसलिए मृत्यु का भय छोड़कर अर्जुन से युद्ध करो ॥३५।३६॥हे महाराज ! कुपित द्रोणाचार्य दुर्योधन से यों कहकर युद्ध करने के निमित्त शत्रुओं की ओर बढ़े। उस समय कौरव दल के दो भाग हो गये। एक भाग आचार्य के साथ और एक भाग दुर्योधन के साथ रहकर पाण्डवों की सेना से घोर युद्ध करने लगा॥३७॥

द्रोणपर्व का एक सौ पचासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८५ ॥

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सञ्जय उवाच—त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥
अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयाञ्चक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाऽम्बरम् ॥ २ ॥
प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनाऽरुणीकृतम् ।
तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलात् ॥ ३ ॥
ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः ।
दिवाकरस्याऽभिमुखं जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥ ४ ॥
ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत्सपञ्चालान्दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५ ॥
द्वैधीकृतान्कुरून्दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान्सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥ ६ ॥
स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ७ ॥

एक सौ छियासी अध्याय ॥ १८६ ॥

सञ्जय कहते हैं —हे महाराज ! तीन हिस्से रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, एक हिस्से शेष थी, इसी समय उत्साह-पूर्ण कौरवों और पाण्डवों का घोर युद्ध फिर होने लगा। ठीक समय पर चन्द्रमा की कान्ति को मिटाते और आकाश को अरुण आभा से रँगते हुए सूर्य के सारथी अरुण प्रकट हुए। उनकी अरुण आभा से परिपूर्ण सूर्यदेव का मण्डल भी सुवर्ण-निर्मित चक्र के समान पूर्व दिशा में विराजमान हुआ। उस समय कौरव और पाण्डव पक्ष के योद्धा लोग रथ, घोड़े, हाथी, पालकी आदि वाहनों को छोड़कर सूर्य-मण्डल के अभिमुख खड़े हो, हाथ जोड़कर, सन्ध्योपासन और गायत्री का जप करने लगे। हे महाराज! इसके पश्चात् कौरव पक्ष की सेना के दो दल हो गये। वीर द्रोणाचार्य दुर्योधन के दल को आगे करके सोमकों, पाञ्चालों और पाण्डवों की ओर वेग से बढ़े ॥१।५॥यह देखकर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन!

अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥

भीमसेन उवाच—अर्जुनाऽर्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद्वचो मम ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥
अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥ १० ॥
सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणाऽऽनृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यामिमान्कुरु ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच—स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च ।
कर्णद्रोणावति क्रम्य समन्तात्पर्यवारयत् ॥ १२ ॥
तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १३ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं वर्धमानमिवाऽनलम् ।
अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥ १४ ॥
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।
तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥ १५ ॥
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥

तुम द्रोण को दाहनी ओर और अपने शत्रु इन कौरवों को बाईं ओर रखकर युद्ध करो। अर्जुन ने उसी प्रकार रथ ले चलने के लिए श्रीकृष्ण से कहा और द्रोणाचार्य कर्ण के बाईं ओर जाकर युद्ध करने लगे ॥६।७॥तब श्रीकृष्ण के अभिप्राय को जानकर शत्रुदमन भीमसेन ने युद्धभूमि के अग्रभाग में स्थित अर्जुन से कहा—हे वीर! मेरी बात सुनो। क्षत्राणी जिस लिए पुत्र उत्पन्न करती है वही कार्य कर दिखाने का यह अवसर है। इस आये हुए सुअवसर से यदि तुम अपने बल वीर्य के अनुरूप काम करके कल्याण न प्राप्त करोगे, तो लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और तुम्हारा यह कार्य अत्यन्त नृशंस और नीच होगा। अपने पराक्रम के द्वारा सत्य, श्री धर्म और यश से ऋण से मुक्त होओ, दक्षिण ओर से शत्रु सेना को छिन्न-भिन्न करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो॥८।११॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस प्रकार श्रीकृष्ण और भीमसेन के प्रेरणा करने पर अर्जुन, कर्ण और द्रोण को पीछे छोड़कर, चारों ओर से शत्रु सेना का संहार करने लगे। युद्धभूमि के अग्र भाग में स्थित होकर, श्रेष्ठ क्षत्रियों को मारकर, पराक्रम प्रकट कर रहे अर्जुन को कोई भी क्षत्रिय अपने पराक्रम से नहीं रोक सका। बढ़ती हुई अग्नि के समान प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित हो रहे अर्जुन को चारों ओर से घेरकर भी कोई उनका कुछ नहीं कर सका; बल्कि उनके बाणों की अग्नि से चारों ओर की सेना शीघ्रता के साथ भस्म होने लगी॥१२।१४॥तब दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ये तीनों मिलकर अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे। उत्तम अस्त्रों के ज्ञाता अर्जुन ने अपने श्रेष्ठ अस्त्रों से उन सबके अस्त्रों और बाणों को व्यर्थ कर दिया और उन पर भी बड़ी स्फूर्ति से असंख्य बाण बर-

सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
उद्भूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् ।
न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाऽभवत् ।
नैव ते न वयं राजन्प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥ १९ ॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः ।
विरथा रथिनो राजन्समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च ।
हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥ २१ ॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः ।
हतान्गजान्समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥ २२ ॥
गतसत्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।
ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥
आतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥ २४ ॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।
भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेरुर्मम्लुश्च भारत ।
आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २६ ॥

मारे। शक्तिशाली अर्जुन ने बाणों से बाणों को व्यर्थ करके सबको दस दस तीक्ष्ण बाण मारे॥१४।१७॥ उस समय सेना के इधर उधर दौड़ने और भागने से धूल ही धूल उड़ने लगी। बाण भी निरन्तर बरस रहे थे। चारों ओर घना अँधेरा सा छा गया और बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। उस समय धूल की अधिकता से आकाश, पृथ्वी या दिशाएँ कुछ भी नहीं सूझता था। आँखों में धूल गिरने से सब योद्धा और वाहन मूढ़ और अन्धे से हो गये। कौरव या पाण्डव दल के लोगों में से कोई किसी को न पहचान सकता था। केवल नाम और शब्द सुनकर अनुमान से सब लोग परस्पर युद्ध कर रहे थे॥१७।२०॥रथ नष्ट हो जाने पर रथी लोग परस्पर भिड़ गये। एक दूसरे के केश पकड़कर, हाथ लपेटकर, कवच पकड़-कर परस्पर प्रहार करने लगे। डरे हुए रथी योद्धा घोड़ों और सारथियों के मरने पर रथ पर बैठे थे और वहीं शत्रु के प्रहार से मर जाने पर भी, जीवित से जान पड़ते थे। बहुतसे घोड़ों और हाथियोंके सवार पर्वततुल्य हाथियों और घोड़ों की पीठ से लिपट गये थे और शत्रु के प्रहार से मरकर वैसे ही लिपटे हुए देख पड़ते थे॥२०।२३॥इधर महारथी वीर द्रोणा-चार्य रणभूमि के मध्य भाग से शत्रुओं का संहार करते हुए उत्तर ओर जाकर बिना धुएँ की प्रज्वलित अग्नि के समान शोभायमान हुए। पाण्डव पक्ष के

नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ।
केचिदासन्निरुत्साहाः केचित्क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥
विस्मिताश्चाऽभवन्केचित्केचिदासन्नमर्षिताः ।
हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नराधिपाः ॥ २८ ॥
अपरे दशनैरोष्ठानदशन्क्रोधमूर्च्छिताः ।
व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चाऽपरे भुजान् ॥ २९ ॥
अन्ये चाऽन्वपतन्द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः ।
पाञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।
ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रति ययू रणे ॥ ३१ ॥
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।
द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युधि ।
तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हता न्यपतन्भुवि ।
ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकैकेयसृञ्जयान् ॥ ३४ ॥
मत्स्यांश्चैवाऽजयत्कृत्स्नान्भारद्वाजो महारथान् ।
ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५ ॥
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।
तन्निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥

सैनिक अपने तेज से प्रज्वलित द्रोणाचार्य को रण क्षेत्र के मध्य भाग से आते देख भय विह्वल होकर काँपने लगे। दानवगण जैसे इन्द्र को परास्त करने का साहस नहीं कर सकते वैसे ही मस्त हो रहे हाथी के समान शत्रु सेना को युद्ध के निमित्त ललकार रहे द्रोणाचार्य के सम्मुख ठहरने का या उनको जीतने का साहस कोई नहीं कर सकता था। कई एक योद्धा सुस्त हो गये, कई एक शूर और साहसी योद्धा क्रुद्ध हो उठे और कई एक लोग द्रोणाचार्य के रूप और पराक्रम को देखकर चकित हो गये॥२३।२७॥कोई नरेश क्रोध के मारे हाथ में हाथ मसलने लगा, कोई दाँतों से होंठ चबाने लगा, कोई योद्धा शस्त्र उठाने और उछालने लगा, कोई वीर अपने दण्ड मसलने लगा, और कुछ लोग प्राणों का मोह छोड़कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने लगे। पाञ्चालगण विशेष रूप से द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित और व्यथित होकर भागने लगे॥२७।३१॥तब महाराज द्रुपद और राजा विराट, दोनों, उस प्रकार संग्राम में संहार करते हुए घूम रहे अत्यन्त दुर्जय द्रोणाचार्य से युद्ध करने को आगे बढ़े। द्रुपद के तीन पोते, महाधनुर्धर चेदि देश के योद्धा द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने चले। द्रोणाचार्य ने तीन तीक्ष्ण बाण मारकर द्रुपद के तीनों पोतों को मार डाला। वे मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥३१।३४॥इसके पश्चात् महारथी द्रोण ने युद्ध में चेदि,

तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।
द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि ॥ ३७ ॥
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।
ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ३८ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः।
ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान्दश ॥ ३९ ॥
दश चिक्षेप च शरान्द्रोणस्य वधकांक्षया ।
शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।
ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान्दश ॥ ४१ ॥
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥ ४२ ॥
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।
हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४ ॥
द्रोणस्य कर्म तद्दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥
इष्टापूर्तात्तथा क्षात्राद्ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याऽद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥

केकय, सृञ्जय, मत्स्य आदि देशों के महारथियों को देखते ही देखते जीत लिया। यह देखकर कुपित होकर राजा द्रुपद और विराट दोनों द्रोणाचार्य के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। क्षत्रिय मद मर्दन द्रोणाचार्य ने क्षण भर में उनके बाणों को व्यर्थ करके उन दोनों पर इतने बाण बरसाये कि वे छिप गये। द्रोणाचार्य के बाण-प्रहार से और भी क्रुद्ध होकर दोनों नरेश अधिकता के साथ बाण मारने लगे॥३४।३८॥ तब द्रोणाचार्य ने बहुत ही क्रुद्ध होकर दो अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से दोनों नरेशों के धनुष काट डाले। विराट ने कुपित होकर, द्रोणाचार्य को मारने की अभिलाषा में, उनपर दस तोमर और दस बाण चलाये। कुपित द्रुपद नरेश ने भी सुवर्ण भूषित लोहे की, सर्प-तुल्य, एक घोर शक्ति हाथ में लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर फेंकी॥३८।४१॥ द्रोणाचार्य ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण भल्ल बाणों से दसों तोमर काट डाले और साथ ही अन्य बाणों से सुवर्ण-वैदूर्य-भूषित उस शक्ति के भी टुकड़े कर डाले। इसके पश्चात् विष के बुझे तीक्ष्ण दो भल्ल बाण मारकर उन्होंने द्रुपद और विराट दोनों को मार डाला॥४१।४३॥ मनस्वी धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य के अस्त्र बल से द्रुपद, विराट और अपने तीन भतीजों की मृत्यु और केकय, चेदि, पाञ्चाल, मत्स्य देश की सेना और वीरों का विनाश होते देखकर कोप और दुःख के मारे व्याकुल होकर सब महारथियों के बीच

द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन्संसक्तानि पुरोदयात् ।
तान्येवाऽभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३ ॥
रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चाऽपि कुञ्जराः ।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४ ॥
रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन्रणे ॥ ५ ॥
ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा ।
क्षुत्पिपासापरिताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६ ॥
शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम् ॥ ७ ॥
शब्दः समभवद्राजन्दिविस्पृग्भरतर्षभ ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥ ८ ॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम् ।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ९ ॥
विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा ।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ १० ॥
भूमावश्रूयत महांस्तदासीत्कृपणं महत् ।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥ ११ ॥
तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।
स्वे स्वाञ्जघ्नुःपरे स्वांश्च स्वान्परेषां परे परान् ॥ १२ ॥

जगत् को प्रकाशित कर दिया । अब फिर वैसे ही युद्ध होने लगा । सूर्योदय के पहले जो योद्धा जिस योद्धा से युद्ध कर रहा था, वह फिर उसी योद्धा से भिड़ गया॥१।३॥रथी वीरों से घुड़सवार, घुड़सवारों से हाथी के सवार, पैदलों से हाथी के सवार, घुड़सवारों से घुड़सवार, पैदलों से पैदल, रथी लोगों से रथी और हाथी के सवारों से हाथी के सवार भिड़कर और कुछ फटकार युद्ध करने लगे । योद्धा लोग मर-मरकर अपने वाहनों से पृथ्वी पर गिरने लगे।रात्रि भर युद्ध किया था,इस समय सूर्य की कड़ी धूप और भूख-प्यास से अत्यन्त व्याकुल हो उठे, इस कारण बहुत से योद्धा असावधान हो होकर युद्ध करने में असमर्थ हो गये॥४।६॥शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि के बजने से, हाथियों के चिङ्घारने से,धनुषों की डोरी खींचने से, पैदलों के भागने से, शस्त्रों के प्रहार से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, रथों के चलने से, वीरों के सिंहनाद आर्तनाद और कोलाहल से एक बहुत बड़ा शब्द उत्पन्न हुआ, जो आकाश तक गूँज उठा । अनेक शस्त्रों के प्रहार से घायल होकर तड़प रहे लोगों के कराहने का घोर शब्द पृथ्वी पर सुनाई पड़ता था । वह बहुत ही करुण दृश्य था॥७।१०॥हाथी, घोड़े, रथी,पैदल योद्धा आदि जो गिर गये थे और जो गिर रहे थे, उनका शब्द भी दूर दूर तक फैल रहा था । इस प्रकार दोनों दलों के परस्पर भिड़ जाने पर यहाँ

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च ।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १३ ॥
उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥ १४ ॥
अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत्सुदारुणम् ॥ १५ ॥
गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १६ ॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रावर्तयन्वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥
शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः ।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन्गजवाजिनः ॥ १८ ॥
बाहुभिः कवचैश्चित्रैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
युद्धोपकरणैश्चाऽन्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥ १९ ॥
क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि ।
नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २० ॥
मज्जत्सु चक्रेषु रथान्सत्वमास्थाय वाजिनः ।
कथञ्चिदवहञ्श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ॥ २१ ॥

कौरवदल पाण्डवदल को और कहीं पाण्डवदल कौरवदल को मार रहा था और कौरवदल तथा पाण्डवदल के लोग अपने ही मनुष्यों को मार रहे थे ॥१०।१२॥ जैसे धोबी लोग धोते समय वस्त्रों को उठाते और पटरे पर पटकते हैं वैसे ही वीर पुरुषों के हाथों में चमक रही उठी हुई तलवारें योद्धाओं और हाथियों के ऊपर गिरती दिखाई पड़ती थीं। तानकर चलाई गई तलवारों के गिरने से वस्त्रों के पटककर धोने का सा ही शब्द उत्पन्न हो रहा था। इस प्रकार एक धारवाली और दो धारवाली तलवारों, तोमरों और परश्वधों से बहुत ही दारुण युद्ध होने लगा॥१३।१५॥इस प्रकार घोर युद्ध करके वीर पुरुषों ने परलोकगामिनी रक्त की भयङ्कर नदी बहा दी। वह नदी हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से उत्पन्न होकर मनुष्यों के शरीरों को बहाये लिये जा रही थी। सब प्रकार के शस्त्र उसमें मछलियों के स्थान देख पड़ते थे। मांस और रक्त की कीचड़ हो रही थी। घायलों का आर्तनाद उसका शब्द जान पड़ता था और पताका तथा शस्त्र आदि फेनपुञ्ज से प्रतीत हो रहे थे॥१६।१७॥रात्रि के युद्ध में थके और बाण शक्ति आदि के प्रहार से पीड़ित घोड़े, हाथी आदि वाहन निश्चेष्ट और सकुचित हो रहे थे। वीर लोग थकन के मारे सुस्त हो गये थे और सुन्दर कुण्डल तथा कवच आदि अन्य युद्ध की सामग्रियों से उनके शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे।रणभूमि में सब ओर मांसहारी जीव भरे पड़े थे, मरे-अधमरे मनुष्यों और वाहनों के शरीरों का ढेर लगा हुआ था। सारी रणभूमि का यही हाल था। रथ जाने-आने की राह किसी ओर नहीं मिलती थी। रथों के पहिये धँस-धँस जाते थे और हाथियों के समान ऊँचे, अच्छी

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥ ४७ ॥
पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्पाण्डवैः सह ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चाऽपि सौबलः ॥ ४८ ॥
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन्द्रोणमाहवे ।
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
तत्राऽक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः ।
भीमसेन उवाच--द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥ ५१ ॥
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेताऽरिमवस्थितम् ।
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान्कः परिपालयेत् ॥ ५२ ॥
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि ।
एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥ ५३ ॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।
पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४ ॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ।
इत्युक्त्वा प्राविशत्क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ॥ ५५ ॥

में सौगन्ध खाकर कहा --आज यदि द्रोणाचार्य को मैं न मार डालूँ, अथवा द्रोणाचार्य मुझे परास्त कर दें, तो मेरे यज्ञ हवन आदि पुण्यकर्म, कुआ तालाव बाग आदि के स्थापित करने का पुण्य, क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व (धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति याज-उपयाज नाम के ब्राह्मणों के तपोबल से हुई थी इसलिए, अथवा ब्राह्मण रूप अग्नि से जन्म लेने के कारण उनमें ब्राह्मणत्व का होना सङ्गत हुआ) नष्ट हो जाय । हे राजेन्द्र ! सब योद्धाओं के मध्य में इस प्रकार प्रतिज्ञा करके शत्रुदमन वीर धृष्टद्युम्न अपनी सेना साथ लिये वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने चले॥४३।४७॥ उस समय सब पाञ्चाल और पाण्डव मिलकर द्रोणाचार्य के ऊपर प्रहार करने लगे।राजा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुर्योधन के सब भाई मिलकर आचार्य की रक्षा करने लगे । पाञ्चालगण सब उपाय करके भी, उन महारथियों के द्वारा सुरक्षित, महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य की ओर देखने में भी असमर्थ ही रहे॥४८। ५०॥तब पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन बहुत ही क्रुद्ध हो उठे और वे इस प्रकार कठोर वचन कहकर धृष्टद्युम्न को उत्तेजित करने लगे—हे धृष्टद्युम्न ! द्रुपद के वंश में उत्पन्न और सब श्रेष्ठ अस्त्रों को जाननेवाला होकर भी कौन क्षत्रिय इस प्रकार सम्मुख शत्रु को देखता रहेगा और उसे न मारेगा ? कौन पुरुष अपने पिता और पुत्र का वध देखकर भी कुछ न कर सकेगा और फिर मर्दानगी की डींग मारेगा ! विशेषकर तुम जब राजाओं के सम्मुख शत्रु को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हो तब फिर उसे पूर्ण करने की चेष्टा न करना कैसी लज्जा की बात है॥५०।५३॥ये अग्नि के समान अपने तेज से प्रज्वलित द्रोणाचार्य धनुष-बाण को ईंधन पाकर अस्त्रमय अग्नि से तुम्हारे सम्मुख ही

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ।
धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ॥ ५६ ॥
आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् ।
नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥
यथा सूर्योदये राजन्समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।
संसक्तान्येव चाऽदृश्यन्रथवृन्दानि मारिष ॥ ५८ ॥
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ।
केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चाऽन्यैरुपद्रुताः ॥ ५९ ॥
विमुखाः पृष्ठतश्चाऽन्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे ।
तथा संसक्तयुद्धं तदभवद्भृशदारुणम् ।
अथ सन्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ ६० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

क्षत्रियों को भस्म कर रहे हैं। हमारे सम्मुख हो द्रोणाचार्य पाण्डवों की सारी सेना को नष्ट किये डालते हैं। तुम लोग खड़े रहो, मेरा अद्भुत पराक्रम देखो, मैं द्रोणाचार्य से युद्ध करने जा रहा हूँ। महावीर कुपित भीमसेन अब द्रोणाचार्य की सेना में प्रवेश हो पड़े और कानों तक खींचकर छोड़े गये बाणों की चोट से कौरवों की सेना को भगाने लगे॥५३।५६॥ महारथी धृष्टद्युम्न भी उत्तेजित होकर द्रोणाचार्य की विशाल सेना में प्रवेश करके उनपर प्रहार करने लगे। उस समय दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। हे राजेन्द्र! सूर्योदय के समय वह ऐसा जनमहारक युद्ध हुआ कि हम लोगों ने पहले कभी वैसा युद्ध देखा या सुना नहीं। रथी योद्धाओं के रथ चारों ओर परस्पर भिड़े हुए देख पड़ते थे और वे निर्दय भाव से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। बहुत से मनुष्यों के शरीर छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर पड़े हुए थे। कुछ लोग कहीं भाग रहे थे।राह में और लोग उनका पीछा करते थे। कुछ रण से भागते थे तो पीछे से, आस पास से, उन पर शत्रुओं के प्रहार होते थे।इसी प्रकार भिड़कर अत्यन्त दारुण संग्राम होते-होते रात्रि व्यतीत हो गई और दिन निकल आया॥५६।६०॥

द्रोणपर्व का एक सौ छियासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८६ ॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १८७ ॥

सञ्जय उवाच—ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
सन्ध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १ ॥
उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

एक सौ सतासी अध्याय ॥ १८७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! युद्धभूमि में वैसे ही कवच आदि पहने हुए सब योद्धा सन्ध्यावन्दन और सूर्यदेव की उपासना करने लगे। तपे हुए सुवर्ण के समान प्रकाशमान सूर्यदेव ने उदय होकर सारे

कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ।
विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारताऽऽतुरम् ॥ २२ ॥
बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ।
तावेवाऽऽस्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥ २३ ॥
तावेवाऽन्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ।
आविग्नमभवत्सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ॥ २४ ॥
पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २५ ॥
पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये ।
न तत्र कर्णं द्रोणं वा नाऽर्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् ।
न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥
न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च ।
न चाऽन्यान्नैव चाऽऽत्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ॥ २८ ॥
पश्याम राजन्संसक्तान्सैन्येन रजसाऽऽवृतान् ।
सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥
द्वितीयामिव सम्प्राप्तामामन्यन्त निशां तदा ।
न ज्ञायन्ते कौरवेया न पाञ्चाला न पाण्डवाः ॥ ३० ॥
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा ।
हस्तसंस्पर्शमापन्नान्परानप्यथवा स्वकान् ॥ ३१ ॥

जाति के, दमदार घोड़े, थके होने पर भी, बाणों के प्रहार से पीड़ित होने पर भी, भूख प्यास के मारे काँपते रहने पर भी, किसी प्रकार जोर मारकर पहियों को निकालते और आगे बढ़ते थे॥१८।२२॥हे राजेन्द्र ! कहाँ तक कहें, द्रोणाचार्य और अर्जुन के अतिरिक्त सम्पूर्ण सेना उस समय विह्वल, आतुर, उद्भ्रान्त और भयातुर हो रही थी। ये ही दोनों वीर अपनी-अपनी सेना का आश्रय देते और उनके भय को दूर करते थे। शत्रुपक्ष के लोग इन्हीं वीरों के सम्मुख पहुँचकर यमलोक को जा रहे थे। उस समय युद्ध कर रहे कौरवों और पाञ्चालों की सेनाएँ व्याकुल हो उठीं। ऐसी धूल छाई हुई थी कि कहीं कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। राजवंश के पुरुषों का बहुत नाश हो रहा था॥२२।२५॥रणभूमि कायरों के मन में भय बढ़ानेवाली और मृत्यु की क्रीड़ाभूमि सी हो रही थी। धूल उड़ने के कारण ऐसा घना अँधेरा हो आया कि हमें वहाँ कर्ण, द्रोण, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा आदि पराये या अपने कोई भी योद्धा नहीं देख पड़ते थे। नेत्रों में धूल भर जाने के कारण, पृथ्वी और दिशाओं की कौन कहे, अपना शरीर भी नहीं दिखाई पड़ता था॥२५।२९॥इस प्रकार भ्रान्तिजनक घोर धूल का बादल छा जाने पर ऐसा

न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ।
उद्धूतत्वात्तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥ ३२ ॥
प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन्रुधिरोक्षिताः ।
ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।
दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चाऽर्जुनः ।
तद्घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥
रथर्षभाणामुग्राणां सन्निपातममानुषम् ।
रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥ ३७ ॥
अपश्यन्रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ।
यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥ ३८ ॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।
ते रथान्सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ॥ ३९ ॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।
योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथाऽन्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥

जान पड़ा कि फिर रात्रि आ गई। नहीं जान पड़ता था कि कौरव, पाञ्चाल या पाण्डव कौन और कहाँ हैं। पृथ्वी, आकाश, सब दिशाएँ, समतल और ऊबड़-खाबड़ सब अदृश्य सा हो गया। विजय चाहनेवाले वीरगण, अपने या पराय, जिस मनुष्य को हाथ मे छू पाते थे उसी को मार गिराते थे॥२९।३२॥थोड़ी देर मे प्रचण्ड आँधी चलने से धूल ऊपर चली गई और जो बची वह रक्तप्रवाह मे बैठ गई। उस समय रक्त से तर हाथी, घोड़े, रथी और पैदल योद्धा सब कल्पवृक्षों की कतार मे शोभायमान हुए॥३२।३४॥ तब दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुःशासन, ये चारों महारथी चारों पाण्डवों से युद्ध करने लगे। दुर्योधन नकुल से, दुःशासन सहदेव से, कर्ण भीमसेन से और द्रोणाचार्य से अर्जुन भिड़ गये। उन उग्र श्रेष्ठ रथी योद्धाओं का देवासुर-युद्ध के समान अद्भुत, घोर और अलौकिक युद्ध देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥३४।३७॥अन्य रथी योद्धा लोग युद्ध बन्द करके उन विचित्र युद्ध करनेवालों का विचित्र युद्ध और रथों की विचित्र गतियाँ देखने लगे। परस्पर जय की अभिलाषा रखनेवाले पराक्रमी वे महारथी यत्नपूर्वक वैसे ही अपने प्रतिद्वन्द्वी पर बाण बरसाने लगे जैसे वर्षाकाल में मेघ जलधारा छोड़ते हैं। सूर्य की भाँति चमकीले रथों पर बैठे हुए वे वीर योद्धा चञ्चल बिजलियों से शोभित शरद् ऋतु के मेघ से जान पड़ रहे

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२ ॥
बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४३ ॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५ ॥
शून्यैश्चैव नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४६ ॥
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलंकृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४७ ॥
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च ससुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४८ ॥
उरःस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४९ ॥
ततो दुर्योधनस्याऽऽसीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनाऽमर्षितस्य च ॥ ५० ॥

थे॥३७।४०॥हे महाराज ! वे असहनशील, परस्पर स्पर्धा रखनेवाले, महाधनुर्धर योद्धा लोग क्रुद्ध होकर मस्त हाथियों या साँड़ों की भाँति परस्पर भिड़कर युद्ध कर रहे थे। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! काल के आये बिना कोई नहीं मरता—यह कहावत सत्य है। यदि ऐसा न होता तो अवश्य ही ये महारथी परस्पर के प्रहारों से छिन्न भिन्न हो एक साथ ही मर जाते। कोई किसी को मार डालने में कुछ भी न्यूनता नहीं रखता था ॥४१।४२॥उस समय योद्धाओं के कटे हुए हाथ, पाँव, कुण्डल शोभित सिर, धनुष, बाण, प्रास, खड्ग, परशु, पट्टिश, नालीक, क्षुद्र, नाराच, नखर, शक्ति, तोमर, अन्य विविध आकार के—तेल से स्वच्छ किये गये—श्रेष्ठ शस्त्र, विचित्र और अनेक आकार के कवच तथा विचित्र टूटे हुए रथ आदि इधर-उधर बिखरे रहने से वह समरभूमि नक्षत्रों से जगमगा रहे आकाश की भाँति शोभित हुई, हाथियों और घोड़ों की लाशें, ध्वजा और योद्धा से हीन—बिना सवार के—भयभीत हुए हुए घोड़ों के द्वारा इधर उधर खींचे जा रहे पर्वताकार रथ वायु के समान वेग से जानेवाले अलङ्कृत और वीर सवारों के मारे जाने के कारण खाली पीठ घोड़े, चमर, छत्र, कङ्कण, गिरी हुई ध्वजाएँ, आभूषण, वस्त्र, माला, सुगन्धित पदार्थ, हार, किरीट, मुकुट, पगड़ी, किङ्किणियाँ, वीरों की छातियों पर चमक रही मणियाँ, पदक, चूड़ामणि आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ इधर उधर बिखरने के कारण वह रणभूमि तारागणों से परिपूर्ण आकाशमण्डल के समान शोभायमान हो उठी॥४३।४९॥इधर कुपित राजा दुर्योधन से क्रुद्ध नकुल का युद्ध होने लगा। नकुल राजा दुर्योधन के रथ को बाईं ओर छोड़कर दाहनी ओर से निकल गये। इसी अवसर में उन्होंने दुर्योधन को

अपसव्यं चकाराऽथ माद्रीपुत्रस्तवाऽऽत्मजम् ।
किरच्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ५१ ॥
अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्यं नाऽत्यमर्षिणा ।
नाऽमृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥ ५२ ॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम् ।
ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ॥ ५३ ॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ।
स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन् ।
तिष्ठतिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत् ॥ ५५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १८७ ॥

बहुत से बाण मारे । प्रसन्नचित्त नकुल के इस कार्य को देखकर पाण्डवसेना मे आनन्द कोलाहल होने लगा । नकुल की इस स्फूर्त्ति को राजा दुर्योधन नहीं सह सके । वे भी शीघ्रता और स्फूर्त्ति दिखाने के निमित्त वैसे ही नकुल की दाहनी ओर जाने की चेष्टा करने लगे, किन्तु रथ की विचित्र गतियों को जाननेवाले तेजस्वी नकुल ने उन्हें वैसा नहीं करने दिया। चारों ओर से बाणों की वर्षा करके नकुल ने उन्हें ऐसा पीड़ित किया कि वे नकुल के दक्षिण भाग में अपना रथ नहीं ले जा सके। सब सैनिक लोग इसके लिए नकुल की अत्यन्त प्रशसा करने लगे।इस प्रकार दुर्योधन को विमुख करके आपकी कुमत्रणा के कारण मिलनेवाले अपने दु खों को स्मरण कर रहे नकुल ने उनसे "ठहरो ठहरो" कहा॥४९।५५॥

द्रोणपर्व का एक सौ सत्तासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८७ ॥

अथ अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १८८ ॥

सञ्जय उवाच — ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥
तस्याऽऽपतत एवाऽऽशु भल्लेनाऽमित्रकर्शनः ।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमाच्छिनत् ॥ २ ॥
नैनं दुःशासनः सूतं नाऽपि कश्चन सैनिकः ।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात्सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥

एक सौ अट्ठासी अध्याय ॥ १८८ ॥

सञ्जय ने कहा – हे राजेन्द्र ! इधर दु शासन क्रुद्ध होकर रथ के वेग स पृथ्वी को कँपाते हुए सहदेव की ओर दौड़े । पराक्रमी सहदेव ने उन्हें आते देख कर एक भल्ल बाण से स्फूर्त्ति के साथ उनके सारथी का शिरस्त्राण शोभित सिर काट डाला। उन्होंने इतनी शीघ्रता से यह कार्य कर डाला कि दु शासन तथा अन्य सैनिकों को उसकी कुछ सूचना ही नहीं हुई। सारथी के न रहने से दु शासन के घोड़े इधर-उधर

यदा त्वसंगृहीतत्वात्प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् ।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥ ४ ॥
स हयान्सन्निगृह्याऽऽजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ५ ॥
तदस्याऽपूजयन्कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाऽऽजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥ ६ ॥
सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीड्यमानाः शरैश्चाऽऽशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७ ॥
स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥ ८ ॥
छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवापतत् ॥ ९ ॥
वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः ।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्बाह्वोरुरसि चाऽनदत् ॥ १० ॥
स निवृत्तस्ततः कर्णः सङ्घट्टित इवोरगः ।
भीममावारयामास विकिरन्निशिताञ्छरान् ॥ ११ ॥
ततोऽभूत्तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ ॥ १२ ॥
वेगेन महताऽन्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ॥ १३ ॥

भटकने लगे। यह देखकर दुःशासन को ज्ञात हुआ कि उनका सारथी मर गया॥१।४॥ तब वे निःशङ्क चित्त से अपनी स्फूर्ति दिखाते हुए घोड़ों की रास पकड़कर उन्हें हाँकने और युद्ध भी करने लगे। यह अद्भुत कार्य देखकर कौरव और पाण्डव दल के सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। यह देखकर सहदेव बहुत ही कुपित हो उठे और दुःशासन के घोड़ों को अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारने लगे। सहदेव के बाणों से पीड़ित घोड़े इधर-उधर भागने लगे। दुःशासन कभी घोड़ों की रास पकड़कर उन्हें सँभालते थे और कभी धनुष-बाण लेकर युद्ध करते थे। जब वे युद्ध करते थे तब सहदेव घोड़ों को बाण मारकर विचलित करते थे और जब वे घोड़ों को सँभालते थे तब सहदेव उनको तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित करते थे। यह देखकर कर्ण दुःशासन की सहायता करने को उनके समीप आये। पराक्रमी भीमसेन ने यह देखकर यत्नपूर्वक कानों तक खींचकर कर्ण के वक्षःस्थल और दोनों हाथों में तीन भल्ल बाण मारे॥५। १०॥तब महावीर कर्ण चोट खाये हुए सर्प की भाँति घूमकर बाणों की वर्षा से भीमसेन को पीड़ित करने लगे। हे महाराज! इस प्रकार महावीर कर्ण और भीमसेन परस्पर तुमुल संग्राम करने लगे। दोनों ही क्रोधान्ध होकर,लाल-लाल नेत्र निकालकर, दो साँड़ों की भाँति गरज-गरजकर एक दूसरे पर आक्रमण

विच्छिन्नशरपातत्वाद्गदायुद्धमवर्तत ।
गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् ॥ १४ ॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
अवासृजद्रथे तां तु बिभेद गदया गदाम् ।
ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाऽऽधिरथेर्गदाम् ॥ १६ ॥
तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः ।
प्रत्यविध्यत्पुनश्चाऽन्यैः सा भीमं पुनराव्रजत् ॥ १७ ॥
व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता ।
तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ॥ १८ ॥
पपात सारथिश्चाऽस्य मुमोह च गदाहतः ।
स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः ।
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत ॥ २० ॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत ।
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ २१ ॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः ।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाऽऽशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २२ ॥
स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याऽऽप्लुतो रथम् ।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥ २३ ॥

करने लगे। उस समय उन युद्ध-निपुण दोनों वीरों के रथ इस प्रकार आकर परस्पर भिड गये कि बाण का प्रहार करना असम्भव हो गया।तब दोनों महारथी योद्धा गदायुद्ध करने लगे। महावीर भीमसेन ने गदा के प्रहार से कर्ण के रथ के कूबर के टुकडे टुकडे कर डाले। उनका यह अद्भुत कर्म देखकर सभी को बडा ही आश्चर्य हुआ॥११।१५॥ महावीर कर्ण ने भी भीमसेन के रथ पर गदा का प्रहार करके उनकी गदा को तोड डाला। भीमसेन ने दूसरी भारी गदा लेकर कर्ण के ऊपर चलाई। कर्ण ने स्फूर्ति के साथ वेग से जानेवाले सुवर्णपुङ्खशोभित बाणों से उस गदा को भीमसेन की ओर लौटा दिया। वह भारी गदा मन्त्र से बाँधी गई नागिन की भाँति कर्ण के बाणों से पीछे लौटकर भीमसेन के ही रथ पर गिरी। उस गदा के गिरने से भीमसेन की ध्वजा टूट गई और चोट खाकर सारथी अचेत हो गया। महाबली भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे॥१५।१९॥ उन्होंने तनिक भी विचलित न होकर आठ बाण कर्ण के ऊपर चलाकर उनके धनुष, तरकस और ध्वजा को काट डाला। महावीर कर्ण ने भी शीघ्र दूसरा सुवर्ण से मढी हुई पीठवाला सुदृढ धनुष लेकर बाणों से भीमसेन के, रीछ के रङ्ग के, घोडों को और चक्ररक्षक तथा सारथी को मार डाला। इस प्रकार रथ के नष्ट होने पर सिंह जैसे पर्वत के शिखर पर चढ जाता है, वैसे ही शत्रुदमन

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥ २४ ॥
लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्चरणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २५ ॥
उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २६ ॥
विचित्रान्पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥
पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः ।
तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ॥ २८ ॥
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ।
यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥ २९ ॥
तत्तत्प्रतिजघानाऽऽशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः ।
यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स्म विशेषितुम् ॥ ३० ॥
ततः प्रादुश्चकाराऽस्त्रमस्त्रमार्गविशारदः ।
ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धनञ्जयः ।
अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत् ।
यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुंक्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥

भीमसेन उछलकर नकुल के रथ पर चढ़गये॥१९।२३॥ हे राजेन्द्र !, उधर उसी समय महारथी गुरु और शिष्य—द्रोणाचार्य और अर्जुन— विचित्र युद्ध करते हुए एक दूसरे के कार्य का उत्तर दे रहे थे। स्फूर्ति के साथ बाण चढ़ाकर छोडकर—बाण चलाने का अभ्यास दिखाकर—रथों के चलने फिरने की चातुरी और युद्ध का कौशल दिखाकर वे दर्शकों के मन और नेत्रों को मोहित कर रहे थे। उस समय कौरव और पाण्डवपक्ष के सब योद्धा युद्ध बन्द करके गुरु और शिष्य का वह अद्भुत युद्ध देखने लगे। सेनाओं के मध्य विचित्र रथों की गतियाँ दिखाकर दोनों वीर एक दूसरे के वाम भाग में जाने की चेष्टा कर रहे थे॥२४।२७॥सब योद्धा लोग आश्चर्य के साथ उनका पराक्रम देख रहे थे। हे महाराज ! आकाश में मांस के टुकड़े के निमित्त जैसे दो बाज युद्ध करें, वैसे ही द्रोण और अर्जुन युद्ध कर रहे थे। अर्जुन को जीतने के निमित्त द्रोणाचार्य जो जो रण कौशल दिखाते थे उस उस कौशल को हँसते हुए अर्जुन व्यर्थ कर देते थे॥२८।३०॥जब द्रोणाचार्य किसी प्रकार अर्जुन से विशेष पराक्रम न दिखा सके, उन्हें परास्त न कर सके, तब अस्त्रविद्या में निपुण आचार्य ने अस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य, वारुण आदि जिस जिस अस्त्र को धनुष पर चढ़ाकर द्रोण छोड़ते थे, उस उस अस्त्र को अर्जुन अस्त्रबल

तस्य तस्य विघाताय तत्तद्धि कुरुतेऽर्जुनः ।
स बध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनाऽर्जुनं द्रोणो मनसैवाऽभ्यपूजयत् ।
मेने चाऽऽत्मानमधिकं पृथिव्यामधि भारत ॥ ३५ ॥
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परन्तपः ।
वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ।
ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥
ऋषयः सिद्धसङ्घाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ।
तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥
श्रीमदाकाशमभवत्तद्भूयो मेघाकुलं यथा ।
तत्र स्माऽन्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥
द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप ।
विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः ।
नैवेदं मानुषं युद्धं नाऽऽसुरं न च राक्षसम् ॥ ४१ ॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ४२ ॥
अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाऽप्यति पाण्डवः ।
नाऽनयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥ ४३ ॥

से व्यर्थ कर देते थे। इस प्रकार जब अर्जुन ने विधिपूर्वक अस्त्रों से ही अस्त्रों को निष्फल कर दिया तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर परम दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। जीतने की अभिलाषा से आचार्य जो-जो दिव्य अस्त्र छोड़ते थे, उस उस अस्त्र को अर्जुन अस्त्र बल से शान्त कर देते थे॥३०।३४॥इस प्रकार अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों को भी जब व्यर्थ कर दिया तब द्रोणाचार्य मन ही मन प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करने लगे। अर्जुन का अपना शिष्य होने के कारण उन्होंने अपने को पृथ्वी पर सब अस्त्र जाननेवालों से भी श्रेष्ठ समझा। महारथी वीर पुरुषों के मध्य इस प्रकार अर्जुन से दबने से भी उन्हें परम प्रसन्नता हुई॥३५।३६॥उस समय युद्ध देखने के निमित्त आये हुए सहस्रों देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस आदि के विमानों से आकाशमण्डल परिपूर्ण हो गया, ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो आकाश में बादल घिर आये है। उस समय आकाश में स्थित देवता आदि के मुख से निकली हुई अर्जुन और द्रोण की प्रशंसा से पूर्ण वाणियाँ सुनाई पड़ने लगीं। अस्त्रों के प्रयोग से दसों दिशाएँ प्रकाश से परिपूर्ण हो उठीं ॥३७।४०॥जो सिद्ध और मुनिगण आये थे वे कहने लगे—यह युद्ध न तो मनुष्यों का है, न असुरों का है, न राक्षसों का है, न देवताओं का है और न गन्धर्वों का है। यह निःसन्देह ब्राह्म (ब्राह्मण का)

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येताऽऽत्मानमात्मना ।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४४ ॥
ज्ञानमेकस्यमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्यमाचार्ये वलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४५ ॥
नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४६ ॥
इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४७ ॥
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः ।
सन्तापयन्रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥
ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चाऽपि चुक्षुभुः ॥ ४९ ॥
ततस्त्रासो महानासीत्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥
ततः पार्थोऽप्यसम्भ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ५१ ॥
यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥ ५२ ॥

युद्ध है। ऐसा आश्चर्यजनक युद्ध न हमने कभी देखा है और न सुना है। इन दोनों में कोई भी कम नहीं है॥४०।४२॥अर्जुन द्रोणाचार्य से बढ़कर है और द्रोणाचार्य अर्जुन से बढ़कर हैं। यदि स्वयं रुद्रदेव दो रूप रखकर युद्ध करें, तभी उस युद्ध से इस युद्ध की उपमा दी जा सकती है। अन्य कोई इसकी जोड का युद्ध न हुआ है और न होगा। आचार्य धनुर्विद्या के ज्ञान और शूरता के आधार हैं। किन्तु अर्जुन युवा होने के कारण बल और योग में अधिक है—अर्थात् अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण हैं, गाण्डीव सा श्रेष्ठ धनुष है, रथ और ध्वजा दिव्य है, स्वयं बुद्धिमान् और युवा अवस्था भी प्राप्त होने के कारण उनकी सूझ बूझ भी बहुत बढ़ी है। युद्ध में शत्रुगण इन दोनों महारथियों को नहीं मार सकते। किन्तु ये चाहें तो देवगणसहित सम्पूर्ण जगत् का संहार कर डालें। हे महाराज! वह युद्ध देखकर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सब प्राणी इस प्रकार कहने और गुरु शिष्य के बल वीर्य की प्रशंसा करने लगे॥४३।४७॥इसी समय द्रोणाचार्य ने दिव्य ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। वह अस्त्र अर्जुन को और अप्रत्यक्ष देवयोनियों को सन्तप्त करने लगा। पर्वत वन वृक्ष सहित सम्पूर्ण पृथ्वी काँप उठी, विषम आँधी चलने लगी, समुद्र क्षोभ को प्राप्त हो गये। महात्मा द्रोण ने जब ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया तब इन उत्पातों को और अस्त्र के तेज को देखकर दोनों पक्ष के योद्धा और सब प्राणी भय से विह्वल हो उठे। किन्तु पराक्रमी अर्जुन तनिक भी नहीं व्याकुल हुए। उन्होंने ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग करके आचार्य के ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया। तुरन्त ही सब उत्पात मिट गये और सर्वत्र शान्ति छा गई॥४८।५१॥जब द्रोणाचार्य और अर्जुन में से कोई किसी को परास्त न कर सका,

नाऽऽज्ञायत ततः किञ्चित्पुनरेव विशाम्पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ५३ ॥
शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाऽम्बरे ।
नाऽपतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

तब फिर पहले की भांति संकुल युद्ध होने लगा। द्रोणाचार्य पाण्डव सेना को और अर्जुन कौरव सेना को फिर मारने लगे। फिर सब सैनिक उनके प्रहार से व्याकुल हो उठे। फिर धूल उड़ने लगी और आकाश में मेघों के समान बाण छागये उस तुमुल संग्राम में ऐसा घोर अँधेरा छा गया कि किसी को कुछ भी नहीं दिखाई देता था। असंख्य बाण बरसने के कारण आकाश में कोई आकाशचारी पक्षी भी उड़ता नहीं दिखाई पड़ता था॥५२।५४॥

द्रोणपर्व का एक सौ अट्ठासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८८ ॥

अथ अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

सञ्जय उवाच—तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये ।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १ ॥
स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः ।
अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥
क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः ।
नाऽदृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥
दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
नाऽशकत्प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥
स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाऽभ्ययाद्रणे ॥ ५ ॥
अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम् ।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥ ६ ॥
तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ ७ ॥

एक सौ नवासी अध्याय ॥ १८९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार असंख्य मनुष्य, हाथी, घोड़े मरने लगे। उस समय महाबली दुःशासन धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। सुनहरे रथ पर बैठे हुए वीर धृष्टद्युम्न दुःशासन के बाणों की चोट खाकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। वे दुःशासन के घोड़ों पर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे। क्षण भर में धृष्टद्युम्न ने इतने बाण बरसाये कि उनसे दुःशासन का सारथी, रथ और रथ की ध्वजा तक अदृश्य हो गई। महाबली दुःशासन धृष्टद्युम्न के बाणों की चोट से अत्यन्त व्यथित हो उठे और उनके सम्मुख ठहर सकने का साहस न कर सके ॥१।४॥ महाबली धृष्टद्युम्न इस प्रकार दुःशासन को रण से भगा करके बाण बरसाते हुए द्रोणाचार्य की ओर

सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः ।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥ ८ ॥
शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन्स्वर्गपुरस्कृताः ।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥ ९ ॥
शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप ।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥
न तत्राऽऽसीदधर्मिष्ठमशस्तं युद्धमेव च ।
नाऽत्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च वस्तिकः ॥ ११ ॥
न सूची कपिशो नैव न गजास्थिर्गजास्थिजः ।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १२ ॥
ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३ ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तान्दृष्ट्वा तव राजन्रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान्वीराञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥
निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६ ॥

चले। यह देखकर वीर कृतवर्मा और उनके तीन भाई धृष्टद्युम्न को परास्त करने की चेष्टा करने लगे। महावीर नकुल और सहदेव प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी धृष्टद्युम्न को द्रोण के सम्मुख जाते, और कृतवर्मा को अपने भाइयों के सहित उन पर आक्रमण करते, देखकर धृष्टद्युम्न की सहायता करने के निमित्त उनके पीछे चले ॥५।७॥ सत्त्वशाली, विशुद्धात्मा, विशुद्धचरित्र और परस्पर विजय की आकांक्षा रखनेवाले ये सब महारथी योद्धा क्रुद्ध होकर, मृत्यु का भय छोड़कर, स्वर्ग पाने की अभिलाषा से आर्यजनोचित धर्मयुद्ध और परस्पर प्रहार करने लगे। ये योद्धा उत्तम कुल में उत्पन्न और स्वयं उत्तम कर्म करनेवाले बुद्धिमान् थे। इसी से उत्तम गति की कामना करके परस्पर धर्मयुद्ध कर रहे थे॥८।१०॥ अधर्मपूर्ण या निन्दित युद्ध कोई नहीं करता था। सभी वीर स्वर्ग और कीर्ति प्राप्त करने के निमित्त सरल और विशुद्ध अस्त्र-शस्त्रों का ही प्रयोग कर रहे थे। कर्णी (निकालते समय इस बाण के दो उलटे काँटे आँतों को खींच लेते है), नालीक (यह बाण छोटा होने के कारण बहुत कठिनाई से निकाला जा सकता है), विपलिप्त, वस्तिक (इस बाण का अग्रभाग शिथिल रूप से दण्ड में लगा रहता है, निकालते समय लोहे की गाँसी वस्ति में रह जाती है, दण्ड भर बाहर निकलता है), सूची (बहुत सी सुइयों या काँटों से परिपूर्ण), कपिश (गाय या हाथी की हड्डी का बना), संश्लिष्ट (दो घाव कर देनेवाला), पूति (मलिन शल्यवाला) और जिह्मग (एक को निशाना बना दूसरे पर चला देना) इत्यादि निषिद्ध बाणों का प्रयोग किसी ओर से नहीं होता था॥११।१३॥ हे महाराज! इस प्रकार पाण्डवपक्ष के तीन योद्धाओं के साथ कौरवपक्ष के चार योद्धाओं का तुमुल संग्राम होने

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान् ।
तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाऽभ्यवर्तत् ॥ १९ ॥
तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥ २० ॥
बाल्यवृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च स्मयमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥
अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन्वृत्तमात्मनः ॥ २२ ॥
धिक् क्रोधं धिक्सखे लोभं धिङ् मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३ ॥
यत्र मामभिसन्धत्से त्वां चाऽहं शिनिपुङ्गव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाऽहं च सदा तव ॥ २४ ॥
स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नो रणाजिरे ॥ २५ ॥

लगा। उस समय महावीर धृष्टद्युम्न ने नकुल और सहदेव को उन कौरवपक्ष के चारों योद्धाओं का सामना करते देखकर स्वयं द्रोणाचार्य के सम्मुख अपना रथ बढ़ाया। कौरवपक्ष के चारों वीर नकुल और सहदेव के द्वारा रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उन पर आक्रमण करने लगे। इस प्रकार नकुल और सहदेव शत्रुपक्ष के दो दो योद्धाओं से सम ही युद्ध करने लगे जैसे आँधी दो पर्वतों पर आक्रमण करती है ॥१४।१६॥ महावीर धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य की ओर बढ़ते और कृतवर्मा आदि चारों वीरों को नकुल-सहदेव से युद्ध करते देखकर राजा दुर्योधन स्वयं धृष्टद्युम्न की ओर बढ़े और उन पर मर्मभेदी बाण बरसाने लगे। महावीर सात्यकि यह देखकर शीघ्रता के साथ दुर्योधन के सम्मुख आ गये॥१७।१९॥ पुरुषसिंह कौरव और यादव दोनों एक दूसरे के सम्मुख आकर, प्रसन्नतापूर्वक बालकपन के वृत्तान्त स्मरण करके, हँसते हुए निर्भय भाव से युद्ध करने के निमित्त उद्यत हुए॥२०।२१॥ राजा दुर्योधन ने प्रिय सखा सात्यकि को देखकर अपने चरित्र की निन्दा करते हुए कहा—हे मित्र ! क्षत्रियों के क्रोध, लोभ, मोह, पराक्रम, असहनशीलता, बल और आचार को धिक्कार है, जिनके कारण आज हम दोनों मित्र परस्पर युद्ध करने को प्रस्तुत हैं। तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे थे और मैं भी तुम्हें अत्यन्त प्रिय था, तथापि आज क्षत्रियधर्म के कारण ही तुम मुझे और मैं तुम्हें मारने को उद्यत हूं। मुझे इस समय वे अपने और तुम्हारे पुत्र के वृत्तान्त स्मरण आते हैं; किन्तु रणभूमि में वह पहले का स्नेह जाता रहा है। इस युद्ध का कारण क्रोध और लोभ के

किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाऽद्य सात्वत ।
तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥
प्रहसन्विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ।
नेयं सभा राजपुत्र नाऽऽचार्यस्य निवेशनम् ॥ २७ ॥
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन्समागतैः ।
दुर्योधन उवाच— क्व सा क्रीडा गताऽस्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥ २८ ॥
क्व च युद्धमिदं भूयः कालो हि दुरतिक्रमः ।
किन्नु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥
यत्र युद्धामहे सर्वे धनलोभात्समागताः ।
सञ्जय उवाच— तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
एवं वृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजञ्जहि मां मा चिरं कृथाः ॥ ३१ ॥
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ॥ ३२ ॥
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।
इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ॥ ३३ ॥
अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो दयां नाऽकुरुताऽऽत्मनि ।
तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तवाऽऽत्मजः ॥ ३४ ॥

अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्रोध और लोभ से बढ़कर अनिष्ट करनेवाला और कुछ नहीं है। इन्हीं के कारण आज मुझे तुमसे युद्ध करना पड़ा॥२२।२६॥ये वचन सुनकर,तीक्ष्ण बाणों को हाथ में लेकर,श्रेष्ठ अस्त्रों के जाननेवाले सात्यकि हँसकर दुर्योधन से कहने लगे— हे राजपुत्र ! यह न तो राजसभा है और न आचार्य का आश्रम है, जहाँ हम दोनों ने एकत्र रहकर सदा क्रीड़ा और मनोरञ्जन किया है। यह तो रणभूमि है ॥२६।२८॥दुर्योधन ने फिर कहा—काल की महिमा बड़ी प्रबल है ! हे यादवश्रेष्ठ ! वह हमारा बचपन का खेल कहाँ चला गया ? इस समय हम एक दूसरे के शत्रु होकर घोर संग्राम करने को उपस्थित हैं। हम लोग धन के लोभ से ही परस्पर युद्ध कर रहे हैं। किन्तु ऐसे धन और धन के लोभ से क्या लाभ होगा,यह समझ में नहीं आता॥२८।३०॥सञ्जय कहते हैं कि महारथी सात्यकि ने कहा—हे दुर्योधन ! क्षत्रियों का यही धर्म है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपने गुरु से भी युद्ध में नहीं हिचकते। हे राजेन्द्र ! यदि तुम मुझे अपना प्यारा सखा समझते हो तो शीघ्र ही मुझे मार डालो। हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारी कृपा से सम्मुख युद्ध में मरकर मैं सुकृत से मिलनेवाले श्रेष्ठ लोक को जाऊँगा। इसलिए तुममें जितनी शक्ति और बल हो, सो सब शीघ्र मुझसे युद्ध करने में दिखाओ, किसी प्रकार की न्यूनता न रक्खो।मैं जीवित रहकर अपने आत्मीय मित्रों के महादुःख और कष्ट को नहीं देख सकता॥३०।३२॥महावीर सात्यकि इतना कहकर, निर्भय भाव से स्थिर होकर, शीघ्रता के साथ दुर्योधन से युद्ध करने को बढ़े और प्राणों की ममता छोड़कर

शरैश्चाऽवाकिरद्राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।
ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥ ३५ ॥
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत्कुपितो दशभिः शरैः ।
तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत्तथैवाऽवाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥
पञ्चाशता पुनश्चाऽऽजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।
सात्यकिं तु रणे राजन्प्रहसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशताशरैः ।
ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाऽच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥ ४० ॥
तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥
सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥ ४२ ॥
तस्य सन्दधतश्चेषुं संहितेषु च कार्मुकम् ।
आच्छिनत्सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाऽप्यवीविधत् ॥ ४३ ॥
स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरं ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥ ४४ ॥

युद्ध करने लगे। महाबाहु सात्यकि को युद्ध के निमित्त बढ़ते देखकर दुर्योधन ने उन पर बाणों की वर्षा कर दी। उस समय सिंह और गजराज के समान वे दोनों घोर घमासान युद्ध करने लगे॥३३।३५॥महारथी क्रुद्ध दुर्योधन ने कानों तक खींचकर छोड़े गये दस बाणों से सात्यकि को घायल किया। तब सात्यकि ने भी उनको क्रम से पचीस, तीस और दस तीक्ष्ण बाण मारे। हे राजेन्द्र ! आपके पुत्र ने हँसकर, धनुष तानकर, कान तक खींचकर तीस बाण सात्यकि को मारे। फिर एक क्षुरप्र बाण से उनका धनुष भी काट डाला॥३५।३९॥वीर सात्यकि ने तत्काल दूसरा दृढ धनुष लेकर दुर्योधन के वध के निमित्त स्फूर्ति के साथ असंख्य बाण बरसाना प्रारम्भ कर दिया। राजा दुर्योधन भी अनायास अपने बाणों से सात्यकि के बाणों को काट-काटकर व्यर्थ करने लगे। यह देखकर सैनिकगण बड़ा कोलाहल करने लगे। राजा दुर्योधन ने बड़े वेग से धनुष खींचकर सुवर्णपुङ्खशोभित तीक्ष्ण तिहत्तर बाण सात्यकि को मारे। तब सात्यकि ने दुर्योधन के बाण-सहित धनुष को काट डाला। सात्यकि ने असंख्य बाणों से राजा दुर्योधन को ढक दिया॥४०।४३॥कुरुराज दुर्योधन सात्यकि के बाणों की गहरी चोट खाकर अत्यन्त व्यथित हो उठे और उनके सम्मुख से हटकर अन्य रथी योद्धा के सम्मुख चले गये। वहाँ कुछ देर विश्राम करके वे फिर सात्यकि

समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४५ ॥
तथैव सात्यकिर्बाणान्दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन्राजंस्तत्संकुलमवर्तत ॥ ४६ ॥
तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षैः शब्दः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥
तयोः शरसहस्रैश्च सञ्छन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥
तत्राऽप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९ ॥
न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन्सायकान्बहून ॥ ५० ॥
तस्य कर्णः शितान्बाणान्प्रतिहन्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाऽभ्याहनच्छरैः ॥ ५१ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाऽऽहवे रिपोः ॥ ५२ ॥
रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः ।
भग्नचक्रे रथे तिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥ ५३ ॥
एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।
एकचक्रमिवाऽर्कस्य रथं सप्तहया यथा ॥ ५४ ॥

के सम्मुख आये और उनके रथ पर बाणों की वर्षा करने लगे । सात्यकि भी दुर्योधन के रथ पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । चारों ओर बाणों के गिरने से वैसा ही शब्द हो रहा था, जैसा शब्द वन में अग्नि लगने पर वृक्षों के जलने और गिरने से होता है । उन दोनों वीरों के बाणों से पृथ्वीतल परिपूर्ण और आकाशमार्ग दुर्गम हो उठा॥४४।४८॥सात्यकि को दुर्योधन से अधिक पराक्रम प्रकट करते देखकर उनकी रक्षा करने के निमित्त कर्ण शीघ्रता से सात्यकि की ओर चले । यह देखकर महाबली भीमसेन से नहीं रहा गया।वे शीघ्रता के साथ कर्ण के सम्मुख जाकर उन पर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥४९।५०॥वीर कर्ण ने भीमसेन के सब बाणों को अनायास काट डाला और फिर कई बाणों से उनके धनुष-बाण को काटकर सारथी को भी मार गिराया । यह देखकर वीर भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे । उन्होंने भारी गदा लेकर उसके प्रहार से कर्ण के धनुष,ध्वजा और सारथी को चूर्ण करके उनके रथ का एक पहिया भी तोड डाला॥५१।५३॥ पहिया टूट जाने पर भी कर्ण पर्वतराज की भाँति अटल होकर उसी रथ पर बैठे रहे । सूर्य के एक पहियेवाले रथ को जैसे सात घोडे आकाशमार्ग में ले चलते हैं, वैसे ही कर्ण के एक पहिये के रथ को बहुत देर तक घोडे घुमाते रहे। भीमसेन के उस कार्य को कर्ण न सह सके और बहुत

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ५५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत् ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान् ।
ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥ ५७ ॥
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ।
किंतिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥ ५९ ॥
जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ ।
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥
हता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।
ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥ ६१ ॥
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।
पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
भीमसेनपुरोगाश्चाऽप्येकतः पर्यवारयन् ।
आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥ ६३ ॥

देर तक भाँति भाँति के बाण और शस्त्र छोड़कर उनसे युद्ध करते रहे। भीमसेन भी क्रुद्ध हो रहे थे। वे बहुत देर तक कर्ण का सामना करते रहे॥५३।५६॥ हे राजन्! इस प्रकार भीम और कर्ण का युद्ध होते देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने कुपित होकर पाञ्चाल और मत्स्य देश के महारथी योद्धाओं से कहा—हे श्रेष्ठ वीरो! हमारे प्राण और शिरोमणि स्वरूप जो महारथी श्रेष्ठ योद्धा हैं, वे इस समय दुर्योधन आदि शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहे हैं। फिर तुम लोग मूढ़ अचेत की भाँति खड़े हुए कातुर क्या देख रहे हो? जहाँ पर ये हमारे पक्ष के महारथी योद्धा शत्रुओं से युद्ध कर रहे हैं वहीं तुम भी जाओ और क्षत्रिय धर्म के अनुसार निर्भय होकर युद्ध करो॥५६।६०॥ विजय, धर्मयुद्ध करके जय प्राप्त करने में और मृत्यु होने में भी सर्वथा लाभ ही है। मृत्यु को प्राप्त होगे तो श्रेष्ठ लोकों में जाकर उत्तम भोग प्राप्त करोगे और यदि विजय प्राप्त करोगे तो यहाँ भारी दक्षिणावाले यज्ञ करोगे, सुख भोगोगे और साथ ही कीर्ति भी संसार में फैलेगी। यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे, तो भी क्या चिन्ता है, देव शरीर पाकर स्वर्ग के श्रेष्ठ सुख भोगोगे॥५९।६१॥ हे राजन्! महावीर योद्धा लोग राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर, सेना के चार भाग करके, द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने चले। एक ओर से धृष्टद्युम्न प्रमुख पाञ्चालगण द्रोणाचार्य पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। एक ओर से भीमसेन के साथ की सेना और वीरगण आचार्य पर आक्रमण करने चले और एक ओर से नकुल तथा सहदेव ने आक्रमण किया॥६१।

यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनञ्जयम् ।
अभिद्रवाऽर्जुन क्षिप्रं कुरून्द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥
तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् ।
कौरव्येयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥ ६५ ॥
पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

६३॥पाण्डवपक्ष के तीन महारथी भीमसेन,नकुल और सहदेव चिल्लाकर कहने लगे–हे अर्जुन ! तुम शीघ्र ही आक्रमण करके आचार्य की रक्षा कर रहे, कौरवों को द्रोणाचार्य से दूर भगा दो।तब रक्षक हीन असहाय आचार्य को ये वीर पाञ्चाल शीघ्र ही मार डालेंगे हे महाराज ! महाप्रतापी तेजस्वी अर्जुन, भाइयों के कथनानुसार,स्फूर्त्ति के साथ कौरवों पर आक्रमण करने लगे। इधर द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों पर आक्रमण करने के निमित्त उनकी ओर बढ़ने लगे। इस प्रकार द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में होनेवाले पाँचवें दिन के युद्ध में वीरगण एक दूसरे को मारने लगे ॥ ६३।६६॥

द्रोणपर्व का एक सौ नवासी अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८९ ॥

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

सञ्जय उवाच—पाञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत्कदनं महत् ।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥
द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नाऽत्रसन्त रणे द्रोणात्सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २ ॥
युध्यमाना महाराज पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाऽभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥
तेषां तु च्छाद्यमानानां पाञ्चालानां समन्ततः ।
अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४ ॥
वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान्भयमाविशत् ॥ ५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! पहले इन्द्र ने जैसे क्रोध करके समर में दानवों का संहार किया था वैसे ही महावीर द्रोणाचार्य पाञ्चाल लोगों का संहार करने लगे। पाण्डवपक्ष के महाबली महारथी लोग द्रोणाचार्य के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी भयभीत हुए नहीं। महारथी पाञ्चाल और सृञ्जयगण निर्भय होकर द्रोणाचार्य के सम्मुख चले। चारों ओर से द्रोणाचार्य के घेर रहे और उनके बाणों की वर्षा से मर रहे पाञ्चालों का भयानक कोलाहल और आर्तनाद रणभूमि में गूँज उठा॥१।४॥द्रोणाचार्य के अस्त्र वज्र को प्रचण्ड रूप धारण करते और उसके द्वारा पाञ्चालों का दारुण संहार होते देखकर पाण्डव बहुत ही भयभीत हो गये। असंख्य योद्धा, हाथी और घोड़े आदि का नाश होते देखकर पाण्डवों को ऐसा जान पड़ा कि

दृष्ट्वाऽश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि ।
पाण्डवेया महाराज नाऽऽशशंसुर्जयं तदा ॥ ६ ॥
कच्चिद् द्रोणो न नः सर्वान्क्षपयेत्परमास्त्रवित् ।
समिद्धः शिशिरापाये दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ ७ ॥
न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥
त्रस्तान्कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् ।
मतिमाञ्छ्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन ।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १० ॥
न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः ।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥ ११ ॥
यथा नः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ।
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ।
एतन्नाऽरोचयद्राजन्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १३ ॥
अन्ये त्वरोचयन्सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।
ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥

अब युद्ध में उनको विजय प्राप्त नहीं हो सकती। वे व्याकुल होकर कहने लगे- श्रेष्ठ अस्त्रों के जाननेवाले द्रोणाचार्य कहीं हमारी सारी सेना को न मार डालें। वसन्तकाल में लगी हुई अग्नि जैसे प्रचण्ड होकर घास-फूस को भस्म कर डालती है वैसे ही-द्रोणाचार्य इस समय हमारी सेना का संहार कर रहे हैं। इस समय कोई योद्धा इन्हें नेत्र से देख तक भी नहीं सकता। अर्जुन धर्मज्ञ हैं इसलिये वे गुरु से युद्ध नहीं करेंगे ॥५।८॥ हे राजेन्द्र! पाण्डवों के हितैषी अलौकिक बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने द्रोणाचार्य के बाण प्रहार से पीड़ित और भयभीत हुए-हुए पाण्डवों की यह दशा देखकर अर्जुन से कहा —हे पार्थ! श्रेष्ठ धनुर्धर द्रोणाचार्य के हाथ में जब तक धनुष है तब तक इन्द्र सहित सब देवता भी इन्हें नहीं परास्त कर सकते हैं, यदि किसी प्रकार से ये शस्त्र छोड़ दें तो मनुष्य भी इनका वध कर सकते हैं। इसीलिए मेरी सम्मति से तो यह है कि धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर इन्हें जीतने का—शस्त्र त्याग कराने का—कोई उपाय तुम लोगों को करना चाहिए। वही उपाय करना चाहिए जिससे ये मारे जा सकें और इनके अस्त्र बल से हमारी सेना का संहार न होने पावे। यदि धर्म का विचार करोगे, कोई ऐसा उपाय न कर सकोगे जिससे ये शस्त्र रख दें, तो ये बहुत शीघ्र तुम्हारी सारी सेना का नाश कर डालेंगे। मैं समझता हूं, किसी प्रकार इन्हें अश्वत्थामा के मरने का निश्चय हो जाय तो ये फिर युद्ध नहीं करेंगे। कोई मनुष्य इनके समीप जाकर कह दे कि युद्ध में अश्वत्थामा मारे गये ॥९।१३॥ हे राजेन्द्र! और सबने तो यह युक्ति उचित समझी, परन्तु अर्जुन प्रसन्न नहीं हुए। धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी बहुत

जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ १५ ॥
भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ १६ ॥
अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ १७ ॥
भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत्परमाप्रियम् ।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि ॥ १८ ॥
शङ्कमान स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै ।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥
स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् ।
अनुचिन्त्याऽऽत्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ २० ॥
स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरत्सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २१ ॥
तं विंशतिसहस्राणि पाञ्चालानां नरर्षभाः ।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः ॥ २२ ॥
शरैस्तैराचितं द्रोणं नाऽपश्याम महारथम् ।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥ २३ ॥

कहने सुनने पर इस पर प्रसन्न हुए । तब भीमसेन ने जाकर मालव देश के राजा इन्द्रवर्मा के हाथी का, जिसका नाम अश्वत्थामा था, गदा के प्रहार से मार डाला । वह शत्रु की सेना को नष्ट करनेवाला हाथी पाण्डवों की सेना में ही प्रवेश हुआ-हुआ था । इसके पश्चात् द्रोणाचार्य के समीप जाकर, कुछ लज्जित भाव से, भीमसेन ने ज़ोर से कहा—अश्वत्थामा मारा गया । भीमसेन ने मन में अश्वत्थामा हाथी की मृत्यु की बात सुनकर द्रोणाचार्य को धोखा देने के निमित्त केवल अश्वत्थामा मारा गया यह अस्पष्ट वाक्य कहा, जो कि वास्तव में मिथ्या था॥१३।१७॥भीमसेन को बारम्बार चिल्लाकर यों कहते देखकर और उपरोक्त महान् अप्रिय वचन सुनकर आचार्य का मन विषाद और शोक मे व्याकुल हो उठा ; उनके हाथ पाँव आदि सब अङ्ग वैसे ही रह गये जैसे जल में बालू बैठ जाती है । क्षण भर के पश्चात् आचार्य का यह भाव जाता रहा; क्योंकि वे अपने पुत्र के बल और पराक्रम को जानते थे कि उसे कोई शस्त्रधारी नहीं मार सकता । उन्हें सन्देह हो गया कि भीमसेन का यह कहना मिथ्या है । इसी लिए भीमसेन के मुख से अश्वत्थामा के मरने की सूचना सुनकर वे धैर्य से विचलित नहीं हुए । अपने पुत्र को शत्रुओं के लिए अजेय जानकर, क्षण भर में सचेत होकर, द्रोणाचार्य अपने लिए मृत्यु स्वरूप धृष्टद्युम्न की ओर वेग से चले और उनके ऊपर कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण सहस्रों बाण बरसाने लगे॥१८।२१॥संग्राममें मृत्युकी भाँति विचर रहे द्रोणाचार्य को पाञ्चाल देश के बीस सहस्र श्रेष्ठ-श्रेष्ठ योद्धाओं ने घेर लिया । वे चारों ओर से उन पर

विधूय तान्बाणगणान्पाञ्चालानां महारथः ।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ॥ २४ ॥
वधाय तेषां शूराणां पाञ्चालानाममर्षितः ।
ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥
शिरांस्यपातयच्चापि पाञ्चालानां महामृधे ।
तथैव परिघाकारान्बाहून्कनकभूषणान् ॥ २६ ॥
ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः ।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥
कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २८ ॥
हत्वा विंशतिसाहस्रान्पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २९ ॥
तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ ३० ॥
पुनः पञ्चशतान्मत्स्यान्षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाऽश्वायुतं पुनः ॥ ३१ ॥
क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३२ ॥
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ३३ ॥

बाण बरसाने लगे। वर्षा ऋतु में बादलों से छिपे हुए सूर्य की भाँति महारथी द्रोणाचार्य उनके बाणों की वर्षा में छिप गये। हम लोगों को उनका रथ भी नहीं देख पड़ता था। महारथी द्रोणाचार्य ने क्षण भर में पाञ्चाल योद्धाओं के उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया॥२२।२३॥कुपित द्रोणाचार्य ने उन शूर पाञ्चालों को मारने के निमित्त ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। उस समय सब सैनिक लोगों का संहार कर रहे द्रोणाचार्य बहुत ही शोभा को प्राप्त हुए। उन्होंने पाञ्चालों के सिरों और सुवर्णभूषणयुक्त परिघ से हाथों को काट-काट कर ढेर लगा दिया। समर में द्रोण के अस्त्र से मारे गये राजा लोग आँधी से उखड़े और टूटे हुए वृक्षों की भाँति पृथ्वी पर गिरने लगे। मर-मरकर गिर रहे असंख्य हाथियों और घोड़ों के मांस और रुधिर की कीच से रणभूमि अगम्य हो उठी॥२४।२८॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार महावीर द्रोणाचार्य ने पाञ्चाल देश के बीस सहस्र रथी योद्धाओं को मार डाला। उस समय वे अपने प्रचण्ड तेज से धूम-हीन अग्नि के समान रथ पर शोभायमान हो रहे थे। फिर उन्होंने क्रुद्ध होकर एक भल्ल बाण से वसुदान का सिर काट डाला। इसके पश्चात् पाँच सौ मत्स्यदेश के और छः सहस्र सृञ्जयसेना के वीर मारकर दस सहस्र हाथी और इतने ही घोड़े मार गिराये॥२९।३१॥हे महाराज! इसी समय अग्निदेवी

सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चाऽन्ये महर्षयः ॥ ३४ ॥
त एनमब्रुवन्सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥ ३५ ॥
न्यस्याऽऽयुधं रणे द्रोण समीक्षाऽस्मानवस्थितान्।
नाऽतः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ ३६ ॥
वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३७ ॥
त्यजाऽऽयुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते ।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ३८ ॥
ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि ।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३९ ॥
न्यस्याऽऽयुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः ।
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत् ।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ॥ ४१ ॥
सन्दिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि आदि ऋषिगण द्रोणाचार्य को ब्रह्मलोक ले जाने के निमित्त आकाश में आ गये । इसके अतिरिक्त सिकत, पृश्नि, गर्ग, वालखिल्य, मरीचिप, भृगु, अङ्गिरा और अन्य सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि आकर — द्रोणाचार्य को क्षत्रियवंश का बिल्कुल ही नाश करने के निमित्त उद्यत देखकर — बोले कि हे आचार्य ! तुम इस समय अस्त्र न जाननेवाले शत्रुओं को अस्त्र से मारकर अधर्म युद्ध कर रहे हो । अब यह तुम्हारे परलोक-गमन का समय उपस्थित है । हम लोग तुम्हें ले जाने को आये हैं । अब तुम शस्त्र रखकर हमारी ओर देखो, हमारा कहा मानो । यह अत्यन्त क्रूर व्यापार करना तुम्हें उचित नहीं है ॥३२।३६॥ तुम सब वेदों और वेदाङ्गों के ज्ञाता, सत्य-धर्म-निरत, विशेषकर ब्राह्मण हो । इसलिए यह क्रूर कर्म किसी प्रकार तुम्हारे योग्य नहीं है । हे अमोघ बाण चलानेवाले आचार्य ! अब तुम शाश्वत धर्म के मार्ग को ग्रहण करके ईश्वरभक्ति में मन लगाओ । मनुष्यलोक में तुम्हारे रहने का समय पूर्ण हो गया । हे विप्र ! तुमने अस्त्र न जाननेवाले साधारण सैनिकों पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उन्हें भस्म किया है । यह कर्म तुमने उचित नहीं किया । अब तुम शस्त्र-त्याग करके इस क्रूर कर्म को बन्द कर दो । विलम्ब न करो । अब ऐसा क्रूर कर्म फिर करनेका विचार छोड़ दो॥३७।४०॥ हे राजेन्द्र ! भीमसेन के मुख से अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनकर द्रोणाचार्य पहले शोकाकुल हो चुके थे । अब ऋषियों के ये वचन सुनकर, भीमसेन के वचन स्मरण करके, और धृष्टद्युम्न को सम्मुख

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम् ।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४३ ॥
तस्मात्तं परिपप्रच्छ नाऽन्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः ।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात्प्रभृति पाण्डवे ॥ ४४ ॥
ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधाम्पतिम् ।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥
यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ४६ ॥
स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ।
अनृतं जीवितस्याऽर्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥
तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः ।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ४९ ॥
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः ।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाऽऽहवादिति ।
नूनं नाऽश्रद्दधद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ५१ ॥

उपस्थित देखकर वे बहुत ही खिन्न, व्यथित और व्याकुल हो उठे। भीमसेन की बात पर पूर्ण विश्वास न करके आचार्य ने राजा युधिष्ठिर से पूछा कि अश्वत्थामा मारे गये या जीते हैं। आचार्य को दृढ़ निश्चय था कि युधिष्ठिर त्रिभुवन के राज्य के लिए कदापि भी असत्य नहीं बोलेंगे। युधिष्ठिर के बाल्यकाल से ही वे उन्हें सत्यवादी जानते थे। इसी से द्विज-श्रेष्ठ द्रोण ने और सब को छोड़कर उन्हीं से इस विषय में पूछा॥४१।४४॥इसी समय महारथी द्रोणाचार्य को पृथ्वी को पाण्डव हीन करने के निमित्त उद्यत जानकर श्रीकृष्ण ने, व्यथित होकर, युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! यदि द्रोणाचार्य आधे दिन और इसी प्रकार क्रुद्ध होकर युद्ध करेंगे तो आपकी सारी सेना में एक मनुष्य भी जीता नहीं बचेगा। इसलिए आप मिथ्या बोलकर अपनी सेना की रक्षा कीजिए। ऐसे अवसर पर सत्य बोलने की अपेक्षा असत्य बोलना ही श्रेष्ठ है। जीवन बचाने के लिए मिथ्या बोलने से मिथ्यावादी होने का पातक नहीं होता*॥४५।४७॥ श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से यों कह ही रहे थे कि भीमसेन ने भी कहा—हे राजेन्द्र! मैंने द्रोणाचार्य के वध का उपाय सुनकर आपकी सेना को नष्ट करनेवाले मालव-नरेश इन्द्रवर्मा के ऐरावत सदृश अश्वत्थामा नाम के हाथी को गदा के प्रहार से मार डाला, और फिर द्रोणाचार्य से जाकर कहा—हे ब्रह्मन्! अश्वत्थामा

* शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियों के विषय [illegible] में, विवाह के समय में, वृत्ति के लिए, प्राणसङ्कट के अवसर पर तथा गौ और ब्राह्मण [illegible] प्राण बचाने के लिए मिथ्या बोलना निन्दित नहीं है।

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः ।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ॥ ५२ ॥
त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन्द्विजर्षभः ।
सत्यवान्हि त्रिलोकेऽस्मिन्भवान्ख्यातो जनाधिप ॥ ५३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः ।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४ ॥
तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५५ ॥
तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरंगुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ॥ ५६ ॥
युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसन्तप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥
आगस्कृतमिवाऽऽत्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥ ५८ ॥
विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाऽशक्नुवद्राजन्यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ५९ ॥

इति श्री महाभारते० द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९० ॥

मारे गये, अब युद्ध करना छोड़ो ॥४८।५१॥ किन्तु पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने मेरी बात पर विश्वास न किया। इसलिए आप हमारे हितैषी श्रीकृष्ण का कहा मानकर द्रोणाचार्य से यह दीजिए कि अश्वत्थामा मारे गये। आप यदि यह देंगे तो द्रोणाचार्य को विश्वास हो जायगा और वे हथियार रख देंगे। क्योंकि आप संसार में सर्वत्र सत्यवादी कहलाते हैं॥५१।५३॥ हे महाराज! श्रीकृष्ण की प्रेरणा से, भीमसेन के कहने से और भवितव्यतावश, राजा युधिष्ठिर ने असत्य बोलना स्वीकार कर लिया। एक ओर मिथ्या बोलने के पातक का भय था और दूसरी ओर विजय की अभिलाषा थी। पर दोनों में [illegible] राजा युधिष्ठिर ने भयभीत होते होते आचार्य को सुनाकर कहा—अश्वत्थामा मारा गया। साथ ही धीरे से कहा—अश्वत्थामा हाथी मारा गया। हे राजेन्द्र! इससे पहले युधिष्ठिर का रथ पृथ्वी से चार अंगुल ऊँचा रहता था; किन्तु उस समय इस प्रकार धोखा देने के लिए मिथ्या बोलने से उनके रथ के घोड़े पृथ्वी पर चलने लगे॥५४।५६॥ युधिष्ठिर के वचन सुनकर महारथी द्रोणाचार्य असह्य पुत्रशोक से पीड़ित हो उठे। उन्होंने जीवन की ममता छोड़ दी। ऋषियों के पूर्वोक्त वाक्य स्मरण करके वे अपने को पाण्डवों का अपराधी सा समझने लगे। पुत्र की मृत्यु सुनकर वे व्याकुल हो उठे। सम्मुख धृष्टद्युम्न को युद्ध के निमित्त खड़े देखकर भी, शोकविह्वल होने के कारण, पहले की भाँति वे युद्ध न कर सके ॥५७।५९॥

द्रोणपर्व का एक सौ नब्बे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९० ॥

अथ एकनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९१ ॥

सञ्जय उवाच— तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १ ॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥ २ ॥
स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाऽऽशीविषोपमम् ॥ ३ ॥
सन्दधे कार्मुके तस्मिंस्ततस्तमनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवाऽनलम् ॥ ४ ॥
तस्य रूपं शरस्याऽऽसीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥ ५ ॥
पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः ।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६ ॥
तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वाऽमन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ७ ॥
ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे ।
न चाऽस्याऽस्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ८ ॥
तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकाऽस्यतो गता ।
तस्य चाऽह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥ ९ ॥

एक सौ इक्यानवे अध्याय ॥ १९१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ ! इसी समय पाञ्चालराज द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को पुत्रशोक से अत्यन्त शिथिल और अचेत देखकर, सुअवसर जानकर, वेग से उन पर आक्रमण करने को चले । राजा द्रुपद ने द्रोण को मारने के निमित्त ही महायज्ञ किया था, और उसी यज्ञ में अग्निकुण्ड से धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति हुई थी ॥१।२॥ महापराक्रमी धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त सुदृढ डोरीवाले, मेघगर्जन के समान शब्द करनेवाले, विजय दिलानेवाले, जीर्ण न होनेवाले, घोर धनुष पर विषैले सर्प के समान बाण चढ़ाया । द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त धृष्टद्युम्न ने जो बाण धनुष पर चढ़ाया वह ज्वालाओं से परिपूर्ण अग्नि के समान था । धनुष की डोरी के मण्डल के मध्य में वह उग्र बाण मेघ के बीच घेरे से युक्त सूर्यमण्डल के समान प्रतीत होने लगा । धृष्टद्युम्न के हाथ में वह प्रज्वलित धनुष देखकर सब सैनिकों को ऐसा जान पड़ा कि अब प्रलय होने में कुछ देर नहीं है । आचार्य भी उस बाण को धृष्टद्युम्न के धनुष पर चढ़ते देखकर समझ गये कि उनके शरीर छोड़ने का समय आ गया है॥४।७॥ आचार्य ने उस बाण को व्यर्थ करने का बहुत यत्न किया, परन्तु उनके सब दिव्य अस्त्र पहले की भाँति

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चाऽर्दितः ।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥ १० ॥
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः ।
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥ ११ ॥
भूयश्चाऽन्यत्समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान्धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥
ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥
शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाऽप्यपातयत् ॥ १४ ॥
धृष्टद्युम्नःप्रहस्याऽन्यत्पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ १५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसम्भ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदाऽस्य पुनर्धनुः ॥ १६ ॥
यच्चाऽस्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते ।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥ १७ ॥
धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
जीवितान्तकरः क्रुद्धः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥ १८ ॥

प्रकट नहीं हुए। चार दिवस और एक रात्रि उन्होंने निरन्तर बाणों की वर्षा की, किन्तु बाण वैसे ही अक्षय बने रहे। परन्तु आज दिन का तिहाई भाग भी नहीं व्यतीत होने पाया कि सब बाण चुक गये। पुत्र-शोक से विह्वल द्रोणाचार्य अपने बाणों को चुकते और विविध दिव्य अस्त्रों को पहले की भाँति काम न देते देखकर युद्ध से निराश हो गये। ऋषियों के वचनों को स्मरण करके उन्होंने शस्त्र रख देने का निश्चय कर लिया। उनका तेज भी घट गया। वे पहले की भाँति उत्साह से युद्ध करने में असमर्थ हो गये ॥८।११॥ क्षण भर के पश्चात् आचार्य ने फिर अङ्गिरा का दिया हुआ दिव्य धनुष और ब्रह्म-दण्ड के समान उस बाण हाथ में लिये। अब वे धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। आचार्य ने धृष्टद्युम्न के ऊपर घोर बाण-वर्षा करके उनको छिन्न-भिन्न कर डाला। द्रोण ने बाणों से धृष्टद्युम्न के सब बाणों के सैकड़ों टुकड़े कर डाले और उनके धनुष, ध्वजा और सारथी को काट गिराया ॥१२।१४॥ महावीर धृष्टद्युम्न ने हँसकर दूसरा धनुष लेकर आचार्य की छाती में एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारा। उस बाण की गहरी चोट खाकर भी आचार्य विचलित नहीं हुए और उन्होंने तीक्ष्ण धारवाले भल्ल बाण से फिर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। धनुर्धरों में श्रेष्ठ आचार्य ने धृष्टद्युम्न के खड्ग और गदा के अतिरिक्त सब अस्त्र-शस्त्र, बाण और धनुष आदि के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके पश्चात् शत्रुदमन द्रोण ने सिल्ली पर रगड़कर तीक्ष्ण किये गये और जीवन का संहार करनेवाले नव अत्यन्त तीक्ष्ण बाण धृष्टद्युम्न को

धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याऽश्वान्स्वरथाश्वैर्महारथः ।
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥
ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥ २० ॥
यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विज ॥ २२ ॥
स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३ ॥
तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥
तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २५ ॥
असंशयं तथाभूतं पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥
ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २७ ॥
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८ ॥

मारे॥१५।१८॥तब धृष्टद्युम्न ने क्रुद्ध होकर अपने रथ के घोड़ों को आचार्य के रथ के घोड़ों से मिलाकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। वायु के समान वेग से जाने वाले श्वेत, लाल और कबूतर के रङ्गवाले, घोड़े एक में मिल जाने से बहुत ही शोभायमान हुए। रणभूमि में मिले हुए वे घोड़े वैसे ही शोभायमान हुए जैसे वर्षाऋतु में गरज रहे बिजली सहित मेघ शोभित होते हैं॥१९।२१॥आचार्य ने धृष्टद्युम्न के रथ के ईषा, चक्र और रथ के बन्धन को काट डाला। धनुष, ध्वजा, सारथी और रथ कुछ भी न रहने पर घोर विपत्ति में पड़कर वीर धृष्टद्युम्न ने अपने बचाव के निमित्त हाथ में भारी गदा ली। कुपित द्रोणाचार्य ने प्रहार करने के पहले ही बाणों से उस गदा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥२२।२४॥गदा को इस प्रकार व्यर्थ होते देखकर धृष्टद्युम्न ने उज्ज्वल तीक्ष्ण शतचन्द्र-शोभित खड्ग हाथ में लिया। धृष्टद्युम्न ने निःसंशय होकर द्रोण-वध के निमित्त यही उचित समय समझा। तब वे शतचन्द्रयुक्त तलवार तानकर अपने रथ से उतरकर द्रोणाचार्य के रथ पर चले गये और उन्होंने चाहा कि उसी खड्ग से आचार्य के हृदय को फाड़ डालें॥२५।२७॥वे कभी युग के मध्य भाग में, कभी युग के सन्नहन स्थान में और कभी द्रोण के घोड़ों की पीठ पर चले जाते थे, और इस प्रकार अपने को बचाकर आचार्य पर वार करने का अवसर ढूँढ रहे थे। उनकी

सोऽतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाऽश्वानां तत्सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥
तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नाऽपश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३० ॥
क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवाऽऽमिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥
तस्य पारावतानश्वान्रथशक्त्या पराभिनत् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्जयन् ॥ ३२ ॥
ते हता न्यपतन्भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशाम्पते ॥ ३३ ॥
तान्हयान्निहतान्दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नाऽमृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ३४ ॥
विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यपतद्राजन्वैनतेय इवोरगम् ॥ ३५ ॥
तस्य रूपं बभौ राजन्भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ ३६ ॥
स तदा विविधान्मार्गान्प्रवरांश्चैकविंशतिम् ।
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन्रणे ॥ ३७ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ॥ ३८ ॥

यह स्फूर्ति और उद्यम देखकर सब सैनिक प्रशंसा करने लगे। युग मध्य में और घोड़ों की पीठ पर विचर रहे धृष्टद्युम्न पर वार करने का अवसर आचार्य को भी नहीं मिलता था। यह भी एक अद्भुत बात देख पड़ी। जैसे मांस के लिए दो गिद्ध घोर युद्ध करें वैसे ही स्फूर्ति के साथ द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न वार करने का अवसर देख रहे थे॥२८।३१॥अब महारथी आचार्य ने कुपित होकर अपने लाल घोड़ों को बचाकर धृष्टद्युम्न के चितकबरे घोड़ों को, एक-एक करके, शक्ति के प्रहार से मार डाला। इस प्रकार धृष्टद्युम्न के घोड़े मरकर जब गिर पड़े तब द्रोणाचार्य के घोड़े रथ के बंधन से छूट गये। महारथी धृष्टद्युम्न द्रोण के प्रहार से अपने घोड़ों का मरना किसी प्रकार न सह सके। महारथी धृष्टद्युम्न रथ हीन होने पर कुपित हो खड्ग लेकर, सर्प पर गरुड़ की भांति, आचार्य पर प्रहार करने के अभिप्राय से झपटे॥३२।३५॥द्रोण को मारने के निमित्त उद्यत धृष्टद्युम्न का रूप उस समय वैसा ही देख पड़ा जैसा कि हिरण्यकशिपु राक्षस को मारने के निमित्त प्रकट हुए नृसिंहावतार विष्णु का भयानक रूप था। हे भरतकुल-श्रेष्ठ! उस समय ढाल-तलवार हाथों में लिए हुए वीर धृष्टद्युम्न भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत, सृत, परिवृत्त, निवृत्त, सम्पात, समुदीर्ण, भारत, कौशिक, सात्वत आदि इक्कीस प्रकार के पैंतरे दिखाकर अपने खड्ग-युद्ध के

सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया ॥ ३९ ॥
दर्शयन्व्यचरद्युद्धे द्रोणस्याऽन्तचिकीर्षया ।
चरतस्तस्य तान्मार्गान्विचित्रान्खड्गचार्मिणः ॥ ४० ॥
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः ।
ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥ ४१ ॥
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ।
ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ४२ ॥
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नाऽन्येषां सन्ति ते शराः ।
ऋते शरद्वतात्पार्थाद् द्रौणेर्वैकर्तनात्तथा ॥ ४३ ॥
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत ।
अथाऽस्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम् ॥ ४४ ॥
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसमितम् ।
तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६ ॥
चरन्त रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्याऽपि च भारत ॥ ४७ ॥
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनञ्जयौ ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधुसाध्विति ॥ ४८ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधिनिघ्नन्तमच्युतम् ।
अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ ४९ ॥

अभ्यास और शिक्षा का परिचय देने लगे॥३६।३९॥ ढाल तलवार लेकर इस प्रकार पैंतरे बदल रहे धृष्टद्युम्न के युद्ध कौशल को देखकर सब योद्धा और देवगण बहुत ही विस्मित हुए। इसी समय द्रोणाचार्य ने सहस्रों बाण मारकर धृष्टद्युम्न के हाथ की ढाल और शतचन्द्र खड्ग के टुकड़े टुकड़े कर डाले॥३९।४२॥ आचार्य ने उस समय निकट के युद्ध में जिन बाणों का प्रयोग किया, वे वैतस्तिक (बित्ते भर के) थे। निकट के युद्ध में वे ही बाण काम में आ सकते हैं। वैसे बाण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अर्जुन, कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि और अभिमन्यु के अतिरिक्त अन्य योद्धाओं के समीप नहीं थे॥४२।४५॥हे महाराज! आचार्य ने क्रुद्ध होकर पुत्र तुल्य शिष्य धृष्टद्युम्न को मार डालने के निमित्त एक विकट बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा। यह देखकर यादव श्रेष्ठ सात्यकि ने दूर से ही दस बाण चलाकर उसे काट डाला और इस प्रकार आप के पुत्र दुर्योधन, कर्ण आदि के सम्मुख ही आचार्य के वश में आ गये धृष्टद्युम्न को उन्होंने बचा लिया।

धनञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत्पश्य केशव ।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ॥ ५० ॥
आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥
यच्छिक्षयाऽनुद्धतः सन्रणे चरति सात्यकिः ।
महारथानुपक्रीडन्वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ ५२ ॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः ।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधुसाध्विति सात्यकिम् ॥
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

सात्यकि को द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्य के मध्य में विचरते और रथ की विविध विचित्र गतियां दिखाते देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन बहुत ही प्रसन्न हुए और सात्यकि को युद्ध में अस्त्र बल से दिव्य अस्त्रों को व्यर्थ करते देखकर साधुवाद देने लगे॥४५।४९॥ अर्जुन ने कृष्णचन्द्र से कहा—हे केशव! देखो, आचार्य और अन्य श्रेष्ठ महारथियों के मध्य निर्भय भाव से क्रीड़ा सी कर रहे और अपनी श्रेष्ठ अस्त्र शिक्षा का परिचय दे रहे शत्रु-दल दलन सात्यकि मुझे, भीमसेन को, महाराज युधिष्ठिर को और नकुल सहदेव को बहुत ही आनन्दित और सन्तुष्ट कर रहे हैं। सब युद्ध देखनेवाले सिद्धगण और सैनिकगण समर में शत्रुओं से न जीते जा सकनेवाले और यादवों की कीर्ति को बढ़ानेवाले सात्यकि के निर्भय भाव, रण-कौशल, शिक्षा और अभ्यास को देखकर वाह-वाह कर रहे हैं। हे कुरुकुल-श्रेष्ठ महाराज धृतराष्ट्र! दोनों दलों के योद्धा लोग सात्यकि के अद्भुत कर्मों को देखकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥५०।५३॥

द्रोणपर्व का एक सौ इक्यानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९१ ॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

सञ्जय उवाच—सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः ।
शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥
कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष ।
शैनेयं त्वरयाऽभ्येत्य विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥ २ ॥
युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
भीमसेनश्च बलवान्सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

॥ एक सौ बानबे अध्याय १९२ ॥

सञ्जय कहते हैं हे महाराज! तब दुर्योधन आदि महारथी सात्यकि के ऐसे अद्भुत कार्य को देखकर क्रोधान्ध हो उन्हें यत्नपूर्वक जीतने और मारने की चेष्टा करने लगे। कृपाचार्य, कर्ण और आपके पुत्रगण युद्ध में उपस्थित होकर सात्यकि को अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारने लगे। उस समय महाराज युधिष्ठिर, महावली भीमसेन, नकुल और सहदेव ने सात्यकि को अपने मध्य में कर लिया॥१।३॥उधर

कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः ।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम् ।
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान्महारथान् ॥ ५ ॥
तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम् ।
वारयामास विधिवद्दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥
क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन्राजसमागमे ।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान्पशून्पुरा ॥ ७ ॥
हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
छत्राणां चाऽपविद्धानां चामराणां च सञ्चयैः ॥ ८ ॥
राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे ।
भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥ ९ ॥
सादिभिश्च हतैः शूरैः सङ्कीर्णा वसुधाऽभवत् ।
बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥ १० ॥
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे ।
वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥ ११ ॥
अब्रवीत्क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥
एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः ।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ १३ ॥

से महारथी कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि वीरगण चारों ओर से आक्रमण करके उनके ऊपर असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महारथी सात्यकि उस समय उन सब महारथियों से युद्ध करने लगे। हे महाराज! सात्यकि ने उनकी भयानक बाण-वर्षा को बाण-वर्षा से और दिव्य अस्त्रों को दिव्य अस्त्रों से व्यर्थ कर दिया। पूर्व समय में पशु-विनाश कर रहे पशुपति रुद्र के समान वीरवर सात्यकि जब राजमण्डली में क्रूरता-पूर्ण युद्ध करने लगे तब युद्ध-भूमि का रूप बहुत ही भयानक हो उठा॥४।७॥ रणभूमि में जहाँ-तहाँ कटे हुए सिरों, हाथों, धनुषों, छत्रों और चामरों के ढेर पड़े हुए दिखाई देने लगे। जिनके पहिए टूट गये हैं ऐसे रथों, गिरी हुई बड़ी-बड़ी ध्वजाओं और मारे गये शूर घुड़सवारों से युद्ध-भूमि भयानक और अगम्य हो उठी। बाणों की चोट से जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट गये हैं ऐसे अनेक योद्धा लोग पृथ्वी पर गिरकर तरह-तरह से तड़पने और कराहते थे॥८।११॥ इस प्रकार देवासुर संग्राम के समान भयानक युद्ध छिड़ जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने वीर क्षत्रियों से कहा—हे वीरो! तुम लोग सम्पूर्ण वेग से जाकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण और उन्हें मारने की पूर्ण चेष्टा करो। ये वीर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से युद्ध कर रहे हैं और यथाशक्ति उन्हें मारने की चेष्टा कर रहे हैं। इस समय धृष्टद्युम्न के रूप और

याद्दशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे ।
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम् ।
युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥ १५ ॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः ।
तान्समापततः सर्वान्भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः ।
प्रयाते सत्यसन्धे तु समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम् ।
पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत ॥ १८ ॥
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद्भयम् ।
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥ १९ ॥
रथाः स्वनन्ति चाऽत्यर्थं हयाश्चाऽश्रूण्यवासृजन् ।
हतौजा इव चाऽप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥
प्रास्फुरन्नयनं चाऽस्य वामबाहुस्तथैव च ।
विमनाश्चाऽभवद्युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥
ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याऽभिसंवृतः ।
निर्दहन्क्षत्रियव्रातान्द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥ २३ ॥

चेष्टा को देखकर जान पड़ता है कि आज ये क्रुद्ध होकर रण में अवश्य द्रोणाचार्य को मार डालेंगे। इसलिए तुम सब लोग मिलकर द्रोणाचार्यसे दारुण युद्ध करो॥१२।१५॥ राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर पाञ्चाल-सृञ्जय सेना के महारथी लोग द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त चल पड़े। महारथी द्रोण भी मरने का दृढ निश्चय करके उन सब महारथियों के सम्मुख पहुँचे ॥१५।१७॥ हे महाराज! सत्यसन्ध आचार्य जब कोप करके आक्रमण करने चले तब धरती काँप उठी, सैनिकों के अन्तःकरण में भय उत्पन्न करती हुई प्रचण्ड आँधी चलने लगी। सूर्यमण्डल से एक भारी उल्का-पिण्ड निकलकर दोनों सेनाओं को प्रकाशित करता और महाभय की सूचना देता हुआ बड़े वेग से पृथ्वी पर गिरा। आचार्य के सब अस्त्र प्रज्वलित हो उठे। रथ में भयानक शब्द निकलने लगा और घोड़ों की आँखों से आँसू बहने लगे॥१७।२०॥ महारथी द्रोणाचार्य का ओज-बल और पराक्रम नष्ट सा हो गया। उनकी बाईं आँख और बाईं भुजा फड़कने लगी। वे धृष्टद्युम्न को आगे देखकर व्याकुल हो गये। ब्रह्मवादी ऋषियों के पूर्वोक्त वचन स्मरण करके उन्होंने धर्मयुद्ध से प्राण त्याग करनेकी इच्छा की॥२०।२२॥ उस समय पाञ्चाल सेनामें प्रवेश होकर क्षत्रियोंको चर्यों की अग्नि में भस्म करते हुए वे समर-भूमि में चारों ओर विचरने लगे। आचार्य द्रोण ने सैकड़ों करस्था-

हत्वा विंशतिसाहस्रान्क्षत्रियानरिमर्दनः ।
दशायुतानि करिणामवधीद्विशिखैः शितैः ॥ २४ ॥
सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥
पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ २७ ॥
न त्वदन्य इहाऽऽचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥
स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्याऽऽददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २९ ॥
संरब्धश्च शरानस्यन्द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३० ॥
तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥
स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥ ३२ ॥
स वसातीञ्शिबींश्चैव बाल्हीकान्कौरवानपि ।
रक्षिष्यमाणान्संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ ३३ ॥

कर पहले बीस हजार क्षत्रियों को मारकर एक लाख हाथियों को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया । क्षत्रियों के संहार के निमित्त ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके वे समरभूमि में बिना धुएँ की अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे॥२३।२५॥तब महावीर भीमसेन ने व्याकुल हुए धृष्टद्युम्न के समीप रथ [और कोई शस्त्र] न देखकर समीप जाकर उन्हें अपने रथ पर बिठा लिया । द्रोणाचार्य समीप ही थे और बाणों की वर्षा कर रहे थे । यह देखकर भीमसेन ने कहा—हे पाञ्चाल राजकुमार ! इस समय तुम्हारे अतिरिक्त और कोई द्रोणाचार्य से युद्ध नहीं कर सकता । तुम्हारे ऊपर ही आचार्य को मारने का भार है । इसलिए तुम आचार्य को मारने के निमित्त शीघ्रता करो॥२६।२८॥यह सुनकर धृष्टद्युम्न ने भीमसेन के समीप से एक उत्तम बोझ सहनेवाला दृढ़ धनुष लेकर रण में न जीते जा सकनेवाले आचार्य को मारने के निमित्त उन पर बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया॥२९।३०॥रण में शोभायमान युद्ध दोनों वीर परस्पर विजय की आकांक्षा से ब्रह्मास्त्र आदि अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे । महारथी धृष्टद्युम्न ने आचार्य के सब दिव्य अस्त्र व्यर्थ कर दिये और उन्हें अनेक श्रेष्ठ अस्त्रों से पीड़ित करना प्रारम्भ किया । धृष्टद्युम्न ने द्रोण की रक्षा करने में तत्पर शिबि, वसाति, बाह्लीक और कौरव आदि वीरों को मार-मारकर भगा दिया॥३१।३३॥किरणों को फैला रहे सूर्य की

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्गभस्तिभिरिवांऽशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥
तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ ३५ ॥
ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याऽऽश्लिष्य तं रथम् ।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥
यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ।
स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ ३७ ॥
अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ ३८ ॥
श्वपाकवन्म्लेच्छगणान्हत्वा चाऽन्यान्पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन्पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३९ ॥
एकस्याऽर्थे बहून्हत्वा पुत्रस्याऽधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान्विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥
यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाऽद्य पतितः शेते पृष्ठेनाऽऽवेदितस्तव ॥ ४१ ॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाऽभिशङ्कितुमर्हसि ।
एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः ॥ ४२ ॥
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।
कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ ४३ ॥

जैसी शोभा होती है, वैसी ही शोभा उस समय धृष्टद्युम्न की हुई; क्योंकि वे भी चारों ओर चमकीले तीक्ष्ण बाण बरसा रहे थे। इसके पश्चात् महाधनुर्धर आचार्य ने बाणों से धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला; और उनके छाती आदि मर्मस्थलों में गहरी चोट पहुँचाई। बाणों की गहरी चोट से धृष्टद्युम्न व्यथित हो उठे॥३४।३५॥ तब क्रोध से विह्वल भीमसेन ने द्रोणाचार्य का रथ पकड़कर धीरे से द्रोणाचार्य से कहा— हे भगवन्! यदि अपने ब्राह्मणोचित कर्मों से सन्तुष्ट न होकर अस्त्रशिक्षा प्राप्त करनेवाले, और इसी लिए अधम, ब्राह्मणगण युद्ध न करें तो क्षत्रियों का क्षय कभी न हो। पण्डितों ने अहिंसा को ही सबसे श्रेष्ठ धर्म कहा है। उस अहिंसाधर्म की जड़ ब्राह्मण ही हैं॥३६।३८॥ आप ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होकर भी उस धर्म का पालन न करके चण्डाल की भाँति म्लेच्छों और अन्य क्षत्रियों की हत्या कर रहे हैं। आपने अज्ञानवश पुत्र स्त्री आदि के भरण पोषण के निमित्त, धन की आकांक्षा से, दुर्योधन का पक्ष लेकर अनुचित काम किया है। एक पुत्र के निमित्त बहुत लोगों को मारकर भी आपको लज्जा क्यों नहीं आती? जो क्षत्रिय लोग अपने धर्म का पालन कर रहे हैं उन्हें आप, अपने धर्म के प्रतिकूल, अधर्म युद्ध करके मार रहे हैं। आप जिस पुत्र के निमित्त अबतक शस्त्र धारण करके जी रहे हैं, वह अश्वत्थामा पीठ की ओर मरे पड़े हैं। आपको प्रतीत हो नहीं! धर्मराज

संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ ४४ ॥
इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥ ४५ ॥
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।
तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
सशरं तद्धनुर्घोरं संन्यस्याऽथ रथे ततः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४७ ॥
हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशङ्गतम् ॥ ४८ ॥
हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाऽब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः ॥ ४९ ॥
तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ ५० ॥
मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥ ५१ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥
दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात्सद्भिर्दुराक्रमाम् ।
द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथा गते ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिर ने भी (पूछने पर) कह दिया है कि अश्वत्थामा मारा गया। इतने पर भी क्या आपको सन्देह बना है ?॥३९।४२॥हे भरतश्रेष्ठ! भीमसेन के यों कहने पर आचार्य ने धनुष रख दिया और सब अस्त्र शस्त्रों का त्याग करते हुए वे कहने लगे—हे महाधनुर्धर कर्ण! हे कृपाचार्य! हे दुर्योधन! मैं बार-बार कहता हूं कि मन लगाकर संग्राम करो। पाण्डवों से तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब हथियार रखता हूं। हे राजेन्द्र! महात्मा द्रोणाचार्य इतना कहकर जोर से अश्वत्थामा को पुकारने लगे। रणभूमि में हथियार छोड़कर, रथ के आसन पर बैठकर, परमात्मा में आत्मा का योग करके, समाधिस्थ हो आचार्य ने सब प्राणियों को अभय कर दिया ॥४२।४६॥इसी समय वीर धृष्टद्युम्न अवसर पाकर, वह भयानक धनुष और बाण रथ पर रखकर, तलवार हाथ में लेकर द्रोणाचार्य की ओर दौड़े। द्रोणाचार्य को इस प्रकार धृष्टद्युम्न के हस्तगत देखकर समरभूमि में मनुष्य और देवगण आदि हाहाकार शब्द, धिक्कार शब्द और घोर कोलाहल करने लगे॥४८।४९॥इधर ज्योति स्वरूप महातपस्वी द्रोणाचार्य अस्त्र-शस्त्र त्याग कर, शान्त भाव धारण कर, योगस्थ होकर, अनादि-पुरुष विष्णु भगवान् का ध्यान करने लगे। वे पद्मासन में बैठे थे। मुख कुछ ऊंचा, वक्षःस्थल सीधा और नेत्र बन्द थे। सब विषय वासना ममता-मोह छोड़कर, सात्विक भाव धारण कर, एकाक्षर वेदमन्त्र प्रणव

एकाग्रमिव चाऽऽसीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।
समपद्यत चाऽऽकाभे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥
निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत्किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५ ॥
ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।
वयमेव तदाऽद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनञ्जयः पार्थो भारद्वाजस्य चाऽऽत्मजः ॥ ५७ ॥
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
अन्ये तु सर्वे नाऽपश्यन्भारद्वाजस्य धीमतः ॥ ५८ ॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।
ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥ ५९ ॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नाऽपश्यन्गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥ ६० ॥
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिन्दमम् ।
वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥ ६१ ॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।
तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥ ६२ ॥

(ओंकार) का उच्चारण और परमपुरुष देवाधिदेव का स्मरण करते हुए द्रोणाचार्य ने शरीर-त्याग कर दिया और वे सुकृती सज्जनों के निमित्त भी दुर्लभ स्वर्गलोक को चल दिये॥४९।५३॥ उस समय आकाश में उनके ज्योतिर्मय स्वरूप का ऐसा तेज फैल गया कि हमें जान पड़ा कि मानो जगत् में दो सूर्य निकल आये हैं। आकाश-मण्डल तेजोराशि से परिपूर्ण हो गया, ऐसा जान पड़ा कि आकाश भर में ज्योति फैली हुई है। आचार्य की मृत्यु होने पर उल्का के समान आकाश में तेजोराशि दिखाई पड़ी और वह ज्योति पल भर में ही अन्तर्धान हो गई॥५३।५५॥ उस समय द्रोणाचार्य को ब्रह्मलोक जाते देखकर प्रसन्न हो रहे देवगण किलकारियाँ मारने लगे। धृष्टद्युम्न भी ऐसे मोहित हो गये [कि जीवित अवस्था में द्रोणाचार्य के शरीर को नहीं स्पर्श कर सके] हे महाराज! उस समय मनुष्यों में केवल मैं, अर्जुन, अश्वत्थामा*, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर, ये पाँच पुरुष ही योगयुक्त महात्मा आचार्य का परलोक-गमन देख सके। और कोई भी महात्मा द्रोण के योग-बल की महिमा नहीं देख सका। द्रोणाचार्य उस दिव्य ब्रह्मलोक में गये जिसे परमगति कहते हैं। आचार्य के शरीर के सब अङ्ग बाणों से कट-फट गये थे, खून बह रहा था, शस्त्रत्याग तो वे कर ही चुके थे॥५५।६१॥ क्रोध और अमर्ष के वश में हो रहे धृष्टद्युम्न ने खड्ग खींचकर रथ पर जाकर

* कुछ प्रतियों में अश्वत्थामा के स्थान पर [illegible] का नाम है [illegible]
[illegible] ।

किञ्चिद्ब्रुवतः कायाद्विचकर्ताऽसिना शिरः ।
हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन्खड्गमाहवे ।
आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ॥ ६४ ॥
त्वत्कृते व्यचरत्संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।
उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६५ ॥
जीवन्तमानयाऽऽचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मजः ।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।
क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥ ६७ ॥
धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।
शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमथाऽपतत् ॥ ६८ ॥
लोहिताङ्ग इवाऽऽदित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।
एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥ ६९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन्भारद्वाजशिरोऽहरत् ।
तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥ ७० ॥
ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन्भारद्वाजस्य तावकाः ।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ७१ ॥

द्रोणाचार्य के केश पकड़ लिए और सबके सम्मुख ही उस मृत शरीर से सिर काट लिया। वे तो मर ही चुके थे, इससे कुछ बोले भी नहीं। धृष्टद्युम्न ने जीवित समझकर मृत आचार्य का सिर काट डाला। वे आनन्द के मारे तलवार घुमाते हुए घोर सिंहनाद करने लगे। उस समय सब दर्शक धृष्टद्युम्न को धिक्कार देने लगे। हे राजेन्द्र ! केवल आपकी कुमन्त्रणा के कारण ही यह घटना हुई॥६३।६४॥कानों तक जिनके बाल पक गये थे उन सांवले, चार सौ वर्ष के बूढ़े, द्रोणाचार्य ने आपके निमित्त ही निर्भय भाव से सोलह वर्ष के नौजवान की भाँति रणभूमि में विचरकर युद्ध किया और पराक्रम दिखाकर सब को चकित कर दिया। हे महाराज ! जब धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त दौड़े तब अर्जुन ने चिल्ला कर कहा—हे द्रुपद-नन्दन ! आचार्य को मत मारना, उन्हें जीता ही ले आना॥६५।६७॥सब राजा लोग, सैनिक और अर्जुन चिल्लाते ही रहे कि "आचार्य को न मारना, न मारना", परन्तु धृष्टद्युम्न ने किसी का कहा नहीं सुना और रथ पर जाकर आचार्य का सिर काट ही डाला। रुधिर में भीगे हुए आचार्य के शरीर को धृष्टद्युम्न ने रथ से नीचे गिरा दिया। उस समय आचार्य के रक्त से नहाये हुए धृष्टद्युम्न का शरीर लाल सूर्य के समान हो गया। उनका रूप बहुत ही भयानक देख पड़ा। वे बहुत ही दुर्दर्श जान पड़े। सब सैनिकों और राजाओं ने इस प्रकार आचार्य की मृत्यु देखी ॥६७।६९॥ अब धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का कटा हुआ सिर हाथ में लेकर आपके दल के योद्धाओं के सम्मुख फेंक दिया। आपके योद्धा और सैनिकगण द्रोणाचार्य का

द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाऽद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ७२ ॥
ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च ।
विधूमामिह सयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम् ।
हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृञ्जयाः ॥ ७४ ॥
अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत ।
निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाऽभवन् ।
पराजयमथाऽवाप्य परत्र च महद्भयम् ॥ ७६ ॥
उभयेनैव ते हीना नाऽविन्दन्धृतिमात्मनः ।
अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ॥ ७७ ॥
नाऽन्वगच्छन्महाराज कबन्धायुतसंकुले ।
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ॥ ७८ ॥
बाणशङ्खरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
भीमसेनस्ततो राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७९ ॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् ।
अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ८० ॥

कटा हुआ सिर देखकर ऐसे भयभीत हो गये कि दसों दिशाओं में भागने लगे। उधर द्रोणाचार्य स्वर्गलोक में, नक्षत्र-मार्ग होकर, चले गये। सत्यवती के पुत्र व्यासदेव की कृपा से मैंने द्रोणाचार्य का परलोक-गमन देख लिया। मैंने देखा कि बिना धुएँ की उल्का सी स्वर्गलोक को जा रही है। वही महातेजस्वी महात्मा द्रोणाचार्य थे॥७०।७४॥ द्रोणाचार्य की मृत्यु होने पर निरुत्साह होकर कौरव, पाण्डव, सृञ्जयगण, सभी महावेग से भाग खड़े हुए। उनके साथ सब सेना भी भाग खड़ी हुई। चारों ओर विशृङ्खला हो गई। संग्राम में तीक्ष्ण बाणों से घायल आपके पक्ष के लोग, जिनकी सेना का भी अधिक भाग नष्ट हो चुका था, द्रोणाचार्य के निहत होने पर मुर्दे के समान हो गये। यहाँ आज पराजय हुई, और अधर्म-अन्याय करने के कारण परलोक में भी नरक का महाभय नेत्रों के आगे नाचने लगा। इस प्रकार इस लोक और परलोक दोनों के नष्ट होने पर आपके दल के लोग अपनी बुद्धि की निन्दा करने लगे। राजा लोग उस असंख्य कबन्धों से परिपूर्ण रण के मैदान में आचार्य के धड़ को बारम्बार खोजने लगे, परन्तु कहीं उसका पता नहीं लगा॥७५।७८॥ इधर पाण्डवगण जय पाकर, आगे चलकर पूर्ण विजय और कीर्ति प्राप्त करने की सम्भावना से, अत्यन्त आनन्दित हो उठे। वे धनुष बाण बजाने, शङ्खनाद और सिंहनाद करने लगे। उस समय भीमसेन ने सब सैनिकों के मध्य धृष्टद्युम्न को गले से लगाकर कहा—हे द्रुपद-नन्दन! दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण और दुष्ट दुर्योधन के मारे पर भी फिर इसी प्रकार समर में विजय प्राप्त करनेवाले

भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वङ्ज्यामि पार्षत ।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥
एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः ।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ८२ ॥
तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि ।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन्विशाम्पते ।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्वि द्रोणवधे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९२ ॥

तुमको गले से लगाऊँगा और आनन्दपूर्वक तुम्हारा अभिनन्दन करूँगा ॥७८।८१॥ यों कहकर भीमसेन ताल ठोककर पृथ्वी को कम्पायमान करने लगे। उधर कौरव दल के सब सैनिक उस शब्द से भयभीत होकर विह्वल होकर, क्षत्रिय धर्म का विचार न करके भाग खड़े हुए। पाण्डव लोग भी विजय पाकर आनन्द पूर्वक शत्रु विनाश के सुख का अनुभव करने लगे ॥८२।८४॥

द्रोणपर्व का एक सौ बानबे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९२ ॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९३ ॥

सञ्जय उवाच—ततो द्रोणे हते राजन्कुरवः शस्त्रपीडिताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥ १ ॥
उदीर्णांश्च परान्दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः ।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन्विशाम्पते ॥ २ ॥
विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः ।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश ।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥ ४ ॥
स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव ॥ ५ ॥

॥ एक सौ तिरानबे अध्याय १९३ ॥

सञ्जय कहते हैं हे महाराज! श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीरों के साथ ही द्रोणाचार्य के भी मारे जाने पर शत्रुओं के शस्त्रों से पीड़ित, शोक से व्याकुल, विध्वस्त को प्राप्त कौरवगण बहुत ही भयभीत हो गये। शत्रुओं को विजय पाकर उत्साहित और हर्षयुक्त देखकर नेत्रों में आँसू भरे हुए कौरवगण उत्साहहीन, शिथिल और अचेत से हो गये। सङ्कट और मोह होने के कारण उनका तेज और पराक्रम भी सब नष्ट होगया था॥१। २॥पहले समय में दानवों में श्रेष्ठ हिरण्याक्ष की मृत्यु हो जाने पर दैत्य जिस प्रकार दुखित हो [illegible] सब कौरव उस समय खिन्न, त्रस्त और [illegible] होकर शून्य दृष्टि से चारों ओर देखने लगे। [illegible]

क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत ।
आदित्येनेव सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ६ ॥
भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥ ७ ॥
अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपतरा राजन्कौरवाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ८ ॥
गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह ।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत्साहितो रथैः ॥ ९ ॥
वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ १० ॥
रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्ष्यमाणोऽपयाद्भयात् ॥ ११ ॥
हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः ।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत्कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥
भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाह्लिकैः ।
कृतवर्मा वृतो राजन्प्रायात्सुजवनैर्हयैः ॥ १३ ॥
पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन्भयार्दितः ।
उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥

आँसू भरे हुए दीन कौरव दुर्योधन के चारों ओर जाकर एकत्र हो गये॥३।४॥भयभीत हुए क्षुद्र मृगों के समान व्याकुल हुए-हुए उन कौरवों को देखकर राजा दुर्योधन रणभूमि में नहीं स्थिर रह सके। वे रणभूमि छोड़कर उन सबके साथ शिविर की ओर भाग गये। भूख-प्यास से पीड़ित और सूर्य के प्रचण्ड तेज से मुरझाए हुए आपके योद्धा लोग अत्यन्त व्याकुल हो उठे। सूर्य का पृथ्वी पर गिर पड़ना, समुद्र का सूख जाना, सुमेरु का पूर्व से पश्चिम में चला जाना और इन्द्र का हार जाना जैसा असम्भव है वैसा ही युद्ध में द्रोणाचार्य का मारा जाना समझा जाता था। इस समय उसी असम्भव बात के सम्भव होने, प्रत्यक्ष द्रोणाचार्य का वध होते देखकर भयभीत हुए कौरव भाग खड़े हुए॥५।८॥द्रोण की मृत्यु का समाचार सुनते ही गन्धारराज शकुनि अत्यन्त भयविह्वल अपने योद्धाओं के साथ भाग खड़े हुए। कर्ण भी वेग से भागती हुई अपनी विशाल सेना को लेकर भय के मारे रणभूमि से चल दिये। मद्रराज शल्य अपनी विशाल चतुरङ्गिणी सेना के साथ भय के मारे घूम-घूमकर पीछे देखते हुए भागे। कृपाचार्य भी "हाय, कैसे कष्ट की बात है! हाय, कैसे कष्ट की बात है!" कहते हुए भाग गये। उनके साथ ध्वजा-पताका से शोभित सेना थी, जिसके बहुत से श्रेष्ठ वीर योद्धा मारे जा चुके थे। कृतवर्मा वेगगामी घोड़ों की सहायता से दौड़ते हुए भागे॥९।१३॥उनके साथ नष्ट होने से बची हुई कलिङ्ग, अरट्ट, बाह्लीक और भोजवंशी यादवों की सेना भी भाग खड़ी हुई। और उलूक भी द्रोण का वध देखकर भय के मारे बहुत सी पैदल सेना के साथ वेग

दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः ।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥ १५ ॥
रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥
गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र महारथः ॥ १७ ॥
संशप्तकगणान्गृह्य हतशेषान्किरीटिना ।
सुशर्मा प्राद्रवद्राजन्दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १८ ॥
गजान्रथान्समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः ।
प्राद्रवन्सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥ १९ ॥
त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान् ।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन्कुरवस्तदा ॥ २० ॥
चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथाऽपरे ।
सम्बन्धिनस्तथाऽन्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ २१ ॥
प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः ।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥ २२ ॥
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो ।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन्सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्राऽवतस्थिरे ।
धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतान्स्वलंकृतान् ।
अधिरुह्य हयान्योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥

से भाग खड़े हुए । महावीर, दर्शनीय, युवा दुःशासन भी व्याकुल होकर गज सेना के साथ भागा॥१३।१५॥ कर्ण के पुत्र वृषसेन ने जब द्रोण की मृत्यु देखी तब वे दस सहस्र रथ और तीन सहस्र हाथी लेकर रण भूमि से भागे । हे महाराज ! हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के साथ आपके पुत्र राजा दुर्योधन को भी उस समय भय के मारे भागना ही सूझ पड़ा । संशप्तक सेना के स्वामी त्रिगर्त नरेश सुशर्मा अर्जुन के मारने से बची हुई सेना लेकर भाग खड़े हुए॥१६।१८॥ हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य को निहत देखकर सब ओर हलचल मच गई । लोग शीघ्रता से हाथियों, रथों और घोड़ों को हाँकते हुए और कुछ लोग शीघ्रता के मारे घोड़े आदि वाहनों को छोड़कर पैदल ही भागने लगे। कौरव सेना में पिता, भाई, मामा, पुत्र, मित्र, भानजे और अन्य सम्बन्धियों तथा सैनिकों को भागने के लिए पुकारते हुए सब लोग भागने लगे॥१९।२१॥ उनके बाल खुले हुए थे, वस्त्र और आभूषण उलटे पलटे हो रहे थे, तेज और उत्साह का नाम तक भी नहीं रह गया था । वे यहाँ तक व्याकुल हुए हुए थे कि एक दूसरे की अपेक्षा नहीं करता था । उन्हें निश्चय सा हो गया था कि अब यह कौरव सेना बच नहीं सकती। हे भरतश्रेष्ठ ! आपके पक्ष के लोग ऐसे व्याकुल हो

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ २५ ॥
तस्याऽऽसीत्सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः ।
प्रभद्रकैश्च पञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥
हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः ।
कथञ्चित्सङ्कटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥
द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥
किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नाऽवस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥
त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप ।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नाऽत्रतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३० ॥
अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाऽद्रवत्तदा ।
कच्चित्क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ ३१ ॥
कस्मिन्निदं हते राजन्रथसिंहे बलं तव ।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाऽऽचक्ष्व कौरव ॥ ३२ ॥

गये थे कि कवच फेंककर भागे और कोई-कोई आपस में एक दूसरे को पुकारते और भागने के निमित्त कहते जाते थे। कुछ योद्धा दूसरों से ठहरने के निमित्त कहते जाते थे, परन्तु आप नहीं ठहरते थे। कुछ लोगों ने सारथी-हीन के आगे से घोड़े खोल लिये और वे उनकी पीठ पर बैठकर, उन्हें एड़ी लगाकर, हाँकते हुए भागे ॥२२।२४॥ इसी प्रकार सारी सेना उत्साह और ओज से हीन तथा भय से विह्वल होकर भाग रही थी; परन्तु प्रतापी अश्वत्थामा शत्रुओं पर आक्रमण करने के निमित्त उन्हीं की ओर चले, जैसे कोई बड़ा ग्राह जल-प्रवाह के प्रतिकूल जा रहा हो। वीर अश्वत्थामा ने शिखण्डी के साथ की—प्रभद्रक, पाञ्चाल, चेदि, कैकेय आदि वीरों की—सेना से युद्ध करके उन सबको भगा दिया ॥२५।२६॥ मत्त हाथी के समान पराक्रमी अश्वत्थामा ने पाण्डव पक्ष की सेना के अनेक दलों का संहार करके किसी प्रकार अपने को सङ्कट से छुड़ाया। [द्रोण सेनापति के मध्य में फँसे रहने के कारण से अश्वत्थामा को अपने पिता की मृत्यु का समाचार नहीं प्रतीत हो सका था] वे जब शत्रु-सेना का संहार करके लौटे तब उन्हें देख पड़ा कि कौरवों की सेना के पाँव उखड़ गये हैं—जिसे देखो वही भागा जा रहा है। तब आश्चर्य के साथ दुर्योधन के समीप पहुँचकर अश्वत्थामा ने पूछा—हे राजेन्द्र! यह क्या बात है? आपकी सेना इस प्रकार व्याकुल हुई-हुई सी क्यों भाग रही है! हे राजेन्द्र! आप इन सबको धैर्य देकर रोकते क्यों नहीं ॥२७।२९॥ आप भी मुझे पहले की भाँति सावधान नहीं देख पड़ते; व्याकुल हुए-हुए और शोक-पीड़ित से प्रतीत होते हैं। कर्ण आदि ये श्रेष्ठ महारथी योद्धा भी रण छोड़कर भागते दिखाई पड़ रहे हैं। इसका क्या कारण है! और भी अनेक बार महाभयानक युद्ध हुए हैं, किन्तु उनमें आपकी सेना इस प्रकार जी छोड़कर नहीं भागी। हे महाबाहु! शीघ्र बताइए, आपकी सेना की कुशल तो है? हे कौरव! किस वीर की मृत्यु होने से आपकी, और सेना की,

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् ।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाऽशक्नोत्पार्थिवर्षभः ॥ ३३ ॥
भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे ।
बाष्पेणाऽपिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥
ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ।
शंसाऽत्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥
अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन्पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥
कृप उवाच—वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
प्रावर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥
ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३८ ॥
वर्तमाने तथा युधे क्षीयमाणेषु संयुगे ।
धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
व्यहनच्छात्रवान्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४० ॥
पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः ।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन्कालचोदिताः ॥ ४१ ॥
सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२ ॥

यह दशा हो गई है ॥३०।३२॥ अश्वत्थामा का प्रश्न सुनकर राजा दुर्योधन वह घोर अप्रिय समाचार उनसे न कह सके। शोक के महासागर में टूटी नाव के समान डूब रहे, नेत्रों में आँसू भरे हुए आपके पुत्र ने अश्वत्थामा को सम्मुख देखकर लज्जा के साथ कृपाचार्य से कहा—हे ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो। आप ही इस सेना के भागने का कारण गुरु पुत्र से कहिए। तब बारम्बार घोर कष्ट का अनुभव करते हुए महात्मा कृपाचार्य ने अश्वत्थामा के आगे आर्त स्वर से द्रोणाचार्य के मारे जाने का सम्पूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार से कहा—हे आचार्य के पुत्र! हम लोग अद्वितीय महारथी द्रोणाचार्य को आगे करके केवल पाञ्चालों के साथ घोर युद्ध कर रहे थे। उस समय कौरवगण और पाञ्चालगण परस्पर भिड़कर गरजने और शस्त्र प्रहार करके मरने और मारने लगे। इस प्रकार युद्ध हो रहा था और दोनों पक्ष के योद्धा युद्ध में मर रहे थे। तुम्हारे पिता ने युद्ध में कौरव दल को विशेष रूप से नष्ट होते देखकर, क्रुद्ध होकर, ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। उन्होंने भल्ल बाणों से सैकड़ों-सहस्रों शत्रुओं को मारना प्रारम्भ कर दिया॥३७।४०॥ पाण्डव दल के कैकेय, मत्स्य, चेदि आदि देशों के वीर, विशेष पाञ्चाल लोग, युद्ध में काल के वश होकर द्रोणाचार्य के रथ के समीप पहुँचकर विनष्ट होने लगे। आचार्य ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा एक सहस्र श्रेष्ठ योद्धाओं और दो सहस्र

आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥
क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥ ४४ ॥
तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवाऽर्क इवोदितः ॥ ४५ ॥
स मध्यं प्राप्य पण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान् ।
मध्यं गत इवाऽऽदित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताऽभवत् ॥ ४६ ॥
ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥
तान्दृष्ट्वा पीडितान्बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥
नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः ।
अपि वृत्रहणा सङ्ख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥
ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ५० ॥
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ५१ ॥
एतन्नाऽरोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥

हाथियों को क्षण भर में मार डाला। कानों तक जिनके बाल पक गये थे ऐसे साँवले, चार सौ वर्ष के वृद्ध, आचार्य युद्ध में सोलह वर्ष के युवा पुरुष के समान पराक्रम प्रकट करते हुए विचर रहे थे॥४१।४३॥ इस प्रकार जब सब सेना पीड़ित हुई, राजा लोग मरने लगे, तब अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी कुछ पाञ्चालगण समर से भाग गये। उस समय शत्रुविजयी आचार्य दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके उदय हुए सूर्य के समान शोभायमान हुए। पाण्डव सेना के मध्य तुम्हारे पिता प्रतापी आचार्य मध्याह्न के सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य हो उठे। बाण ही उनकी किरणें जान पड़ती थीं॥४४।४६॥ सूर्य के समान विराजमान आचार्य के पराक्रम से पाञ्चालों का पराक्रम भस्म सा हो गया। वे उत्साहहीन और अचेत से हो गये। पाण्डवों की जय चाहने के निमित्त यत्न करनेवाले श्रीकृष्ण ने द्रोण के बाणों से पाञ्चालों को पीड़ित देखकर कहा—अनेक महारथियों की रक्षा करने में समर्थ, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ इन आचार्य श्रेष्ठ को युद्ध में, मनुष्यों की कौन कहे, साक्षात् इन्द्र भी नहीं जीत सकते। इसलिये हे पाण्डवो! धर्म का विचार छोड़कर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करो॥४७।५०॥ यह उपाय करो, जिससे आचार्य तुम्हारी सारी सेना का नाश न कर डालें। मेरा विचार है कि अश्वत्थामा के मारे जाने पर ये फिर युद्ध नहीं करेंगे। इसलिये कोई जाकर असत्य ही कह दे कि युद्ध

भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत्पितरं तव ।
अश्वत्थामा हत इति तं नाऽबुध्यत ते पिता ॥ ५३ ॥
स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत ।
हतं वाऽप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥
तमतथ्य भये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६ ॥
यस्याऽर्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५७ ॥
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ॥ ५८ ॥
जानन्नप्यनृतस्याऽथ दोषान्स द्विजसत्तमम् ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५९ ॥
स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा सन्तापतापितः ।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नाऽयुध्यत यथा पुरा ॥ ६० ॥
तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥

में अश्वत्थामा की मृत्यु हो गई। हे आचार्य नन्दन! अर्जुन ने यह सम्मति नहीं उचित समझी। और सब लोग इस पर प्रसन्न हो गये। युधिष्ठिर भी बड़ी कठिनाई से प्रसन्न हुए॥५०।५२॥तब भीमसेन ने तुम्हारे पिता के समीप जाकर कहा कि युद्ध में अश्वत्थामा की मृत्यु हो गई, पर तुम्हारे पिता को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने भीम की बात के मिथ्या होने का सन्देह करके युधिष्ठिर से पूछा कि अश्वत्थामा की मृत्यु हुई या नहीं॥५३।५४॥मिथ्या बोलने के पाप का भय होने पर भी जय के लोभ में पड़कर उन्होंने मिथ्या वाक्य का प्रयोग कर दिया। बात यह थी कि मालव नरेश इन्द्रवर्मा के हाथी का नाम भी अश्वत्थामा था। यह हाथी पाण्डव सेना में प्रवेश होकर उस सेना का संहार कर रहा था। भीमसेन ने गदा के प्रहार से उस हाथी को मार डाला था। इसी बात को लक्ष्य करके युधिष्ठिर ने आचार्य के समीप जाकर ऊँचे स्वर से कहा—हे आचार्य! जिनके निमित्त तुम शस्त्र को लेकर युद्ध कर रहे हो, जिन्हें देखकर जीते हो, वह तुम्हारे पुत्र अश्वत्थामा मारकर पृथ्वी पर गिरा दिये गये हैं, जैसे वनमें कोई सिंह का बच्चा मरा पड़ा हो। हे अश्वत्थामा! असत्य बोलने के पाप और दोष को जानकर भी युधिष्ठिर ने यों स्पष्ट रूप से मिथ्या वाक्य कहे। साथ ही स्पष्ट स्वर से अश्वत्थामा शब्द के साथ 'हाथी' शब्दका प्रयोग भी उन्होंने कर दिया॥५५।५९॥ तब तुम्हारे पुत्र वत्सल पिता शोक से व्याकुल और शिथिल हो गये। उन्होंने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग बन्द कर दिया। पहले की भाँति घोर युद्ध करना छोड़कर जब वे शिथिल पड़ गये तब क्रूर कर्म करनेवाला नीच धृष्टद्युम्न उनको उद्विग्न, शोक-विह्वल, अचेत पाकर मारने के निमित्त दौड़ा॥६०।६१॥संसार की

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ६२ ॥
ततोऽस्य केशान्सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा ।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः ॥ ६३ ॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् ।
तथैव चाऽर्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ ६४ ॥
उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः ।
जीवन्तमानयाऽऽचार्यं माऽऽवधीरिति धर्मवित् ॥ ६५ ॥
तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च ।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ ६६ ॥
सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥ ६७ ॥
सञ्जय उवाच—तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥ ६८ ॥
ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष ।
यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ॥ ६९ ॥
तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत् ।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ॥ ७० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

गति को भली भाँति जाननेवाले, अर्थात् एक दिन सबको मरना है यह ज्ञान रखनेवाले, आचार्य ने यह सोचकर कि धृष्टद्युम्न के हाथ से ही उनकी मृत्यु होनी है, सब दिव्य अस्त्र-शस्त्र त्यागकर रणभूमि में रथ के ऊपर ही प्रायोपवेशन कर दिया। [वे संसार से मन हटाकर, ईश्वरभक्ति में चित्त लगाकर, योगासन से नेत्र मूँदकर बैठ गये।] इसी अवसर में धृष्टद्युम्न ने समीप जाकर बायें हाथ से उनके केश पकड़ लिये और तलवार के वार से धड़ से सिर काट लिया; सब वीर चिल्लाते ही रहे कि आचार्य को मारना नहीं, मारना नहीं; परन्तु धृष्टद्युम्न ने किसी की बात नहीं सुनी। धर्मज्ञ अर्जुन भी रथ से उतरकर हाथ उठाकर बार-बार यह कहते हुए दौड़े कि आचार्य को जीते ही ले आओ, मारना नहीं॥६२।६५॥इस प्रकार सब कौरवों ने और अर्जुन ने कई बार रोका और मना किया; किन्तु नृशंस धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पिता को मार ही डाला। हे निष्पाप! इस प्रकार तुम्हारे पिता की मृत्यु होने पर सब सैनिक भय के मारे भाग खड़े हुए और हम लोग भी निरुत्साह होकर रण से विमुख हो गये॥६६।६७॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महाबली अश्वत्थामा इस प्रकार युद्ध में पिता की अप-मृत्यु का समाचार सुनकर, चोट खाये हुए सर्प की भाँति और ईंधन पाकर प्रचण्ड हुए अग्नि के समान, क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उनके नेत्र लाल हो गये। वे कुपित सर्प की भाँति बार-बार श्वास लेने लगे। वे हाथ मसलने और होंठ चबाने लगे॥६८।७०॥

द्रोणपर्व का एक सौ तिरानबे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९३ ॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १ ॥
मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान् ।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३ ॥
येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना ।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकांक्षिणा ॥ ४ ॥
एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम् ।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नाऽन्यं कथञ्चन ॥ ५ ॥
आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् ।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायाऽनुगताय वा ॥ ६ ॥
स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषं च सञ्जय ।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥
रामस्य तु समः शस्त्रे पुरन्दरसमो युधि ।
कार्त्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८ ॥
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाऽग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाऽऽशीविषोपमः ॥ ९ ॥

एक सौ चौरानवे अध्याय ॥ १९४ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! अपने पिता, वृद्ध, ब्राह्मण द्रोणाचार्य की मृत्यु धृष्टद्युम्न के हाथ से हुई सुनकर अश्वत्थामा ने क्या कहा? मनुष्यों के और वरुण, अग्नि, ब्रह्म, इन्द्र, नारायण आदि देवताओं के दिव्य अस्त्र जिनके पास सदा विद्यमान् रहते थे, उन आचार्य को धृष्टद्युम्न ने अधर्म से मारा, यह समाचार पाकर अश्वत्थामा ने क्या कहा?॥१।३॥ आचार्य द्रोण ने महात्मा परशुराम से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने पुत्र को, श्रेष्ठ योद्धा बनाने के निमित्त सब दिव्य अस्त्र अवश्य बतला दिये होंगे। मनुष्यों का यह नियम होता है कि वे एक मात्र पुत्र को ही अपने से अधिक गुणी बनाना और देखना चाहते हैं, और किसी को नहीं॥४।५॥ जो महात्मा आचार्य होते हैं वे गूढ़ से गूढ़ बातें अपने पुत्र को या अनुगत प्रिय शिष्य को बतला देते हैं। हे सञ्जय! गौतमी के बेटे शूर अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र और प्रिय शिष्य भी थे। उन्हें द्रोणाचार्य ने विशेष रूप से दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दी होगी। मेरी समझ में द्रोणाचार्य के पीछे यदि कोई योद्धा है तो वीर अश्वत्थामा ही हैं॥६।७॥ शस्त्र विद्या में परशुराम के समान, युद्ध-कला में इन्द्र के समान, बल वीर्य में कार्तवीर्य सहस्र बाहु अर्जुन के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान, धैर्य में अटल पर्वत के समान, तेज में अग्नि के समान, गम्भीरता में समुद्र के समान, क्रोध में विषैले नाग

स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाऽऽक्रन्दे चरन्क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥ १० ॥
अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता ।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाऽक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३ ॥
धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥
तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणाऽदीर्घदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

के समान, युद्ध पृथ्वी भर में श्रेष्ठ रथी योद्धा, दृढ धनुर्द्धर, कभी न थकनेवाले, वायु के समान अत्यन्त वेग से रण में विचरनेवाले, कुपित मृत्यु के समान उन अश्वत्थामा ने पिता के मरने का समाचार सुनकर क्या कहा? ॥८।१०॥ अश्वत्थामा जब संग्राम में बाण बरसाने लगते हैं तब पृथ्वी भय से काँप उठती है। वे सत्य-पराक्रमी वीर युद्धभूमि में कभी विचलित नहीं होते। उन्होंने यह सुनकर कि धृष्टद्युम्न ने अधर्मपूर्वक उनके धर्मिष्ठ पिता को मार डाला क्या कहा? वीर अश्वत्थामा वेदपाठी, ब्रह्मचारी, धनुर्वेद के पूर्ण पण्डित, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र और समुद्र के समान कभी क्षोभ को न प्राप्त होनेवाले वीर धीर और गम्भीर हैं। उन्होंने धृष्टद्युम्न का अन्याय सुनकर क्या कहा? ॥११।१३॥ मुझे प्रतीत होता है कि जैसे धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मारने के निमित्त उत्पन्न हुए थे, वैसे धृष्टद्युम्न को मारने के निमित्त अश्वत्थामा का जन्म हुआ है। पापरूप, नृशंस, क्रूर, अदूरदर्शी धृष्टद्युम्न के हाथ से आचार्य की मृत्यु का होना सुनकर अश्वत्थामा ने क्या कहा? ॥१४।१५॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ चौरानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९४ ॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

सञ्जय उवाच —छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
वाष्पेणाऽऽपूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १ ॥
तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत ।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥

एक सौ पचानवे अध्याय ॥ १९५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! धोखा देकर द्रोणाचार्य के मारे जाने का समाचार सुनकर क्रोध के मारे अश्वत्थामा के नेत्रों से आँसू निकलने लगे। कुपित अश्वत्थामा का शरीर क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। उस समय वे प्रलय के समय संहार करने को उद्यत काल के समान जान पड़ने लगे ॥१।२॥ बारम्बार आँसू

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः ।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥
पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः ।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ॥ ४ ॥
अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् ।
युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ ॥ ५ ॥
द्वयमेतद्भवेद्राजन्वधस्तत्र प्रशस्यते ।
न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् ॥ ६ ॥
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः ।
गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ॥ ७ ॥
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः ।
यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ।
मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ।
कामात्क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद्बाल्येन वा पुनः ॥ १० ॥
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥ ११ ॥
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ।
तस्याऽनुबन्धं द्रष्टाऽसौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥ १२ ॥

पोंछकर क्रोध से श्वास ले रहे अश्वत्थामा ने दुर्योधन से यों कहा—हे राजेन्द्र! जिस प्रकार शस्त्रत्याग करके मेरे योगस्थ महात्मा पिता को मारकर नीच पाञ्चाल धृष्टद्युम्न ने क्षुद्र कर्म किया, और धर्मात्मा होने का ढोंग रचनेवाले युधिष्ठिर ने मेरे पिता की मृत्यु के निमित्त मिथ्या बोलकर जो अनार्य-जनोचित पाप किया, सो सब मुझे विदित हुआ। हे राजेन्द्र! युद्ध करनेवाले या तो जीतने हैं या हारते हैं। इन दोनों में सम्मुख युद्ध करते करते मरना ही वीर पुरुष के लिये बड़ी प्रशंसा की बात है ॥२।६॥ संग्राम में युद्ध करता हुआ मनुष्य यदि न्याय से युद्ध करते-करते मारा जाय तो उसकी मृत्यु के लिये दुःख या शोक करना उचित नहीं। मेरे पिता न्याय-युद्ध करते करते शरीर त्यागकर वीर जनों के योग्य श्रेष्ठ लोक को गये हैं। हे पुरुषसिंह! उनकी मृत्यु शोचनीय नहीं है। परन्तु धर्मयुद्ध में प्रवृत्त मेरे पिता को सब सैनिकों के सम्मुख केश पकड़े जाने का जो दुःख और अपमान सहना पड़ा, वही मेरे मर्मस्थलों को कड़ी चोट पहुँचा रहा है ॥६।९॥ केवल इसी बात का स्मरण करके ही मेरा हृदय फटा जा रहा है। मेरे जीते-जी मेरे पिता की ऐसी दुर्दशा हुई तो फिर लोग संसार में पुत्र की कामना क्यों करेंगे? लोग काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष, चञ्चलता आदि के कारण ही धर्म के विरुद्ध कार्य और अत्याचार करते हैं। दुरात्मा नीच धृष्टद्युम्न ने मेरा अनादर करके यह महा अधर्म

अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ।
यो ह्यसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा ॥ १३ ॥
तस्याऽद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह ॥ १४ ॥
अहत्वा सर्वपञ्चालाञ्जीवेयं न कथञ्चन ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताऽहं पापकारिणम् ।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥
पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धासि कौरव ।
यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥ १७ ॥
प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तांस्त्रायन्ते महतो भयात् ।
पित्रा तु मम साऽवस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥ १८ ॥
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ।
धिङ् ममाऽस्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक्पराक्रमम् ॥ १९ ॥
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।
स तथाऽहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ॥ २० ॥
परलोकगतस्याऽपि भविष्याम्यनृणः पितुः ।
आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित्स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥ २२ ॥

किया है। उसको अवश्य ही इस घोर कर्म का दारुण फल भोगना पड़ेगा॥९।१२॥मिथ्यावादी युधिष्ठिर ने भी अत्यन्त अनुचित कर्म किया है। जिन धर्मराज ने धोखा देकर मेरे पिता से शस्त्र त्याग कराया है उनके रक्त को शीघ्र ही यह पृथ्वी पियेगी। हे कौरवराज! मैं सत्य, यज्ञ और कूप वापी आदि की स्थापना के पुण्य प्रभृति की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि सब पाञ्चालों को न मार सकूँगा तो कदापि जीता न रहूँगा। या तो उनको मारकर प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा या स्वयं मर जाऊँगा। चाहे जिस उपाय से हो, मैं पाञ्चालों को मारने का यत्न करूँगा॥१३।१५॥रण में पाप करनेवाले पापी धृष्टद्युम्न को मैं अवश्य ही मारूँगा। कोमल या उग्र कर्म करके, धर्म या अधर्म से, किसी प्रकार पाञ्चालों को मारने से ही मुझे शान्ति प्राप्त होगी। हे पुरुषसिंह! मनुष्य जिस लिए पुत्र होने की इच्छा रखते हैं,वह यही है कि इसलोक और परलोक में पुत्र ही महाभय से रक्षा करता है। परन्तु बड़े ही शोक की बात है कि पर्वताकार मुझ पुत्र और शिष्य के जीते रहते ही अनाथ की भाँति मेरे पिता को वही दुर्दशा भोगनी पड़ी। मेरे दिव्य अस्त्रों को, इन शक्तिपूर्ण बाहुओं को और पराक्रम को धिक्कार है! मैं ऐसा कपूत निकला कि पिता के केश शत्रु ने पकड़े और मैं उस समय उन्हें बचा नहीं सका॥१६।२०॥ हे भरतश्रेष्ठ! मैं इस समय वही कार्य करूँगा,जिससे

मृद्गतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।
नहि देवा न गन्धर्वा नाऽसुरा न च राक्षसाः ॥ २३ ॥
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ।
मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद्वाऽस्त्रवित्कचित् ॥ २४ ॥
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांऽशुमान् ।
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥
भृशामिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥
अद्य सर्वा दिशो राजन्धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥
विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून्निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ २८ ॥
नहि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥
न पार्षतो दुरात्माऽसौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ३० ॥
नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥

परलोकगत पिता को सन्तोष हो और मैं उनसे उऋण हो जाऊँ। हे महाराज! आर्य पुरुषों का यह नियम है कि वे कभी अपने मुख अपनी प्रशंसा नहीं करते किन्तु पिता के वध को न सह सकने के कारण मैं इस समय आपके आगे अपने पौरुष का वर्णन करता हूँ। पाण्डवगण और जनार्दन आज मेरा पराक्रम देखेंगे कि मैं प्रलयकाल के समान हत्याकाण्ड मचा दूँगा और उनकी सेना को दल मल डालूँगा॥२०।२३॥आज मैं जब रथ पर बैठकर रणभूमि में घमासान युद्ध करूँगा तब मनुष्यश्रेष्ठ योद्धाओं की कौन कहे, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस आदि भी मुझे परास्त नहीं कर सकेंगे। इस पृथ्वी पर मैं या अर्जुन, दो ही सबसे श्रेष्ठ अस्त्र-विद्या के ज्ञाता हैं। मैं सेना में प्रवेश होकर प्रज्वलित किरणमण्डल के बीच विराजमान सूर्यदेव की भाँति, देवताओं के निर्मित दिव्य अमोघ अस्त्रों का प्रयोग करूँगा। आज बारम्बार निरन्तर मेरे धनुष से निकले हुए असंख्य बाण महायुद्ध में मेरा पराक्रम प्रकट करते हुए पाण्डवों का संहार करेंगे॥२३।२६॥आज मेरे सब सैनिक देखेंगे कि सब दिशाएँ, वर्षा की बूँदों के समान, बरस रहे तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त हो रही हैं। घोर आँधी जैसे वृक्षों को उखाड़कर गिरा देती है वैसे ही भयानक शब्द कर रहे बाण चारों ओर बरसाकर मैं शत्रु-दल को पृथ्वी पर गिराऊँगा॥२७।२८॥अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, नकुल, सहदेव, राजा युधिष्ठिर, दुरात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि आदि कोई भी उस अस्त्र का प्रयोग और उपसंहार सहित नहीं जानता; उसे तो मैं ही जानता हूँ। हे राजेन्द्र! एक समय मेरे पिता ने विधिपूर्वक प्रणाम करके भगवान् नारायण की पूजा

तं स्वयं प्रतिगृह्याऽथ भगवान्स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥
अथैनमब्रवीद्राजन्भगवान्देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नाऽन्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥ ३३ ॥
नत्विदं सहसा ब्रह्मन्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ।
नह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्त्तते ॥ ३४ ॥
न चैतच्छक्यते ज्ञातुं केन वध्येदिति प्रभो ।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत्प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥
अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।
प्रयाचनं च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥
एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परन्तप ।
सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान्पीडयन्रणे ॥ ३७ ॥
तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः ।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥
अनेनाऽस्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ।
एवमुक्त्वा स भगवान्दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥
एतन्नारायणादस्त्रं तत्प्राप्तं पितृबन्धुना ।
तेनाऽहं पाण्डवांश्चैव पाञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ॥ ४० ॥
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवाऽसुरान् ।
यथा यथाऽहमिच्छेयं यथा भूत्वा शरा मम ॥ ४१ ॥

की और उपहार-स्वरूप वेद-मन्त्रों से उनकी स्तुति की। उस उपहार और पूजा को स्वीकार करके नारायण ने उनसे वर माँगने को कहा। तब मेरे पिता ने उनसे दिव्य नारायणास्त्र माँगा॥२९।३२॥भगवान् नारायण ने वह अस्त्र देकर कहा—हे ब्रह्मन्! युद्ध में तुम्हारी बराबरी कोई मनुष्य नहीं कर सकेगा किन्तु इतना स्मरण रखना कि सहसा इस अस्त्र का प्रयोग न कर बैठना। यह अस्त्र शत्रु को मारे बिना निवृत्त या शान्त नहीं होता। यह अस्त्र सब को मार सकता है। इसे कोई व्यर्थ नहीं कर सकता; यह अवध्य का भी वध कर सकता है। इसीलिए सहसा यह अस्त्र नहीं छोड़ना चाहिए॥३३।३५॥समरभूमि में रथ से उतर पड़ना, अस्त्र-शस्त्र रख देना, प्रार्थना करना और शत्रु की शरण में जाना, यही चार उपाय ऐसे हैं जिनका आश्रय लेने से मनुष्य इस अस्त्र के भय से छुटकारा पा जाता है। अस्त्रविद्या से अनभिज्ञ अवध्य व्यक्तियों को अन्य शस्त्रों से मारे, परन्तु इस अस्त्र का प्रयोग उन पर न करे। हे कुरुश्रेष्ठ! मेरे पिता ने वह नारायणास्त्र नारायण भगवान् से ले लिया और फिर यथासमय मुझे बता दिया। देते समय पिता ने मुझसे कहा कि हे पुत्र! इस अस्त्र के प्रभाव से तुम्हारा तेज युद्ध में प्रज्वलित हो उठेगा और तुम सब प्रकार के दिव्य अस्त्रों को व्यर्थ कर दोगे। मेरे पिता से यही बात कहकर नारायण अन्तर्द्धान हो गये थे॥३६।४०॥ मैंने अपने

निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत ।
यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥ ४२ ॥
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान् ।
परश्वधांश्च निशितानुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥
सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४४ ॥
मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः ।
पाञ्चालापसदश्चाऽद्य न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ४५ ॥
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी ।
ततः सर्वे महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ४६ ॥
भेरीश्चाऽभ्यहनन्हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः ।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७ ॥
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत् ।
तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ४८ ॥
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाऽप्यमन्त्रयन् ।
तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ॥ ४९ ॥
प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

पिता के द्वारा जो दिव्य नारायणास्त्र प्राप्त किया है उसी से पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, केकय आदि वीरों को मारूँगा और इन्द्र जैसे असुरों को मार भगाये वैसे ही सब को रण में भगाऊँगा । हे भारत ! शत्रुगण चाहे जितना यत्न करें और पराक्रम दिखावें पर वे मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते । मैं जैसी इच्छा करूँगा वैसे ही बाण धनुष से निकलकर शत्रुओं को मारेंगे । मैं चाहूँगा तो रण में पत्थरों की वर्षा करूँगा । मेरे बाण लोहे के मुखवाले पक्षियों का रूप रखकर बड़े-बड़े महारथियों को भगावेंगे । इसमें संशय नहीं कि मैं शत्रुसेना पर तीक्ष्ण अगणित फरसा नामक शस्त्र बरसाऊँगा । मैं सच कहता हूँ कि पाण्डवों की तनिक भी दया न करके नारायणास्त्र के प्रभाव से शत्रुओं का नाश करूँगा॥४०।४४॥मित्र के, ब्राह्मण के और गुरु के द्रोही, मूर्ख, निन्दित, पाञ्चाल-कुल-कलङ्क, नीच धृष्टद्युम्न को मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा । हे महाराज ! अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर आपकी सब सेना लौट पड़ी । वीर योद्धा लोग उन्मादित होकर शङ्ख, नगाड़े और सहस्रों डिमडिम आदि बाजे बजाने लगे । घोड़ों की टापों की चोट और पहियों के चलने से पृथ्वी शब्दायमान हो उठी । वह तुमुल शब्द आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर गूँज उठा॥४५।४८॥मेघ-गर्जन के समान उस शब्द को एकाएक सुनकर पाण्डव पक्ष के सब योद्धा [विस्मित हो उठे । वे] एकत्र होकर परस्पर सम्मति करने लगे । इधर प्रतापी अश्वत्थामा ने आचमन करके वह दिव्य और अनिवार्य नारायणास्त्र प्रकट किया॥४८।५०॥

—o—

द्रोणपर्व का एक सौ पञ्चानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९५ ॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

सञ्जय उवाच—प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो ।
प्रावात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ १ ॥
चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः ॥ २ ॥
शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत ।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥
तमसा चाऽवकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।
सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥ ४ ॥
देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन्विशाम्पते ।
कथंकथाऽभवत्तीव्रा दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥ ५ ॥
व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चाऽऽसन्विशाम्पते ।
तद् दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७ ॥
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच—प्रागेव विद्रुतान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्युधिष्ठिरः ।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

एक सौ छानबे अध्याय ॥ १९६ ॥

सञ्जय कहते हैं-हे राजेन्द्र ! इस प्रकार अश्वत्थामा ने जब नारायणास्त्र प्रकट किया तब बिना मेघ के वज्रपात सहित वर्षा होने लगी और प्रबल वेग से दारुण आँधी चलने लगी। पृथ्वी-तल काँप उठा, समुद्र उमड़ चला, नदियों का प्रवाह उलटा बह चला, पर्वतों के शिखर फटकर गिरने लगे, दिशाओं में अँधेरा छा गया, सूर्य की आभा धुँधली पड़ गई, मांसाहारी जीव आनन्दित हो उठे, देवता-दानव-गन्धर्वगण भयसे विह्वल हो गये और मृगों के झुण्ड पाण्डवों की सेना की दाहनी ओर घूमने लगे। सभी लोग व्याकुल होकर परस्पर ऐसे उत्पात प्रकट होने का कारण पूछने लगे। हे राजेन्द्र ! अश्वत्थामा के भयानक अस्त्र का प्रभाव देखकर सब राजा लोग व्यथित और भय से व्याकुल हो उठे॥१।६॥राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! शोकाकुल महावीर अश्वत्थामा ने पिता का वध न सह सकने के कारण क्रोधान्ध होकर जब युद्ध के निमित्त सैनिकों को लौटाया तब कौरव-सेना को लौटते देखकर पाण्डवों ने धृष्टद्युम्न की रक्षा करने के निमित्त क्या सम्मति की? यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे कहो॥७।८॥ सञ्जय ने कहा कि हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर ने पहले आपके पुत्र आदि को रण से भागते देखा था, किन्तु अब फिर उन्हीं को उत्साहपूर्वक युद्ध के निमित्त पलटते सुनकर उन्होंने कहा—हे अर्जुन ! वज्रपाणि इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही धृष्टद्युम्न

युधिष्ठिर उवाच—आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १० ॥
नाऽशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय ।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन्कुरवो रणात् ॥ ११ ॥
केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः ।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः ॥ १२ ॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्याऽन्यान्विचेतसः ।
भीताः पादैर्हयान्केचित्त्वरयन्तः स्वयं रथान् ॥ १३ ॥
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः ।
रथान्विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः ॥ १४ ॥
हयपृष्ठगताश्चाऽन्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः ।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः ॥ १५ ॥
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकवचाश्चाऽन्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥ १६ ॥
सञ्छिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥ १७ ॥
नाऽभिजानन्ति चाऽन्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।
पुत्रान्पितॄन्सखीन्भ्रातॄन्समारोप्य दृढक्षतान् ॥ १८ ॥
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।
अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ॥ १९ ॥

ने जब द्रोणाचार्य को मार डाला तब जय की आशा छोड़कर, दीनभाव को प्राप्त, कौरव अपने प्राण बचाने के निमित्त भय के मारे भाग खड़े हुए थे। शत्रुपक्ष के लोगों की यही दुर्दशा हो गई थी॥१०।११॥पार्श्वरक्षक और सारथी मर जाने पर पताका ध्वजा छत्र आदि से शून्य और कूबर, बैठक आदि अङ्गों से रहित रथों पर बैठे हुए कुछ लोग व्याकुल घोड़ों को हाँकने और उनके शीघ्र न चल सकने पर पाँव मार-मारकर उन्हें चलाते भाग गये हुए थे। वे अचेत और व्याकुल हुए-हुए थे। कुछ लोग टूटे हुए रथों को छोड़कर अन्य रथों पर बैठकर, स्वयं घोड़ों को हाँकते हुए भागे थे। जिनके अक्ष, युग, पहिये आदि टूट गये हैं ऐसे रथों को उनके व्याकुल हुए-हुए घोड़े इधर-उधर घसीटते फिरते थे। कुछ लोग टूटे रथ छोड़कर पैदल ही भागने लगे थे। घोड़ों पर बैठे हुए कुछ योद्धा उन्हें तेजी से हाँकने में ऐसे व्याकुल हुए-हुए थे कि आधे आसन से उनका शरीर हट गया था। हाथियों पर सवार योद्धा नाराच बाण की चोट से छिदकर हाथी के शरीर से लग गये थे और कई एक आसन स्थान—हौदे—से भ्रष्ट हो गये थे। बाणों की चोट से पीड़ित हाथी कई एक को लिये इधर-उधर भाग रहे थे॥१२।१६॥कई एक के शस्त्र और कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे और वे व्याकुलता के मारे वाहनों की पीठ पर से पृथ्वी पर गिर पड़े थे। कई एक लोग रथों के पहियों से कट गये थे और कई एक

पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।
हयानां हेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ॥ २० ॥
रथनेमिस्वनैश्चाऽत्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।
एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥ २१ ॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।
य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन्ग्रसेदिति मतिर्मम ।
मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥ २३ ॥
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ।
प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥
धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।
क एष कौरवान्दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥ २५ ॥
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ।
अर्जुन उवाच—उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः ॥ २६ ॥
धमन्ति कौरवाः शङ्खान्यस्य वीर्यं समाश्रिताः ।
यत्र ते संशयो राजन्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥ २७ ॥
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं ते महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥

के शरीर हाथियों और घोड़ों के पाँवों से रौंदे जा चुके थे। कुछ लोग भय के मारे पिता पुत्र आदि को पुकारते हुए भाग रहे थे। सब लोग ऐसे मूढ़-से हो रहे थे कि कोई किसी को माना पहचानता ही न था। कई एक लोग पुत्र, पिता, सखा, भाई आदि को कड़ी चोट से पीड़ित और घायल देखकर, उन्हें उठाकर, कवच खोलकर उनके घावों को जल से तर कर रहे थे॥१६।१९॥हे अर्जुन! द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कौरव दल की ऐसी दारुण दुर्दशा हो गई थी और भगदड़ मच गई थी। अब फिर किस वीर पुरुष का आश्रय पाकर कौरवों की सेना लौट रही है? किसने उन्हें धैर्य दिया है? तुमको ज्ञात हो तो मुझे बताओ। कौरव सेना में घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी गरज रहे हैं, वीर लोग गरज रहे हैं, और रथों के चलने की घरघराहट बढ़ रही है। कुरु सेना सागर में ये तीव्र शब्द एकत्र होकर बारम्बार उठ रहे हैं, जिन्हें सुनकर मेरे योद्धाओं के हृदय काँप उठे हैं॥१९।२२॥ यह उत्साहसूचक लोमहर्षण शब्द सूचित कर रहा है कि इस बार कौरवों की सेना इन्द्र सहित तीनों लोकों को ग्रस लेगी। मुझे तो इन्द्र का भयानक गर्जन शब्द प्रतीत होता है। द्रोणाचार्य की मृत्यु होने पर न जाने इन्द्र स्वयं कौरवों की ओर से युद्ध करने आ रहे हैं॥२३।२४॥हे धनञ्जय! इस भयङ्कर शब्द को सुनते ही हमारे रोंगटे खड़े हो गये हैं। हमारे रथी, घोड़े, हाथी आदि व्याकुल हो उठे हैं। भागी हुई कौरव-सेना को लौटाकर यह कौन महारथी इन्द्र की भाँति युद्ध करने आ रहा है?॥२४।२६॥अर्जुन ने कहा—हे राजेन्द्र! कौरवगण जिनके बल वीर्य का

व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम्　।
यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम्　॥ २९ ॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति　।
जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा　॥ ३०॥
हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः　।
तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतं नाम तस्याऽकरोत्तदा ॥ ३१ ॥
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव　।
यो ह्यनाथ इवाऽऽक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा　॥ ३२ ॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः　।
गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत्　॥ ३३ ॥
तत्र जातु क्षमेद्द्रौणिर्जानन्पौरुषमात्मनः　।
उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात्　॥ ३४ ॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान्कृतः　।
चिरं स्थास्यति चाऽकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५ ॥
रामे वालिवधाद्यद्वदेवं द्रोणे निपातिते　।
सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः　॥ ३६ ॥
नाऽयं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि　।
स सत्यकंचुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम्　॥ ३७ ॥

आश्रय पाकर, धैर्य धरकर, उग्र युद्ध करने को प्रस्तुत हैं और शङ्ख बजा रहे हैं उनका समाचार मैं कहता हूँ; और आप यह सोचकर, कि शस्त्रत्याग के उपरान्त द्रोणाचार्य की मृत्यु होने पर भी कौन व्यक्ति दुर्योधन का सहायक होकर भयानक सिंहनाद कर रहा है, मन ही मन जिनसे शङ्कित और उद्विग्न हो रहे हैं, उन श्रीमान्, महाबाहु, मस्त हाथी के समान पराक्रमी, उग्रकर्मा, कौरवों को अभय देनेवाले वीर का सब समाचार मैं आपसे कहता हूँ॥२८।२९॥ जिस वीर के जन्म लेने पर द्रोणाचार्य ने सुपात्र ब्राह्मणों को एक सहस्र गोदान किए थे वही अश्वत्थामा गरज रहे हैं। जिसने जन्म लेते ही अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा की भाँति गरज कर सम्पूर्ण पृथ्वी और तीनों लोकों को कँपा दिया था, और वह शब्द सुनकर आकाशवाणी हुई थी कि इस बालक का नाम अश्वत्थामा अर्थात् घोड़े का सा शब्द करनेवाला, होगा वही शूरशिरोमणि अश्वत्थामा गरज रहे हैं। धृष्टद्युम्न ने जिनके केशों को पकड़कर, जैसे कोई किसी अनाथ को मार डाले वैसे ही सिर काट लेने का अत्यन्त निन्दनीय कार्य किया, उन महात्मा द्रोणाचार्य के नाथ उनके पुत्र महारथी अश्वत्थामा ये सम्मुख उपस्थित हैं॥३०।३१॥ मेरे गुरुवर के केशों को पकड़कर धृष्टद्युम्न ने जो उनका अपमान किया है उसे, अपने पौरुष को जाननेवाले, अश्वत्थामा कभी क्षमा न करेंगे। हे महाराज! आप धर्म के जाननेवाले और सत्यवादी हैं। आपने राज्य के लोभ से मिथ्या बोलकर गुरु को धोखा दिया और उनकी मृत्यु का कारण हुए। यह आपने बड़ा अधर्म किया है। आज से बालि वानर को मारने के कारण

आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।
ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥
आसीत्सुविह्वलो राजन्यथा दृष्टस्त्वया विभुः ।
स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३९ ॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।
न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥ ४० ॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम् ।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१ ॥
सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४२ ॥
त्रिक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४३ ॥
यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४४ ॥
पितेव नित्यं सौहार्दात्पितेव हि च धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद्घातितो गुरुः ॥ ४५ ॥

जैसे रामचन्द्र के निर्मल चरित्र में दोष लग गया है, वैसे ही द्रोणवध से होनेवाली आपकी यह अकीर्ति भी त्रैलोक्य में चिरकाल तक बनी रहेगी॥३३।३६॥ महात्मा द्रोणाचार्य ने आपको सत्यवादी, धर्मात्मा, शिष्य जानकर, आप पर विश्वास किया कि ये कदापि असत्य नहीं बोलेंगे। किन्तु आपने पहले स्पष्ट रूप से "अश्वत्थामा मारा गया" कहकर पीछे धीरे से 'हाथी' शब्द कहकर सत्य से छिपे हुए मिथ्या वाक्य का प्रयोग किया—जान बूझकर आचार्य को धोखा दिया। तभी शस्त्र रखकर पुत्रशोक से विह्वल आचार्य ने प्राणों का मोह छोड़ दिया। आपने अपने नेत्रों से उनकी वह दशा देखी है। शोक से व्याकुल, रण से विमुख, पुत्रवत्सल आचार्य को शिष्य ने सनातन धर्म का त्याग करके मरवा डाला!॥३६।४०॥ अधर्मपूर्वक गुरु से शस्त्रत्याग कराकर और उसी दशा में उनका वध कराकर अब व्याकुल होने से क्या होगा? यदि आपमें शक्ति हो तो अपने अनुचरों के साथ धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के कोप से बचाइए। पिता के वध से क्रोधान्ध अश्वत्थामा के आक्रमण से आज हम सब लोग मिलकर भी धृष्टद्युम्न को नहीं बचा सकेंगे। जो अलौकिक प्रेम से सम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ सब प्राणियों से बराबर विशुद्ध स्नेह का व्यवहार करते हैं, वे अश्वत्थामा आज अवश्य अपने पिता के केश पकड़ने का अपमान सुनकर रण में हम लोगों को भस्म कर देंगे। मैंने आचार्य के प्राणों की रक्षा के निमित्त बारम्बार चिल्लाकर धृष्टद्युम्न को मना किया, परन्तु उन्होंने स्वयं उनके शिष्य होकर भी धर्म से विमुख हो आचार्य को मार डाला ॥४१।४३॥ जब हम लोगों की अधिकांश अवस्था व्यतीत हो चुकी है और बहुत थोड़ी आयु शेष रह गई है, तब हमें राज्यलोभ से ऐसा अधर्म कभी न

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥
सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान्मामेवाऽभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥
अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाऽऽहवे हतः ।
नत्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४८ ॥
तस्याऽऽचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः ।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः ॥ ४९ ॥
अहो बत महत्पापं कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः ॥ ५० ॥
पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्दाराञ्जीवितं चैव वासविः ।
त्यजेत्सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥ ५१ ॥
स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः ।
तस्मादर्वाक्शिरा राजन्प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥
ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् ।
घातयित्वाऽद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये पण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

करना चाहिए था। [सत्य तो यह है कि हमने यह महाअधर्म करके अपने अवशिष्ट स्वल्प जीवन को कलङ्कित कर डाला है।] जो गुरु धर्म के पिता थे, और सदा पिता के समान ही स्नेह का भाव रखते थे, उन्हें तुच्छ राज्य के लोभ में पड़कर हमने मरवा डाला और अब हम गुरुहत्या के पाप के भागी हुए। देखिए, धृतराष्ट्र ने और उनके पुत्रों ने भीष्म और द्रोण को अपने पक्ष में रखने के निमित्त एक प्रकार से सब पृथ्वी ही अर्पण कर दी थी। हमारे शत्रुपक्ष से वैसी वृत्ति और अनुपम सत्कार पाकर भी गुरु ने सदा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के आगे मुझको ही सब से श्रेष्ठ धनुर्द्धर कहा॥४६।४७॥शस्त्र त्याग करके जो आप अपनी मृत्यु स्वीकार करली, सो केवल आप पर और मुझ पर विश्वास करके। नहीं तो, वे शस्त्र हाथ में लेकर युद्ध करते रहते तो साक्षात् इन्द्र भी उन्हें नहीं मार सकते थे। उन वृद्ध, नित्य उपकार करनेवाले, गुरु से हम लोगों ने नीच की भाँति राज्य के लोभ में पड़कर द्रोह किया है। अहो! यह महादारुण पाप हम लोगों ने किया, जो राज्यसुख के लोभ में पड़कर साधुस्वभाव गुरु की हत्या करवा डाली॥४८।५०॥मेरे गुरु को निश्चय था कि अर्जुन मुझ पर ऐसा प्रेम और श्रद्धा रखता है कि मेरे निमित्त पुत्र, भाई, पिता, स्त्री और जीवन तक का त्याग कर सकता है। सो हे प्रभो! मैंने भी राज्य के लोभ में पड़कर मारे जा रहे गुरु की रक्षा नहीं की। इस उपेक्षा के कारण मुझको बहुत समय तक उल्टे लटककर, नरक की यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। ब्राह्मण, वृद्ध, आचार्य, निहत्थे, मौनी महात्मा को राज्य के निमित्त मरवाकर हमारे जीवित रहने को धिक्कार है। मुझे तो इसका सबसे बढ़कर प्रायश्चित्त प्राण दे देना ही जान पड़ता है॥५१।५३॥

द्रोणपर्व का एक सौ छानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९६ ॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वाऽपि महाराज धनञ्जयम् ॥ १ ॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २ ॥
मुनिर्यथाऽऽरण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥
क्षतत्राता क्षताज्जीवन्क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः ॥ ४ ॥
स भवान्क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद्यथा वाचं व्याहरन्नाऽद्य शोभसे ॥ ५ ॥
पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चाऽतिवर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६ ॥
न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाऽभिकांक्षसे ॥ ७ ॥
दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते ।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥

एक सौ सत्तानबे अध्याय ॥ १९७ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे महाराज ! अर्जुन के वचन सुनकर सब महारथी मौन हो रहे। किसी ने उचित या अनुचित, प्रिय या अप्रिय कुछ नहीं कहा। तब महाबाहु भीमसेन को क्रोध चढ़ आया। वे अर्जुन को फटकारते हुए कहने लगे—हे अर्जुन ! वन में रहनेवाले संसारत्यागी मुनिगण अथवा जितेन्द्रिय क्रोध-त्यागी ब्रह्मचारी ब्राह्मण जैसे धर्म का उपदेश करते हैं, वैसे ही इस समय तुम भी बातें कर रहे हो। क्षत (दुःख) से औरों की रक्षा करने से ही क्षत्रिय क्षत्रिय कहलाता है, किन्तु उसकी जीविका भी क्षत्र (शस्त्र-प्रयोग और युद्ध) ही है। [आवश्यकता के अनुसार] स्त्री, साधु, ब्राह्मण, गुरु आदि को भी मारनेवाला क्षत्रिय ही पृथ्वी का राज्य और उसके द्वारा शीघ्र ही धर्म, यश और लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है॥१।४॥ इस समय मूर्ख की सी बातें करने से तुम्हारी शोभा नहीं है—ऐसी कायरों या ब्राह्मणों की सी बातें तुम्हें नहीं सोहतीं। हे अर्जुन ! तुम्हारा पराक्रम इन्द्र के समान है। महासागर जैसे तटभूमि को नहीं लाँघता, वैसे ही तुम इस समय भी धर्म की मर्यादा का उल्लङ्घन करना नहीं चाहते। तेरह वर्ष के दुःख और क्रोध का विचार छोड़कर अब तक तुम धर्म की ही धुन में हो, इसके निमित्त कौन तुम्हारी प्रशंसा न करेगा? ॥५।७॥ बड़ी बात तो यह है कि तुम्हारा अन्तःकरण इस समय भी धर्म का ही अनुगामी बना है। बड़ी बात तो यह है कि जो तुम्हारी बुद्धि निरन्तर निष्ठुर कार्य से भागती ही रहती है। शत्रुओं ने धर्म का पालन कर रहे धर्मराज का राज्य अधर्म से छीन लिया, द्रौपदी को सभा में लाकर केश पकड़कर उनका अपमान

यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः ।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९ ॥
वनं प्रव्राजिताश्चाऽऽस्म वल्कलाजिनवाससः ।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदशसमाः परैः ॥ १० ॥
एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयाऽनघ ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥
तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाऽद्य सहितस्त्वया ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि क्षुद्रान्राज्यहरानहम् ॥ १२ ॥
त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाऽभ्यागता वयम् ।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥
धर्ममन्विच्छसि ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते ।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥
वपन्व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन ।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥
अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन्न बुध्यसे ।
यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि ॥ १६ ॥
वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि ।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनञ्जय न तेऽर्हति ॥ १७ ॥
स्वयमेवाऽऽत्मनो दोषान्ब्रुवाणः किन्न लज्जसे ।
दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयं च पर्वतान् ॥ १८ ॥

लिया और हम लोगों को वल्कल मृगछाला पहनाकर वन को भेज दिया। हम लोग जिन कष्टों के योग्य न थे, वे ही कष्ट हमें शत्रुओं के कारण तेरह वर्ष तक भोगने पड़े। हे निष्पाप! ये सब बातें क्षत्रिय के लिए सर्वथा असह्य थीं, किन्तु तुमने न जाने क्षत्रिय धर्म का स्मरण करके ही तब तरह दे दी थी। परन्तु मैं अब किसी तरह तरह नहीं दे सकता॥८।१०॥मैं तुम्हारे साथ मिलकर, शत्रुओं के उन अधर्म पूर्ण कार्यों का स्मरण करके, अवश्य ही अपना राज्य हरनेवाले क्षुद्र शत्रुओं को उनके मन्त्रियों और सहायकों सहित मारूँगा। तुमने पहले यह कहा था कि हम लोग युद्ध छोड़कर यथाशक्ति विजय प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे। सो अब जब हम अपनी शक्ति भर उनके निमित्त यत्न करते हैं तब तुम हमारी निन्दा करते हो। तुम अपने क्षत्रिय धर्म को नहीं जानना चाहते। तुम्हारा यह सब कहना वृथा है। हम लोग शत्रुओं का उत्साह देखकर व्याकुल हो रहे हैं, उस पर तुम ऐसे वचन कहकर हमारे मर्मस्थल को चोट पहुँचाते हो। हे शत्रुनाशन! तुम घाव में नमक सा छिड़क रहे हो। तुम्हारे बाण सदृश वचन मेरे हृदय को विदीर्ण किये देते हैं ॥११।१५॥तुम धर्मात्मा होकर भी अपने इस अधर्म को नहीं समझ पाते कि हम लोग और स्वयं तुम प्रशंसा के योग्य हो, पर तुम हमारे पराक्रम की प्रशंसा न करके शत्रुपक्ष की प्रशंसा कर रहे हो। वासुदेव

आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम् ।
गिरिप्रकाशान्क्षितिजान्भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९ ॥
द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान्देवान्समागतान् ।
सराक्षसगणान्पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥
स त्वमेवंविधं जानन्भ्रातरं मां नरर्षभ ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नाऽर्हस्यमितविक्रम ॥ २१ ॥
अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः ।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥ २२ ॥
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाऽब्रवीत् ।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्न उवाच—बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम् ।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन्प्रतिष्ठितः ।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः ।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥
तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
माययैव निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम् ॥ २७ ॥

के सम्मुख तुम अश्वत्थामा की प्रशंसा कर रहे हो। मैं सत्य कहता हूँ, अश्वत्थामा किसी बात में तुम्हारी सोलहवीं कला के समान नहीं है। तुम अपने मुख से अपने दोषों का वर्णन कर रहे हो, इसके निमित्त क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ?॥१६।१८॥मेरी भुजाओं में दस सहस्र हाथियों का बल है। मैं क्रोध करके गदा की चोट से इस पृथ्वी को विदीर्ण कर सकता हूँ, बड़े बड़े पर्वतों को उठाकर इधर उधर फेंक सकता हूँ, प्रचण्ड आँधी की भाँति पवन-से ऊँचे महावृक्षों को उखाड़ और तोड़ सकता हूँ। मैं बाण बरसाकर सब देवताओं सहित इन्द्र, राक्षसों, नागों और मनुष्यों को भगा दे सकता हूँ॥१८।२०॥हे अर्जुन! मुझ अपने भाई के ऐसे अद्भुत पराक्रम को जानकर भी तुम अश्वत्थामा से क्यों भयभीत होते हो ? अथवा हे अर्जुन! तुम सब भाई यहीं ठहरो, मैं अकेला ही गदा हाथ में लेकर महारण में अश्वत्थामा को मारने जाता हूँ॥२१। २२॥भीमसेन के यों कह चुकने पर नृसिंहावतार की भाँति क्रोध से दहाड़नेवाले अर्जुन से हिरण्यकशिपु के समान धृष्टद्युम्न ने यों कहा—हे वीरवर अर्जुन! बुद्धिमानों ने पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, और दान लेना, देना, ये छः कर्म ब्राह्मणों के कहे हैं। द्रोणाचार्य इनमें से कौन कार्य करते थे। मैंने ब्राह्मण-धर्म से रहित द्रोण को मार डाला तो उसके निमित्त तुम मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो ?॥२३।२५॥द्रोणाचार्य अपना धर्म छोड़कर, क्षत्रियों के धर्म को ग्रहण कर, इस समय अधर्म युद्ध कर रहे थे, अस्त्र न जाननेवालों को अस्त्र से मारकर क्षुद्र कर्म कर रहे थे, इसी से मैंने उन्हें मार डाला। यदि कोई ब्राह्मणाधम अजेय

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा ।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २८ ॥
न चाऽद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया ।
घातयिष्यति कौरव्यान्परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥
यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥
यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात्समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३१ ॥
यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद्ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्छितः ।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३२ ॥
विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम् ।
जानन्धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥
नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः ।
तन्मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाऽभिनन्दसे ॥ ३४ ॥
कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम् ।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥
योऽसौ ममैव नाऽन्यस्य बान्धवान्युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वाऽपि तस्य मूर्धानं नैवाऽस्मि विगतज्वरः ॥ ३६ ॥

हो और मायामय अस्त्र-युद्ध का प्रयोग भली भाँति कर रहा हो तो उसे छल कौशल से मार डालना क्या अनुचित है ? मैंने द्रोणाचार्य को मारा है, यह जानकर यदि अश्वत्थामा क्रोध के मारे गरज रहे हैं, तो उससे मेरी क्या हानि है ? अश्वत्थामा का यों गरजना मुझे कुछ अद्भुत नहीं जान पड़ता ॥२९।२८॥ वे वीरों को भिड़ाकर उनका नाश करा डालेंगे, क्योंकि स्वयं उनकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। हे पार्थ ! तुम धर्मात्मा होकर भी मुझको गुरु का हत्यारा कहते हो। तुम्हें ज्ञात होगा कि द्रोण वध के निमित्त ही मैं पिता के यज्ञ में अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुआ हूं। जो मनुष्य युद्ध करते समय कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को समान समझे, उसे तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कैसे कह सकते हो ? ॥२९।३१॥ जिन्होंने क्रोधान्ध होकर ब्रह्मास्त्र के द्वारा अस्त्र न जाननेवाले लोगों का संहार करना अपना परम कर्त्तव्य समझ लिया था, उन्हें चाहे जिस उपाय से मार डालना क्या अनुचित है ? [विशेषकर द्रोण ने मेरे पिता को मारा था, फिर मैं उन्हें क्यों न मारता ?] हे धर्मज्ञ अर्जुन ! धर्मात्मा लोगों ने अपना धर्म छोड़ देनेवाले को विष की भाँति बतलाया है। फिर सब धर्मों के ज्ञाता होकर भी तुम द्रोण वध के निमित्त क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो ? मैंने आक्रमण करके नृशंस आचार्य को मार डाला तो इसके निमित्त मैं निन्दा का पात्र नहीं हूं। तुम्हें तो मेरा अभिनन्दन करना चाहिए था ॥३२।३४॥ हे पार्थ ! मैंने कालानलतुल्य, अग्नि सूर्य और विष के समान भयानक द्रोणाचार्य का सिर काट डाला, तो इसके निमित्त तुम मेरी प्रशंसा क्यों नहीं करते ?

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निपादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥
अथाऽवधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥
स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥
पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः ।
मया शत्रौ हते कस्मात्पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥
सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि ।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥ ४१ ॥
क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन ।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नाऽन्येन हेतुना ॥ ४२ ॥
कुलक्रमागतं वैरं ममाऽऽचार्येण विश्रुतम् ।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥
नाऽनृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाऽहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९७॥

युद्ध में मेरे सगे भाई-बन्धुओं को द्रोण ने मारा है। इस कारण उनका सिर काट लेने पर भी मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हुई। इसके कारण मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा है कि मैंने जयद्रथ के सिर की भाँति द्रोणाचार्य का सिर भी निषादों या चाण्डालों की बस्ती में क्यों नहीं फेंका ॥३५।३७॥हे अर्जुन! सुना जाता है कि अपने शत्रुओं को न मारना अधर्म है। क्षत्रिय का तो यही धर्म है कि अपने शत्रु को मार डाले,या स्वयं उसके हाथ से मारा जाय! मैंने अपने शत्रु को मारकर धर्म ही किया है। जैसे तुमने अपने पिता के सखा शूर महाराज भगदत्त को युद्ध में मारा है, वैसे ही मैंने भी अपने शत्रु को मारा है।अपने सगे पितामह भीष्म को रण में मारकर यदि तुम अपने को धर्मात्मा समझते हो, तो फिर मैंने जो पापाचारी अपने शत्रु को मारा सो क्या अधर्म किया? मेरे इस कार्य को क्यों नहीं धर्मसङ्गत मानते ?॥३८।४०॥हे पार्थ! मैं सम्बन्ध के कारण ही तुम्हारे इन वचनों को सह लेता हूँ। जैसे बैठा हुआ हाथी अपने शरीर की ही सीढ़ी से विवश होकर लोगों के पांव सह लेता है वैसे ही मैं तुम्हारे बहनोई होने के कारण केवल द्रौपदी और उनके पुत्रों का स्मरण करके तुम्हारे इन कटु वचनों को क्षमा करता हूँ। अब तुम मुझे कुछ भला-बुरा न कहना। द्रोणाचार्य के साथ मेरा पुराना वैर था और उसे केवल तुम लोग ही नहीं, ये सब राजा लोग भी जानते हैं। हे अर्जुन! महाराज युधिष्ठिर असत्य व्यवहार नहीं करते हैं और मैं भी अधर्मी नहीं हूँ। आचार्य पापप्रकृति और शिष्यद्रोही थे, इसी से मैंने उन्हें मार डाला। अब तुम युद्ध करो,तुम्हें विजय अवश्य ही प्राप्त होगी॥४१।४४॥

—०—

एक सौ सत्तानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९७ ॥

अथ ऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाऽधीता महात्मना ।
यस्मिन्साक्षाद्धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥
यस्य प्रसादात्कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २ ॥
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ ३ ॥
नाऽमर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक्क्षात्रं धिगमर्षिताम् ।
पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः ॥ ४ ॥
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
सञ्जय उवाच—श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥ ५ ॥
तूष्णीं बभूवू राजानः सर्वे एव विशाम्पते ।
अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥ ६ ॥
सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिग्धिगित्येव चाऽब्रवीत् ।
युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथाऽपरे ॥ ७ ॥
आसन्सुव्रीडिता राजन्सात्यकिरत्वब्रवीदिदम् ।
नेहाऽस्ति पुरुषः कश्चिद्य इमं पापपूरुषम् ॥ ८ ॥
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ।
एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विवित्सया ॥ ९ ॥

एक सौ अट्टानबे अध्याय ॥ १९८ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अङ्गों सहित वेदों का अध्ययन करनेवाले, धनुर्विद्या के पारदर्शी द्रोणाचार्य ऐसे प्रतापी थे कि उनकी कृपा से उनके शिष्यगण पुरुषश्रेष्ठ कहलाते हैं और संग्राम में वैसे ही अलौकिक कर्म करते हैं, जैसे देवताओं से भी सहज में नहीं हो सकते । अश्वत्थामा की मृत्यु होने की असत्य सूचना सुनकर, पुत्र का नाम लेकर, द्रोणाचार्य चिल्लाने और रोने लगे और उसी समय सबके सम्मुख क्षुद्र गुरुघाती धृष्टद्युम्न ने उन्हें मारकर अत्यन्त नीच कर्म किया; किन्तु किसी क्षत्रिय ने उस नीच कर्म के निमित्त रोष या असन्तोष प्रकट नहीं किया ! कैसे ही आश्चर्य की बात है ! क्षत्रियत्व को और क्षत्रियों के अमर्ष को धिक्कार है ! पृथ्वी के सब धनुर्द्धर योद्धा, राजा लोग और पाण्डवगण धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर क्या कहने लगे ? यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो ॥१-५॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! क्रूरकर्मा धृष्टद्युम्न के यों कहने पर सब राजा मौन हो रहे । अर्जुन ने भी क्रोधपूर्ण कुटिल दृष्टि से केवल एक बार दुष्टप्रकृति धृष्टद्युम्न की ओर देखकर कहा—"धिक्कार है ! धिक्कार है !" अर्जुन के नेत्रों में आँसू भरे हुए थे और वे लम्बे-लम्बे श्वास ले रहे थे । युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, कृष्णचन्द्र और अन्य वीर योद्धा तथा राजा लज्जित हो रहे । अर्जुन के प्रिय शिष्य शूर-शिरोमणि सात्यकि से चुप नहीं

कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव ।
एतत्कृत्वा महत्पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः ॥ १० ॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम् ।
कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ॥ ११ ॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाऽधर्मेण पात्यसे ।
वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चाऽन्धकवृष्णिभिः ॥ १२ ॥
यत्कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि ।
अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥ १३ ॥
वध्यस्त्वं न त्वयाऽर्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता ।
कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥ १४ ॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः ।
सप्ताऽवरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥ १५ ॥
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम् ।
उक्तवांश्चापि यत्पार्थे भीष्मं प्रति नरर्षभ ॥ १६ ॥
तथाऽन्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना ।
तस्याऽपि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥ १७ ॥
नाऽन्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत् ।
स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्याऽन्तकरः किल ॥ १८ ॥

रहा गया। उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर कहा— ॥५-८॥ यहाँ क्या कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो कठोर वचन कहनेवाले इस पापमूर्ति कुलाङ्गार नराधम को शीघ्र ही मार डाले? हे धृष्टद्युम्न! ब्राह्मण जैसे चाण्डाल की निन्दा करते हैं वैसे ही ये पाण्डव प्रमुख सज्जन तुम्हारे पापकर्म को देखकर घृणा के मारे तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। तुम यह महापाप करके लज्जित क्यों नहीं होते? लज्जित होने की जगह तुम ऐसी बात कहकर अपने पक्ष का समर्थन कर रहे हो? तुम गुरु की निन्दा कर रहे हो, इस अधर्म के कारण तुम्हारी जीभ के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? तुम्हारा मस्तक क्यों नहीं खण्ड खण्ड हो जाता? ऐसा अधर्म करने के कारण तुम अधःपतित क्यों नहीं होते? ॥८-१२॥ हे क्षुद्र पापात्मा! तुम पापकार्य करके जनसमाज में इस प्रकार अपनी प्रशंसा कर रहे हो, इस कारण सब अन्धक वृष्णि वंश के यादव और पाण्डव तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। तुम पहले गुरुवधरूप पाप करके फिर गुरु की निन्दा कर रहे हो, इसलिए तुम्हें मार डालना ही उचित है। तुम्हारे जीवित रहने का कुछ प्रयोजन नहीं। हे नराधम! धर्मात्मा सज्जन गुरु के केश पकड़कर उनको मारने का महापाप करने का विचार भी तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। तुमने अपनी पहले की सात और आगे होनेवाली सात पीढ़ियों को नरक में धकेल दिया है। तुम कुलाङ्गार के कारण पाञ्चाल कुल की चौदह पीढ़ियाँ यश से हीन हो गईं ॥१३-१६॥ तुम पार्थ अर्जुन से भीष्मपितामह का मारा जाना कह-कर उन्हें अपने कारण [illegible] कहते हो। किन्तु उसमें अर्जुन का कुछ अपराध नहीं है, क्योंकि

शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः ।
पाञ्चालाश्चलिता धर्मात्क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ॥ १९ ॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः ।
पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥ २० ॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।
त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥ २१ ॥
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।
पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२ ॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।
तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३ ॥
तव चापि सहिष्येऽहं गदापाताननेकशः ।
सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥ २४ ॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्न उवाच — श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥ २५ ॥
सदाऽनार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।
क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६ ॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ।
स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥

भीष्म पितामह ने स्वयं उस प्रकार अपनी मृत्यु बता दी थी। इसके अतिरिक्त भीष्म की मृत्यु का कारण भी पापकर्म तुम्हारा भाई शिखण्डी ही है। पाञ्चालराज के पुत्रों से बढ़कर पृथ्वी पर और कोई पापी नहीं है। तुम्हारे पिता ने भीष्म की मृत्यु के निमित्त शिखण्डी को उत्पन्न किया था। महात्मा भीष्म को मारने के निमित्त ही राजा द्रुपद ने शिखण्डी को सुरक्षित रक्खा था। तुम और तुम्हारा भाई शिखण्डी, दोनों ऐसे हो कि सब साधुजन तुम्हें धिक्कार देते हैं ॥१६-२०॥ तुम दोनों के कारण ही पाञ्चाल लोग धर्म से भ्रष्ट होकर मित्र तथा गुरु के द्रोही और क्षुद्र कहे जाते हैं। यदि फिर मेरे आगे इस प्रकार के कटु वचन कहकर गुरु का अपमान करोगे तो मैं इस वज्र-तुल्य गदा से तुम्हारे सिर के टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा। तुमने ब्राह्मण को मार डाला है, तुम्हें ब्रह्महत्या लगी है। तुम हत्यारे का मुख देखकर लोग प्रायश्चित्त के निमित्त सूर्य के दर्शन करते हैं। हे दुश्चरित्र नीच पाञ्चाल! मेरे ही आगे मेरे गुरु और गुरु के गुरु का तिरस्कार करते तुम्हें लज्जा नहीं आती? यदि कुछ शक्ति है तो ठहर जाओ, मेरी गदा की एक ही चोट को सह लो। मैं तुम्हारे अनेक गदा-प्रहार सहने को तैयार हूँ॥२१-२४॥ हे महाराज! इस प्रकार कठोर वचन कहकर कुपित सात्यकि ने जब धृष्टद्युम्न का तिरस्कार किया तब वे क्रोध की हँसी हँसकर कहने लगे— हे सात्यकि! ये सब कठोर वचन सुनकर भी मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया। अनार्य पुरुष सदा सज्जनों की निन्दा किया करते हैं। जो नीच हैं, वे अनुचित कर्म करते हैं और निन्दित न होकर सज्जनों

आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ।
यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥ २८ ॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं नु किम् ।
गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनाऽस्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।
अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात्सात्यके स कथं वदेत् ।
निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
किं तदा निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।
त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥ ३२ ॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।
यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।
स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत्स्वयम् ॥ ३४ ॥
वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं परुषाण्यथ ।
कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाऽहं वृष्णिकुलाधम ॥ ३५ ॥
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ।
जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥ ३६ ॥

को अनुचित कर्म करनेवाले कहते हैं। यद्यपि लोग क्षमा की प्रशंसा करते हैं तथापि पापी पुरुष के प्रति कभी क्षमा का प्रयोग न करना चाहिए—वह क्षमा का पात्र ही नहीं। पापी समझता है कि क्षमा करनेवाला मुझसे भयभीत हो गया। हे सात्यकि! तुम स्वयं क्षुद्रप्रकृति, नीच विचार और पाप-निश्चय से दूषित हो। नख से शिख तक सब प्रकार निन्दा के योग्य होकर भी तुम मुझे निन्दित ठहराना चाहते हो। हे सात्यकि! वीर भूरिश्रवा का हाथ पहले ही काटकर अर्जुन ने उन्हें बेकार कर दिया था। इससे वे शस्त्र रखकर, रण से विमुख होकर, प्राणत्याग करने के निमित्त उद्यत थे। ऐसी अवस्था में, सबके मना करने पर भी, तुमने उन्हें मार ही डाला। इससे अधिक पाप और क्या हो सकता है!॥२८।२९॥ हे मूढ़प्रकृति यादव! युद्धभूमि में द्रोणाचार्य तो पहले मुझ पर दिव्य अस्त्र का प्रयोग कर रहे थे, पीछे उन्होंने शस्त्र रख दिये और उसी अवस्था में मैंने उनको मारा है तो इसमें पाप या अधर्म क्या हुआ? जो मनुष्य शस्त्र त्यागकर मुनियों की भाँति मौन होकर योग से शरीर छोड़ना चाहता हो, जिसका हाथ कट गया हो और जो युद्ध न करता हो, उसे मार डालनेवाला पापी पुरुष दूसरे की निन्दा कैसे कर सकता है? जिस समय पराक्रमी भूरिश्रवा ने तुमको पृथ्वी पर पटक दिया था, पैरों से मारा था, पृथ्वी पर घसीटा था, तभी तुमने क्यों न उन्हें मारा? यदि तुम में कुछ बल और वीरता का घमण्ड था तो उसी समय उनको मारते। उस दशा में अवश्य ही तुम्हारी प्रशंसा होती और तुम पुरुषश्रेष्ठ कहलाते॥३०।३२॥ किन्तु जब

अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि ।
अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम् ॥ ३७ ॥
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ।
न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८ ॥
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ।
वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाऽधर्मेण सात्यके ।
प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ ४० ॥
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाऽधर्मेण बालिश ।
अधर्मेणाऽपकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ॥ ४१ ॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः ।
इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ ४२ ॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ।
एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ।
दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम् ।
सञ्जय उवाच—एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥

अर्जुन ने प्रतापी भूरिश्रवा का हाथ काटकर उन्हें बेकार कर दिया तब तुमने अपने अनार्य होने का परिचय दिया, मेरे को मारने में अपनी बहादुरी दिखाई। और मैं तो वहीं-वहीं जाकर द्रोणाचार्य का सामना करता था जहाँ जहाँ वे बाण बरसाकर पाण्डवों की सेना को भगाते थे। हे सात्यकि! स्वयं चण्डाल की भाँति भूरिश्रवा रूप निंदित कर्म करके भी क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो? ऐसे कठोर वचन क्यों कह रहे हो? हे वृष्णि कुल कलङ्क! तुम्हीं पापी और पापों का निवासस्थान हो, मैं नहीं॥३२।३६॥इसलिए अब फिर ऐसे वचन कहकर मुझे कुपित न करना। मौन रहो, अब कटु वचन न कहना। यदि मूर्खता के कारण फिर इस प्रकार के कठोर वचन कहोगे तो मैं तुम को जीता न छोडूँगा। हे मूर्ख! केवल धर्म से ही समर में विजय नहीं प्राप्त होती। पाण्डव और कौरव दोनों ने ही समय समय पर, कार्य साधन के निमित्त, अधर्म किया है॥३६।३९॥सबसे पहले तो कौरवों ने ही अधर्म से राजा युधिष्ठिर को छला है और द्रौपदी को क्लेश पहुँचाये हैं। द्रौपदी सहित सब पाण्डवों को अधर्म से ही वन भेजा है और उनका सर्वस्व छीन लिया है। शल्य पाण्डवों की ओर से युद्ध करने आ रहे थे, उन्हें कौरवों ने अधर्मपूर्वक अपने पक्ष में कर लिया। सबसे बढ़कर अधर्म यह किया कि बालक वीर अभिमन्यु को कई महारथियों ने निहत्था करके मार डाला ॥३९।४२॥फिर इधर पाण्डवों ने भी अधर्म का आश्रय लेकर शत्रुदमन भीष्म पितामह को युद्धभूमि में गिराया॥ तुमने धर्म को जानते हुए भी अधर्म से भूरिश्रवा को मारा। इस प्रकार हे यादव! धर्म को जानते रहने

आवितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाऽभवत् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ॥ ४६ ॥
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ।
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ।
तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥ ४८ ॥
पाञ्चाल्यायाऽभिसंक्रुद्धमन्तकायाऽन्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥ ४९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ।
द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ।
स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।
अवरुह्य रथात्तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते ।
अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ५३ ॥
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।
तथैवाऽन्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥

पर भी विजय की आकाक्षा से वीर कौरव और पाण्डवों ने अधर्म का आश्रय लिया है । क्या धर्म है और क्या अधर्म, इसका तत्त्व बहुत ही गूढ़ और दुर्ज्ञेय है । इसलिए मैं फिर भी तुमको समझाता हूँ कि पहले की भाँति कौरवों से युद्ध करो । मेरे मुख लगकर मरने की तैयारी न करो ॥४२।४५॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! धृष्टद्युम्न के ऐसे क्रूर और कठोर वाक्य सुनकर वीर प्रतापी सात्यकि क्रोध से काँपने लगे । उनके नेत्र लाल हो गये। सर्प की भाँति फुफकारते हुए सात्यकि ने रथ पर धनुष-बाण रख कर गदा हाथ में ले ली। वे झपट कर धृष्टद्युम्न की ओर चले और कहने लगे— हे दुरात्मा धृष्टद्युम्न ! मैं तुम्हें कटु वचन नहीं कहूँगा, बल्कि मार ही डालूँगा; क्योंकि तुम इसी योग्य ही हो ॥४५।४८॥ महाबली सात्यकि को इस प्रकार, मृत्यु की भाँति कुपित होकर धृष्टद्युम्न पर काल के तुल्य आक्रमण करने के निमित्त जाते देख श्रीकृष्ण ने सोचा कि यह तो बड़ा अनर्थ हुआ जाता है । उन्होंने शीघ्रता के साथ भीमसेन को इशारा किया । महाबली भीमसेन तुरन्त ही रथ से उतर पड़े । उन्होंने दौड़कर क्रोध से झपटे जा रहे और काँप रहे सात्यकि को बलपूर्वक दोनों हाथों से पकड़ लिया। महाबली भीमसेन के रोकने पर भी सात्यकि छः पग आगे बढ़ ही गये । परन्तु वहाँ जोर से पाँव जमाकर भीमसेन ने उन्हें रोक ही लिया॥४८।५२॥ इसी समय नीतिज्ञ सहदेव ने रथ से उतरकर मधुर वाणी से समझाते हुए सात्यकि से कहा—हे पुरुषसिंह ! अन्धक वृष्णि-वंश के यादव और पाञ्चालगण, दोनों ही हमारे सर्व-श्रेष्ठ सहायक हैं । यादवों में भी विशेष रूप से श्रीकृष्ण

कृष्णस्य च तथाऽस्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते ।
पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥ ५५ ॥
नाऽन्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ।
स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ॥ ५६ ॥
भवन्तश्च यथाऽस्माकं भवतां च तथा वयम् ।
स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ५७ ॥
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ।
पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८ ॥
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् ।
प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवाऽनिलः ।
यादवस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चाऽस्य संयुगे ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥
सुमहत्पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ।
अथवा फाल्गुनः सर्वान्वारयिष्यति संयुगे ॥ ६३ ॥
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।
मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६४ ॥

हमारे हितैषी हैं । हे सात्यकि ! श्रीकृष्ण जैसे हमारे मित्र हैं वैसे ही हम भी उनके अनुगत मित्र हैं। पाञ्चालगण भी पृथ्वीमण्डल में खोजकर पाण्डवों और यादवों से बढ़कर अपना मित्र नहीं पावेंगे। इस प्रकार, हमारे सम्बन्ध से, पाञ्चालगण भी यादवों के मित्र हैं और यादव भी पाञ्चालों के मित्र हैं॥५२।५७॥सब धर्मों के जाननेवाले हे वीर-वर ! तुम मित्र-धर्म का स्मरण करके धृष्टद्युम्न के ऊपर उत्पन्न क्रोध को शान्त करो। तुम धृष्टद्युम्न की बातों को क्षमा करो और धृष्टद्युम्न तुम्हारी बातों को भूल जावें। हम लोग भी क्षमा करते हैं और क्षमा करने के निमित्त तुम दोनों मित्रों से अनुरोध करते हैं। क्षमा और शान्ति में ही हम सबका कल्याण है। शान्ति से बढ़कर और कुछ नहीं है॥५७।५९॥हे महाराज ! इस प्रकार सहदेव जब सात्यकि को शान्त करने लगे तब धृष्टद्युम्न ने हँसकर कहा—हे भीमसेन ! सात्यकि को छोड़ दो, छोड़ दो। इन्हें युद्ध का घमण्ड हुआ हुआ है। पर्वत से जैसे आँधी टकराती है वैसे ही ये मेरे समीप आवें तो। मैं तीक्ष्ण बाणों से इनके घमण्ड और युद्ध की इच्छा को अभी मिटाए देता हूँ। इनका जीवन मैं अभी नष्ट कर दूँगा। पाण्डवों का जो कार्य मेरे करने निमित्त हो सो बताओ, मैं उसे अभी कर दूँगा। यह देखो,कौरवों की सेना समीप आ पहुँची है॥५९।६३॥अथवा वीर अर्जुन इन सब शत्रुओं का संहार करेंगे, तब तक मैं सात्यकि का

उत्सृजैनमहं चैनमेष वा मां हनिष्यति ।
श्रृण्वन्पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिःसर्पवच्छ्वसन्॥ ६५ ॥
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ ६६ ॥
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥
निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ ।
युयुत्सूनपरान्संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९८॥

सिर धड़ से अलग करता हूँ। ये मुझे भी भूरिश्रवा समझते हैं, जिनका हाथ अर्जुन ने काट डाला था। इन्हें छोड़ दो, या तो युद्ध में ये मुझे मारेंगे या मैं इन्हें मारूँगा॥६३।६५॥हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर सात्यकि सर्प की भाँति श्वास ले रहे थे। भीमसेन की दोनों भुजाओं के मध्य में रहने के कारण वे छूटने के निमित्त बारम्बार यत्न कर रहे थे। वे बली महाबाहु दोनों वीर दो साँड़ों की भाँति गरज रहे थे। इसी मध्य में श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर दोनों ने शीघ्रता से जाकर, बड़ी कठिनता से, समझा-बुझाकर दोनों को शान्त कर दिया। इस प्रकार क्रोध से लाल नेत्र करके युद्ध करने के निमित्त उद्यत दोनों महारथियों के शान्त होने पर पाण्डव पक्ष के क्षत्रियश्रेष्ठ वीर, युद्ध के निमित्त आ रहे, शत्रुओं की ओर बड़े वेग से बढ़े ॥६५।६८॥

—०—

द्रोणपर्व का एक सौ अट्ठानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९८

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १९९ ॥

सञ्जय उवाच—ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवाऽन्तकः ॥ १ ॥
ध्वजद्रुमं शस्त्रश्रृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिम्पुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २ ॥
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान्भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम् ॥ ३ ॥
ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवाऽऽत्मजम् ॥ ४ ॥

एक सौ निनानवे अध्याय॥ १९९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इधर अश्वत्थामा प्रलयकाल में काल प्रेरित मृत्यु की भाँति शत्रु सेना का संहार करने लगे। उनके भल्ल बाणों से असंख्य शत्रु मरने लगे और उनकी लाशों का एक पर्वत सा बन गया। ध्वजाएँ उस पर्वत के वृक्ष, शस्त्र उसके शिखर, मरे हुए हाथी उसकी बड़ी बड़ी शिलाएँ, घोड़े पर्वत पर विचरनेवाले घुड़मुँह किम्पुरुष, धनुष उस पर की लताएँ, राक्षस और मांसाहारी जीव उस पर शब्द करनेवाले पक्षी और भूतगण उस पर विहार करनेवाले यक्ष जान पड़ते थे॥१।३॥महावीर अश्वत्थामा

यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकंचुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
तस्मात्सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान्हन्ताऽस्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥ ६ ॥
सर्वानेतान्हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८ ॥
ततः समागमो राजन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाऽभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥
संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥
तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशाम्पते ॥ ११ ॥
यथा शिलोच्चये शैलः सागरैः सागरो यथा ।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन्कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥
ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥
यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः ।
अभवत्तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

ने भयानक सिंहनाद करने के पश्चात् जोर से चिल्लाकर दुर्योधन को अपनी प्रतिज्ञा सुनाकर कहा—हे राजेन्द्र ! मैं सत्य कहता हूँ कि युधिष्ठिर ने जो धोखा देकर, सत्य-सदृश मिथ्या वचन कहकर, धर्मयुद्ध कर रहे मेरे पिता से शस्त्र रखवा दिये हैं, उसका परिणाम इस समय उन्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा। मैं उनके सम्मुख ही पाण्डवों की सारी सेना का संहार करके दुरात्मा नीच धृष्टद्युम्न को मारूँगा। यदि पाण्डव पक्ष के वीर समर से विमुख न हुए, मुझसे युद्ध करते रहे, तो मैं उन सबको जीता न छोड़ूँगा। आप अपनी सेना को युद्ध करने के निमित्त लौटाइए॥५-७॥हे राजेन्द्र ! दुर्योधन ने गुरु-पुत्र के ये वाक्य सुनकर, सिंह की भाँति गरजकर, अपनी सेना को निर्भय किया। सब कौरव सेना उत्साहित होकर युद्ध करने को लौट पड़ी। भरे हुए दो सागरों के समान फिर कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ परस्पर भिड़ गईं। अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा सुनकर कौरव क्रुद्ध होकर स्थिर भाव से युद्ध करने को प्रस्तुत हुए। उन्हें उत्तेजित देखकर पाञ्चाल और पाण्डवगण भी उत्साहित हो उठे। पाञ्चाल तथा पाण्डव लोग द्रोणाचार्य के वध से पहले ही प्रसन्न हो रहे थे और उन्हें अपनी ही जीत दिखाई पड़ रही थी। इस समय क्रोध करके वे बड़े वेग से शत्रुसेना पर आक्रमण करने लगे ॥८-११॥ जैसे दो पर्वत या दो समुद्र टक्कर लें वैसे ही कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पाञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ १५ ॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः ।
पाण्डवान्क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥ १६ ॥
ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन्महाहवे ।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव लोके राजन्गभस्तयः ॥ १७ ॥
तथाऽपरे द्योतमाना ज्योतींषीवाऽमलाम्बरे ।
प्रादुरासन्महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥
चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः ।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः ॥ १९ ॥
शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ ।
दृष्ट्वाऽन्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥
यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥
वध्यमानास्तदाऽस्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानाऽनलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥
यथा हि शिशिरापाये दहेत्कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥
आपूर्यमाणेनाऽस्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

का हाल हुआ। दोनों पक्ष के सैनिक परम प्रसन्न होकर सहस्रों की संख्या में शङ्ख, भेरी आदि बाजे बजाने लगे। जैसे सागर के मथे जाने पर भयानक शब्द हुआ था वैसा ही, दोनों सेनाओं का, शब्द पृथ्वी और आकाश में गूँज उठा॥१२।१४॥हे राजेन्द्र! तब वीर अश्वत्थामा ने पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना को लक्ष्य करके नारायणास्त्र प्रकट किया। उस अस्त्र के प्रभाव से अश्वत्थामा के धनुष से प्रज्वलित मुखवाले सर्पों के समान असंख्य प्रदीप्त बाण निकलने और पाण्डवों को व्याकुल करने लगे। क्षण भर में उन बाणों ने सूर्य की किरणों की भाँति सम्पूर्ण आकाश, दसों दिशाओं और सारी सेना को ढक लिया। आकाश में लोहमय वज्रमुष्टियाँ प्रकट होकर ज्योतिर्मय पदार्थों या उल्काओं के समान इधर उधर गिरने लगीं। चार चक्रों और दो चक्रोंवाली विचित्र शतघ्नियाँ और गदाएँ, सूर्यमण्डलाकार पैने चक्र और अन्य विविध शस्त्रों के आकार के पदार्थ चारों ओर प्रकाशमान हो उठे॥१५।१९॥पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयगण आकाशमण्डल को प्रज्वलित अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण देखकर बहुत ही व्याकुल हो उठे। हे नर-नाथ! जैसे जैसे पाण्डवों के महारथी योद्धा युद्ध करते थे वैसे ही वैसे उस अस्त्र का तेज और प्रभाव बढ़ता जाता था। उस अग्निसदृश नारायणास्त्र के तेज से सब सैनिक मरने और भस्म तथा पीड़ित होने लगे। शीतकाल के पश्चात् ग्रीष्म

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो महान् ॥ २६ ॥
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम् ।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुताऽऽत्मनः ॥ २७ ॥
संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान्ब्रवीमि वः ।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २८ ॥
भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे ।
निमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥
कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति ।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥
येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाऽभिपालितः ॥ ३१ ॥
येन विब्रुवती प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता ।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥
जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनः ।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥
येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पाञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः ।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥

ऋतु में अग्नि जैसे सूखी घास के ढेर को जलाती है वैसे ही नारायणास्त्र पाण्डव सेना को भस्म करने लगा॥२०।२१॥ हे महाराज ! धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा के नारायणास्त्र के प्रभाव से अपनी सेना के कुछ मनुष्यों को मरते, कुछ को अचेत, कुछ को भागते और अर्जुन को युद्ध से निराश देखकर भय से व्याकुल होकर कहा—हे धृष्टद्युम्न ! तुम पाञ्चालों की सेना लेकर भाग जाओ। हे सात्यकि ! तुम भी वृष्णि-अन्धक आदि यादव वीरों को लेकर प्रस्थान करो । धर्मात्मा श्रीकृष्ण स्वयं अपनी रक्षा का उपाय निकाल लेंगे, क्योंकि जब वे औरों को उनके कल्याण का उपदेश करते हैं तब अपने निजके बचने का उपाय क्यों न सोचेंगे ॥२६।२७॥ हे सैनिको ! मैं तुम से कहता हूं कि अब युद्ध न करो । मैं अपने भाइयों के साथ जलती हुई अग्नि में कूदकर प्राणत्याग करूंगा । हाय ! भीष्म और द्रोणरूप महासागर के पार होकर मैं इस समय गाय के पांवों के गढ़े के समान अश्वत्थामा के पराक्रम में बन्धु-बान्धवों सहित डूब रहा हूं॥२८।२९॥ अर्जुन मुझ पर इसलिए कुपित हैं कि मैंने मिथ्या कह, उनके महात्मा आचार्य का वध कराया है । सो मैं प्राणत्याग करके अर्जुन की इच्छा पूर्ण करूंगा । मगर निपुण, निष्ठुर कर्ण आदि महारथियों ने जब युद्ध-कला में कुशल, और बालक अभिमन्यु को निहत्था करके मारा था, तब अर्जुन ने उसकी रक्षा नहीं की । पति-परायणा द्रौपदी

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनाऽस्माभिरनुगन्तुं तदेपिताः ॥ ३५ ॥
योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम् ।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥
एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः ।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चाऽवरोहत ।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघेधे महात्मना ॥ ३८ ॥
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत ।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥
यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति ।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥
निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये ।
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥
ये त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसाऽपीह केचन ।
निहनिष्यति तान्सर्वान्रसातलगतानपि ॥ ४२ ॥

ने कौरव-सभा में दीन दशा को प्राप्त होकर दासी भाव से बचने के निमित्त जब प्रश्न किया था तब पुत्र सहित द्रोणाचार्य ने भी उपेक्षा दिखलाई थी, धर्मानुकूल उत्तर नहीं दिया था। अन्य सैनिकों के थक जाने पर जब दुर्योधन ने अर्जुन-वध के निमित्त उत्सुकता प्रकट की थी तब द्रोणाचार्य ने उसको अभेद्य कवच बाँध दिया था और उसे अर्जुन के मारने और जयद्रथ की रक्षा करने के निमित्त भेजा था। मेरे विजय-काम के निमित्त प्राण पर रहे, पुत्र-बन्धु-बान्धव सहित सत्यजित आदि, पाञ्चालों को द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र के बल से मार डाला ॥३०।३४॥ कौरवों ने अधर्म के आश्रय जब हम लोगों को देश से निकालकर वन को भेज दिया था तब द्रोणाचार्य ने ही हमें युद्ध नहीं करने दिया था। इस प्रकार सदा हमपर अपना स्नेह दिखलानेवाले हित-चिन्तक द्रोणाचार्य जब मारे गये तब मुझे भी भाइयों सहित मर जाना ही चाहिए॥३५।३६॥ संजय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! युधिष्ठिर इस प्रकार दुःखित होकर व्यंग्य वचन कह ही रहे थे कि इसी समय श्रीकृष्ण ने हाथ के इशारे से पाण्डव पक्ष के सैनिकों को युद्ध से रोकते हुए कहा—हे वीरो! तुम लोग शीघ्र अस्त्र-शस्त्र रखकर अपने-अपने वाहनों से नीचे उतर आओ। तुम लोग शस्त्र त्यागकर जब पृथ्वी पर पड़ जाओगे तभी इस अमोघ नारायणास्त्र के तेज से बच सकोगे। इस अस्त्र से बचने का यही एक उपाय है। रथ, घोड़े, हाथी आदि की पीठों पर से उतरकर, शस्त्र रखकर, पृथ्वी पर पड़ रहनेवालों को यह अस्त्र नहीं नष्ट करता ॥३७।३९॥ हमारे योद्धा लोग जैसे जैसे इस अस्त्र को व्यर्थ करने के निमित्त युद्ध करेंगे वैसे ही वैसे इस अस्त्र के प्रभाव से कौरव प्रबल होते जावेंगे। मैं सत्य कहता हूँ और तुम लोगों को समझाता हूँ कि जो लोग वाहनों से उतर आते हैं, शस्त्र फेंक देते हैं, हाथ जोड़ते और दीन भाव से प्रणाम करते हैं, उन मनुष्यों को यह अस्त्र नहीं मारता। इसके विरुद्ध जो लोग मन से भी युद्ध करने की इच्छा करेंगे वे, चाहे पाताल में

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत ।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥
तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः ।
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन्वचः ॥ ४४ ॥
न कथञ्चन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित् ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥
गदयाऽप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे ।
कालवत्प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ४६ ॥
न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह ।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥
पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥
नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह ।
शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥
अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि ।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वा रणे ॥ ५० ॥
यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते ।
अद्यैतत्प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥
अर्जुनाऽर्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया ।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥

चले जाने पर, इस अस्त्र से नहीं बच सकते॥४०।४२॥ हे भरतश्रेष्ठ! श्रीकृष्ण के वचन सुनकर सब योद्धाओं ने वही किया। अस्त्र शस्त्र रख दिये और युद्ध का विचार ही मन से दूर कर दिया। उन सबको अस्त्र शस्त्र रखकर युद्ध बन्द करते देख क्रोधी भीमसेन उन लोगों के मन में युद्ध के निमित्त उत्साह उत्पन्न करते हुए कहने लगे—हे वीरो! तुममें से कोई कदापि शस्त्रत्याग न करे। मैं स्वयं बाण वर्षा करके अश्वत्थामा के अस्त्र को व्यर्थ किये देता हूँ। मैं इस सुवर्ण भूषित भारी गदा को लेकर, अश्वत्थामा के नारायणास्त्र को चूर्ण करके, काल की भाँति शत्रुओं पर प्रहार करूँगा॥४३।४६॥ जैसे सूर्य के समान कोई प्रकाशमय पदार्थ नहीं है वैसे ही पृथ्वी पर मेरे तुल्य बली कोई पुरुष नहीं है। ऐरावत हाथी की सूँड के समान सुदृढ़ मेरे इन हाथों को देखो, ये हिमालय पर्वत को भी उखाड़कर फेंक सकते हैं। मुझमें दस सहस्र हाथियों का बल है। देवलोक में जैसे इन्द्र की समता करनेवाला कोई नहीं है वैसे ही मैं मनुष्यलोक में हूँ॥४७।४९॥ आज मेरी मोटे कन्धोंवाली भुजाओं का बल और पराक्रम तुम लोग देखो। अश्वत्थामा के इस प्रज्वलित अस्त्र को मैं अभी रोकता हूँ। यदि इस नारायणास्त्र का सामना करनेवाला कोई दूसरा पृथ्वी पर नहीं है, तो मैं उस प्रकार करके दिखाऊँगा। कौरव और पाण्डव देखेंगे कि भीम

सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाऽग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥ ७ ॥
विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ८ ॥
सर्वं सैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान् ॥ ९ ॥
अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ १० ॥
ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ मायया विशतां तथा ॥ ११ ॥
न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नाऽदहत्सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १२ ॥
ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥
आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्तसे ॥ १५ ॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥

हों, वैसे ही अस्त्र-तेज से घिरे हुए तेजस्वी भीमसेन को भी कोई नहीं देख पाता था॥६।७॥तब महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण उस भयानक अस्त्र को भीमसेन के रथ पर प्रज्वलित, अश्वत्थामा को प्रतिद्वन्द्वी योद्धा के न होने से विजयी, पाण्डव सेना को शस्त्र-हीन अचेत और युधिष्ठिर आदि महारथियों को रण में विमुख तथा भय से विह्वल देखकर शीघ्रता से रथ से उतर पड़े और भीमसेन की ओर दौड़े। वे दोनों वीर योग के बल से अश्वत्थामा के अस्त्र के तेज के भीतर प्रविष्ट हो गये। उन्होंने शस्त्र रख दिये थे, इस कारण भी उस अस्त्र की अग्नि ने उन्हें भस्म नहीं किया। वारुणास्त्र के प्रयोग और नर-नारायण-रूप अर्जुन तथा श्रीकृष्ण के प्रभाव से भीमसेन भी भस्म होने से बचे हुए थे॥८।१२॥तब नर-नारायण-रूप अर्जुन और श्रीकृष्ण, नारायणास्त्र की शान्ति के निमित्त, बलपूर्वक भीमसेन के हाथ से शस्त्र छीनकर उन्हें रथ से खींचने लगे। भीमसेन उस समय भी घोर सिंहनाद करते जाते थे और वह अश्वत्थामा का दुर्जय अस्त्र भी प्रचण्ड होता चला जाता था॥१३।१४॥श्रीकृष्ण ने कहा— हे भीमसेन! यह तुम क्या अनर्थ कर रहे हो! मना करने पर भी युद्ध बन्द नहीं करते! यदि इस समय ये कौरव युद्ध करके जीते जा सकते तो हम लोग भी युद्ध करते और ये वीर योद्धा भी युद्ध से विमुख न होते। देखो, तुम्हारे पक्ष के सभी वीर रथों और

रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्व एव हि तावकाः ।
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥
एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमवर्तयत् ।
निश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥
यदाऽपकृष्टः स रथान्न्यासितश्चाऽऽयुधं भुवि ।
ततो नारायणास्त्रं तत्प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥ १९ ॥
सञ्जय उवाच—तस्मिन्प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे ।
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥ २० ॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः ।
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ २१ ॥
व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत ।
बभौ भीमो निशापाये धीमान्सूर्य इवोदितः ॥ २२ ॥
हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत ।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥ २३ ॥
व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
अश्वत्थामन्पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत्प्रयोजय ।
अवस्थिता हि पाञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥ २५ ॥
अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

वाहनों से उतर पड़े हैं। इसलिए तुम भी शीघ्र ही रथ से उतर पड़ो। अब श्रीकृष्ण ने भीमसेन को रथ से उतार लिया। क्रोध से लाल नेत्र करके सर्प की भाँति फुफकार रहे भीमसेन ने विवश होने के कारण शस्त्र त्याग किया। बस, नारायणास्त्र का तेज भी शान्त हो गया॥१७।१८॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस उपाय से नारायणास्त्र का दुःसह तेज शान्त हो जाने पर सब दिशा और उपदिशाएँ प्रकाशपूर्ण हो उठीं। अनुकूल शीतल वायु चलने लगी। मृग, पक्षी आदि ने शान्त भाव धारण कर लिया। योद्धा और वाहन प्रसन्नचित्त हो उठे। उस घोर तेज के शान्त होने पर पाण्डवों में भीमसेन प्रातःकाल उदय हुए सूर्य के समान अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए। मृत्यु से बची हुई पाण्डवों की सेना अस्त्र के शान्त होने पर, प्रसन्न होकर, आपके पुत्रों को मारने के निमित्त फिर युद्ध का उद्योग करने लगी॥१९।२३॥राजा दुर्योधन ने, यह देखकर कि वह अमोघ अस्त्र शान्त हो गया और शत्रु-सेना फिर युद्ध करने को प्रस्तुत है, खिन्न होकर अश्वत्थामा से कहा—हे आचार्यपुत्र! विजय की अभिलाषा से पाञ्चालगण फिर युद्ध करने को प्रस्तुत हैं। इसलिए तुम फिर उसी अस्त्र का प्रयोग करो॥२४।२५॥आपके पुत्र के वचन सुनकर अश्वत्थामा ने दीन भाव से लम्बी साँस लेकर कहा—हे राजेन्द्र! न तो यह अस्त्र फिर लौटाया जा सकता है और न दूसरा

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते ।
आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः ॥ २७ ॥
एष चाऽस्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् ।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥ २८ ॥
पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान्मृत्युर्न निर्जयः ।
निर्जिताश्चाऽरयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥ २९ ॥
दुर्योधन उवाच—आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते ।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३० ॥
त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि त्र्यम्बके चाऽमितौजसि।
इच्छतो न हि ते मुच्येत्संक्रुद्धो हि पुरन्दरः ॥ ३१ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते ।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्पुनः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् ।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥
सञ्जय उवाच—जानन्पितुः स निधनं सिंहलांगूलकेतनः ।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥
अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।
पञ्चभिश्चाऽतिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन्विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३६ ॥

इसका प्रयोग ही किया जा सकता है । यदि कोई दुबारा इसका प्रयोग करे तो इसमें सन्देह नहीं कि यह अस्त्र प्रयोग करनेवाले को ही मार डालता है ॥२६।२७॥ श्रीकृष्ण ने ही शत्रुओं को उपाय बताकर इस अस्त्र के तेज से बचा लिया है । अस्तु, हारना और मरना दोनों ही समान हैं; बल्कि इस प्रकार हारकर रण से हटने की अपेक्षा मरना ही श्रेष्ठ है । शत्रुगण शस्त्र त्यागकर मृततुल्य हो गये थे और सबको हमने जीत लिया था॥२८।२९॥ तब दुर्योधन ने फिर कहा—हे आचार्यपुत्र ! यदि अब यह अस्त्र फिर नहीं छोड़ा जा सकता तो अन्य अस्त्रों के बल से गुरुहत्या करनेवाले पाञ्चालों और पाण्डवों का संहार करो । तुमसे बढ़कर अस्त्रविद्या जाननेवाला तो कोई है ही नहीं । जैसे महापराक्रमी देवदेव के निकट सब श्रेष्ठ अस्त्र हैं वैसे ही तुम भी सब दिव्य अस्त्रों को जानते हो । तुम चाहो तो क्रुद्ध इन्द्र को भी परास्त कर सकते हो॥३०।३१॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! नारायणास्त्र के प्रतिहत होने पर, दुर्योधन के ये वचन सुनकर, अश्वत्थामा ने क्या कहा ? उन्होंने युद्ध के निमित्त उद्यत पाण्डवों को देखकर फिर क्या किया॥३२।३३॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! सिंहपुच्छ की ध्वजा से शोभित रथवाले महावीर अश्वत्थामा ने पिता की मृत्यु से कुपित होकर निर्भय भाव से धृष्टद्युम्न पर आक्रमण करने का उद्योग किया । उन्होंने बड़े वेग से पर्वत [illegible] क्षुद्रक बाण धृष-

सारथिं चाऽस्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥
विद्ध्वा विद्ध्वा नदद् द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ३८ ॥
पार्षतस्तु बली राजन्कृतास्त्रः कृतनिश्चयः ।
द्रौणिमेवाऽभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३९ ॥
ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४० ॥
तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥
द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥
व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चाऽनुचरान्सर्वान्क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥ ४३ ॥
ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते ।
सम्भ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वा तु विमुखान्योधान्धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥
अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥

पुत्र को मारकर व्याकुल कर दिया॥३४।३५॥तब महापराक्रमी धृष्टद्युम्न ने कुपित होकर प्रज्वलित अग्नि के समान अश्वत्थामा को तिरसठ बाण, उनके सारथी को सुवर्णपुङ्ख युक्त अति तीक्ष्ण बीस बाण और उनके चारों घोड़ों को चार बाण मारकर ऐसा सिंहनाद किया कि पृथ्वी कम्पायमान हो उठी।इसके पश्चात् वे बारम्बार बाण मारकर अश्वत्थामा को पीड़ित करने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ा कि प्रलयकाल उपस्थित हुआ है और कोई जीवित नहीं बचेगा। फिर अस्त्र-विद्या में निपुण पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने प्राणों की ममता छोड़कर अश्वत्थामा के समीप पहुंचकर उनके मस्तक के ऊपर निरन्तर बाण बरसाये॥३६।३९॥तदनन्तर अश्वत्थामा भी पिता के वध को स्मरण करके क्रोधान्ध हो उठे। उन्होंने पहले धृष्टद्युम्न को बाणों के प्रहार से पीड़ित करके फिर बहुत ही उग्र दस बाण मारे। दो क्षुरप्र बाणों से उनका ध्वजा सहित धनुष काट डाला। इसके पश्चात उन्हें अनेक बाणों के प्रहार से विह्वल करके उनके रथ, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया। धृष्टद्युम्न के सहायक साथी भी अश्वत्थामा के बाणों की चोट से विह्वल हो उठे। उस समय पाञ्चाल-सेना के योद्धा अत्यन्त पीड़ित हो युद्ध छोड़कर भागने लगे॥४०।४३॥हे महाराज ! पाञ्चाल वीरों को रण में विमुख और धृष्टद्युम्न को अत्यन्त पीड़ित देखकर वीर सात्यकि, अपना रथ हांककर, शीघ्र

विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥
स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥
एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।
शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नाऽन्वपश्यत ॥ ४९ ॥
एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥ ५० ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माऽथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ५१ ॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ५२ ॥
ततः स सात्यकी राजन्सर्वानेव महारथान् ।
विरथान्विमुखांश्चैव क्षणेनैवाऽकरोन्नृप ॥ ५३ ॥
अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥
अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परन्तपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ५५ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥ ५६ ॥

ही अश्वत्थामा के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने पहले आठ और फिर बीस बाण मारकर अश्वत्थामा और उनके सारथी को घायल कर दिया॥४४।४६॥फिर चार बाणों से चारों घोड़ों को व्यथित करके स्फूर्ति के साथ अश्वत्थामा की ध्वजा और धनुष काट डाला। अश्वत्थामा के सुवर्ण-मण्डित, बहुमूल्य घोड़ों से शोभित, रथ को चूर्ण करके उनके वक्षःस्थल में ताककर तीस विकट बाण मारे। इस प्रकार बाणों से पीडित होकर महापराक्रमी अश्वत्थामा यह न सोच सके कि अब क्या करें॥४७।४९॥हे राजेन्द्र! महाराज दुर्योधन, अश्वत्थामा की यह दशा देखकर, कृपाचार्य और कर्ण आदि वीरों के साथ आगे बढ़कर सात्यकि के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। दुर्योधन ने बीस, कृपाचार्य ने तीन, कृतवर्मा ने दस, कर्ण ने पचास, दुःशासन ने सौ और वृषसेन ने सात बाण एक साथ सात्यकि को मारे ॥५०।५२॥इस प्रकार उन महारथियों के आक्रमण करने पर सात्यकि क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने देखते ही देखते सब महारथियों को रथ-हीन करके रण से विमुख कर दिया॥इसी अवसर में अश्वत्थामा सावधान हो गये। वे बारम्बार साँस लेने और चिन्तित होकर सोचने लगे। फिर वे दूसरे रथ पर बैठकर सात्यकि के ऊपर बाण बरसाने और उन्हें विमुख करने की चेष्टा करने लगे। महावीर सात्यकि ने अश्वत्थामा को फिर सम्मुख युद्ध के निमित्त उपस्थित देखकर उन्हें रथ हीन कर

ततस्ते पाण्डवा राजन्दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् ।
शङ्खशब्दान्भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥
एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान्महारथान् ॥ ५८ ॥
अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः ।
पञ्चायुतानि चाऽश्वानां शकुनेर्निजघान ह ॥ ५९ ॥
ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रति संक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ॥ ६० ॥
पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत्क्रूरतरैः पुनः पुनररिन्दम ॥ ६१ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥
शैनेयाऽभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥
शपेऽऽत्मनाऽहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान्यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४ ॥
यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५ ॥
एवमुक्त्वाऽर्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ६६ ॥

दिया॥५६-५६॥सत्यविक्रमी सात्यकि की इस कीर्ति और पराक्रम देखकर पाण्डव लोग प्रसन्न होकर सिंहनाद और शङ्खनाद करने लगे। [illegible]

प्रकार [illegible] होने के कारण [illegible] अश्वत्थामा ने [illegible] हंसते हुए कहा, कि हे [illegible]

स तं निर्भिद्य तेनाऽस्तः सायकः सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्बिलमिवोरगः ॥ ६७ ॥
स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ६८ ॥
सीदन्रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनाऽपहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ॥ ६९ ॥
अथाऽन्येन सुपुङ्खेन शरेणाऽनतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परन्तपः ॥ ७० ॥
स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससादाऽथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥ ७१ ॥
तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम् ।
जवेनाऽभ्यद्रवच्छूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ॥ ७२ ॥
किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ७३ ॥
एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ७४ ॥
ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन्सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥

अद्भुत पराक्रम दिखाया । इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को वज्र मारा था वैसे ही अश्वत्थामा ने एक सूर्य किरण-सदृश प्रज्वलित तीक्ष्ण विकट बाण धनुष पर चढ़ाकर सात्यकि के ऊपर वेग से छोड़ा । फुफकारता हुआ विषैला नाग जैसे बिल में प्रवेश होता है वैसे ही वह बाण अश्वत्थामा के धनुष से छूटकर सात्यकि के कवच को तोड़कर शरीर को फोड़कर पृथ्वी में प्रवेश हो गया । हे राजेन्द्र ! पराक्रमी सात्यकि उस बाण की गहरी चोट खाकर अंकुश-पीड़ित गजराज की भाँति काँप उठे और व्यथा के मारे अचेत हो गये । उनका शरीर रक्त से युक्त हो गया, हाथ से धनुष-बाण छूट पड़ा और वे रथ पर गिरकर निश्चेष्ट हो गये । उनकी यह दशा देखकर सारथी उनके रथ को अश्वत्थामा के आगे से हटा ले गया ॥६६।६९॥

इसी समय अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न की भौंहों के बीच में एक सुवर्णपुङ्ख-युक्त आड़ी डण्डी का विकट बाण तानकर मारा। वे पहले ही बहुत घायल हो चुके थे, अब फिर वह बाण मर्मस्थल में लगने से ध्वजा के डण्डे को पकड़कर रथ पर बैठ गये । सिंह पीड़ित गजराज की भाँति जब धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के बाणों की चोट से व्याकुल हो गये तब पाण्डवों की ओर से महाधन्वी अर्जुन, भीमसेन, पुरुवंशी वृद्धक्षत्र, चेदि देश के युवराज और अवन्ति देश के राजा सुदर्शन, ये पाँच शूर महारथी वेग से अश्वत्थामा पर आक्रमण करने के निमित्त चले ॥७०।७४॥ चारों ओर हाहाकार मच गया । हाथ में धनुष लेकर इन वीरों ने वीर अश्वत्थामा को चारों ओर से घेर लिया । इन लोगों ने बीस पग की दूरी पर ठहरकर यत्न पूर्वक कुपित अश्वत्थामा

आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः ।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ७६ ॥
सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ७७ ॥
ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः ।
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७८ ॥
युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥
ततोऽर्जुनं षड्भिरथाऽऽजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च ॥ ८० ॥
सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भिर्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥
तस्याऽस्यतस्तान्निशितान्पीतधारान्द्रौणेः शरान्पृष्ठतश्चाऽग्रतश्च ।
धरा वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्च च्छन्ना बाणैरभवन्घोररूपैः ॥ ८२ ॥
आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत्सञ्चकर्त ॥ ८३ ॥
स पौरवं रथशक्त्या निहत्य छित्त्वा रथं तिलशश्चाऽस्य बाणैः ।
छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ८४ ॥

को एक साथ पाँच-पाँच बाण मारे। महारथी अश्वत्थामा ने विषैले नाग जैसे पचीस बाणों से एक साथ सबके पचीसों बाणों को काट डाला। फिर वृद्धक्षत्र को सात, सुदर्शन को तीन, अर्जुन को एक और भीमसेन को छः बाण मारे॥७६।७७॥ अश्वत्थामा के बाणों से पीड़ित पाँचों महारथी कभी एक साथ और कभी अलग-अलग सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाण मारकर उन्हें घायल करने लगे। फिर चेदि देश के युवराज ने बीस, अर्जुन ने आठ और अन्य तीनों ने तीन-तीन बाण अश्वत्थामा को मारे॥७८।७९॥ उन्होंने भी क्रुद्ध होकर अर्जुन को छः, श्रीकृष्ण को दस, भीमसेन को पाँच, चेदि-युवराज को चार, वृद्धक्षत्र और सुदर्शन को दो-दो बाण मारकर भीमसेन के सारथी को छः बाण मारे। और दो बाणों से उनका धनुष और ध्वजा काट डाले। फिर अर्जुन पर घोर बाण-वर्षा करके वे सिंह की भाँति गरजने लगे। इन्द्रतुल्य महारथी तेजस्वी उग्र अश्वत्थामा अपने आगे, पीछे, आसपास, सब ओर तीक्ष्ण बाण बरसा रहे थे। उनके घोररूप बाण पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा, उपदिशा आदि सब स्थानों में छा गये॥८०।८२॥ अश्वत्थामा ने अपने रथ के समीप पहुँच गये सुदर्शन का सिर और इन्द्रध्वज के समान दोनों हाथ, एक साथ ही, तीन बाणों से काट डाले। फिर शक्ति के प्रहार से पौरव वृद्धक्षत्र को घायल करके बाणों से उनके रथ के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और चन्दनचर्चित दोनों हाथ काटकर एक भल्ल बाण से उनका सिर भी काट डाला। नीलकमल-वर्ण, युवा, चेदि देश के युवराज को पराजित करके उन्होंने [illegible] प्रज्वलित अग्नि के समान [illegible]

युवानमिन्दीवरदामवर्णं चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावान्प्रज्वलिताग्निकल्पैर्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥८५॥

मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६ ॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत्परम् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ॥ ८७ ॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परन्तपः ।
ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥ ८८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः ।
ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥ ८९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥ ९० ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥ ९१ ॥
अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाऽम्बुदौ ।
भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ९२ ॥
द्रौणिं सञ्छादयामासुर्घनौघा इव भास्करम् ।
तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥ ९३ ॥
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः ।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥ ९४ ॥

से उन्हें घायल कर दिया और फिर उन्हें, उनके सारथी और घोड़ों के सहित, मार डाला ॥८३।८५॥ अपने पक्ष के तीन महारथियों को अश्वत्थामा के बाणों से निहत देखकर प्रतापी भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे। उनके नेत्र लाल हो गये। वे कुपित हुए सर्प के समान भयानक बाण बरसाकर अश्वत्थामा को पीड़ित करने लगे॥८६।८८॥तेजस्वी अश्वत्थामा भी भीमसेन के बाणों को व्यर्थ करके उन्हें तीक्ष्ण बाणों से घायल करने लगे। तब अमितपराक्रमी भीमसेन ने एक क्षुरप्र बाण से अश्वत्थामा का धनुष काट डाला और इसी अवसर में बाण मारकर उनके अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर दिया। महामनस्वी द्रोणपुत्र ने वह कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा दृढ़ धनुष हाथ में लिया और फिर पहले की भाँति वे भीमसेन को असंख्य बाण मारने लगे॥८८।९१॥इस प्रकार पराक्रमी अश्वत्थामा और बली भीमसेन दोनों जल बरसा रहे मेघों के समान एक दूसरे पर बाण-वर्षा कर रहे थे। सूर्य जैसे मेघों में छिप जाते हैं वैसे ही अश्वत्थामा भी भीमसेन के नाम चिह्नित स्वर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाणों में छिप गये। उधर भीमसेन का भी यही हाल था। उन्हें भी अश्वत्थामा के छोड़े हुए सन्नतपर्वयुक्त भयानक बाणों ने अदृश्य कर दिया॥९२।९४॥हे राजेन्द्र! उस समय भीमसेन को अश्वत्थामा के असंख्य बाणों की चोट खाकर भी विचलित न होते देखकर सबको

न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥
नाराचान्दश सम्प्रैषीद्यमदण्डनिभाञ्छितान् ।
ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥ ९६ ॥
निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥ ९७ ॥
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥ ९८ ॥
क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।
दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ९९ ॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।
तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥ १०० ॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।
भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयत् ॥ १०१ ॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
ततो द्रौणिर्महाराज च्छित्वाऽस्य विशिखैर्धनुः ॥ १०२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥ १०३ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।
जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ ॥ १०४ ॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।
तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥ १०५ ॥

बड़ा ही आश्चर्य हुआ। फिर महाबली भीमसेन ने यम-दण्ड-तुल्य भयानक, लोहे के, सुवर्णभूषित दस नाराच बाण अश्वत्थामा को मारे। सर्प जैसे बिल में प्रवेश होते हैं वैसे ही वे नाराच बाण अश्वत्थामा की हँसली के हाड़ों को चोट पहुँचाते हुए शरीर के भीतर प्रवेश हो गये ॥९४।९७॥ यह गहरी चोट लगने के कारण अश्वत्थामा अत्यन्त विह्वल हो उठे। वे ध्वजा का डण्डा पकड़-कर, नेत्र मूँदकर, अचेत हो गये; किन्तु क्षण भर में ही वे सँभल गये। शरीर रक्त से तर था, नेत्र लाल हो रहे थे ॥९७।१००॥ क्रोध में भीमसेन के रथ की ओर झपटकर, कानों तक खींचकर, उन्होंने विषैले सर्प सदृश सौ बाण मारे। रणप्रिय भीमसेन अश्वत्थामा के बल का स्मरण करके उन पर भयानक बाण-वर्षा करने लगे। अश्वत्थामा ने तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन का धनुष काटकर उनके हृदय में बाण मारे। भीम ने स्फूर्ति से दूसरा धनुष लेकर उनको पाँच विकट बाण मारे ॥१००।१०३॥ इस प्रकार क्रोध से नेत्र लाल किये हुए दोनों वीर, वर्षा ऋतु के बरसनेवाले मेघों के समान, परस्पर बाण बरसाने लगे। तलशब्द से वे एक दूसरे को भयभीत करा रहे थे। दोनों ही एक

अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥ १०६ ॥
भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात् ।
शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥ १०७ ॥
आददानस्य विशिखान्सन्दधानस्य चाऽऽशुगान् ।
विकर्षतो मुञ्चतश्च नाऽन्तरं ददृशुर्जनाः ॥ १०८ ॥
अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान्विसृजतस्तदा ॥ १०९ ॥
धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवाऽऽयतीः ॥ ११० ॥
ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥ १११ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥ ११२ ॥
तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः ।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥ ११३ ॥
द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥ ११४ ॥
तद्रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे ।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवाऽपरम् ॥ ११५ ॥

दूसरे के कार्य का उत्तर वैसे ही कार्य से देना चाहते थे॥१०३।१०६॥शरद् ऋतु के स्वच्छ आकाश में प्रकाशमान मध्याह्न के प्रचण्ड सूर्य के समान प्रतीत होनेवाले तेजस्वी अश्वत्थामा ने सुवर्ण भूषित भारी धनुष चढ़ाकर पास ही से बाण बरसानेवाले भीमसेन की ओर क्रोध से देखा। उस समय अश्वत्थामा ऐसी स्फूर्ति कर रहे थे कि उन्हें बाण निकालते, धनुष पर चढ़ाते, डोरी खींचते और बाण छोड़ते कोई नहीं देख पाता था॥१०६।१०८॥केवल अलातचक्र (जलती हुई लकड़ी को तेजी से घुमाने में जो घेरा सा देख पड़ता है) उसके समान उनके धनुष का मण्डल ही सबको दिखाई पड़ रहा था। उनके धनुष से छूटे हुए सैंकड़ों-सहस्रों बाण आकाश में टीड़ियों की कतार सी देख पड़ते थे। अश्वत्थामा के सुवर्णभूषित घोर बाण निरन्तर भीमसेन के रथ पर गिर रहे थे॥१०९।१११॥उस समय हमने भीमसेन का बल, पराक्रम, प्रभाव और दृढ निश्चय देखा कि अश्वत्थामा की उस दारुण बाण-वर्षा को वे, वर्षा के बादलों की जलवर्षा के समान, अनायास सह रहे थे। अश्वत्थामा को मारने के निमित्त यत्न कर रहे भीमसेन भी वर्षा ऋतु के मेघ की भाँति निरन्तर बाण बरसा रहे थे॥११२।११४॥जोर से बारम्बार खींचा जा रहा भीमसेन का धनुष, जिसकी पीठ सुवर्ण से मढ़ी हुई थी,दूसरा इन्द्रधनुष सा जान पड़ रहा था। उनके धनुष से निरन्तर सैंकड़ों-सहस्रों

तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
सञ्छादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ११६ ॥
तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष ।
वायुरप्यन्तरा राजन्नाऽशक्नोत्प्रतिसर्पितुम् ॥ ११७ ॥
तथा द्रौणिर्महाराज शरान्हेमविभूपितान् ।
तैलधौतान्प्रसन्नाग्रान्प्राहिणोद्वधकांक्षया ॥ ११८ ॥
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन्द्रोणसुतं तिष्ठतिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ११९ ॥
पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः ।
व्यसृजद्बलवान्क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥ १२० ॥
ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम् ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् ॥ १२१ ॥
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत् ।
स च्छिन्नधन्वा बलवान्रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥ १२२ ॥
वेगेनाऽऽविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति ।
तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः ॥ १२३ ॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ १२४ ॥
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः ।
ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् ॥ १२५ ॥

बाण निकालकर अश्वत्थामा को चारों ओर से ढक देते थे। वे दोनों योद्धा इस प्रकार निरन्तर बाण छोड़ रहे थे कि बीच में न जाने वायु भी नहीं जा सकती थी ॥११६।११७॥ हे महाराज ! इसी बीच में अश्वत्थामा ने भीमसेन को मारने के निमित्त सुवर्णपुङ्ख शोभित, तेल से स्वच्छ किये गये, पैने बाण छोड़े। भीमसेन ने रणभूमि में बाण चलाकर मार्ग में ही एक एक बाण के तीन-तीन टुकड़े कर डाले। इस प्रकार अश्वत्थामा से बढ़कर पराक्रम दिखाने को उद्यत भीमसेन "ठहरो, ठहरो" कहकर गरजने लगे। बलवान् कुपित भीमसेन, अश्वत्थामा को मारने के निमित्त, फिर उस पर उग्र बाण बरसाने लगे॥११८।१२०॥ तब शस्त्र अस्त्रों के ज्ञाता अश्वत्थामा ने अस्त्र-बल से शीघ्र ही उस बाण-वर्षा को व्यर्थ करके भीमसेन का धनुष काट डाला और फिर अनेक बाण मारकर उनके शरीर को छिन्न-भिन्न कर दिया। धनुष कट जाने पर बलवान् भीमसेन ने क्रोध करके दारुण रथशक्ति हाथ में ली और उसको तानकर अश्वत्थामा के रथ पर फेंका। भारी उल्का के समान एकाएक आनेवाली उस शक्ति को रणभूमि में अश्वत्थामा ने मध्य में ही बाणों से काट डाला॥१२१।१२४॥ तब भीमसेन ने हँसते-हँसते दूसरा दृढ़ धनुष लेकर अश्वत्थामा को कई उग्र बाण मारे। इसी समय अश्वत्थामा ने एक तीक्ष्ण बाण भीमसेन के सारथी को मारा, जिससे उसका मस्तक कट गया। तदनन्तर अश्व-

ललाटे दारयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥ १२६ ॥
व्यामोहमगमद्राजन्रश्मीनुत्सृज्य वाजिनः ।
ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥ १२७॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।
तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥ १२८ ॥
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ।
ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १२९ ॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन्दिशः ।
तान्प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥ १३० ॥
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन्पाण्डुवाहिनीम् ।
ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ।
द्रोणपुत्रभयाद्राजन्दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥ १३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामपराक्रमे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

त्थामा के बाण की गहरी चोट खाकर सारथी मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके हाथ से घोड़ों की रास छूट गई। सारथी के अचेत हो जाने पर घोड़े भीमसेन और अन्य योद्धाओं के सम्मुख ही रथ को लेकर भाग खड़े हुए॥१२४।१२८॥अपराजित अश्वत्थामा ने देखा कि भीमसेन को उनके घोड़े अन्यत्र लिये जा रहे हैं। तब उन्होंने आनन्दपूर्वक अपना शङ्ख बजाया। इस प्रकार रण से भीमसेन के भाग जाने पर पाञ्चाल-गण भी भय के कारण धृष्टद्युम्न को अकेले छोड़कर भाग खड़े हुए। वीर अश्वत्थामा भागती हुई पाण्डव-सेना को बाणवर्षा से पीड़ित करते हुए वेग से उसका पीछा करने लगे। पाण्डव पक्ष के अन्य सब क्षत्रिय भी अश्वत्थामा के बाणों से अत्यन्त व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे॥१२८।१३१॥

द्रोणपर्व का दो सौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २०० ॥

अथ एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

सञ्जय उवाच—तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥
ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्राऽवतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनाऽर्जुनेन च ॥ २ ॥
एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च सन्धाय कौरवान्संन्यवर्तत ॥ ३ ॥

दो सौ एक अध्याय ॥ २०१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! उस समय सब सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर महावीर अर्जुन अश्वत्थामा को जीतने के निमित्त सेना को लौटाने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने यत्नपूर्वक सबको ढाढ़स बँधाया और लौटाया। सब सैनिक लौटकर युद्ध करने को उद्यत हो गये। उस समय अर्जुन सैन्य-सामन्त सहित

तती द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥
या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यच्च ते ॥ ५ ॥
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत्सर्वं मयि दर्शय ।
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥ ६ ॥
कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ।
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि सञ्जय ।
प्रीतिर्धनञ्जये चाऽस्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात्स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान् ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच—युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।
इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते ।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ ११ ॥
अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो ।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ १२ ॥

सोमकगण, मत्स्य देश के और अन्य अनेक योद्धाओं को साथ लेकर कौरवों से युद्ध करने को उद्यत हुए ॥१।३॥उन्होंने शीघ्र ही सिंहपुच्छ चिह्नयुक्त ध्वजा से शोभित अश्वत्थामा के समीप जाकर कहा—हे गुरु-पुत्र ! तुम में जितनी शक्ति, अस्त्रज्ञान, युद्ध-कौशल, वीर्य, पौरुष, कौरवों से प्रीति, हम लोगों के प्रति द्वेष का भाव और तेज है, वह सब देख लो॥४।६॥आचार्य को मारनेवाले धृष्टद्युम्न ही इस समय तुम्हारे अभिमान को चूर्ण करेंगे। कालाग्नि सदृश तेजस्वी और शत्रुओं के निमित्त मृत्युस्वरूप धृष्टद्युम्न, मैं और श्रीकृष्ण तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं। हम लोगों से युद्ध करके जी भरकर पराक्रम दिखा लो। तुम बहुत ही उच्छृङ्खल और इसी से शास्त्र-विरुद्ध कार्य करते हो। मैं तुम्हारे घमण्ड को अभी मिटाये देता हूँ॥६।७॥राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! अश्वत्थामा महापराक्रमी और गुरु-पुत्र होने के कारण अर्जुन के माननीय हैं। अर्जुन को उनसे और उन्हें अर्जुन से बड़ा ही प्रेम था, दोनों ही दोनों के प्रिय सखा थे। अर्जुन ने प्रिय सखा अश्वत्थामा से पहले कभी ऐसे कठोर वचन नहीं कहे। फिर एकाएक उस समय ऐसे रूखे वचन क्यों कहे ? ॥८।९॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! चेदि देश के युवराज, राजा वृद्धक्षत्र और बाण-विद्या तथा अस्त्र-विद्या में निपुण सुदर्शन को अश्वत्थामा ने मार डाला था। धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीमसेन को भी हराकर रण से हटा दिया था। युधिष्ठिर ने भी निराश होकर अर्जुन के प्रति ऐसे अप्रिय वचनों का प्रयोग किया

तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान् ।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३ ॥
एवमुक्तः श्वसन्क्रोधान्महेष्वासतमो नृप ।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा ॥ १४ ॥
द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः ।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे ।
दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याऽऽचार्यनन्दनः ॥ १६ ॥
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् ।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७ ॥
ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत ।
पावकार्चिः परीतं तत्पार्थमेवाऽभिपुप्लुवे ॥ १८ ॥
उल्काश्च गगनात्पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे ।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥ १९ ॥
रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः ।
ववुश्चाऽशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥ २० ॥
वायसाश्चापि चाऽऽक्रन्दान्दिक्षु सर्वासु भैरवम् ।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥

था, जिनसे उनके मर्मस्थल को गहरी चोट पहुँची थी। पहले कौरवों के कारण मिले हुए दुःखों की याद आ जाने से उनका हृदय विदीर्ण सा हो गया था। इन्हीं कारणों से दुःख की प्रबलता के कारण अर्जुन के मन में प्रचण्ड क्रोध की अग्नि जल उठी। उन्होंने क्रोधान्ध होकर अपमान के अयोग्य मान्य आचार्य-पुत्र को ऐसे रूखे अप्रिय वचन कह डाले॥१०।१३॥ मर्मस्थल में चोट पहुँचानेवाले कठोर वचन अर्जुन के मुख से सुनकर अश्वत्थामा क्रोध से सर्प की भाँति फुफकारने लगे। वे अर्जुन पर, विशेषकर श्रीकृष्ण के ऊपर, क्रुद्ध होकर उनके नाश करने का यत्न करने लगे। पराक्रमी अश्वत्थामा ने रथ पर ही आचमन करके देवताओं के निमित्त भी अगम्य अजेय अमोघ आग्नेय अस्त्र छोड़ना चाहा। आचार्य-पुत्र ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दृश्य और अदृश्य शत्रुओं के मारने को प्रज्वलित अग्नि के समान एक श्रेष्ठ बाण, उक्त अस्त्र से अभिमन्त्रित करके, धनुष पर चढ़ाया और अर्जुन को लक्ष्य करके छोड़ दिया॥१४।१७॥ उस समय अस्त्र के प्रभाव से आकाश से तुमुल बाण-वर्षा होने लगी और अग्निशिखाओं से परिपूर्ण वह अस्त्रयुक्त बाण अर्जुन की ओर वेग से चला। उस समय आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं और एकाएक रौद्ररूप महा अन्धकार पाण्डवों की सेना में विस्तृत हो गया। असंख्य राक्षस और पिशाच एकत्र होकर गरजने लगे। अमङ्गल-सूचक कठोर आँधी चलने लगी। सूर्य का प्रकाश धुँधला पड़ गया और उनकी गर्मी जाती रही। कौए मँडलाते हुए भयानक कर्कश शब्द करने लगे। मेघ घिर आये, उनसे जल के स्थान रक्त बरसने लगा।

पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः ।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ २२ ॥
भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभिसन्तप्तं ज्वराविष्टमिवाऽभवत् ॥ २३ ॥
अस्त्रतेजोभिसन्तप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥
जलजानि च सत्वानि दह्यमानानि भारत ।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥
दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद्भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः ।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २६ ॥
तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः ।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २७ ॥
दह्यमाना महाभागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
नदन्तो भैरवान्नदाञ्जलदोपमनिःस्वनान् ॥ २८ ॥
अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशाम्पते ।
त्रेसुर्दिशो यथापूर्वं वने दावाग्निसंवृताः ॥ २९ ॥
द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष ।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ॥ ३० ॥
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ।
तत्सैन्यं भयसंत्रिग्नं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥

और कड़कड़ाहट उत्पन्न होकर जगत् को विह्वल करने लगी॥१८।२१॥पशु-पक्षी, गाय आदि आर्तनाद करने लगे। योगियों की भी समाधि टूट गई, वे अशान्त हो उठे। ऐसा जान पड़ा कि मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड घूम रहा है। सब देवता आदि श्रेष्ठ प्राणी भी व्याकुल हो गये। तीनों लोक ज्वर-पीड़ित के समान सन्तप्त हो उठे। बड़े बड़े हाथी अस्त्र के तेज से पीड़ित होकर, उससे बचने के निमित्त पृथ्वी पर गिरने और श्वास लेते हुए बेचैनी से उठने बैठने लगे॥२२।२४॥अस्त्र के तेज से सब जलाशय तप उठे और उनके भीतर रहनेवाले जीव-जन्तु उस तेज से जलने लगे। दिशाओं से, आकाशमण्डल और पृथ्वीमण्डल से—गरुड़ और वायु के समान—वेगशाली नाना प्रकार के बाण प्रकट होने लगे। शत्रुसेना के लोग महाबली अश्वत्थामा के वज्रतुल्य बाणों की चोट खाकर, अस्त्र के तेज से भस्म होकर, दावानल से जले हुए वृक्षों की भाँति, पृथ्वी पर गिरने लगे॥२५।२७॥बाणों की अग्नि से जलकर ऊँचे-ऊँचे हाथी मेघों के समान गरजते—आर्तनाद करते—धरातल पर गिरने लगे। कुछ हाथी-जैसे वन में दावानल के मध्य घिरे हों इस प्रकार, अस्त्र के तेज से पीड़ित होकर चिल्लाने और भागने लगे। घोड़े और रथ वन में दावानल से जले हुए वृक्षों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। असंख्य रथों के भस्म हो जाने पर रणभूमि में उनका ढेर लग गया।

युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवाऽनलः ।
दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टास्तावका राजन्सिंहनादान्विनेदिरे ।
ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः ।
कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन्सव्यसाची च पाण्डवः ॥ ३४ ॥
तमसा संवृते लोके नाऽदृश्यन्त महाहवे ।
नैव नस्तादृशं राजन्दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ३५ ॥
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ।
अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३६ ॥
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ।
ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥
प्रववौ चाऽनिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥ ३८ ॥
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।
ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।
ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाऽक्षतावुभौ ॥ ४० ॥
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो युक्तस्तावकानां भयङ्करः ॥ ४१ ॥

यों प्रज्वलित अस्त्र की प्रचण्ड अग्नि प्रलयकाल के अग्नि की भाँति पाण्डव-सेना को भस्म करने लगी ॥२८।३१॥ हे महाराज ! आपके पक्ष के वीर-गण इस प्रकार अश्वत्थामा के अस्त्र-युक्त बाणों से पाण्डव-सेना को जलते देखकर प्रसन्नता से सिंहनाद करने और शङ्ख-नगाड़े आदि बजाने लगे । उस समय चारों ओर अँधेरा छा जाने के कारण न तो अर्जुन ही देख पड़ते थे और न उनकी समग्र सेना ही देख पड़ती थी । अश्वत्थामा ने क्रोध करके उस समय जैसे अस्त्र का प्रयोग किया था वैसा घोर अस्त्र हम लोगों ने पहले कभी देखा या सुना नहीं था ॥३४।३६॥ हे राजेन्द्र ! अश्वत्थामा के अस्त्र और बाणों के प्रभाव से सेना को अत्यन्त पीड़ित देखकर अर्जुन ने उसे शान्त करने के निमित्त ब्रह्मास्त्र छोड़ा । ब्रह्मास्त्र ने उस अस्त्र का तेज शान्त कर दिया । तब क्षण भर में ही वह गहरा अँधेरा जाता रहा और दिशाएँ निर्मल हो गईं । ठण्डी वायु चलने लगी । उस समय हम लोगों ने देखा कि पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना उस अस्त्र के प्रभाव से ऐसी नष्ट हुई कि उसके नाश की किसी को पहले सूचना भी नहीं हुई ॥३६।३९॥ महाबली अर्जुन और श्रीकृष्ण उस घोर अँधेरे से मुक्त हो गये । उनके शरीर में कहीं कोई घाव नहीं लगा था । उनका रथ, ध्वजा पताका, घोड़े, अनुकर्ष और शस्त्र आदि सब सामग्री जैसी की तैसी बनी हुई थी । आकाश में चन्द्रमा और सूर्य के समान

ततः किलाकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥
हताविति तयोरासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाऽभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥
तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान्पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम् ॥ ४४ ॥
विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष ॥ ४५ ॥
चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाऽभवत्ततः ॥ ४६ ॥
ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात्प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक्सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद्रणात् ॥ ४७ ॥
ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥ ४८ ॥
तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वहम् ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ४९ ॥
भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत् ।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ५० ॥
अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ५१ ॥

दोनों वीर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे थे। उनको इस प्रकार अछूते देखकर आपके पक्षवालों को बड़ा भय लगा। पाण्डवगण परम प्रसन्न होकर बड़ा कोलाहल और सिंहनाद करने लगे। उनकी सेना में शङ्ख नगाड़े आदि असंख्य बाजे बजने लगे। पाण्डवों को अस्त्र से बचे हुए और हर्षयुक्त देखकर कौरव लोग बहुत ही व्यथित हुए। दोनों सेनाओं के लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन की मृत्यु का निश्चय किये बैठे थे; किन्तु उन्हें शङ्ख बजाते देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनकी देह में घाव तक नहीं लगा था॥३९।४६॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन को अस्त्र के तेज से बचा हुआ देखकर महावीर अश्वत्थामा बहुत ही दुःखित हुए। क्षण भर सोच-कर, शोक और खेद से लम्बी और गर्म साँस लेकर, धनुष फेंककर वे रथ से उतर पड़े और "अहो! धिक्कार है! यह सब मिथ्या है!" कहते हुए वे रणभूमि से चल दिये। इसी समय उन्हें मेघों की भाँति साँवले, वेदों के आश्रयस्थल, निष्पाप, सरस्वती के कृपापात्र, महात्मा वेदव्यास के दर्शन हुए। अश्वत्थामा ने कुरुकुल के प्रवर्तक महर्षि को दीनभाव से प्रणाम किया और भर्राई हुई खेद-पूर्ण वाणी से कहा—हे भगवन्! मेरे अस्त्र के निष्फल होने का कारण क्या है? क्या किसी माया के कारण मेरा अस्त्र व्यर्थ हो गया है या अस्त्र की शक्ति का सब पर एक सा प्रभाव नहीं पड़ता! अथवा प्रयोग करने में मुझसे कुछ न्यूनता रह गई हो

नाऽसुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥ ५२ ॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् ।
तदिदं केवलं हत्वा शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ५३ ॥
सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम् ।
केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नाऽवधीत्केशवार्जुनौ ॥ ५४ ॥
एतत्प्रब्रूहि भगवन्मया पृष्टो यथातथम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ॥ ५५ ॥
व्यास उवाच—महान्तमेवमर्थं मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात् ।
तं प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५६ ॥
योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥ ५७ ॥
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमास्थितः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ॥ ५८ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
अशोषयत्तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥ ५९ ॥
अथाऽपरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत्पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ ६० ॥

जिससे कि अस्त्र निष्फल हो गया हो ! कुछ मेरी समझ में नहीं आता । या दैव ही हम लोगों के विरुद्ध है ! मैं तो समझता हूँ कि काल बड़ा बली और अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त कृष्ण और अर्जुन के बच जाने का और क्या कारण हो सकता है ! असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, गरुड़ आदि पक्षी और मनुष्य, कोई भी मेरे इस अस्त्र को व्यर्थ नहीं कर सकता ॥४७।५३॥ किन्तु यह प्रज्वलित सर्वघाती अस्त्र केवल एक अक्षौहिणी सेना को भस्म करके ही शान्त हो गया । कृपा करके आप यह बताइए कि मनुष्य-शरीरधारी कृष्ण और अर्जुन को इस अस्त्र ने क्यों छोड़ दिया ! हे मुनिवर ! मैं इसका कारण आपसे सुनना चाहता हूँ, क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और त्रिकालदर्शी हैं॥५४।५५॥ हे महाराज ! अश्वत्थामा के यों प्रार्थना करने पर महात्मा वेदव्यास ने कहा—हे द्रोणाचार्य के पुत्र ! तुम विस्मित होकर मुझसे जो गूढ़ गुरुतर बात पूछते हो उसके विषय में मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ, तुम एकाग्र होकर सुनो । पूर्वकाल में पूर्वजों के भी पूर्वज, विश्व के रचनेवाले, भगवान् नारायण ने देव-कार्य के निमित्त धर्म के पुत्ररूप से अवतार लिया । उन सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी कमललोचन महात्मा नारायण ने पहले हिमालय पर्वत पर साठ लाख साठ हजार वर्ष तक ऊर्ध्वबाहु होकर, केवल वायुभक्षण करके, कठिन तपस्या की । इस प्रकार उन्होंने अपने शरीर को सुखाया । इसके पश्चात् उससे भी दूने समय तक अन्य प्रकार से तप करने के कारण उनका तेज पृथ्वी और आकाश के मध्यस्थल में व्याप्त हो गया॥५६।६०॥ अन्त को उस

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाऽभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम् ।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥ ६२ ॥
रुद्रमीशानवृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥
दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् ।
दिव्यं चापमिषुधी चाऽऽददानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम्॥ ६४ ॥
पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं परश्वधिनं गदिनं चाऽऽयतासिम् ।
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम् ॥६५॥
शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसङ्घैः ।
एकीभूतं तपसां सन्निधानं वयोनिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥
जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ तथा वाय्वग्नी प्रतिमाणं जगच्च ।
नाऽलं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥
यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः ।
तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ।
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥

दुष्कर तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मरूप निर्लिप्त निर्विकार हो जाने पर उन्हें विश्वेश्वर, विश्वयोनि, जगत्पति, अत्यन्त दुर्लभ-दर्शन, दुर्द्धर्ष, देवादिदेव शङ्कर के दर्शन प्राप्त हुए। भगवान् पशुपति की स्तुति सब देवता करते हैं। वे त्रिपुर-दहन महात्मा त्रिलोचन सब देवताओं के प्रभु हैं। सूक्ष्म पदार्थों से भी सूक्ष्म और बृहत् पदार्थों से भी बृहत् रुद्रदेव ब्रह्मा आदि देवताओं से भी श्रेष्ठ और उनके प्रभु हैं। उन्हें लोग हर, शम्भु, कपर्दी, चैतन्यस्वरूप, चराचर जगत् को उत्पन्न करनेवाले, ॥६१।६३॥ अनिवार्य, अत्यन्त दुर्द्धर्ष, दुर्निरीक्ष्य, दुरासद, दुष्टों के निमित्त महाक्रोधी, महात्मा, संहारकर्ता, प्रजापति आदि कहते हैं। वे अनन्तवीर्य देवदेव दिव्य धनुष, बाण, सुवर्णमय कवच, पिनाक, वज्र, प्रज्वलित त्रिशूल, परश्वध, गदा, खड्ग, परिघ, दण्ड, व्याघ्राम्बर आदि धारण किये हुए हैं। उनके मस्तक पर जटाजूट और चन्द्रमा है। शरीर में यज्ञोपवीत के स्थान पर विषैला नाग और भुजाओं में अङ्गद आदि हैं। संसार के सब जीव और भूतगण सदा उनकी सेवा करते रहते हैं। सब प्रकार की तपस्याओं के एकमात्र आधार उन शङ्कर को बड़े-बड़े ऋषि-मुनि सुन्दर स्तुतियों से प्रसन्न किया करते हैं॥६४।६६॥ वे जल, दिशा, आकाश, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, अग्नि और वायु इन आठ रूपों से जगत् को धारण किये हुए हैं। ब्रह्मद्रोहियों का विनाश करनेवाले उन अमृतयोनि महादेव के दर्शन चरित्रहीन और अधर्मियों को नहीं प्राप्त होते। सच्चरित्र ब्राह्मण लोग पाप क्षीण और शोक दूर होने पर उनके दुर्लभ दर्शन प्राप्त करते हैं। महापुरुष नारायण ने उन्हीं में मन लगाकर तप और भक्ति के द्वारा विश्वरूप धर्मस्वरूप पूजनीय इष्टदेव के दर्शन प्राप्त किये॥६७।६८॥ उनके दर्शन

अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् ।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसम्भवम् ॥ ६९ ॥
वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।
अभिवाद्याऽथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने ।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ७१ ॥

श्रीनारायण उवाच—त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य गोप्तारोऽस्य भुवनस्याऽऽदिदेव ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम् ॥ ७२ ॥
सुरासुरान्नागरक्षः पिशाचान्नरान्सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् ।
पृथग्विधान्भूतसङ्घांश्च विश्वांस्त्वत्सम्भूतान्विद्म सर्वांस्तथैव ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम् ॥ ७३ ॥
रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी ।
कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च त्वत्सम्भूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥ ७४ ॥
अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः ।
एवं विद्वान्प्रभवं चाऽप्ययं च मत्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ॥ ७५ ॥
दिव्यावृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः ।
दशाऽप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥ ७६ ॥

प्राप्त करने से और वासुदेव नारायण के मन, वाणी, बुद्धि, आत्मा और शरीर में हर्ष का प्रवाह बहने लगा। अक्षमालाधारी ज्योतिर्मय तेजोमय विश्वकर्ता रुद्र को देखकर नारायण ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। वरदान देनेवाले, पार्वती से क्रीड़ा कर रहे, भूतगण-परिवृत, प्रभु, महात्मा, अज, ईशान, विरूपाक्ष, अव्यक्त-स्वरूप, कारणात्मा, अच्युत, अन्धकासुर को मारनेवाले रुद्र को प्रणाम करने के पश्चात् कमलनयन नारायण इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे—॥६९।७२॥ हे वरेण्य! हे आदिदेव! इस भुवन की रक्षा करनेवाले प्रजापति आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने इस पृथ्वी को बसाकर आपकी प्राचीन सृष्टि का पालन किया है। देवता, दानव, नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, गरुड, गन्धर्व, यक्ष, अनेक प्रकार के सब प्राणी और लोक आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, यही हम जानते हैं। आपकी ही शक्ति से इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, पितृगण, त्वष्टा, चन्द्रमा आदि सब लोकपाल अपना-अपना कार्य करते हैं। रूप, ज्योति, शब्द, आकाश, वायु, स्पर्श, रस, जल, गन्ध, पृथ्वी, काल, ब्रह्मा, ब्रह्म, ब्राह्मण और यह सब चराचर जगत् आपके ही शरीर से उत्पन्न हुआ है॥७३।७४॥ जैसे समुद्र से छोटे-छोटे जलाशय पृथक् रहते हैं और प्रलयकाल में सब मिलकर एकाकार सागर हो जाता है, वैसे ही विद्वान् लोग आपसे ही सब जीवों की उत्पत्ति और आपमें ही लय होना जानते हैं और अन्त को उसी ज्ञान से उन्हें सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। आपने ही स्वयंप्रकाशमान सत्यस्वरूप मनोगम्य जीवात्मा और परमात्मा रूप दो पक्षियों को, [नीचे की ओर

भूतं भव्यं भविता चाऽप्यधृष्यं त्वत्सम्भूता भुवनानीह विश्वा ।
भक्तं च मां भजमानं भजस्व मा रीरिषो मामहिताहितेन ॥ ७७ ॥
आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यबोधं विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम् ।
अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्विचिन्वन्वै सदृशं देववर्य ।
सुदुर्लभान्देहि वरान्ममेष्टानभिष्टुतः प्रतिकार्षीश्च मायाम् ॥ ७८ ॥
व्यास उवाच—तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक् ।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७९ ॥
श्रीभगवानुवाच—मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥
न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ ८१ ॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः ।
न कश्चित्त्वां च देवोपि समरेषु विजेष्यति ॥ ८२ ॥
न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च ॥ ८३ ॥
कश्चित्तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात्कथञ्चन ।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥ ८४ ॥

शाखाओंवाले] पिप्पलवृक्ष को, पञ्चमहाभूत और मन तथा बुद्धि इन सात शरीररक्षक तत्त्वों को और दस इन्द्रियों को उत्पन्न किया है॥७५।७६॥ भूत, वर्तमान और अज्ञेय भविष्य का विधान करनेवाले केवल आप ही हैं। यह विश्व और सब लोक आपके ही रचे हुए हैं। हे लोकपितामह ! हे ईश ! मैं आपको भजनेवाला भक्त हूँ। काम आदि अनेक प्रकार की बाधाओं से आप मुझे बचाइए। जो कोई आपको आत्मा का आत्मा अर्थात् परमात्मा जानता है और ज्ञानमय मानता है, वही विद्वान् शुद्धस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है। हे देवश्रेष्ठ ! आप प्रकाशस्वरूप हैं। सब लोग आपके तत्त्व को जानकर ही महत्त्व प्राप्त करते हैं। हे देव-देव ! मैं लोक में पूजा के योग्य देवता की खोज कर रहा था। आपके सम्मान और पूजा के निमित्त ही मैंने आपकी स्तुति की है। स्तुति से प्रसन्न होकर आप मुझे दुर्लभ इष्ट वर दीजिए और ऐसा कीजिए कि आपकी माया मेरा कुछ अनिष्ट न कर सके ॥७७।७८॥ व्यास जी कहते हैं कि हे अश्वत्थामा ! अचिन्त्यस्वरूप पिनाकपाणि देवदेव महादेव ने ऋषि-श्रेष्ठ देवश्रेष्ठ विष्णु अर्थात् नारायण की स्तुति से सन्तुष्ट होकर उन्हें इस प्रकार श्रेष्ठ वर दिये—हे नारायण ! मैं तुम पर प्रसन्न होकर कहता हूँ कि मनुष्य, देवता, गन्धर्व आदि में कोई भी तुम्हारे समान बली न होगा। मेरे प्रसाद से ही तुम्हारा बल अप्रमेय होगा॥७९।८०॥ देवता, दैत्य, महानाग, पिशाच, गन्धर्व, राक्षस यक्ष, सुपर्ण, सर्प, सिंहव्याघ्र आदि किसीसे तुम्हें भय न होगा—विश्व भर में कोई तुम्हारा सामना न कर सकेगा। समर में कोई देवता भी तुमको नहीं परास्त कर सकेगा। मेरी कृपा से कोई भी व्यक्ति शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले या सूखे पदार्थ, चर या अचर पदार्थ, हाथ, पाँव, काष्ठ, पत्थर आदि किसी के प्रहार से किसी प्रकार का कष्ट तुम्हें नहीं पहुँचा सकेगा। संग्राम में तुम मुझसे भी अधिक

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद्विद्धि शौरिणा ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ८५ ॥
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥
तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥
तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च ।
तेजो मन्युं च बिभ्रंस्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥ ८८ ॥
स भवान्देववत्प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् ।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥
शुभ्रमत्र हविः कृत्वा महापुरुषविग्रहम् ।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ९० ॥
स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत् ।
पुष्कलांश्च वरान्प्रादात्तव विद्वन्हृदि स्थितान् ॥ ९१ ॥
जन्म कर्म तपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयाऽर्चायां युगे युगे ॥ ९२ ॥
सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम् ।
आत्मयोगाश्च तस्मिन्वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥ ९३ ॥

पराक्रमी हो जाओगे॥८१।८४॥हे अश्वत्थामा ! पूर्व समय में जिन नारायण ने शङ्कर से ऐसे वरदान प्राप्त किये थे वही देवदेव इस समय वासुदेव-रूप से पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं और माया से सब जगत् को मोहित कर रहे हैं। उन्हीं के तप (अंश) से महर्षि नर की उत्पत्ति हुई है, और अर्जुन वही नर हैं, जो सब बातों में नारायण के तुल्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन तीनों के बीच विष्णु-स्वरूप नर-नारायण ऋषि अत्यन्त तपस्वी हैं। दानवों को मारकर धर्म की स्थापना और लोक-रक्षा करने के निमित्त हर युग में इनका अवतार होता है। हे महामते ! तुम भी तेजस्वी, क्रोधी और उन्हीं रुद्रदेव के अंश से उत्पन्न हुए हो। तुम भी भारी तप, श्रेष्ठ कर्म, तेज और विद्या से सम्पन्न रुद्र के अंश हो ॥८५।८८॥तुम भी देवदेव नारायण की भाँति पूर्व जन्म में विष्णु पुरुष थे। तुमने भी सब जगत् को रुद्र-मय जानकर उन्हें सन्तुष्ट करने के निमित्त घोर तपस्या करके अपने शरीर को सुखाया था और पवित्र मन्त्र के जप, हवन, उपहार (पूजा) आदि से देवादिदेव शङ्कर की आराधना की थी। रुद्रदेव ने तुम्हारी पूजा और आराधना से सन्तुष्ट होकर तुमको, तुम्हारी इच्छा के अनुसार, श्रेष्ठ वर दिये थे॥८९।९१॥श्रीकृष्ण और अर्जुन जन्म, कर्म, तप और योग आदि में जैसे श्रेष्ठ हैं वैसे ही तुम भी हो। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने प्रत्येक युग में अजेय अचिन्त्यस्वरूप रुद्र की पूजा शिवलिङ्ग में की है। जो पुरुष शिव को सर्वरूप सर्वव्यापक जान-कर लिङ्ग-रूप में उनकी पूजा करता है, उस रुद्र-भक्त में सदा शाश्वत आत्मयोग और शास्त्रयोग रहते हैं। देवता, सिद्ध और महर्षि लोग परलोक में श्रेष्ठ

एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥ ९४ ॥
स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः ।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ९५ ॥
सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः ।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ९६ ॥
सञ्जय उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः ।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९७ ॥
हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये ।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥ ९८ ॥
ततः प्रत्यवहारोऽभूत्पाण्डवानां विशाम्पते ।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९९ ॥
युद्धं कृत्वा दिनान्पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् ।
ब्रह्मलोकं गतो राजन्ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये शततद्वीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

गति प्राप्त करने के निमित्त शङ्कर की ही उपासना किया करते हैं। निश्चय जानो, केशव रुद्र से ही उत्पन्न और उन्हीं के भक्त हैं। नारायणावतार भगवान् वासुदेव सदा शिवलिङ्ग की पूजा करते हैं और शिव को ही सब प्राणियों की उत्पत्ति का कारण जानते हैं। शिवजी भी कृष्णचन्द्र से अत्यन्त प्रीति रखते हैं। इसी लिए कल्याण की इच्छा रखनेवाले को विविध यज्ञों से वासुदेव की पूजा करनी चाहिए।९२।९६॥सञ्जय कहते हैं—हे कुरु कुल-श्रेष्ठ महाराज! जितेन्द्रिय अश्वत्थामा का सन्देह, वेदव्यास की बातें सुनने से, दूर हो गया। उन्होंने रुद्रदेव को प्रणाम किया और समझ लिया कि कृष्णचन्द्र साधारण मनुष्य नहीं, साक्षात् नारायण हैं। उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। महर्षि वेदव्यास को प्रणाम करके वे कौरव दल में लौट आये। उन्होंने युद्ध बन्द करा दिया। कौरवों की सेना को युद्ध बन्द करते देखकर पाण्डवों ने भी युद्ध बन्द कर दिया। द्रोणाचार्य की मृत्यु होने से दीन भाव को प्राप्त कौरवगण अपने डेरों को लौट चले। हे महाराज! वेदपाठी महारथी ब्राह्मण द्रोणाचार्य इस प्रकार पाँच दिन तक घोर युद्ध और शत्रुसेना का संहार करके अन्त को ब्रह्मलोकगामी हुए। उनकी मृत्यु होने से कौरवों के दुःख शोक की सीमा नहीं रही॥९७।१००॥

द्रोणपर्व का दो सौ एक अध्याय समाप्त हुआ ॥ २०१ ॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥

दो सौ दो अध्याय ॥ २०२ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! अतिरथी योद्धाओं में पहले गिने जानेवाले द्रोणाचार्य जब धृष्टद्युम्न के हाथ से रणभूमि में मारे गये तब पाण्डवों और कौरवों ने क्या किया? वह सब वृत्तान्त तुम मेरे आगे प्रकट करो

सञ्जय उवाच—तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् ।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच—संग्रामे न्यहनं शत्रूञ्छरौघैर्विमलैरहम् ।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥
ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥
तेन भग्नानरीन्सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः ।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥ ६ ॥
भगवंस्तन्ममाऽऽचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः ।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ७ ॥
न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति ।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ८ ॥
व्यास उवाच—प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम् ।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥
महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम् ।
त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥

॥१॥सञ्जय ने कहा कि हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य की मृत्यु होने और कौरवों के समर से हट जाने पर अर्जुन ने यह विजय देनेवाला बहुत [redacted] अद्भुत दृश्य देख कर अपनी इच्छा से आये हुए भगवान् वेदव्यास से पूछा—हे भगवन् ! मैं जिस समय तीक्ष्ण बाण बरसा-कर शत्रुओं को मारने का यत्न कर रहा था उस समय मुझे देख पड़ता था कि कोई अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष मेरे आगे-आगे शत्रुओं का संहार करता जा रहा था । कृपा कर बतलाइए, वह पुरुष कौन था ? वे पुरुषोत्तम शूल तानकर जिधर जिधर जाते थे उधर उधर के शत्रु मरते जाते थे ? जिधर वे जाते थे उधर शत्रु सेना काई की तरह फट जाती थी ॥२।५॥उनके प्रभाव से शत्रु भागते थे और लोग समझते थे कि मेरे प्रहार से शत्रु भाग रहे और मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं । उनकी भगाई और मृत्यु को प्राप्त हुई-हुई सेना को भगाता और मारता हुआ मैं पीछे-पीछे जाता था । हे भगवन् ! वे महापुरुष कौन थे ? वे सूर्य के समान तेजस्वी थे । न तो उनके पाँव पृथ्वी में लगते थे और न वे हाथ से त्रिशूल छोड़ते थे । उनके तेज व प्रभाव से उस एक ही शूल से सहस्रों शूल निकलकर शत्रुओं का संहार कर रहे थे ॥६।८॥व्यासदेव ने कहा—हे अर्जुन ! तुमने जिन महापुरुष के दर्शन किये हैं वे प्रभु तेजोमय पुरुष प्रजापतियों के पूर्वज (अर्थात् सबसे पहले प्रकट), भुवन स्वामी, भूर्भुवः स्वरूप, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय,

महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम् ।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥
जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम् ।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥
विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम् ।
शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥
योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥
लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम् ।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥
शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम् ।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १७ ॥
ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् ।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान्वरान् ॥ १८ ॥
तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः ।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥ १९ ॥
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथाऽपरे ।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥
ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥

ईशान, वर देनेवाले, देवदेव, त्रिभुवन के स्वामी महादेव हैं॥९।१०॥महात्मा, ईश,जटाधारी, विभु, शङ्कर, त्रिलोचन, महाबाहु, रुद्र, शिखाधारी,चीरवासा, महादेव, हर,स्थाणु,वरद,भुवनेश्वर,जगत् में श्रेष्ठ,अपराजित, जगत् को आनन्द देनेवाले,परमेश्वर,॥११।१२॥जगत् के मातापिता स्वरूप, जययुक्त,जगत् की गति, विश्व की आत्मा,विश्व की सृष्टि करनेवाले,विश्वमूर्ति और यशस्वी कहकर लोग उनकी स्तुति किया करते हैं। हे पार्थ! तुम उनकी शरण में जाओ, उन्हें प्रणाम करो। वे विश्वेश्वर, विश्व के सञ्चालक या नेता, कर्मों का फल देनेवाले,प्रभु, शम्भु, स्वयम्भू ,भूतेश,भूत-भविष्य और वर्तमान के नियामक, योगस्वरूप, योगियों के ईश्वर, सर्व, सब लोकों के ईश्वर जो इन्द्र आदि हैं उनके भी ईश्वर, सबसे श्रेष्ठ, जगत् भर में श्रेष्ठ, वरिष्ठ, परमेष्ठी, तीनों लोकों के विधाता,अद्वितीय, त्रिभुवन के आश्रयस्वरूप, ॥१२।१६॥ शुद्धरूप, भव, भीम, शशाङ्कशेखर, शाश्वत, भूधर, देव, सब विद्वानों के ईश्वर, अत्यन्त दुर्जय अर्थात् जो अधिकारी नहीं हैं उनके निमित्त अत्यन्त दुर्लभ, जगन्नाथ, जन्महीन, अजर, अमर, ज्ञानरूप, ज्ञानगम्य, ज्ञान में श्रेष्ठ, कठिनता से ज्ञेय और प्रसन्न होकर भक्तों को कामना के अनुसार वर देनेवाले हैं। उनके पारिषद दिव्य और अनेक रूप हैं॥१६।१८॥वे लोग बौने, जटाधारी, मुंडे, छोटी गर्दन के, बड़े पेट के, महाकाय और महाउत्साह से

तस्मिन्घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे ।
द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत् ।
ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २३ ॥
स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते ।
नहि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥
तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि ।
ये चाऽन्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥ २६ ॥
ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥
इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् ।
नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥ २८ ॥
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥
याम्यायाऽव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च ।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ ३० ॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च ।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥

परिपूर्ण हैं। किसी-किसी के कान बहुत बड़े हैं। हे पार्थ! उनके मुख, पाँव और वेष विकृत हैं। ऐसे भूतगण उन महादेव की सेवा किया करते हैं। वही तेजस्वी शिव, तुम पर प्रसन्न होने के कारण, तुम्हारे आगे-आगे शत्रुओं को मारते जाते हैं॥१९।२१॥यह महाभारत युद्ध बड़ा लोमहर्षण है। हे पार्थ! अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य आदि महारथी कौरवों की सेना के रक्षक हैं। ऐसे योद्धाओं से रक्षित सेना पर आक्रमण करने की बात भी कोई मनुष्य अपने मन में नहीं ला सकता। महाधनुर्धर बहुरूप महेश्वर के अतिरिक्त और कोई उस सेना का नाश नहीं कर सकता। आगे-आगे शत्रुओं को मार रहे महादेव के आगे कोई स्थित ही नहीं हो सकता॥२२।२४॥युद्ध में कुपित शङ्कर की गन्ध से भी शत्रुगण अचेत और अधिकांश नष्ट हो जाते हैं, काँपते हैं और गिर पड़ते हैं। देवगण स्वर्ग में उन्हें प्रणाम करते हैं। अन्य स्वर्गवासी सुकृती जन और मनुष्य भी उनकी आराधना किया करते हैं। जो भक्त पुरुष अनन्य भाव से सदा सब के ईश्वर, वरदानी, देवदेव, शिव, रुद्र, उमापति की उपासना किया करते हैं वे इस लोक में सुख पाकर परलोक में परम गति के अधिकारी होते हैं। हे अर्जुन! तुम उन्हीं सदा शान्त भगवान् को प्रणाम करो॥२५।२८॥रुद्र, शितिकण्ठ, कनिष्ठ, सुवर्चा, कपर्दी, कराल, हर्यक्ष, वरदानी, याम्य, अव्यक्तकेश, सद्वृत्त, शङ्कर, काम्य

बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ ३२ ॥
गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ।
हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥ ३३ ॥
पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥ ३४ ॥
वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥ ३५ ॥
बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे ।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६ ॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ।
शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥ ३८ ॥
कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९ ॥
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥
महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४१ ॥
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥

हरिनेत्र, स्थाणु, पुरुष, हरिकेश, मुण्ड, कृश, उत्तारण, भास्कर, सुतीर्थ, देवदेव, वेगशाली, बहुरूप, सर्व, प्रिय, प्रियवासा, उष्णीषधारी, सुमुख, सहस्राक्ष, मीढुष, गिरिश, प्रशान्त, यति, दिगम्बर, चीरवासा, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पाल, पर्जन्यपति, भूतपति,॥२८।२४॥वृक्षों के पति, पशुपति, वृक्षों से आवृत शरीर, सेनानी, मध्यम, स्रुवहस्त देव, धनुर्द्धर, भार्गव, विश्वपति, मुञ्जवासा, सहस्रशीर्षा, सहस्रनयन, सहस्रचरण, सहस्रबाहु, सहस्रमुख भगवान् की शरण में जाओ और उन्हें बारम्बार प्रणाम करो॥३४।३८॥वरदानी, विश्वनाथ, उमापति, विरूपाक्ष, दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले, प्रजापति, भूतपति, अव्यग्र, अव्यय, कपर्दी, वृषावर्त्त, वृषनाभ, वृषध्वज, वृषदर्प, वृषपति, वृषशृङ्ग, वृषश्रेष्ठ, वृषाङ्क, वृषभोदार, वृषभ, वृषभेक्षण, वृषायुध, वृषबाण, वृषभूत, वृषेश्वर, महोदर, महाकाय, व्याघ्रचर्माम्बर, लोकेश्वर, वरद, पुण्यरूप, ब्रह्मण्य, ब्राह्मणप्रिय, त्रिशूलपाणि, वरद, खड्ग-चर्म-धर, प्रभु, पिनाकी, खड्गधर, लोकपति, ईश्वर, शरण्य, दिगम्बर

प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ।
नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने ।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने ।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥
नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥
मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ४८ ॥
अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥ ४९ ॥
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ।
कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः ॥ ५० ॥
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
न सुरा नाऽसुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१ ॥
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ।
दक्षस्य यजमानस्य विधिवत्सम्भृतं पुरा ॥ ५२ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा ।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ५३ ॥

देव की मैं शरणागत हूँ॥२८।४२॥ सुवासा, सुव्रत, सुधन्वा, धनुर्द्धर, प्रियधन्वा, धन्वी, धन्वन्तर, धनु और धन्वाचार्य को मेरा प्रणाम है। उग्रायुध, देव, सुरवर, बहुरूप और बहुधन्वा को प्रणाम है। स्थाणु, तपस्वी, त्रिपुर-दहन, भग-हन्ता को प्रणाम है। वनस्पतिपति, मनुष्यपति, ॥४३।४७॥ मातृपति, गणपति, गोपति, यज्ञपति, सलिलपति और सुरपति को प्रणाम है। पूषा के दाँत तोड़नेवाले, त्रिलोचन, वरदानी, नीलकण्ठ, पिङ्ग और स्वर्णकेश को प्रणाम है। हे पार्थ! जहाँ तक मैं जानता हूँ और मैंने सुन रक्खा है, उसके अनुसार अब मैं उनके दिव्य कर्मों का वर्णन करता हूँ, सुनो॥४८।५१॥ महादेव के कुपित होने पर, यदि पाताल में चले जाँय तो वहाँ भी देवता, असुर, गन्धर्व, राक्षस आदि कोई सुख से नहीं रह सकता। पूर्व समय में यजमान दक्ष प्रजापति ने विधिपूर्वक यज्ञ किया था; किन्तु महादेव ने कुपित और निर्दय होकर उनका यज्ञ नष्ट करने के निमित्त धनुष से बाण छोड़कर भयानक शब्द किया जिससे यज्ञ-विध्वंस हो गया। एकाएक यज्ञ-पुरुष के

ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा ।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ५४ ॥
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥
आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुन्धरा ।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ५६ ॥
अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः ।
जघ्निवान्सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ५७ ॥
चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥ ५८ ॥
पूषाणमभ्यद्रवत शङ्करः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥ ५९ ॥
ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते ।
पुनश्च सन्दधे दीप्तान्देवानां निशिताञ्शरान् ॥ ६० ॥
सधूमान्सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसन्निभान् ।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥
रुद्रस्य यज्ञ भागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ ६२ ॥
तेन चैवाऽतिकोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा ।
भग्नाश्चापि सुरा आसन्भीताश्चाऽद्यापि तं प्रति ॥ ६३ ॥

भागने और महादेव के कुपित होने से सब देवता व्याकुल हो उठे। उन्हें किसी प्रकार कल्याण और शान्ति नहीं प्राप्त होती थी॥५१।५४॥शिव की प्रत्यञ्चा के दारुण शब्द से सब लोक व्याकुल हो उठे। सब देवता और दानव वशवर्ती होकर, शरण में आकर, रुद्र के चरणों पर गिर पड़े। शिव के क्रुद्ध होने पर सागर क्षोभ को प्राप्त हुआ, धरती हिलने लगी, पर्वतों के शिखर फट-फटकर गिरने लगे, दिशाओं में अँधेरा हो गया, दिग्गज मूढ़ और अचेत से हो गये। सब लोकों में घना अँधेरा छा गया, कुछ भी नहीं सूझता था॥५४।५७॥रुद्र ने सूर्य सहित सब ज्योतिर्मय पदार्थों की प्रभा नष्ट कर दी। ऋषिगण भय और क्षोभ से व्याकुल होकर सब प्राणियों के और अपने कल्याण के निमित्त शान्ति करने लगे। शङ्कर हँसते हुए पूषा देवता के पीछे दौड़े। वे पुरोडाश खा रहे थे। शङ्कर ने उनके दाँत तोड़ दिये। तब सब देवगण भय से विह्वल होकर काँपते हुए यज्ञशाला से निकल भागे॥५७।६०॥रुद्र ने फिर देवताओं को लक्ष्य करके धनुष पर प्रज्वलित, धुएँ और चिनगारियों से युक्त, बिजली और मेघ के समान तीक्ष्ण बाण चढ़ाये। यह देखकर सब देवता महेश्वर के शरणागत हो चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने रुद्र के निमित्त यज्ञ का बचा हुआ विशेष भाग कल्पित कर दिया। भयपीड़ित देवताओं के शरणागत होने पर अति क्रोधी रुद्र ने उस अधूरे

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ६४ ॥
सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् ।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६५ ॥
न शक्तस्तानि मघवान्भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ ६६ ॥
ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥ ६७ ॥
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः ।
त्वदृते देवदेवेश नाऽन्यः शक्तः कथञ्चन ॥ ६८ ॥
हन्तुं दैत्यान्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विपः ।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ ६९ ॥
निपातयिष्यसे चैतानसुरान्भुवनेश्वर ।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः ।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः ॥ ७१ ॥
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः ।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ७२ ॥
अणीकृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः ।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम् ॥ ७३ ॥

यज्ञ को पूर्ण कर दिया । तभी से देवगण रुद्र से भयभीत होते हैं; उनका यह भय अब तक दूर नहीं हुआ॥६०।६३॥महादेव का और चरित्र सुनो । पूर्व समय में पराक्रमी असुरों के तीन पुर थे—एक सुवर्ण का,दूसरा चाँदी का और तीसरा लोहे का। कमलाक्ष दानव सुवर्ण के पुर का, तारकाक्ष दानव चाँदी के पुर का और विद्युन्माली दानव लोहे के पुर का स्वामी था। इन्द्र अपने वज्र आदि सब अस्त्र-शस्त्र चलाकर हार गये, वे पुर नष्ट नहीं हो सके॥६४।६६॥इसके पश्चात् सब देवता, इन्द्र को आगे करके, महेश्वर की शरण में जाकर कहने लगे—हे प्रभु! ये त्रिपुरनिवासी तीनों असुर, ब्रह्मा के वरदान से,अत्यन्त गर्वित होकर सब लोकों को सता रहे हैं। हे देवदेवेश ! आपके अतिरिक्त और कोई इन असुरों का संहार नहीं कर सकता । इसलिए आप स्वयं इनका संहार कीजिए । हे ईश्वर ! सब कर्मों में रुद्र रूप धारण करनेवाले पशुओं और इन असुरों को आप मारेंगे॥६६।७०॥हे अर्जुन ! देवताओं के यों कहने पर भगवान् शङ्कर ने उनके हित के निमित्त प्रार्थना स्वीकार कर ली। उस त्रिपुर को नष्ट करने के निमित्त उन्होंने एक दिव्य रथ की कल्पना की । गन्धमादन और विन्ध्याचल उस रथ की आसमान की दो ध्वजा बने । समुद्र-वन सहित पृथ्वी को ही रथ बनाया । नागराज शेष को उसका अक्ष, चन्द्र सूर्य को दोनों पहिये, एलपत्र और पुष्पदन्त नाग

योक्त्राङ्गानि च सत्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान् ।
वेदान्कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान्महेश्वरः ॥ ७४ ॥
उपवेदान्खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः ।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥ ७५ ॥
कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम् ।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ ७६ ॥
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च ।
वायुं कृत्वाऽथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम् ॥ ७७ ॥
विद्युत्कृत्वाऽथ निश्राणं मेरुं कृत्वा च वै ध्वजम् ।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥ ७८ ॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः ।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ७९ ॥
स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥ ८० ॥
अतिष्ठत्स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ।
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥ ८१ ॥
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।
पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८२ ॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।
पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥

को अक्षकीलक, मलयाचल को युग, तक्षक नाग को अवनाह (त्रिवेणु और युग के बाँधने की रस्सी), ॥७०।७३॥सरीसृप पर्यंत आदि को जोत और रास आदि सब अङ्ग, चारों वेदों को चार घोड़े, चारों उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व, पश्चिमाम्नाय) को घोड़ों की लगामों की कड़ी, सावित्री और गायत्री को प्रग्रह (लगाम), ओंकार को प्रतोद, ब्रह्मा को सारथी, मन्दराचल को धनुष,वासुकि को उसकी डोरी, विष्णु को श्रेष्ठ बाण, अग्नि को बाण की गाँसी, वायु को बाण के पङ्ख, यमराज को बाण-पुङ्ख,बिजली को बाण की तीक्ष्ण धार और सुमेरु को ध्वजा बनाकर उस दिव्य देवमय रथ पर शिव सवार हुए॥७४।७८॥महा

योद्धा असुरनाशन अतुलपराक्रमी श्रीमान् रुद्र ने त्रिपुर नष्ट करने के निमित्त ऐसा उद्योग किया। सब देवता और ऋषि उनकी स्तुति करने लगे। महेश्वर दिव्य अप्रतिम माहेश्वर व्यूह से स्थाणु होकर सहस्र वर्ष तक अचल की भाँति स्थित रहे॥७८।८१॥अन्तरिक्ष में जब तीनों पुर एकत्र एक सीध में आये तब उनको उन्होंने, तीन पर्वों (विष्णु, वायु, वैवस्वत) और तीन शल्यों (गार्हपत्य,दक्षिणाग्नि आहवनीय रूप अग्नि) वाला बाण चलाकर,एक साथ ही नष्ट कर दिया। पुरों के स्वामी दानवगण उस बाण या शिव की ओर नेत्र उठाकर देख तक भी नहीं सके। उस समय कालाग्नि,विष्णु और सोम से युक्त उस बाण को त्रिपुर भस्म करते देखने

बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान् ॥ ८४ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्याऽस्तम्भयत्प्रभुः ॥ ८५ ॥
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।
ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।
ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८७ ॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्म पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नाऽस्माभिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥
तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥ ८९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान्बालं चाऽमिततेजसम् ॥ ९० ॥
उवाच भगवान्ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान्हरः ॥ ९१ ॥
तस्मात्परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति महेश्वरात् ।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥
स पार्वत्याः कृते शर्वः कृतवान्बालरूपताम् ।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥
स एष भगवान्देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥

के निमित्त देवी पार्वती वहाँ आईं। पञ्चशिख बालक का रूप रखे हुए महादेव देवी की गोद में विराजमान थे॥८३।८४॥ उमा ने देवताओं के मन का भाव जानने के निमित्त उनसे पूछा, यह बालक कौन है? इन्द्र ने दुर्दैववश ईर्ष्या करके बालरूप रुद्र पर वज्रप्रहार करना चाहा। भगवान् भूतपति यह देखकर कुछ हँसे और उन्होंने कुपित इन्द्र के वज्र सहित हाथ को जहाँ का तहाँ रोक दिया॥८५।८६॥ बालरूप महादेव के प्रभाव से बाहु बँध जाने पर इन्द्रदेव सब देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा के समीप पहुँचे। देवताओं ने ब्रह्मा को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—हे ब्रह्मन्! हम लोगों ने पार्वती देवी की गोद में एक अद्भुत बालक को देखकर प्रणाम नहीं किया। हमारे उस अपराध से क्रुद्ध होकर उस बालक ने, युद्ध न करके भी, अनायास इन्द्र सहित हमको परास्त कर दिया॥८६।८९॥ ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने देवताओं के वचन सुनकर योग-बल से जान लिया कि यह महातेजस्वी बालक और कोई नहीं, साक्षात् महेश्वर हैं। तब उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं से कहा—हे देवगण! वह बालक चराचर जगत् के प्रभु भगवान् महेश्वर हैं। उनसे बढ़-

सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।
अथाऽभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम् ॥ ९५ ॥
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ।
ब्रह्मोवाच— त्वं यज्ञो भुवनस्याऽस्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥ ९६ ॥
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ९७ ॥
भगवन्भूत भव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥ ९८ ॥
व्यास उवाच—पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः ।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाऽकरोत् ॥ ९९ ॥
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥ १०० ॥
तेषां प्रसन्नो भगवान्सपत्नीको वृषध्वजः ।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ १०१ ॥
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित् ।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥ १०२ ॥
स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः ।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥ १०३ ॥
स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो राऽयहानि तु ।
मासार्धमासा ऋतवः सन्ध्ये संवत्सरश्च सः ॥ १०४ ॥

कर और कोई नहीं है । तुमने पार्वती की गोद में जिनको देखा है वे पार्वती के निमित्त बालक का रूप धारण किये हुए महादेव हैं॥९०।९३॥मेरे साथ चल कर तुम लोग उनकी शरण में जाओ । वे प्रभु सब लोकों के ईश्वर भुवनेश्वर हैं । बालसूर्य के समान तेजस्वी उन शङ्कर को, बालरूप देखकर तुम और प्रजापति-गण, कोई नहीं पहचान सका । इसके उपरान्त ब्रह्माजी वहाँ गये जहाँ बालरूप शङ्कर थे । उन्हें सर्वश्रेष्ठ जान-कर पितामह ब्रह्मा ने प्रणाम किया॥९३।९६॥वे इस प्रकार स्तुति करने लगे— हे देव ! तुम इस भुवन के यज्ञ (पूजनीय), पालक,आश्रयस्थान, भव (उत्पत्ति के कारण),महादेव,तेजोरूप,परम पद और चराचर विश्व में व्याप्त हो । हे भगवन् ! हे भूत भविष्य-वर्त-मान के ईश्वर ! हे लोकनाथ ! हे जगत्पति ! अपने क्रोध से पीड़ित इन्द्र को क्षमा करो और उन्हें कृपा-दृष्टि से देखो॥९६।९८॥व्यासजी कहते हैं—हे पार्थ ! ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् महेश्वर अट्ट-हास करने लगे । उस समय देवता लोग भगवती पार्वती और रुद्रदेव को मनाने लगे । शिव की कृपा से इन्द्र का हाथ फिर पहले की भाँति बन्धनमुक्त हो गया॥९९।१००॥देवताओं में श्रेष्ठ,दक्षयज्ञ के विध्वंस करनेवाले, वृषध्वज शङ्कर और पार्वती दोनों ही देवताओं पर प्रसन्न हो गये । हे अर्जुन ! वे रुद्र हैं, शिव हैं, अग्नि हैं, सर्व हैं, सर्वज्ञ हैं । वही इन्द्र,वायु, अश्विनीकुमार,

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ १०५ ॥
सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः ।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥ १०६ ॥
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।
घोरा चाऽन्या शिवा चाऽन्या ते तनू बहुधा पुनः ॥ १०७ ॥
घोरा तु यातुधानस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः ।
सौम्या तु पुनरेवाऽस्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः ॥ १०८ ॥
वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः ।
यदत्र परमं गुह्यं सर्वदेवो महेश्वरः ॥ १०९ ॥
ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः ।
नहि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ ११० ॥
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन ।
सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान्वै सर्वपापसमन्वितान् ॥ १११ ॥
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥ ११२ ॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाऽऽक्षिपते पुनः ।
सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥ ११३ ॥
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे ।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ॥ ११४ ॥

बिजली, भव, पर्जन्य, महादेव, सनातन पुरुष, चन्द्रमा, ईशान, सूर्य, वरुण, काल, अन्तक, मृत्यु, यमराज रात्रि दिन, मास-पक्ष, ऋतु, सन्ध्याकाल, संवत्सर, ॥१०१।१०४॥ धाता, विधाता, विश्वात्मा, विश्व के सब कर्मों को पूर्ण करनेवाले और शरीरहीन होकर भी सब देवताओं का शरीर रखनेवाले हैं। सब देवता उनकी स्तुति किया करते हैं। वे एकरूप और बहुरूप हैं। उनके सैकड़ों, सहस्रों, लाखों रूप भी हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों का कहना है कि उनकी घोर और कल्याणरूपिणी दो मूर्तियाँ हैं॥१०५।१०७॥ उन मूर्तियों के भी फिर बहुत से भेद हैं। घोर मूर्ति यातुधान की है—वही अग्नि, विष्णु और सूर्य है। सौम्य मूर्ति इन्हीं की है—वही जल, ज्योतिर्गण और चन्द्रमा है। वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण, अध्यात्म सिद्धान्त और जो कुछ परम गुह्य विषय है, सो सब महेश्वर देव ही हैं। वे बहु-मूर्ति और अजन्मा हैं। देवदेव महादेव ऐसे हैं। उनके असंख्य गुणों का पूर्ण वर्णन मैं निरन्तर सहस्र वर्ष में भी नहीं कर सकता॥१०८।१११॥ शरणागतवत्सल शङ्कर सब प्रकार की ग्रह बाधा और सङ्कट में पीड़ित महापातकी लोगों को भी, शरण में आने से प्रसन्न होकर, दुःख कष्ट से बचा देते हैं। वे प्रसन्न होकर मनुष्यों को अपरिमित आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और विविध भोग देते हैं और कहीं रुष्ट होने पर सब हर लेते हैं। इन्द्र आदि सबका ऐश्वर्य उन्हीं का ऐश्वर्य

महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः ।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥ ११५ ॥
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम् ।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत्तोयमयं हविः ॥ ११६ ॥
एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः ।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥ ११७ ॥
अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च ।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥ ११८ ॥
नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मणस्तथा ॥ ११९ ॥
वेदे चाऽस्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।
नाम्ना चाऽनन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः ॥ १२० ॥
स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत् ॥ १२१ ॥
ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्याऽनलोऽभवत् ॥ १२२ ॥
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ १२३ ॥
दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथास्थितम् ।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ १२४ ॥

है। वे मनुष्यों के शुभ अशुभ कर्मों को जानते हैं। इच्छाओं के ऐश्वर्य से ही उनको ईश्वर कहते हैं। बड़े से बड़े प्राणी के ईश्वर होने के कारण ये महेश्वर हैं। वे अनेक प्रकार के रूपों से विश्व को व्याप्त किये हुए हैं ॥१११।११५॥ उनका मुख समुद्र में स्थित होकर जलमय हवि को पान करता है और उसे वड़वामुख कहते हैं। वे नित्य मसानों में रहते हैं। उसी वीर स्थान में मनुष्य उनकी पूजा किया करते हैं। लोक में लोग कहते हैं कि उनके प्रदीप्त घोर बहुत से रूप हैं, जिनकी पूजा की जाती है॥११६।११८॥ उनके कर्मों के महत्त्व और विभुत्व के कारण अनेक सार्थक नाम संसार में लिये जाते हैं। वेद में उनका शतरुद्रिय स्तव कहा गया है। अनन्त रुद्र कहकर लोग उन महात्मा की आराधना किया करते हैं। वे देवताओं और मनुष्यों की सब मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। वे महादेव विभु, प्रभु और विश्वव्यापी हैं। ब्राह्मण और मुनि लोग उन्हें सबसे प्रथम प्रकट कहते हैं। सब देवताओं के वे पूर्वज हैं। उनके मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है॥११९।१२२॥ वे पशुओं का पालन करते हैं, उनके साथ रमते हैं और उनके अधिपति हैं, इसी से पशुपति कहलाते हैं। दिव्य ब्रह्मचर्य से उनका शरीर स्थित है। वे सब लोकों को आनन्दित करते हैं, इसी से महेश्वर हैं। ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा आदि सब उनके उन्नत लिङ्ग-शरीर की पूजा किया करते हैं।

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥ १२५ ॥
पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥ १२६ ॥
यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवत्स्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२७॥
एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
क्रोधाद्यश्चाऽऽविशल्लोकांस्तस्मात्सर्व इति स्मृतः ॥ १२८ ॥
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते ।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२९ ॥
तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः ।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥ १३० ॥
स मेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान्सर्वकर्मसु ।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥ १३१ ॥
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ १३२ ॥
महत्पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत् ।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ॥ १३३ ॥
सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः ।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः ॥ १३४ ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः ।
भव एव ततो यस्माद्भूतभव्यभवोद्भवः ॥ १३५ ॥

उनकी पूजा करने से महेश्वर प्रसन्न, सुखी और प्रहृष्ट होते हैं॥१२३।१२६॥वे भूत-भविष्य-वर्तमान में विविध चराचर रूप से विराजमान हैं। वे एकाक्ष अथवा सब ओर सर्वत्र नेत्रयुक्त और प्रज्वलित रूप हैं। क्रोध के सौर सब लोकों में प्रवेश करने के कारण उन्हें सर्व कहते हैं। वे धूम रूप हैं, इसी से धूर्जटि कहलाते हैं। विश्वेदेव उनमें स्थित हैं, इससे वे विश्वरूप हैं। वे सब कार्यों में सब अर्थों की वृद्धि करने और मनुष्यों का कल्याण चाहने के कारण शिव हैं ॥१२७।१२९॥भुवनेश्वर शङ्कर स्वर्ग, जल और पृथ्वी, इन तीनों देवियों का स्पर्श करने के कारण त्र्यम्बक नाम से प्रसिद्ध हैं। वे सहस्रनेत्र, अयुतनेत्र, अथवा अनन्तनेत्र हैं और महत् विश्व की रक्षा करते हैं, इसी से महादेव हैं॥१३०।१३२॥वे प्राण की उत्पत्ति और स्थिति का कारण हैं और समाधि के द्वारा साक्षीस्वरूप होकर भी अविकृत हैं, इसी से स्थाणु कहे जाते हैं। चन्द्रमा और सूर्य की आकाश में व्याप्त किरणें उनके केश हैं, इसी से वे व्योमकेश हैं। भूत-भविष्य-

कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते ।
स देवदेवो भगवान्कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥ १३६ ॥
ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च ।
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धर इति स्मृतः ॥ १३७॥
निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद्देवो महेश्वरः ।
ललाटे नेत्रमसृजत्तेन त्र्यक्षः स उच्यते ॥ १३८ ॥
विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह ।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु ॥ १३९ ॥
पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १४० ॥
ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमोऽर्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्धं तथा चाऽग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते ॥ १४१ ॥
तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः ।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते ॥ १४२ ॥
ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा याऽस्य तनुस्तया ।
याऽस्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥ १४३ ॥
यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ १४४ ॥
एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाऽग्रतः ।
संग्रामे शात्रवान्निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक् ॥ १४५ ॥

वर्तमान सब जगत् वही हैं, इसी से वे भव कहे जाते हैं॥१३३।१३५॥कपि शब्द का अर्थ श्रेष्ठ और वृष शब्द का अर्थ धर्म है इसी से वे वृषाकपि हैं। वे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर के निग्रहकर्ता और संहार करनेवाले हैं, इसी से हर कहलाते हैं ॥१३६।१३७॥ महेश्वर ने दोनों बन्द नेत्रों से बलपूर्वक ललाट में तीसरे नेत्र की सृष्टि की है, इस कारण वे त्रिलोचन कहलाते हैं। वे पापी या पुण्यात्मा सब प्राणियों के शरीर में समभाव से प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं के रूप से विराजमान हैं। जो महादेव की मूर्ति और लिङ्ग की नित्य पूजा करता है उसे अपरिमित लक्ष्मी तथा ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उनका एक चरण अग्निमय और दूसरा चरण सोममय है। कुछ लोग उनके आधे शरीर को अग्निमय और आधे शरीर को सोममय कहते हैं। उनकी शिवरूपिणी तेजोमयी महती मूर्ति देवताओं में और घोर अग्निरूपिणी प्रकाशमान अग्निमयी मूर्ति मनुष्यों में है। अर्थात् वे आकाश में सोमरूप से और पृथ्वी पर अग्निरूप से स्थित हैं॥१३८।॥१४२॥वे अपनी सौम्यमूर्ति से ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करते हैं और अत्यन्त घोर मूर्ति से सबका संहार करते हैं। वे जलाते हैं, तीक्ष्ण हैं, उग्र हैं, प्रतापी हैं और मांस रुधिर मज्जा को भस्म कर देते हैं, इसी से रुद्र कहलाते हैं॥१४३।१४४॥हे पार्थ! तुमने संग्राम के समय जिन पिनाकपाणि देवदेव महादेव को अपने

सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयाऽनघ ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ॥ १४६ ॥
एष वै भगवान्देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥ १४७ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥ १४८ ॥
सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १४९ ॥
चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा ।
विजित्य शत्रून्सर्वान्स रुद्रलोके महीयते ॥ १५० ॥
चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम् ।
पठन्वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ १५१ ॥
भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा ।
वरान्कामान्स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥ १५२ ॥
गच्छ युध्यस्व कौन्तेय न तवाऽस्ति पराजयः ।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः ॥ १५३ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वाऽर्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिन्दम ॥ १५४ ॥
युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाऽहानि महाबलः ।
ब्राह्मणो निहतो राजन्ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥ १५५ ॥

आगे चलकर शत्रुओं का संहार करते देखा है, उनके गुणों का कीर्तन मैं तुम्हारे आगे कर चुका हूँ। तुमने जब सिन्धुराज जयद्रथ को मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी तब कृष्णचन्द्र ने स्वप्न में तुम्हें उन्हीं के दर्शन कराये थे। वही भगवान् युद्ध में तुम्हारे आगे आगे जा रहे थे। तुमने जिनके दिये अस्त्रों के प्रभाव से दानवों को मारा है उन्हीं की महिमा का वर्णन, यह वेदोक्त शतरुद्रिय स्तव, मैंने तुम्हारे आगे किया है ॥१४५।१४७॥ यह स्तव धन्य, यश देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, परम पवित्र और दुर्लभ है। जो मनुष्य निरन्तर इस सर्वार्थसाधक, सब पापों को मिटानेवाले, भय दुःख दूर करनेवाले महाशिव चतुर्विध स्तोत्र को सुनता है, वह वहाँ सब शत्रुओं को परास्त करके शिवलोक को जाता है ॥१४८।१५०॥ जो मनुष्य नित्य मन लगाकर भगवान् महादेव के मङ्गलदायक युद्ध-सम्बन्धी दिव्य चरित्र और शतरुद्रिय स्तव पढ़ या सुनकर विश्वेश्वर में अपनी भक्ति दिखाता है उस पर देवदेव त्रिलोचन प्रसन्न होते हैं और उसे यथेष्ट वर देते हैं। हे अर्जुन! अब तुम जाकर युद्ध का उद्योग करो। महात्मा श्रीकृष्ण जी जिसके निकटवर्ती और मन्त्री हैं, वह कभी हार ही नहीं सकता है ॥१५१।१५३॥ सञ्जय कहते हैं– हे महाराज! पराशर के पुत्र वेदव्यासजी युद्धभूमि में अर्जुन से यों कहकर चले गये। हे कुरुश्रेष्ठ! महाबली द्रोणाचार्य पाँच

स्वधीते यत्फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद्यशः ॥१५६॥
य इदं पठते पर्व शृणुयाद्वाऽपि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥१५७॥
यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते पुत्रान्पौत्रान्नित्यमिष्टांस्तथैव॥ १५८॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०२॥समाप्तं नारायणास्त्रमोक्षपर्व। द्रोणपर्व च समाप्तम् ।

दिन दारुण युद्ध करने के पश्चात् इस प्रकार शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक को गये॥१५४।१५५॥वेद पढ़ने का जो परिणाम है, वही परिणाम इस द्रोणपर्व के पाठ से भी प्राप्त होता है। इस पर्व में निर्भयचित्त शूर-शिरोमणि क्षत्रियों के यश का वर्णन किया गया है और अर्जुन तथा जनार्दन की जय का कीर्तन भी है। इस पर्व का नित्य पढ़ने या सुनने से महापाप में लिप्त पुरुष भी पातकों से छुटकारा पाकर मङ्गल प्राप्त कर सकता है। इसके पढ़ने सुनने से ब्राह्मण को यज्ञ करने का फल मिलता है, क्षत्रिय युद्ध में विजय प्राप्त करता है और वैश्य तथा शूद्र को धन-पुत्र-पौत्र आदि यथेष्ट भोग प्राप्त होते हैं॥१५६।१५८॥

द्रोणपर्व का दो सौ दो अध्याय समाप्त हुआ ॥ २०२ ॥

द्रोणपर्व समाप्त हुआ।



अस्यानन्तरं कर्णपर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः—

वैशम्पायन उवाच—ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपाद्रवन् ॥ १ ॥